भारतवर्ष का सांस्कृतिक गौरव

लेखक
शिवकुमार श्री वास्तव
प्रिंसिपल
डी० ए० वी० हायर सैकेण्डरी स्कूल,
कानपुर
रामदुलारे अवस्थी
बी० ए०, एल० टी० शास्त्री, मुंशी

नवभारती प्रकाशन मेरठ

प्रथम बार] १९४९ [मूल्य ६)

प्राक्कथन

सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था। छोटे से कस्बे में फर्रुखाबाद के पण्डित शान्तिस्वरूप का व्याख्यान होने को था। हम किशोर विद्यार्थियों में एक उन्माद-सा था। सभा हुई, पण्डित जी ने कहा—"भारत की तहज़ीब ने कभी आपस में लड़ना नहीं सिखाया, मगर आज की तवारीखें हमें यह पढ़ाती हैं कि हमेशा मुसल्मान हिन्दुओं पर जुल्म करते रहे। यह फकत इसलिये कि हिन्दू-मुसल्मान आपस में लड़ते रहें और हमारा राज्य कायम रहे।" ये विचार हृदय में अंकित हो गये।

अध्यापक जीवन में इतिहास की शिक्षा देने का अवसर आया। समय बदलता जा रहा था परन्तु इतिहास लेखकों की भावनाओं में अन्तर नहीं हुआ।

यही कारण था कि पुस्तक लिखी गई। इतिहास की मौलिक प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी मेरा अपना मत भिन्न है। मैं इतिहास को 'व्यक्तियों की गाथा' नहीं मानता। मैं उसे 'संस्कृतियों के विकास का क्रम' मानता हूँ। अतः यहाँ संस्कृति में मनुष्य की देन पर विचार किया गया है और प्रत्येक काल की संस्कृति से व्यक्ति के चरित्र की तुलना करने की चेष्टा की गई है। अतएव इतिहास को राज्यों में न बाँट कर कालों में बाँटा गया है। इस दिशा में सम्भवतः यह लगभग पहला प्रयास है। अतएव सम्भव है कि भूलें हुई हों।

परन्तु इतिहास लेखक अपने मत के लिये जब सत्य की हत्या

करने लगता है तब वह अपनी सीमा से बाहर हो जाता है। उसे अपने मस्तिष्क का सन्तुलन सदैव बनाये रखना पड़ता है।

हमारे देश की वर्त्तमान संस्कृति का अभी शैशव काल है। इस काल में उसे बड़ी सावधानी से भविष्य के नागरिकों के मस्तिष्क को पोषक भोजन देना है, जिससे वे आत्म-गौरव, स्वदेशाभिमान से अपना शिर ऊँचा उठा सकें, परन्तु विद्वेष के विष से भी बच सकें।

ऐसे भोजन के लाभ से ही देश की राष्ट्रीयता का विकास हो सकता है। अतएव इसी पर लक्ष्य रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है।

नवयुवक छात्रों के लिये प्रस्तुत इस पुस्तक में जो सामग्री दी गई है वह लेखकों की दृष्टि में पर्याप्त तथा पाठ्यक्रम के अनुकूल है। आज हमें युद्ध के नक्शे इतिहास के घंटों में समझने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी उन युद्धों के परिणाम-स्वरूप पड़ने वाले प्रभाव की। अतएव अनावश्यक विस्तार से यथासम्भव बचा गया है।

पाठ्यक्रम के लिये उपयोगी बनाने के इन प्रयत्नों के अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में प्रश्नों की गठन पर विशेष ध्यान दिया गया है। ऐसे प्रश्न बहुत कम पूछे गये हैं जिनका उत्तर काल विशेष के शीर्षकों में लिखा हुआ है। उन प्रश्नों पर ही विशेष ध्यान दिया गया है। जिनमें विद्यार्थी स्वयं अध्ययन में प्रवृत्त हों।

यदि हमारे इस प्रयत्न से हमारे भावी वंशधरों को स्वाभिमान की प्रेरणा मिल सकी तो हमारा प्रयत्न सफल हो जायगा।

विनीत—

लेखक

विषय-सूची

भारतवर्ष का इतिहास

पहला अध्याय

इतिहास क्या है ?

अपने वास्तविक और कृत्रिम रूप के स्पष्ट दर्शन के लिये इतिहास एक आलोक है। जिस प्रकार एक्स किरण के द्वारा मानव शरीर के समस्त आवरण उद्घाटित हो जाते हैं उसका अस्थि पञ्जर स्पष्ट प्रतिबिम्बित हो उठता है। उसी प्रकार इतिहास के आलोक में मनुष्य के बाह्य आडम्बर विच्छिन्न हो जाते हैं उसका मौलिक स्वरूप स्पष्ट और प्रत्यक्ष हो जाता है।

हम आज जो कुछ हैं, सदा से वैसे ही नहीं थे। पुरुष परम्परानुगत संस्कारों की परम्परा ने हमें आज इस रूप में उपस्थित कर दिया है। इसी परम्परा का अध्ययन इतिहास है। अर्थात् हमारे जीवन से पूर्व हमारे पूर्वजों का जीवन क्या है? उसका हमारे जीवन पर क्या प्रभाव है? इस बात का अध्ययन ही इतिहास है।

अपने वर्तमान में इस प्रकार भूत का प्रत्यक्षीकरण, भूत के साथ वर्तमान की एकतानता स्थापित करना इतिहास का लक्ष्य है। ऐसा कौन होगा जो अपने निर्माण की इस परम्परा का अध्ययन न करना चाहे।

जीवन पर प्रभाव

हमारे निर्माण में न केवल हमारे शरीर का निर्माण है, वरन् हम से सम्बद्ध जो कुछ है उस सब का निर्माण किस प्रकार हुआ है इस बात का ही अध्ययन इतिहास का विषय है। हम क्या खाते हैं? तथा वही क्यों खाते हैं? हमारे कपड़े क्या हैं? तथा उन्हीं पदार्थों से वे क्यों बनते हैं? उनकी वर्तमान काट-छांट ही क्यों है? हम किस भाषा में अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त करते हैं? यह भाषा हमारे पास कहां से आई? हमारे घरों की रचना इस प्रकार की क्यों है? इन समस्त व्यक्तिगत प्रश्नों का उत्तर देने की सामर्थ्य इतिहास में ही है।

यही नहीं। हमारा व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन में कैसे परिवर्तित हुआ। व्यक्ति ने कुटुम्ब और फिर समाज की सदस्यता क्यों स्वीकार की। राष्ट्रों का विकास कैसे हुआ? हमारा राजनैतिक जीवन कैसा है तथा वैसा ही क्यों है? इन समस्याओं का समाधान इतिहास के पास है।

हमारी समस्त ललित कलायें, हमारा समस्त साहित्य और विज्ञान जिन महापुरुषों द्वारा विकसित होकर हमारे मानस शरीर को पौष्टिक भोजन देकर आज सबल और स्वस्थ बनाने में प्रवृत्त है उसका क्रमिक अध्ययन ही इतिहास है।

आज साम्प्रदायिकता का भारतवर्ष में नग्न नाच हो रहा है, अब भी गुप्त रूप से भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के प्रति विष वमन किया जा रहा है, एक राष्ट्र राष्ट्रीयता के पवित्र नाम पर दूसरे राष्ट्र को निगल जाना चाहता है इन सब परिस्थियों पर विचार करके कौन नागरिक इनमें व्याप्त क्षुद्रताओं से ऊपर उठना न

चाहेगा । शिष्ट और सभ्य मानव की इस पुनीत कामना को पूर्ण करने के लिये इतिहास के पृष्ठ खुले हुये हैं।

(अ) यही नहीं कि हमारा भूत या वर्तमान ही हमारे सामने इतिहास के द्वारा प्रत्यक्ष होता है वरन् हमें अपने भविष्यत् की भी स्पष्ट झलक हमारे इतिहास में मिल सकती है। आवश्यकता है इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन की। हमने भूत में भूलें कीं उनका परिणाम हमारी दासता और फलतः दारिद्र्य और दुःख हुये। क्या हम अपने वर्तमान में भी उन्हीं भूलों को दुहरा तो नहीं रहे हैं? क्या हम ऐसी परिस्थितियां फिर तो उपस्थित नहीं कर रहे हैं? जिनसे कि हमारे दुःखद अतीत की पुनरावृत्ति की फिर सम्भावना हो। इसका अध्ययन हमें इतिहास में प्राप्त होगा।

इतिहास से भविष्य

(ब) मानव में जिन श्रेष्ठ गुणों का विकास होने से वह उच्च मानव अथवा वस्तुतः मानव के पद का अधिकारी होगा वे गुण हमें धर्मशास्त्र और स्मृतियों से प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु धर्म-शास्त्र और स्मृतियां हमें केवल उनका सैद्धान्तिक स्वरूप ही दे सकते हैं। उनका क्रियात्मक स्वरूप तथा उसका परिणाम हमें इतिहास में देखने पर ही दिखाई देगा। इन मानव दुर्लभ गुणों का विकास भी दो रूपों में हो सकता है। पहला सामान्य मानव जीवन का सन्तुलन ठीक रखने के लिये उनका नियन्त्रित और परिमित उपयोग, दूसरे प्रतिवर्तन। पहले का परिणाम क्या होता है? तथा दूसरे का कैसा? दोनों के द्वारा देश, समाज, व्यक्ति तथा मानव जाति पर क्या प्रभाव

इतिहास और धर्मशास्त्र

पड़ा है ? तथा यदि उनकी आवृति फिर हो गई तो क्या होगा ? आदि प्रश्नों के उत्तर इतिहास के ही पास हैं।

(स) हिन्दू धर्म का कर्मकाण्ड पराकाष्ठा को पहुंच गया, पशुवध और महाप्रस्तद ने मानवों को इतना उन्मना कर दिया कि उनमें उदारभाव का लोप हो गया। यदि भविष्य का मार्ग यही उन्माद और चलता रहता तो अश्वमेध का स्थान नरमेध ले लेते। सामान्य जनता इस पशुवध से व्याकुल हो उठी थी अतएव भगवान बुद्ध के उपदिष्ट अहिंसा के उपदेश की शीतल अग्नि में समस्त कर्मकाण्ड फूस बनकर भस्म हो गया। गुरु गोविन्द द्वारा उपदिष्ट क्षात्रधर्म ने पञ्जाब की रक्षा की परन्तु उसी क्षात्र धर्म की अति होने पर उसी में रणजीतसिंह का वंश स्वाहा हो गया। औरंगजेब की कट्टर धर्म परायणता ही मुग़ल साम्राज्य के विध्वंस का कारण बन गई। परन्तु आज उन घटनाओं पर पश्चात्ताप करना तथा अपने विगत अपराधों पर केवल रोना सीखने के लिये इतिहास नहीं है। वह कहता है कि पढ़ो और समझो तथा अपने आचरण की इसके साथ तुलना करके अपने भविष्य की झलक देखो। भले ही यह झलक स्पष्ट और प्रत्यक्ष न हो सके, धुंधली सही, तुम्हारे मार्ग प्रदर्शन के लिये पर्याप्त है। अपनी दिग्भ्रान्ति दूर करके उस धुंधले प्रकाश की ही ओर बढ़ो। आज जो दूर दिखाई देता है कल वह समीप आ जायगा तब उसका प्रकाश और अधिक उज्ज्वल होगा। परसों सम्भव है कि वह प्रकाश तुम्हारे हाथ में हो तब उसकी प्रदीप्त दीप्ति से जगत चकाचौंध हो जायगा और कोटि कोटि कण्ठ पुनः तुम्हारा गुणगान करेंगे।

(द) इतिहास हमें यही प्रेरणा देता है। अन्धकूप में पड़े

रहने से बाह्य जीवन का प्रकाश तो नहीं मिलेगा सम्भव है कि प्रकाश दर्शन की हमारी शक्ति भी नष्ट हो जाय अतएव अवसर रहते समय के अगले बाल पकड़ लो। इतिहास की शिक्षा यही वास्तविक है। आज तक हम जो कुछ इतिहास के नाम पर पढ़ते रहे वह भले ही राजाओं की वंश परम्परा हो, परन्तु इतिहास का वास्तविक दृष्टिकोण उनमें नहीं था। वह दृष्टिकोण जिससे व्यक्ति की दृष्टि का समष्टि की दृष्टि में विलय हो जाता है, जिसमें मनुष्य केवल अपनी आंखों से, अपने कुटुम्ब, सम्प्रदाय अथवा देश की आंखों से नहीं वरन् मानवता की आंखों से देखता है वह दृष्टिकोण उनमें न था। आज हम स्वतन्त्र हैं अतएव वास्तविक इतिहास शिक्षा के लिये हमारे उस दृष्टिकोण में परिवर्तन भी आवश्यक है तभी हम अपने व्यक्तित्त्व, कुटुम्ब, समाज, सम्प्रदाय और राष्ट्र का सच्चा कल्याण करके मानव मात्र का कल्याण कर सकेंगे।

इतिहास और समाज

हमारा दृष्टिकोण केवल सार्वभौमिक ही उक्त विवेचन का यह अर्थ कदापि नहीं। अपने घर में चिराग़ जलाये बिना मसजिद में चिराग़ जलाने की प्रथा भी अन्ध-विश्वास का ही संकेत करती है। जो कुछ उक्त विवेचन का तात्पर्य है वह केवल इतना ही कि हम अपना उपकार करना सीखेंगे परन्तु औरों का अपकार करना नहीं।

इतिहास शिक्षा का दृष्टिकोण

प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति और प्रत्येक सम्प्रदाय में ऐसे पुरुष भी हुये हैं जिन्होंने साम्प्रदायिकता अथवा सङ्कीर्णता के

घेरे से बाहर निकलकर मानवहित साधना के लिये जीवन यापन किया है। परन्तु मानव प्रकृति के दुर्भाग्य से प्रत्येक स्थान पर हमें ऐसे व्यक्ति भी मिल जायेंगे जो निर्बलताओं के शिकार हो गये। उनकी स्थिति ऐसी थी कि उनकी निर्बलता से एक राष्ट्र या सम्प्रदाय का अहित हो गया। उनकी आत्मा से यदि पूछा जाय कि तुम क्या जान बूझ कर इस निर्बलता के शिकार हो गये तो सम्भवतः उत्तर नकारात्मक ही होगा। वे कहेंगे कि हमसे भूल हो गई। फिर सोचो कि भूल तो भूल ही है उसका दण्ड केवल इतना है कि हम उसे भूल कहें। हमें मनुष्य होने के नाते, स्वयं निर्बल होने के नाते यह अधिकार नहीं कि हम उनसे घृणा करें और उस घृणा के द्वारा अपने हृदय में विद्वेष जैसी भावना को स्थान दें। क्या हम से भूलें नहीं होतीं ? क्या हमारी भूलों का दूसरों पर प्रभाव नहीं पड़ता ? फिर क्या हम अपने से ही घृणा करते हैं ?

उदारता तथा सङ्कीर्णता

हम को अधिकार है कि हम अपनी भूलें आप सुधारें। इसी प्रकार हम को अधिकार है कि जो भूलें हमारे पूर्वज कर गये हम उनका प्रतिशोध करें। उन भूलों की हम आवृत्ति न होने दें। परन्तु भूले हुओं को भूले हुये से अधिक समझना नैतिक अपराध है। इस अपराध से बचने की शिक्षा हमें इतिहास से लेनी चाहिये।

व्यक्तियों की भूल के प्रति

फिर किसी कार्य का परिणाम ही उस कार्य की अच्छाई बुराई का मापक नहीं है। उसका मापक एक दूसरी वस्तु है।

चरित्र पर निष्पक्ष दृष्टि

वह वस्तु है कर्त्ता का हृदय । जीवन भर टोपी सीकर, कुरान शरीफ़ की प्रतिलिपियां करके जीवन यापन करने वाला भारत का सम्राट यदि हिन्दुओं पर जज़िया लगाता है, मन्दिर तोड़ता है तो उसका कारण और चाहे जो कुछ रहा हो उसका अत्याचारी स्वभाव नहीं है। फिर ऐसे फ़क़ीर बादशाह से भी भूल हो गई जिसका कुफल उसके वंशधरों को हाथों हाथ मिल गया। अब विचारणीय यह है कि क्या इसके कारण हमें यह अधिकार है कि हम उसके मन्दिर विनाश की ओर ही देखें उसकी व्यक्तिगत जीवन चर्य्या की ओर से आंखें बन्द करलें। नहीं। उचित तो यह है कि हम अपने व्यक्तिगत जीवन के लिये उसे आदर्श बनावें तथा उसकी भूल साम्प्रदायिकता के अन्धविश्वास से बचने की चेष्टा करें। इतिहास हमें यही सिखाता है।

सामाजिक भूलों के प्रति

जैसे व्यक्ति भूल कर सकता है वैसे ही समूचा समाज और राष्ट्र भूल कर सकता है। ११ वीं और १२ वीं शताब्दी का भारतवर्ष इसी प्रकार की भूल का ज्वलन्त आदर्श है। राजपूती आन रहे चाहे राष्ट्र विनाश हो जाय। चारपाई पर पड़े-पड़े न मरने के लिये जिस जाति में युद्ध की आवश्यकता हो उस जाति के वंशधरों को एड़ियां रगड़ कर मारना चाहिये। परन्तु क्या इसके लिये आज क्षात्र जाति की हीन स्थिति के लिये सम्पूर्णतया उनके उन पूर्वजों को ही उत्तरदायी बना दिया जाय, उनकी धमनियों में प्रबल मानस ओजस्वी तेज की सर्वथा उपेक्षा कर दी जाय जिसके कारण आज भी क्षत्रिय

जाति गर्व से माथा ऊंचा कर सकती है। कदापि नहीं। योरोप का धर्म युद्ध कितना निरर्थक था इसकी कल्पना करने के लिये विशेष बुद्धि की आवश्यकता नहीं परन्तु उस धर्म युद्ध ने वीर पूजा का जो भाव योरोपियनों को दिया क्या बिना उस धर्म युद्ध के सम्भव था। इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं। वर्त्तमान जर्मन जाति और जापानियां का उद्देश्य के लिये स्वात्म बलिदान इतिहास की अमर कहानी बनेंगे परन्तु क्या यह उनकी राष्ट्रीय भूल नहीं थी? इतिहास इसी प्रकार हमें सत् का सम्मान करने और असत् से बचने की ओर अग्रसर करता है। साथ ही वह सत पर दुराग्रह और असत् से घृणा की प्रवृत्ति उत्पन्न होने देने से भी रोकता है। क्योंकि यही दोनों प्रवृत्तियां आगे चल कर राष्ट्र के हित की विघातक बनती हैं।

जब हमारा लक्ष्य और इतिहास के अध्ययन का दृष्टि-कोण यही होगा तभी हम वास्तविक अर्थ में इतिहास का अध्ययन कर सकेंगे।

प्रश्न

(१) हमारा वर्त्तमान हमारे भूत का प्रतिबिम्ब है इतिहास के आधार पर प्रमाणित करो।

(२) इतिहास न केवल भूत को देखता है वरन् वर्त्तमान और भविष्य को भी, कैसे?

(३) इतिहास के अध्ययन में हमारा दृष्टिकोण क्या होना चाहिये?

(४) हम इतिहास से प्रेम और बैर दोनों सीख सकते हैं, कैसे?

(५) हम अपने पूर्वजों की भूलों को किस प्रकार देखें? तथा उनसे कैसे बचें?

दूसरा अध्याय

इतिहास ज्ञान के साधन

मनुष्य अपना अस्तित्त्व छोड़ जाना चाहता है, वह जानता है कि मैं नहीं रहूँगा परन्तु इस 'नहीं रहने' को मिटाकर वह असम्भव को सम्भव करना चाहता है। यह उसकी सबसे बड़ी किन्तु श्लाघनीय निर्बलता है। मनुष्य की इस निर्बलता से ही हमें अतीत का इतिहास पढ़ने को मिला है।

वैसे प्रकृति ने भी इतिहास बचा रखने की चेष्टा की है। यदि वह सहायक न रही होती तो विकास की सीढ़ी पर चढ़ने

प्रकृति

वाले सब से पहले पुच्छ हीन मानव पशु का पता हमें न मिलता यदि उसके अवशेष न मिले होते तो हम न जान सकते कि अब से १५ लाख वर्ष पूर्व जमुना के दक्षिण में ही पहले मानव ने जन्म लिया था।

परन्तु इन प्रकृति के सुरक्षित मानव अवशेषों से हमें केवल मनुष्य होने का पता ही मिलता है। उसके रहन सहन आचार

मानव अवशेष

विचार, वेश भूषा की कल्पना करने के अतिरिक्त हमारे पास उसका इतिहास जानने की सामग्री नहीं है।

प्रकृति ने मानव की कुछ उपयोगी वस्तुओं की भी रक्षा की है। मद्रास सूबे में पाये जाने वाली पत्थर की वस्तुएं मिर्ज़ापुर,

प्राचीन वस्तुयें

रीवा, आसाम और बर्मा आदि में उपलब्ध पत्थर के छोटे औज़ारों ने बता दिया कि किसी समय इन भूभागों में रहने वाली जाति पत्थर के युग में जीवन यापन करती थी।

मानव की उक्त निर्बलता के प्रमाण स्वरूप जो वस्तुयें प्रकृति की गोद (प्र० मोहनजोदड़ो) में बिखरी हुई पाते हैं। उनसे भी हमको इतिहास के अध्ययन में बड़ी सहायता मिलती है। सिन्धु नदी की घाटी में रहने वाले लोगों ने जिन पक्के मकानों अथवा नगरों की रचना की थी उन्हें यह आशा रही होगी कि हमारे वंशधर इनमें सुख पूर्वक जीवन वितायेंगे। स्वप्न में भी उन्होंने न सोचा होगा कि आज से सात, आठ हजार वर्ष के उपरान्त उनके ये भवन कोई पृथ्वी में से खोदकर निकालेगा तब वह अपनी कल्पना के तागों से इन भवनों के अवशेष के ताने में बुनाई करके इतिहास का चित्र पट बनाने का यत्न करेगा। हाय रे! मनुष्य का यत्न।

पुराने चिह्न

इन भवन निर्माताओं से अलोरा और अजन्ता की गुफाओं के चित्रकार बुद्धिमान थे। उन्होंने अपनी जीवन की तूलिका से अमरता का रंग लेकर जिन चित्रों की रचना की थी यद्यपि उनमें उनके अपने अमर जीवन की प्यास छिपी है परन्तु उनके व्यक्ति सुख के लिये वे चित्र नहीं बनाये गये थे। उन चित्रों में मानव का प्रतिबिम्ब था, मानव की छाया थी जिसमें आज शताब्दियां बीत जाने पर भी बोलने की शक्ति है। उनकी मूक भाषा अपने काल का इतिहास हमें आज भी बताती है।

अलोरा और (अजन्ता)

मनुष्य ने अपनी भावनाओं के चिरजीवी करने के लोभ में स्थापत्य में भी कम शक्ति व्यय नहीं की. खजुराहो के मन्दिर, विजय नगर के स्तम्भ, शाहजहां की प्रिया का समाधि मन्दिर उनके जीवन के इतिहास हैं। अपने निर्माताओं को समझाने के लिये ये

स्थापत्य

स्मारक रात दिन शान्त मुद्रा में खड़े हुये अपना इतिहास सुना रहे हैं। भावुक हृदय सुनता है और जगत की क्षण भंगुरता पर दो आंसू बहाकर चला आता है।

प्राचीन राजाओं की मुद्रायें, उनके दान पत्र ने केवल राजा के धार्मिक भाव और उसकी उदारता का ही संकेत करते हैं वरन् देश की समृद्धि, व्यवसाय, श्रम विभाजन और उद्योगों की कहानी भी कहते हैं। ये मुद्रायें अपने प्रसार के साथ विभिन्न देशों के परस्पर सम्बन्ध पर भी प्रकाश डालती हैं। जैसे भारतवर्ष की मुद्रायें विक्टोरिया, यूनान, पार्थिया के परस्पर सम्बन्ध को स्पष्ट कर देती हैं।

स्मारक

शिला-लेख, और स्मारक भी इतिहास के अध्ययन में सहायक होते हैं। इनसे तत्काल की रीति नीति और यदि तिथियां मिल सकी तो काल निर्णय में भी बड़ी सहायता मिलती है। जैसे हांसो और बीजौलिया के शिला लेखों द्वारा पृथ्वीराज का काल निर्णय करने में सहायता मिली है। शिला लेख बहुधा पर्वत मालाओं में पाये जाते हैं। इनसे उनकी स्थिर रखने की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। ऐसे शिला-लेखों के आधार पर ही अशोक के इतिहास का बहुत सा भाग आधारित है।

साहित्य

भूत को जीवित रखने का सर्वोत्तम साधन तथा वर्त्तमान में उसे प्रत्यक्ष कराने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम लिखित साहित्य है। इस साहित्य द्वारा न केवल वर्णनीय ही अमर हो जाता है वरन् वह अपने विनाशशील परिवर्त्तन के अन्धकार से विलीन हो जाने वाले समय को भी चिर प्रकाश और चिर जीवन दे जाता है। आज

यदि वैदिक साहित्य न होता। पुराण, रामायण,महाभारत के काण्ड न होते, बुद्ध जातक न होते। सिकन्दर के प्रतिद्वन्दी-दारा की कृतियां जीवित न होतीं, यूनानी लेखक हेराडोटस, मेगस्थनीज़ चीनी यात्री फाहियान मुग़ल बादशाहों द्वारा लिखित ह्यूनत्सांग, श्यूमा चीन मुसलमान लेखक अल्वेस्तनी, फरिशता, वेनिस के मार्कोपोली तुज़क बाबरी तुज़क जहांगीर अबुलफज़ल की आईन अकबरी न होते तो सम्भवतः तीन चौथाई काल विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया होता।

इनमें से बहुतरे अपने आश्रय दाताओं के सम सामयिक थे जैसे हर्ष वर्धन का चरित्र लिखने वाला बाण विक्रमाङ्क देव चरित्र का लेखक पाल वंशीय बंगाल के राजाओं का राम चरित्र, विद्यापति के आश्रय द्वारा शिवसिंह के लिये लिखित पदावली द्वारा लिखित चालुक्या वंश की प्रशस्तियां प्रति विश्वास के योग्य और इतिहास पर अत्यधिक प्रकाश डालने वाली हैं।

हमारे ग्राम्य गीतों में, स्त्रियों के गानों में, हमारे सामाजिक राग रंगों में हमारा इतिहास बिखरा पड़ा है। किसी बच्चे का

ग्राम्य गीत आदि

जन्मोत्सव होना हो, आप अपना ध्यान भोजन निमंत्रण से हटा कर स्त्रियों के गीतों की ओर ले जाइये, आपकी प्राचीन इतिहास की धुंधली प्रकाश रेखा अपनी मन्द ज्योति में टिमटिमाती दिखाई देगी। बहिन का भाई के प्रति स्नेह विदाई की प्राचीन घड़ी का इतिहास गीत के पद पद में अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता से झलक रहा होगा। आप विस्मय करेंगे कि हमारे इस जीवन के इतिहास का किस प्रकार कृष्ण, रुक्मिणी, राम सीता के इतिहास से मेल है।

आल्ह खण्ड की वीर गाथा जहां गाई जा रही हो। उस सभा में बैठ कर अपनी फड़कती हुई भुजाओं के साथ प्राचीन इतिहास की झलक देख लीजिये। परन्तु सब पर अक्षरशः विश्वास न कीजिये। न जाने कितने मुखों से गाया गया यह इतिहास हमारे पास कितने विकृत रूप में आ गया है। परन्तु उसमें ताला सैयद, धानुक और तेली भी आपको युद्ध व्यवसायी नव दिखाई दें तो उस समय की वीर भावना को हिन्दू मुस्लिम स्नेह सम्बन्ध को आप प्रत्यक्ष देख सकेंगे।

रीति रिवाज

जातियों का परम्परा गत इतिहास उन प्रचलित रूढ़ियों में छिपा हुआ है। आर्यों में बट-पूजन की प्रथा सङ्केत करती हैं कि मानव के आरम्भिक काल में जब बट वृक्ष मनुष्य का सबसे बड़ा ग्रह था उस समय उनके हृदय में बट के प्रति पूजा भाव जाग्रत हुआ जो आज तक उसी रूप में चला आता है। हमारे संस्कारों आचारों व्यवहारों का यदि सूक्ष्म-दर्शन और विवेचन किया जाय तो इतिहास के अनेक पृष्ठ पढ़े जा सकते हैं। आज जो हमारा आचार विचार है उस पर अनेक संस्कृतिओं से पड़े हुये परम्परा गत प्रभाव की विवेचना की जा सकती है।

उत्सव-त्यौहार

"उत्सव और त्यौहार जाति का जीवन हैं"। इस वाक्य का जहां यह अर्थ है कि इनके द्वारा हमें जीवन की वास्तविक प्रेरणा मिलती है संघर्ष पूर्ण विचारों के जीवन में शिथिलता हो कर जीवन की समरसता बनी रहती है वहां उत्सव और त्यौहार हमारे भूत कालीन जीवन 'इतिहास की झांकी भी है। इन में भी हमारा पूर्व इतिहास स्पष्ट प्रतिबिम्बित हुआ है। दशहरा की राम

लीला, दुर्गा पूजा, श्रावणी का उत्सव होलीका दहन, हमारे उज्ज्वल भूतकाल के ही प्रतीक हैं। इनमें हम अपना स्वर्णमय भूत देख सकते हैं। मुहर्रम ने जिस प्रकार त्याग और वीरता की मूर्त्ति हुसैन और उनके कुटुम्ब की नृशंस हत्या को जीवित रक्खा है इतिहास के पृष्ठ सम्भवतः उस प्रकार सजीव न रख सकते थे।

तीर्थ पण्डों की बहियां

हिन्दू इतिहास का एक और उद्गम हो सकता है जिसकी ओर विद्वानों का ध्यान अभी नहीं गया। भारतवर्ष तीर्थ प्रधान है और इन तीर्थों के पण्डों के हाथ समस्त भारतवर्ष का कोना कोना बंटा है। राजा से रङ्क तक किसी न किसी पण्डे का यजमान है। वर्ष नहीं युग बीत जावें और किसी तीर्थ में पहुँच कर आप अपने ग्राम और प्रान्त का पता दे दीजिये कोई न कोई पण्डा आपके पूर्वजों का नाम उनके पुत्र पौत्रों बन्धुओं की गणना समेत आपको तीर्थ दर्शन का पुण्य प्राप्त करने में सहायता देने के लिये मिल जायगा। आपने तीर्थ दर्शन किये, पुण्य लाभ किया। उस पण्डे की सेवाओं के फल स्वरूप आपने उसका उचित सत्कार किया। अब आप चलना चाहेंगे परन्तु नहीं अभी उसकी तीन सौ वर्ष पुरानी बही पर आपको अपना परिचय लिखाना है अपने हस्ताक्षर करने हैं। मुझे इसका व्यक्तिगत अनुभव है। अपने दो सौ वष तक के पूर्वजों के हस्ताक्षर देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। इतिहास के इस उद्गम की यदि खोज की जाय तो मनुष्य परम्परा का बहुत सा भारतीय इतिहास प्रकाश में आ सकता है।

ये तीर्थ स्थान स्वयं ही एक इतिहास हैं। यदि वास्तव में ज्वाला-

देवी का भारतीय मन्दिर न होता तो कौन जान सकता था
कि भारत के धर्म परायण प्राणी इतनी दूर
तीर्थ की यात्रा भी करते थे। भारतवर्ष के चारों
कोनों पर स्थित शंकर पीढ़ों से भारतवर्ष की
संस्कृतिक एकता की प्रतिध्वनि इतनी बलवान है कि विभाजन करके भी उसे नष्ट कर सकना किसी के लिये सम्भव नहीं है।

इन सब बातों के अतिरिक्त हम स्वयं ही एक इतिहास है। वैज्ञानिक दृष्टि से यदि देख सकें तो हमारे रूप-रङ्ग में
जातियों का इतिहास है। हमारे आचार-विचार
अपना रहन सहन में वेश भूषा में, रहन सहन में संस्कृतियों का
इतिहास है, मिरजई पहनने वाले बूढ़े यदि
अरब और फारस की संस्कृति से प्रभावित थे तो सुस्तनी (सुथना, चोटी दार पाजामा) और अर्चःकण (अचकन) पहनने वाले यज्ञ काल के आर्य्यों की संस्कृति से प्रभावित। आज की टाई योरोपियन सभ्यता की ओर संकेत करती है तो स्टार हैट चीनी सभ्यता की देन है। दुपल्ली टोपी वाजिद अलीशाह की यादगार है तो गोल टोपी रूम और तुर्की की।

इसी प्रकार हम किसी वस्तु को लें और उस पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन करने लग जाँय तो इतिहास के अनेक पृष्ठ अपने आप खुलने लग जायेंगे। फिर चाहे हम अपने पशुओं की ओर देखें, चाहे सावरियों की ओर। हमारी दृष्टि अपने कला-कौशल की ओर जाकर भारतवर्ष के सम्पत्ति वितरण की व्यवस्था का पता पा सकती है तो गांवों में मुखियों और पञ्चायतों को देख कर शासन व्यवस्था का दर्शन कर सकती है।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि हम अपनी दृष्टि में वैज्ञानिक कोण बना लें तभी वास्तविक इतिहास पढ़ सकेंगे। तभी क्षुद्र, सङ्कीर्णताओं से ऊपर उठ कर मनुष्य को मनुष्य समझने में समर्थ हो सकेंगे। अन्यथा पक्षपात पूर्व लेखकों की दूषित कृतियों द्वारा अपने मस्तिष्क को विकृत करने की अपेक्षा इतिहास न पढ़ना ही श्रेयस्कर है। दूषित ज्ञान से अज्ञान वास्तविक मानवता देने में अधिक सहायक है।

हम आज तक जितना इतिहास जान सकें हैं वह इन्हीं साधनों के द्वारा सम्भव है। आगे प्रकाश में आने वाला भूगर्भ शास्त्र और पुरातत्त्व हमारे लिये और नये पृष्ठ खोलदे और फिर हमने जो कुछ समझा है उसमें हमें परिवर्त्तन करने की आवश्यकता हो। हम उस समय परिवर्त्तन कर लेंगे क्योंकि इतिहास जब तक सत्य के निकट न पहुंच जाय इतिहास का विद्यार्थी भ्रान्त धारणायें बना कर सन्तुष्ट नहीं होता। वह स्वयं खोज में लगा रहता है और संसार के विद्वानों की खोज का सत्कार करता है तथा सहानुभूति के द्वारा दूसरे अपने विरोधियों के इतिहास पर विचार करता है।

प्रश्न

१—प्रकृति द्वारा हम कैसे इतिहास पढ़ सकते हैं ?

२—इतिहास की रक्षा के लिये मनुष्य ने कौन से यत्न किये ?

३—"हम स्वयं एक इतिहास हैं। उक्त कथन को प्रमाणित करो ?

४—"हमारे देश की प्रत्येक वस्तु में भूतकाल का इतिहास छिपा है" कैसे ?

अरावली पर्वत
देहली
आगरा
बुन्देलखंड
प्लेटो
विन्ध्याचल पर्वत
अरब सागर
दक्खिन
प्लेटो
खाड़ी बंगाल
१५०० से नीचे
१५०० से ऊपर
३००० से ऊपर
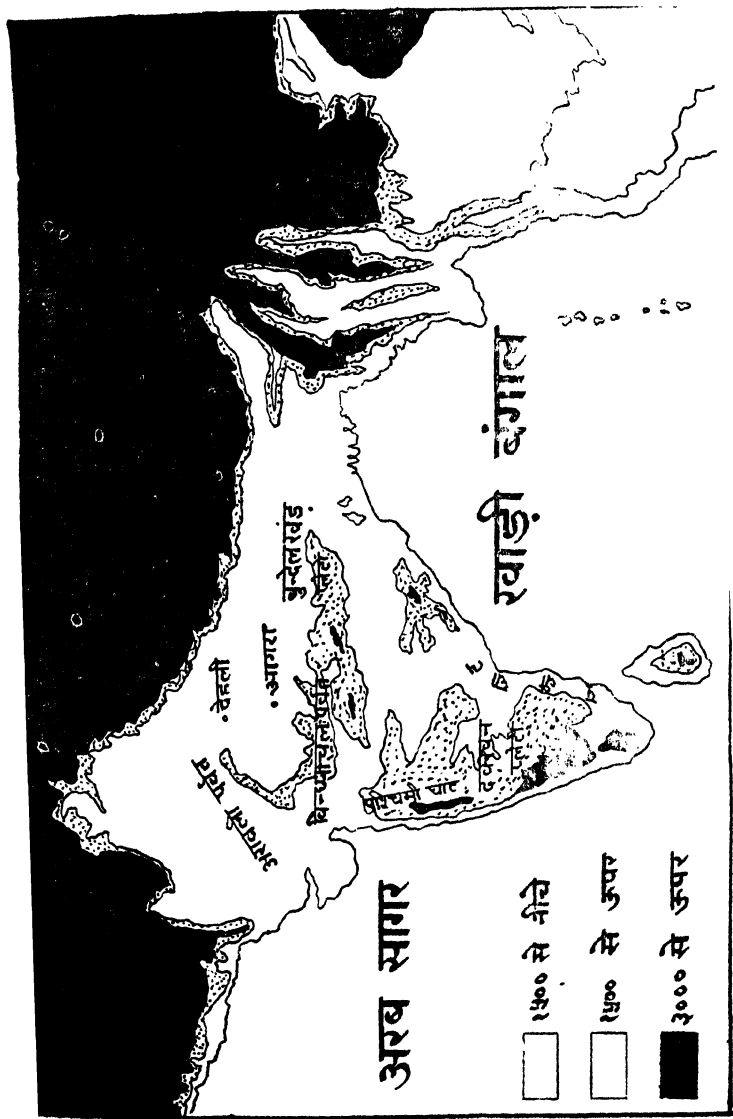
तीसरा अध्याय

इतिहास और भूगोल का सम्बन्ध

उक्तवाक्य द्वारा दोनों का सम्बन्ध बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है परन्तु पूर्णतया नहीं। पूरा निदर्शन करने के लिये इस प्रकार कहना चाहिये इतिहास एक नाटक है, भौगोलिक परिस्थियां सूत्र धार और भूगोल रंगमंच है। अर्थात् इतिहास के निर्माता भौगोलिक परिस्थितिओं से निदर्शन पाकर पृथ्वी पर अपनी कृतियों के रूप में जो अभिनय दिखा जाते हैं वही इतिहास बन जाता है।

इतिहास एक नाटक है जो भूगोल के रंग मंच पर खेला जाता है

हम ऊपर कह चुके हैं कि इतिहास मनुष्य के स्वरूप को सब पहलू से देखने का है। दर्पण अर्थात् मनुष्य का व्यक्तिगत सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक राजनीतिक जीवन इतिहास का अंग है परन्तु उसके इन सब जीवनों पर भूगोल कितना बड़ा नियंत्रण है इसे समझना कठिन नहीं।

भारतवर्ष का उदाहरण लिजिये। प्रकृति ने दिव्यस्वरूप पाया था अतः प्रकृति ही देवता भी बन गई। यदि यही प्रकृति भयंकर होती तो सम्भव था कि राक्षस बन जाती और पूजा के स्थान पर भारतियों से घृणा पाती। भारतवर्ष में धन धान्य का बाहुल्य था अतएव भारतियों [दा]न का महत्व गाया। यदि उन्हें रोटियों के लाले होते तो [क]दाचित दान के स्थान पर मित व्ययिता का यशोगान अधिक [हो]ता। भारतवर्ष में संघर्ष अङ्गरेजों से पहले क्यों नहीं पनपा भारतवर्ष राज्ज क्रान्ति का इतिहास क्यों न बन

प्रकृति का धर्म और समाज पर प्रभाव

सका ? भारतवर्ष में प्रजा के कार्यबल क्यों उत्पन्न नहीं हुये ? भूगोल उत्तर देगा कि जब जज़िया देकर भी हिन्दू भूखे नहीं रहे वरन् समृद्ध और सम्पन्न ही रहे, तब क्रान्ति की आवश्यकता कैसी पड़ती। और इस समृद्धि का कारण था भूगोल।

इस प्रकार इतिहास भूगोल पर निर्भर है।

परन्तु साथ ही भूगोल भी इतिहास से प्रभावित होता है। मानव कृति के बिना भूगोल का स्वतंत्र अस्तित्त्व क्या है।

इतिहास का भूगोल पर प्रभाव

भूगोल इतिहास के लिये ही है। भूगोल इतिहास का उपजीवी है। मनुष्य विहीन भूमि की कल्पना करके भूगोल पढ़ो। किसे पढ़ना है और किस लिये। समुद्र का अगाध जल, अन्तरिक्ष में भरा हुआ वायु मण्डल, चौरस और उर्वारा भूमि क्षुद्र हैं, तुच्छ हैं निर्थक हैं यदि उन पर अपनी लोहे की लेखनी से लिखने वाला मानव इतिहास नहीं।

इतिहास के निर्माण के द्वारा भौगोलिक परिस्थियों में परिवर्तन भी होता है। सिन्ध की मरू भूमि में गेहूँ के लहलहाते खेत इतिहास की देन हैं। दो तीन सौ वर्षों तक जो दक्षिण सागर हमारी सीमा का पहरेदार था नाविक शक्ति के विकास के साथ ही वह एक चौड़ी सड़क बन गया और भारतवर्ष का स्वर्ण युग दारिया में परिवर्तित हो गया। इस प्रकार इतिहास भी भूगोल के मार्ग को चौड़ा और प्रशस्त करने वाला है।

इतिहास किस प्रकार बनता है उसको एक चार्ट के द्वारा अधिक सरलता से समझा जा सकता है।

भौगोलिक परिस्थियां→ { वनस्पति↘ / प्रकृति→मनुष्य के कार्य्य→इतिहास / पशु↗ }

तथा मनुष्य ने जहां कहीं अपनी शक्ति लगा कर प्रकृति को अपने उपयोगी बना लिया है उसका चार्ट इस प्रकार होगा।

भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास इसका प्रमाण है।

मनुष्य के कार्य← { प्रकृति↘ वनस्पति→भौगोलिक स्थिति→इतिहास पशु↗ }

वर्त्तमान उत्तरी अमेरिका का इतिहास इसका प्रमाण है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि भारतवर्ष के भूगोल ने इतिहास पर किस प्रकार प्रभाव डाला। भारतवर्ष का मान चित्र देखो और भारतवर्ष की सीमा पर ध्यान दो। दक्षिण में तीन ओर हिन्द महासागर है इसने भारतवर्ष के इतिहास पर क्या प्रभाव डाला ?

जिन अरबों के आतंक से १२ वीं शताब्दी तक अफरीका, इटली और बल्कान प्रायद्वीप, मोरक्को और स्पेन तक कम्पित

दक्षिणी सीमा का प्रभाव

रहे थे वही बारहवीं शताब्दी तक भारतवर्ष की ओर न मुड़ सके। यदि भारतवर्ष का यह प्रहरी चौबीसों घन्टे दक्षिण में गर्जता न रहता तो भारतवर्ष का ८वीं, नवीं, १०वीं शताब्दी का इतिहास भयंकर युद्धों का इतिहास होता। परन्तु यही समुद्र अपनी छाती पर योरोपियनों के वाष्प-यान जलयान ढो ढो कर भारतवर्ष में सरलता से पहुँचाता रहा फलतः ३ सौ वर्षों का भारतवर्ष का इतिहास दरिद्रता के अक्षरों में सदैव लिखा जाता रहेगा। भारतवर्ष की यह पराधीनता उसकी इसी भौगोलिक स्थिति के कारण थी अन्यथा अरब राष्ट्रों की अभेद्य प्राचीर पार करके लाल सागर के मार्ग से योरोपीय राष्ट्र भारतवर्ष में कम से कम दो शताब्दी और

न पहुंच सकते और सम्भव था कि इस बीच में मराठा शक्ति इतनी सुदृढ़ हो जाती कि फिर अंग्रेजों के पाँव ही न जम पाते।

यही समुद्र था जिसने मुगल काल में भारत के वाणिज्य पोत योरोप के समस्त देश तटों पर पहुंचाये थे और सारे ससार की सम्पत्ति समेट कर भारतवर्ष में पहुँचाता रहा तथा पराधीनता के उपरान्त भारत की स्वर्ण राशि इंलैण्ड ढोकर ले जाता रहा।

भूगोल की इसी कृपा से भारतवर्ष के अतीत काल में सुमात्रा, जावा, और वाली द्वीप भारत के उपनिवेश थे और इसी समुद्र के द्वारा भारतीय संस्कृति बौद्ध धर्म के साथ लंका, ब्रह्मा और चीन पहुंची थी। परन्तु उसी समुद्र का उपयोग न करने, अपने तट की रक्षा के प्रति असावधान होने के कारण अपने देश की समृद्धि के सन्तोष में मग्न उत्तर काल के हिन्दू और मुसलमान एक विदेशी राज्य के दास बन गये।

दक्षिण की तामाल ताल्ल बनों की पंक्ति से नील होने वाली समुद्र की तट रेखा में सीपी से मोती निकालने का विकास और मछली मारने के व्यवसाय का विकास हुआ जिसने एक भिन्न व्यवसाय का रूप लेकर समुद्र को रत्नाकर का नाम दे दिया।

दक्षिण की सीमा से पूर्व की ओर चलकर नागा गारो खसिया जयन्तिया पटकोई और लूशाई की परस्पर जंजीर बनाने वाली रेखा को देखो और फिर ब्रह्मा के इतिहास के साथ भारतवर्ष के इतिहास की ब्रह्मा की संस्कृति से भारतवर्ष की संस्कृति की, ब्रह्मा के निवासियों से भारतवर्ष के निवासियों

पूर्वी सीमा का प्रभाव

के रंगरूप, आकार प्रकार, रहन सहन और वेश भूषा के अन्तर के कारणों पर विचार करो। यदि भूगोल का यह प्रतिबन्ध न होता तो कन्या कुमारी से हिमालय की चोटियों तक सब को एक रंग में रंग लेने की शक्ति रखने वाली शक, हूण, सिथियन और यूची लोगों को पचा जाने वाली हिन्दू संस्कृति ब्रह्मा को भी पचा सकती थी। परन्तु प्रकृति के निर्मित इस व्यवधान ने ब्रह्मा को शेष भारतवर्ष से काट दिया।

ब्रह्म पुत्र नदी का मार्ग

अब ब्रह्मपुत्र नदी के मार्ग पर विचार करो फिर आसाम की कुछ जातियों में यदि मंगोल रक्त दिखाई दे तो आश्चर्य क्या है। इस कठिन और दुर्गम मार्ग से जितने मेल की सम्भावना है आपको चीन के सिगोंग प्रदेश के साथ आसाम में मिल जायगी। यदि यही मार्ग अधिक विस्तृत अधिक सरल होता तो सम्भव था कि समस्त भारतवर्ष का इतिहास कुछ और होता और भारतवर्ष में आज आर्य्य संस्कृति के स्थान पर मंगोल सन्तति का प्राधान्य होता परन्तु भारतवर्ष को आर्य्य संस्कृति का प्रसाद मिलना था यह मार्ग सरल होता कैसे।

उत्तरी सीमा

अब उत्तर की ओर फैली हुई हिमालय की दो समानान्तर श्रेणियों के १५ सौ मील लम्बे और १८० मील चौड़े विस्तार की कल्पना करो जिसमें न कोई मार्ग है, न दर्रा, न कहीं इंट है न कहीं जोड़। ताशकन्द, यारकन्द और समर कन्द को अपने पैसे से निरन्तर कुचलने वाले खिरगीजों के आक्रमणों से यदि भारत

वर्ष बचा रहा तो उसे इस हिमालय श्रेणियों का प्रसाद और कृपा का फल समझना चाहिये।

हिन्दू कुश सुलेमान किरथर और हाला पर्वतों की श्रेणियां इस ओर भी भारतवर्ष की रक्षा में खड़ी हैं परन्तु हिन्दू-कुश और सुलेमान ने जहां मिलने के लिये हाथ बढ़ाया है वहां एक दर्रा-खैबर बन गया है। है तो एक संकरा मार्ग परन्तु भारतवर्ष के इतिहास लेखन के लिये अकेले इस दर्रे का इतिहास ही पर्य्याप्त है। इस मार्ग के द्वारा न जाने कितनी शक्तियाँ उधर से इधर आईं, न जाने कितनी संस्कृतिओं का आदान-प्रदान हुआ, कभी यह मार्ग भारतीय योद्धाओं को बाहर ले जा कर श्मश्रुल (दाढ़ी मूँछ से भरे) पारसीकों (पारस वालों) के शिरों को उतार कर उन्हें पृथ्वी पर मधु-मक्खी के छत्ते के समान फैलाने के लिये खुला, कभी उन्हीं श्मश्रुल पारसीकों और तुर्कों के लिये खुला जिनकी तलवार ने भारतवर्ष के जनेऊ धारियों के जनेउओं की तौल ७६॥ मन तक पहुंचा दी।

पश्चिमोत्तरी सीमा

फिर गोमल और बोलान दर्रों ने कन्धार और भारतवर्ष की ऐतिहासिक एकता को अनेक बार मिला कर काट दिया।

थोड़ा और दक्षिण की ओर बढ़िये। थार के मरुस्थल का आंचल सिन्ध देश में फैला हुआ है इस अंचल को पार करके आने वाले साहसी मुहम्मद बिनकासिम की विजय का इतिहास क्यों दाहिर की पराजय पर समाप्त हो गया। १२ ई० का यह आक्रमण फिर क्यों ११ वीं शताब्दी तक भूली हुई बात बन गया। भूगोल आपको उत्तर देगा कि मरु भूमि की गर्म वायु के झोंकों ने न

मरुस्थल का प्रभाव

केवल दाहिर की पराजय को वरन् उस आक्रमण से पड़ने वाले अरब प्रभाव को भी बालुका राशि की भांति उड़ाकर विस्मृति के गर्त्त में डाल दिया । अब भूमि की बनावट पर विचार कीजिये । समस्त भारत की भूमि को हम चार बड़े बड़े भागों में बाँट सकते हैं । १–उत्तरी पहाड़ी भाग सिन्ध गंगा ब्रह्मपुत्र का मैदान, दक्षिण का पठार और तट भूमि ।

अब प्रत्येक का अलग अलग इतिहास पर प्रभाव देखिये । आवागमन के लिये सरल नहीं है । साथ ही एक बार पहुँच जाने वाले के लिये एक प्रकार का बन्धन सा है । अब यदि हिमालय प्रदेश के नैपाल और भूटान राज्य दुर्दण्ड अंग्रेजी राज्य की सीमा के बाहर गये तो आश्चर्य क्या है ? हिन्दू संस्कृति यदि अब भी वहां जीवित बनी रहे और उस पर अंग्रेजियत का उतना प्रभाव न पड़े तो उसमें अस्वाभाविकता क्या है ?

हिमालय का पर्वतीय प्रदेश

काश्मीर मुसलमान देशों के निकट था । हिन्दूकुश के मार्ग से पहुँचे हुये मुसलमान यदि एक बार अधिकार पा गये तो उस से छुटकारा दिलाने के लिये यदि रणजीत सिंह को ही अनेक शताब्दियों के उपरान्त अवसर मिल सका तो कुछ अनुचित नहीं । वर्त्तमान साम्प्रदायिक विद्वेष के युग में भी काश्मीर साम्प्रदायिकता से अब तक जो बचा उसका कारण भी काश्मीर की भूमि रचना ही है ।

अब सिन्ध गंगा ब्रह्मपुत्र की घाटी की ओर देखिये । मातृभूमि की वन्दना करते हुये बङ्किम ने जिस भूमि को सुजला, सफला, शस्यश्यामला कहा है वह कौन सी है ? यही न ! फिर

यदि यह भूमि सबके आकर्षण का केन्द्र बनी रही तो क्या नवीनता ? संसार के सबसे पहले के आदि मानव की खोपड़ी यदि इसी भूमि में पाई गई तो आश्चर्य क्या है ? संसार को सभ्यता का प्रथम पाठ पढ़ाने वाले आर्य्यों ने यदि इस भूमि को अपने यज्ञ यूपों (यज्ञ के खम्भों) से पवित्र कर दिया तो अनुचित क्या था ? गंगा यमुना सिन्धु और ब्रह्मपुत्र यदि भारतवर्ष की संस्कृति वाहिनी नदियां बन गईं तो वे इसके योग्य ही थीं ।

(अ) इस मैदान के भी तीन भाग हो सकते हैं। वीरों को जन्म देने वाला पश्चिमी भाग जिसमें पाञ्चालों ने अपनी कीर्त्ति-पताका फहराई, जिसमें सिकन्दर के दांत खट्टे करने वाले वीर गक्खरों ने जन्म लिया जिसमें भारत के पतन काल में भी रणजीतसिंह और हरि सिंह नलवा की तलवार में अपनी धार का पानी बड़े-बड़े शक्ति शालियों को मनवा दिया । उस पश्चिमी भाग की भूमि में ही वीर जन्म देने की शक्ति है । सिन्धु नदी का यह तट अपने हृदय में जिन वीरों की अमर गाथायें छिपाये है उनका इतिहास संसार की छाती पर सदैव अंकित रहेगा ।

पश्चिमी भाग

(ब) अब गंगा की गोद में पले हुये राम कृष्ण की जन्मभूमि मध्यवर्त्ती भाग की ओर ध्यान दीजिये । धन-धान्य का यह कोष यदि एकान्त सेवी ऋषियों, मुनियों की तपस्या का केन्द्र बना रहा तो क्या आश्चर्य्य है । नैमिषारण्य के बनवासी ऋषियों ने यदि पुराण इतिहास की रचना के द्वारा इस भूमि को भारतीय संस्कृति का केन्द्र बना दिया तो यह इसी का भाग था । काशी

मध्य भाग

का विद्यापीठ यदि संसार को नहीं तो समस्त भारत के गुरुओं का गुरु है तो इस भूमि की रचना के ही कारण। बौद्ध धर्म का विरागोपदेश इस भूमि का ही प्रभाव था।

(स) अब पूर्वी भाग पर दृष्टिपात कीजिये। गंगा ब्रह्म पुत्र के जल से प्लावित इस दलदली भूमि में फँसा लेने की, मनुष्य के मन को बाँध लेने की शक्ति है तो ठीक ही है। यदि बंगाल भारतवर्ष की राजनीति में भाग नहीं लेता तो उसे नहीं ही लेना चाहिये। दिल्ली की गद्दी बंगाल की गद्दी नहीं है। बंगाल के बने रहे धान के खेत भारतवर्ष के राजे महाराजों के पददलन से धान की उत्पत्ति में कमी न होगी फिर हम धान के खेतों, केले के डामों, तालाब की मछलियों पर आजीविका निर्भर रखने वाले यदि राजनीति में सक्रिय सहयोग नहीं देते तो हमारा नैतिक अपराध नहीं है।

पूर्वी भाग

(द) भारतवर्ष की मध्य मेखला में नर्बदा, ताप्ती, विन्ध्याचल, सतपुड़ा, अमरकण्टक वस्तर और छोटा नागपुर की पहाड़ियाँ हैं। इन पहाड़ियों पर सघन बन थे। आर्य्य संस्कृति से पराभूत भारत के आदिम निवासियों ने यदि यहाँ शरण ली तो ठीक ही किया। यदि वे वहाँ न चले गये होते तो वे आज न होते। गोंड, भील और सन्याल उन्हीं के वंशधर हैं जो आज भी अपनी सत्ता इस प्रदेश की दुर्गमता के कारण ही बनाये रख सके।

मध्यवर्त्ती पहाड़ी भाग

इसी पर्वत माला ने एक काल तक उत्तर भारत से हटे हुए आर्य्य शक्ति से पराभूत द्रविड़ों की संस्कृति और सभ्यता की रक्षा की। मोहनजोदड़ो में अमर संस्कृति के चिन्ह छोड़ने वाले

द्रविड़ यदि मद्रास प्रदेश में बस गये तो उनके लिये कुछ काल तक शान्ति की सांस लेने का अवसर मिल गया। परन्तु आर्य्यों की बढ़ती हुई जनसंख्या ने अगस्त्य को दक्षिण की ओर भेजा ही विन्ध्याचल को झुका कर ही (उसे पार करके) अगस्त्य ने दक्षिण में आर्य्य सभ्यता पहुँचाने का श्रेय पाया। इस प्रकार आर्य्य और द्रविड़ संस्कृति में प्रेम का बन्धन बाँधना प्रारम्भ किया जिसकी दृढ़ता श्री रामचन्द्र के काल में इतनी स्थिर हो गई कि द्रविड़ नामधारी सभ्यता का पृथ्वी पर पता नहीं रहा।

वास्तविक दक्षिण के पठार ने भी इतिहास रचना में कम भाग नहीं लिया। दक्षिण का पठार चौरस ऊँचाई वाली पहाड़ियों का देश है। जिन पर दुर्ग बनाना सरल है, ऊँचे दुर्गों से नीचे स्थित शत्रुओं पर चोट करना, समय पर भागकर दुर्ग की शरण लेना, शत्रु को खिला खिलाकर परेशान कर देना आदि कार्य्यों के लिये जितनी उपयुक्त भूमि दक्षिण का पठारी प्रदेश है इतनी उपयुक्त उत्तर की भूमि नहीं। मराठा शक्ति का उदय इस भूमि की ही महिमा है।

पठार

भारतीय संस्कृति के लिये भी दक्षिण की देन है। जिस समय उत्तर भारत राजनैतिक उथल पुथल का केन्द्र था, शकों, हुणों के आक्रमण हो रहे थे उस समय दक्षिण में शान्ति थी। यदा कदा उत्तर का कोई महत्त्वाकांक्षी यदि दक्षिण की ओर बढ़ता था या तो पराजित हो जाता था या यदि विजयी हुआ तो लूट मार कर चलता बना। अपना कोई स्थायी प्रभाव छोड़ सकना सम्भव न था क्योंकि उसके लिये भूमि उपयुक्त न थी।

आवागमन सरल न था। अतएव इस राजनीतिक ने शान्ति का उपभोग करने वाले दक्षिण के विद्वानों को विचार करने का अवसर था और सुविधा थी इसी लिये भारतीय दर्शनों पर अपनी व्याख्या लेकर आने वाले उत्तर हिन्दू काल के लगभग सभी आचार्या दक्षिण से आये। क्या मीमांसा के उपदेशक कुमारिल, क्या विवर्त्तवाद के वेदान्त प्रचारक शङ्कर, क्या विशिष्टा द्वैत के रामानुज क्या विशुद्ध द्वैत के आचार्य श्रीवल्लभ सब दक्षिण के थे। आज कोई हिन्दू उनके दिये हुये ऋण को अस्वीकार नहीं कर सकता।

अब तट प्रदेश की ओर देखिये। यद्यपि इस प्रदेश की कोई ऐसी देन हमारे पास नहीं है कि हम उसे आज के राजनीतिक इतिहास में महत्त्व का स्थान दे सकें।

तट प्रदेश

परन्तु देश के आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास में इस प्रदेश का बहुत बड़ा भाग है। वाली द्वीप से लेकर मेडागास्कर तक तटीय व्यापार करने वाली भारतीय नौकाओं का आर्थिक इतिहास इसी प्रदेश का इतिहास है। भारतवर्ष से पालिस किये हुये मिट्टी के बर्तन रोम के दरबारों में पहुँचाने का श्रेय इसी देश को है। प्रारम्भिक ईसाई पादरियों (१२०० शताब्दी में) की भूल से होने वाले बलपूर्वक धर्म प्रचार के कार्य की रोक के लिये बसाये गये गोयलों की निवास भूमि का इतिहास इसी तट का इतिहास है। इस का कारण यह है कि......

अभी संसार के इतिहास की खोज पूरी नहीं हुई। सम्भव है कि मिश्री और पेरु में पाई जाने वाली सूर्य्य की मूर्त्तियां राम सीता उत्सव का इतिहास भी भारत के तट के इतिहास से जोड़ा जा सके।

भारतवर्ष की भूमि की बनावट पर विचार करके अब हम जलवायु, उपज तथा खनिज पदार्थों का इतिहास पर प्रभाव विचार करेंगे।

उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत माला ने भारतवर्ष के हित साधन में दो काम और किये। उत्तर से आने वाली ठण्डी हवाओं को रोका, पानी भरी हवाओं को जाने नहीं दिया। इसका फल यह हुआ कि उत्तरी भारत का मैदान अत्यन्त उपजाऊ हो गया।

जलवायु,पर्वत भाग, भूमि की बनावट

अब भारतवर्ष के प्राचीनतम इतिहास से लेकर मुसलमान काल तक के इतिहास पर विचार कीजिये। आप देखेंगे कि इस उपजाऊ मैदान में प्रत्येक छोटे छोटे राज्य सदा बनते बिगड़ते रहे। इसी लिये इस प्रदेश पर सदैव अक्रामण होते रहे।

इस उपजाऊ भूमि में उत्तर पश्चिम से आने वाले आक्रमण कारियों को पहला खुला मैदान पानीपत में ही मिला। पानीपत का मैदान भारतवर्ष के इतिहास से कितने अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है इसके कहने की आवश्यकता नहीं।

राजस्थान का जलवायु ऊष्ण है। लू की लपटों में जलने वाले इस प्रदेश पर आक्रमण करके विजय पाना खेल नहीं है। फिर उन वीरों पर जिनके पास अरवली पर्वत में अभेद्य दुर्गमाला भी हो असम्भव के निकट है। राजस्थान की इस भौगोलिक स्थिति ने जिस जाति को जन्म दिया उसने अपनी वीरता के इतिहास से जगत को चकित कर दिया।

राजस्थान का जलवायु

अब भारतवर्ष के खनिज पदार्थों की ओर ध्यान दीजिये।

गंधक और फासफोरस की कमी के कारण भारतवर्ष में अग्निआस्त्रों का प्रचार कभी इतना अधिक नहीं हुआ जितना पश्चिम के देशों में। यहां के वीर तलवार का भरोसा करते थे। बन्दूक की लड़ाई को कायरों की लड़ाई समझते थे। राना सांगा की पराजय का कारण उसकी वीरता में कमी नहीं थी वरन् कमी थी भारत की भौगोलिक स्थिति में पालित और शिक्षित वीरों के रण साधनों की। उसके वीर बाबर की तोपों के सामने विचलित हो गये। उनकी तलवार बन्दूक की मार के आगे कुण्ठित हो गई। जलवायु के कारण पृथ्वी के उर्वरा होने का वर्णन हम कर आये हैं। लोहे कोयले का उपयोग भारतीय जानते थे अब भारतवासी के दैनिक जीवन पर इन भौगोलिक स्थितियों का प्रभाव देखिये। उस के फल लोहे के हैं? उसका वाहन बैल है, घोड़ा कम क्यों कि घोड़ा केवल सवारी के काम में आ सकेगा बैल सवारी और हल दोनों स्थानों पर। ऊंट को वह अपवित्र समझता है चिकनी उर्वरा भूमि में ऊंट का क्या काम। गाय उसके लिये पवित्र पशु है केवल इसलिये कि वह उसके बच्चों को दूध देगी और खेती के स्तम्भ बछड़े। इस तथ्य को हिन्दू ही नहीं कट्टर मुसलमानों ने भी स्वीकार किया। अकबर तो आधा हिन्दू था परन्तु कट्टर मुसलमान औरंगजेब ने भी गो वध बन्द करने की चेष्टा की थी।

खनिजों का प्रभाव

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष का इतिहास सदैव भूगोल से प्रभावित होता रहा है। यही नहीं भारतवर्ष को एक महाद्वीप की स्थिति में रख देना, उसके रहन सहन, आचार विचार और व्यवहारों को संसार से अलग कर देना उसकी भौगोलिक स्थितियों के ही परिणाम हैं।

प्रश्न

(१) इतिहास और भूगोल में परस्पर क्या सम्बन्ध है, उदहरण देकर समझाओ।

(२) उत्तर-"भारत का इतिहास खैबर दर्रे का इतिहास है" कैसे ?

(३) भारत के दक्षिण समुद्र से भारतवर्ष को क्या क्या ऐतिहासिक लाभ और हानियां हुईं ?

(४) यदि हिमालय पर्वत का इस प्रकार का विस्तार न होता तो भारतवर्ष के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ता ?

(५) भारतवर्ष जलवायु, बनस्पति और भूमि रचना का इतिहास पर किस प्रकार प्रभाव पड़ा है ?

(६) "मराठा शक्ति के उदय का कारण वहाँ की भौगोलिक स्थिति में है" कैसे ? राजपूत अजेय क्यों हो गये ?

———

मोहन जोदड़ो काल की चित्रकला

एशिया
अफ़्रीका
पेकिंग का मानव
(७५०,००० ई० पू०)
जावा का मनुष्य
प्रथम पुच्छहीन
मानव का पूर्वज
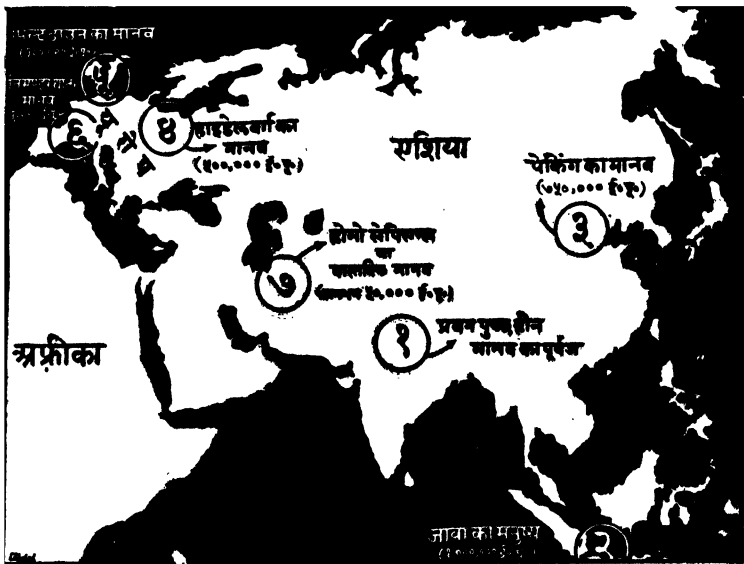
1½ लाख वर्ष पूर्व का आदि मानव

चौथा अध्याय

भारतवर्ष का इतिहास

इतिहास के तीन भाग

यदि विकास वाद के सिद्धान्त को ठीक मान लिया जाय (जिसे हिन्दू दर्शन अशुद्ध बताता है और कहता है कि मनुष्य पूर्ण उत्पन्न हुआ समस्त ज्ञान अपने मौलिक रूप में मानव को पहले से ही प्राप्त था) तो हम प्रारम्भिक मानवके इतिहास को तीन भागों में बांट सकते हैं। पहला योलिथिक मानव का प्रथम प्रस्तर काल था इस काल के लोग दक्षिण महाद्वीप (जो उस समय जावा आदि द्वीपों से मिला हुआ था) में बसे हुये थे। इनको पत्थर फैंक कर छोटे पशुओं का शिकार करना ही आता था। इसके अतिरिक्त उनमें मानवता का और कोई चिन्ह न था। इनसे कुछ विकसित मनुष्य की अस्थियां जावा द्वीप में पाई गई हैं। ये अब से विज्ञानिकों के अनुमान के अनुसार १० लाख वर्ष पूर्व की हैं। अतएव यमुना तट का आदि मानव जिसने इस से दुम छुड़ा कर मनुष्य नाम पाया था उसका काल १५ लाख वर्ष से पूर्व का अवश्य ठहरता है।

मनुष्य का भारत-वर्ष में प्रथम विकास

इसके उपरान्त जावा मनुष्य (पिथेकैन थ्रोपस) का विकास हुआ। यह भी उसी प्रस्तर युग का मनुष्य था परन्तु अब इस

जावा मनुष्य

मनुष्य ने अकेले रहने की अपेक्षा कुटुम्ब की ओर प्रवृत्ति दिखाई थी। यदि उसका कुटुम्ब उसकी स्त्री तक ही सीमित था और उन छोटे बच्चों तक जो स्वयं अपनी रक्षा में समर्थ न थे।

इनके समान ही हाइडेल वर्ग और पिल्ट डाउन मानवों का विकास पश्चिमी योरोप में बाल्टिक तट पर और इंग्लैण्ड के पठारों पर हो रहा था। यह पिल्ट डाउन मानव भी अपने पूर्वज योलोथिक और पिथेकैन थ्रोपस की समस्त विशेषतायें रखता था। पत्थर ही उसके यन्त्र थे। इन्हीं से वह शिकार भी करता था।

योरोप के मनुष्य

परन्तु भारतवर्ष में जिस दूसरे प्रस्तर युग के प्राणी का विकास हुआ था उसे पैलियो लिथिक सभ्यता का मनुष्य कहते हैं। यह मनुष्य फैंक कर मारने वाले पत्थरों से शरीर में घुस जाने वाले धारदार पत्थरों से परिचित हो गया था। इसने अपने धार वाले पत्थरों को फैंकने की अपेक्षा अपने हाथ में ही रखने के लिये उनमें लकड़ी के डण्डे वा लम्बी हड्डियां बांधने का प्रबन्ध भी कर लिया था। इस युग के प्राणी ने जंगली जीवों से अपनी रक्षा के लिये तथा अपने भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिये अग्नि जलाना भी सीख लिया था। अब इन के यत्रों में, रहन सहन में और विचारों में भी विकास हो चला था। ये लोग अकेले रहने के जीवन को छोड़ कर झुण्ड में रहने लगे थे। सम्भव है कि धर्म की भावना का उनमें उदय न हुआ हो परन्तु वे अपने शरीर को वस्त्रों से ढकने का यत्न करने लगे थे। इसके लिए वे खाल के साथ ही पेड़ों की छाल का

प्रस्तर काल का दूसरा युग

भी उपयोग सीख चुके थे। परन्तु मर जाने पर उसे सड़ने और पशुओं के खाने के लिये छोड़ देते थे इन मनुष्यों का निवास स्थान ऐसी भूमि होनी चाहिये जहाँ धार बनाने योग्य पर्त्तदार पत्थर मिल सकें। दक्षिण पठार के कड़ापां और और चिंगले पट के जिलों में इस प्रकार का पत्थर पाया जाता है अतएव यही जिले उनके निवास स्थान रहे होंगे।

पत्थर के तीसरे युग को नियोलिथिक काल कहते हैं। इसे पत्थर का नवीन काल भी कह सकते हैं क्योंकि इस काल के अवशेष मद्रास सूबे के वेलारी जिले, विन्ध्याचल की कन्दरा में, नेलोर, पाण्डेचरी के निकट, और हैदराबाद राज्य में अधिक संख्या में पाये गये हैं। ऐसे ही अवशेष फिलिस्तीन में भी पाये गये हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि दोनों भागों में एक ही जाति बसती थी अथवा एक सी सभ्यता की स्थिति थी।

इन अवशेषों की एक विशेषता है। अपनी इस विशेषता से ही हमें इस काल के लोगों का रहन सहन और उन की सभ्यता का पता चलता है। ऐसा जान पड़ता है कि इनमें सामाजिक जीवन का विकास हो चला था और इसके फल स्वरूप वे पुत्र जन्म और विवाह के आदि के अवसर पर उत्सव मनाते थे और अपने कुटुम्बियों को भी बुलाते थे। भूत प्रेतों पर उनका विश्वास जम चला था और धर्म के नाम पर वे पत्थरों का पूजन भी करने लगे थे। उन्हें यह अनुभव हो चुका था उनके शरीर में आत्मा है और शरीर केवल स्वतन्त्र न होकर प्रकृति और आत्मा से शासित होता है। वे अब झोंपड़ियाँ बना कर रहते थे।

इनके रहन सहन में भी परिवर्त्तन हो चला था। पशु-पालन उन्होंने सीख लिया था। बकरी, भेड़ और गायें उनके मुख्य पशु थे। कुत्ता भी उनका साथी रहा होगा। अब वे कच्चा मांस या केवल भुना हुआ मांस न खाते थे। खेतों का व्यस्थित विकास तो नहीं दिखाई देता परन्तु उनके भोजन में अनेकरूपता थी। सम्भव है कि स्वयं रुह अन्नों और कन्दों से उनका परिचय हो गया हो और वे उन्हें पका कर खाते हों।

व्यवसाय और उद्योगों में भी विकास हो रहा था। चाक पर बर्तन बनाना वे सीख गये थे और रूई का प्रयोग वे जानते थे। यह नहीं ज्ञात होता कि रूई से तागा निकालने का काम वे किस प्रकार करते थे। सम्भव है कि हाथ से ही करते हों। तथा यह भी सम्भव है कि लकड़ी के ढेरे बन गये हो जिनसे आजकल गांवों में सुतली बनाई जाती है। इसी प्रकार पत्थर की चक्कियां और कोल्हू बनाना भी उन्होंने सीख लिया था।

उनकी स्त्रियाँ बालों में कंघा करती थीं। गले में हड्डियों या सीपियों के हार पहनती थीं। यह प्रतीत नहीं होता कि स्त्रियों का अधिकार और अधिक कितना था परन्तु इतना इन आभूषणों से अवश्य प्रतीत होता है कि उनको सजाने की प्रवृत्ति मनुष्यों में आ चुकी थी। कुछ ऐतिहासिकों ने इस काल में सोने के आभूषणों का भी वर्णन किया है परन्तु विकास के सिद्धान्त पर विचार रखते हुये जब तक उन कड़े यन्त्रों का आविष्कार न हो जाय। जिनसे सोना गला कर कूटा और सुधारा जा सके। सोने के आभूषण बन सकें। सम्भव

है ऐसे अवशेष किसी अन्य काल के हों। परन्तु जब कपड़े का उपयोग होने लगा था तो उनको रंग लेना भी सम्भव है ।

धातु काल इस युग के उपरान्त पत्थर का काल समाप्त हो जाता है और धातु का काल प्रारम्भ हो जाता है। धातु काल में दक्षिण और उत्तर के विकास क्रम में अन्तर दिखाई देता है। दक्षिण भारत में लोहे का युग है परन्तु उत्तर भारत में ताँबे का।

दक्षिण भारत में लौहयुग तो समझ में आता है। भारतवर्ष की पठारी भूमि में लोहे और कोयले की खाने हैं कहीं कहीं कच्चा लोहा खेड़ो और पुरानी नदी द्वारा धोई हुई भूमि में ऊपर भी मिलता है। सम्भव है कि किसी ऐसे ही खेड़े पर अपने पुत्रोत्व का निमंत्रण करने वाले नियो-लिथिक काल के मनुष्य को अपने चूल्हे के नीचे एक थक्का सा जमा दिखाई दिया हो और उसने छूने की चेष्टा में अपना हाथ जला लिया हो । दहकते हुये इस धातु के पत्तर के ठण्डे पड़ जाने पर उसने उठाकर परीक्षा की हो और उसको अपना उपयोगी जान कर उसकी खोज में लग गया हो।

ताम्र युग एक बार इस प्रकार लोहे का उपयोग जान कर लोहे के युग का विकास स्वाभाविक है। ताम्र युग का विकास आश्चर्य जनक है । भारतवर्ष की भूमि में ताँबे का अंश नहीं के समान है। ताँबा विकास की कोटि में पहुंचने योग्य यदि दिल्लीके पास राजपूताना में पाया जाता है तो दक्षिण के पठार के भी पूर्वोत्तरी कोण में पाया जाता है और यह भाग

भी नियोलिथिक काल के मनुष्यों से बसा हुआ था। राजपूताना और दिल्ली के पास की भूमि में भी भूमि को ऊपरी सतह में ताँबा नहीं है। ताँबा आस्ट्रेलिया, ईरान, तुर्की और अमेरिका में ही सबसे अधिक उत्पन्न होता है। अब दो बातें सम्भव हैं या तो ताम्र युग के लोक आस्ट्रेलाइड थे या आर्मेनाइड जो तांबे के उपयोग को जानते थे। जावा सुमात्रा द्वीपों के साथ जुड़े रहने के कारण आस्ट्रेलाइड उत्तर भारत के वने को पार करके पश्चिम की खुली हुई भूमि में बस गये। अथवा आर्मीनिया से तांबे का उपयोग लाकर पश्चिम की खुली हुई भूमि में तांबा पाकर वहीं बस गये क्योंकि तांबा भारतवर्ष की पश्चिमी सम भूमि में ही उपलब्ध हुआ है तथा उनके अवशेष भी संयुक्त प्रांत के कानपुर से आरम्भ होकर फतेहपुर, मैनपुरी, मथुरा में मध्यदेशमें गंगेरियामें, पश्चिम में काठियावाड़, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में पाये जाते हैं। अतएव इस काल का इतिहास द्रविड़ों का इतिहास है। इस का वर्णन उन्हीं के साथ किया जायगा। अतएव इन के आगमन की अधिक सम्भावना अर्मीनिया से है जो वहां भी अफ्रीका से आये थे।

दक्षिण के लौह युग का इतिहास भी द्रविड़ों के इतिहास से सम्बद्ध है परन्तु ताम्र युग के आगन्तुकों से लौहयुग के आगन्तुक पुराने हैं और उनके आने की दिशा भी लौहयुग के मनुष्य पश्चिम की अपेक्षा पूर्व है। इसके वंशधर जो का निवास स्थान इस समय पाये जाते हैं कोल हैं। इन कोलों के आगमन का मार्ग भी उत्तरी पूर्वी हिमालय के नदियों के मार्ग हैं। सम्भव है जिस ब्रह्मपुत्र की घाटी का पहिले वर्णन आया है वही इसका मार्ग रहा हो। ब्रह्मपुत्र और

इस वादी की घाटियों, आसाम और उत्तरी ब्रह्मा में इन की स्थिति भी इसी ओर संकेत करती है।

अपने प्रसार के कारण अथवा भिन्न भिन्न समयों पर आने के कारण कोल अनेक उपजातियों में बँट गये इन्होंने आसाम से ठीक पूर्व की ओर का मार्ग नहीं लिया सम्भवत: ठीक पूर्व में बनों की अधिकता होने के कारण नदियों की घाटी से बढ़ते बढ़ते ये दक्षिण के खुले पठार पर फैलने लगे और इस प्रकार उड़ीसा की पहाड़ियों पर होते हुये मद्रास की अन्त मलाई पहाड़ियों पर पहुँचे और वहां से मालाबार के पानियन प्रदेश में फैल गये। इन्हीं की एक शाखा में सन्थाल लोग भी हैं जो मध्य भारत के पूर्वी भाग से लेकर आसाम तक फैले हैं।

कोल

छोटा नागपुर की पहाड़ियों पर बसे हुये कोल यद्यपि रंग में काले हैं परन्तु प्रकृति ने उन्हें सौन्दर्य्य देने में कृपणता नहीं की थी। हृष्ट पुष्ट शरीर, रत्न जटित आभूषण और लोहे के शस्त्रों से सुसज्जित सुगठित शरीर वाले कोलों को देखकर निपोलिथिक काल के पत्थर पूजकों ने इन के लिये स्थान खाली कर दिया।

कोलों का रूप रंग आदि

नाटा सा क़द, छोटी, चौड़ी और चपटी नाक, छोटी आँखें, घुंघराले लहरदार काले बाल प्रायः दाढ़ी मूंछ से रहित, चमकीली उज्ज्वल दांत, साधारण सुन्दर ओंठ और पतली चिबुक प्रसन्न और हंसमुख, व्यवहार में सरल और सभ्य। जिस विदेशी ने इन्हें देखा. उसने कृष्ण वर्ण में सुन्दरता ही देखी।

इनका धर्म भी सभ्यता के निकट आता हुआ था। सूर्य्य को ये अपना सब से प्रधान देवता मानते थे, भूतप्रेतों का अस्तित्व

स्वीकार करते उनसे डरते थे। मृत का परिवार

कोलों का धर्म अपने मृतक के सन्तोष के लिये रोटियाँ, शहद और छोटे २ पशुओं की भेंट करते थे। प्रत्येक उपजातिका अपना एक स्वतंत्र नाम है। यह स्वतंत्र नाम उन के कुल देवता का है। ये देवता वृक्ष, धरती, सर्प, चीता और बत्तख आदि के नाम के हैं। जो जिस कुल का देवता है वह उस कुल का पूज्य है। उसे वे कभी हानि नहीं पहुँचाते। सर्व शक्तिमान ईश्वर की भावना तक ये नहीं पहुँच सके।

जैसा अन्तिम प्रस्तर युग के वर्णन में कहा गया है कि जन्मोत्सव वे लोग मनाते थे वैसा ही कोलों का जीवन है। इनके जीवन में छः संस्कार तक पाये गये हैं जैसे

सामाजिक जीवन जन्म, नामकरण, विवाह, मांरंग, (माघी पर्व पर स्त्री पुरुष का सम्मिलित गोलंग या शुद्धि संस्कार) नृत्य और मृत्यु संस्कारों का सन्थाल जातियों में पालन किया जाता है। ये अपनी जाति के मुखिया का सम्मान करते हैं। उसकी आशा के विरुद्ध काम नहीं करते। यदि अपराध हो जाता था तो जाति से निकाल दिये जाते थे।

इन का विवाह सदैव युवावस्था में होता है अधिकांश उपजातियों में विवाह स्वेच्छा से होता है परन्तु किसी किसी उपजाति में मध्यस्थ के द्वारा विवाह

विवाह पद्धति निश्चित होता है। विवाह अधिकतया माघ फाल्गुन, जनवरी, फरवरी के लगभग होते हैं। विवाह के लिये दिन निश्चित है। परन्तु बल पूर्वक या स्वेच्छा से विवाह की प्रथा किसी किसी उपजाति में इतनी प्रचलित है कि केवल पुरुष के द्वारा स्त्री के मस्तक पर सिन्दूर लगा देने से ही विवाह

निश्चित समझा जाता है। दहेज में पशु दिये जाते हैं और उनकी संख्या भी निश्चित है। कहीं कहीं वर के पिता को या वर को वधू का मूल्य वधू के पिता को देना पड़ता है परन्तु अपनी जाति में विवाह की प्रथा साधारणतया नहीं है। ये सब प्रथायें इन में इतनी प्राचीन हैं कि कहा नहीं जा सकता कि ये इनकी अपनी मौलिक विशेषतायें नहीं हैं।

आज के इनके व्यवसाय से प्राचीन व्यवसाय की झलक नहीं मिलती अतएव कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। क्योंकि तब की और आज की भारतवर्ष की भौगोलिक स्थितियों में आकाश पाताल का अन्तर हो गया है।

व्यवसाय

जिस समय ये पहले पहल भारतवर्ष में आये होंगे उस समय खेती करना ये अवश्य न जानते होंगे क्योंकि आज भी इनमें से बहुत कम उपजातियां हैं जो खेती की ओर बढ़ीं। इनका मुख्य उद्यम शिकार करना था। शराब बनाने का इन्हें ज्ञान था और उस शराब को ये अपने सूर्य देवता (सिंगबोगा) की देन कहते हैं। समाज को मुखिया के द्वारा एक में बांधे रहने के कारण इनकी शक्ति अवश्य मूल निवासियों से अधिक थी परन्तु उस शक्ति का प्रयोग औद्योगिक संगठन के लिये कभी दिखाई नहीं पड़ा। पशु पालन इनका मुख्य व्यवसाय रहा है। जंगली फल फूल, अनाज और शहद इकट्ठा करना इनके अन्य व्यवसाय थे।

एक बड़ी विचित्र बात है वह यह कि इनकी भाषा मुण्डा है मुण्डा भाषा का उद्गम ही इनके मूल निवास स्थान को सन्देह

भाषा

में डाल देता है क्योंकि मुण्डा आस्ट्रेलियन परिवार की भाषा है। सम्भव है कि कालान्तर में आस्ट्रेलियन भाषा परिवार वाले लोगों से सम्पर्क हो जाने के कारण उत्तरी पूर्वी परिवार की भाषा का इन्होंने परित्याग कर दिया हो।

प्रश्न

(१) प्रस्तर युग को किन किन कालों में विभाजित कर सकते हैं? प्रत्येक का वर्णन करो ?

(२) लौह युग और ताम्र युग के विकास का इतिहास का सकारण समझाये।

(३) "वर्तमान भारतवर्ष में ये दोनों काल अपना प्रतिनिधि छोड़ गये हैं" किस प्रकार ?

(४) इन दोनों कालों की कौन कौन सी प्रथायें अब भी जीवित हैं ?

———

पाँचवाँ अध्याय

ताम्र युग

लौह युग की जिस सभ्यता का ऊपर वर्णन किया गया है वह सभ्यता अब से लगभग ५ या ६ हज़ार वर्ष पूर्व की मानी जाती है। जैसा ऊपर कहा गया है कि इस सभ्यता के पुजारी वे लोग थे जो भारतवर्ष के पूर्वी भाग से यहां आये। इस प्रकार भारतवर्ष में आने वाली बाहरी जातियों का क्रम इस प्रकार बनता है। अथवा यों कहिये कि इस सम्पूर्ण रंगों के मिश्रण करने वाले देशमें निम्नलिखित जातियों का रंग दिखाई देता है।

प्राचीन भारत की जातियाँ

१ मिग्रोटीज अफ्रीका से चलकर दक्षिण मार्ग से भारत के सूदूर दक्षिण और अण्डेमन होते हुये आस्ट्रेलिया तक फैल गये। यह घटना चतुर्थ जल प्रलय के पहले की है।

२. प्रोटो आस्ट्रेलाइड यह उन आस्ट्रेलिया वासियों से पहले के हैं जो लौह काल में इस ओर आये थे। इनके वंशज वेद लोग हैं जो आज भी भारतवर्ष के गम्भीर वनों में रहते हैं।

३. मेलानेशियन-मलाया प्रायद्वीप से ब्रह्मा और आसाम के मार्ग से चीन के दक्षिणी भाग और भारतवर्ष के पूर्वी दक्षिणी भाग में फ़ैल गये जो कोलो के पूर्वज हैं। इनका विस्तृत वर्णन हम पहले अध्याय में कर चुके हैं।

रूमसागरी

४. ये लोग अफ्रीका के रूम सागरी. तट के निवासी थे। चतुर्थ जाल प्रलय के उपरान्त आर्मीनिया होते हुये भारतवर्ष के

आर्मिनाइड — पश्चिमी भू-भाग में बस गये । भारतवर्ष का ताम्रयुग इन्हीं की अमर कहानी है ।

रूपरंग — इनका श्याम वर्ण ऊंचाई की ओर झुका हुआ छोटा शरीर, उठी हुई नाक, पीछे को खिंची हुई ठुड्डी, आंखों का चिराव ऊपर को उठा हुआ और लम्बे माथेमें भौहों की ओर ढाल, यदि नाक की नोंक से मस्तक के बालों से छुने वाली मध्य बिन्दु को मिलादें तो लगभग ३० अंश का कोण बन जाय, कानों में गोलाई, शिर पर लम्बे बाल, पूछें कुछ कतरी हुई और कंघी की हुई दाढ़ी इन कल्पनाओं के मिश्रण से यदि आप किसी मनुष्य को पहिचान सकते हैं तो उसे आप ताम्र युग का आर्मीनाइड भूमध्य सागरीय मनुष्य समझ लें ।

इनका समय — अब आप समय की ओर पीछे मुड़कर देखें यदि एक मनुष्य की औसत आयु सौ वर्ष की मान लें तो उसके ५३ पीढ़ी पहले यह भूमध्य सागरीआ र्मीनाइड भारतवर्ष के पश्चिमी भू भाग में अपनी दाढ़ी हाथ फेरता हुआ पक्की ईंटों से पर बनी सड़क पर अपने कन्धे पर शाल डाले हुये कदाचित उसे सिले कपड़े पहनने का ज्ञान नहीं है बालों को फीते से बांधे हुये अपने बांए कन्धे पर धनुष, कमर में तरकस, हाथ में गदा लिये, घूमता दिखाई देगा ।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा

जिस नगर की सड़क पक्की है आज से पांच हजार वर्ष पहले की उस सड़क को देखने की उत्सुकता स्वाभाविक है।

आइये थोड़ा सा उसका दृश्य भी कल्पना की आंखों से देखलें।

सड़क के दोनों ओर वर्षा के पानी को बहने के लिये पक्की ईंटों से बनी नालियां हैं जिन पर ईंटों से पटाई कर दी गई है जिससे उनके द्वारा निकली हुई दुर्गन्ध इन सभ्य नागरिकों को चलने में अड़चन उत्पन्न करे। मकान भी कोई छोटे कोई बड़े हैं परन्तु हैं सब पक्की ईंटों के बने। यह देखिये एक ८५ चौड़ा और ९७ फीट लम्बा भवन है इसके अन्दर प्रवेश करके भी देख लीजिये। सड़क के मुख्य चौड़े द्वार से जब आप प्रवेश करेंगे तो एक चौड़ी गली को पार करके ३२ फीट के प्राङ्गण में प्रवेश करेंगे। चारों ओर आपको क्रम से सजी हुई कोठरियां मिलेंगी। इन कोठरियों में खिड़कियां हैं, दरवाजे हैं किसी कोनों में प्रकाश या वायु का अभाव न दिखाई देगा। चार पांच फीट तक मोटी दीवालों पर बने हुये इस पक्के प्रासाद की पूरी गज पक्की ईंटों से बनी है। अब दूसरी मंजिल पर चढ़ कर देखिये, तंग सीधी सीढ़ियों पर चढ़ने से आपको कष्ट होगा परन्तु इस कष्ट के उठाये बिना आप दुमंजिले की पक्की गच कैसे देख सकेंगे। ऊपर की मंजिल की दीवालें उतनी मोटी नहीं हैं परन्तु हैं बड़ी सुदृढ़। यहां भी आप को कमरे आंगन सब प्राप्त होंगे।

फिर नीचे उतर आइये एक कमरे में प्रवेश करके देखिये। अरे यह डढ़ा सा क्या है। समझ गये होंगे कि इस तहखाने में इस नगर का सम्पन्न निवासी अपनी मूल्यवान सम्पत्ति रखता होगा। परन्तु तहखाना ही नहीं आपको दीवाल के पास एक और गड्ढा मिलेगा। इस गढ़े ने इस भवन के रहने

वालों की प्यास बुझाई है। उनके स्नानागार का जल इसी कुयें से आया था। आप आंगन से इस कुयें का केवल आधा भाग देख रहे हैं। बाहर सड़क से देखने पर इसका शेष आधा भाग दिखाई देगा। कुएं के बीच के भाग को पाट कर उस पर दीवाल उठा दी गई है जिससे एक साथ ही सड़क और घर दोनों का काम चल सके। आपको स्मरण होगा कि नगर में पानी की व्यवस्था के लिये नालियां हैं परन्तु इस कुवें का गन्दा पानी नाली में बहने के लिये नहीं जायगा। कुयें से थोड़ी दूर पर एक हौज है घर और कुएं का सब पानी उसी हौज में एकत्र होगा। जिसे सम्भव कोई सन्ध्या तक या कल प्रातःकल ही साफ़ करके नगर के बाहर फैंक देगा।

अब आइये नगर का और दृश्य देखें। एक ओर आपको हाल दिखाई देगा। सम्भवतः किसी उत्सव में सब लोग यहां एकत्र होते हैं और मनोविनोद करते हैं, एक बड़ा विटुमिन से पुता हुआ तैरने योग्य तालाब है, सम्भवतः कहीं देवालय भी हो। अरे! यह सतमंजला मकान तो अवश्य किसी सेठ या महाराजा का रहा होगा। इसमें सात ही मंजिल हों ऐसा नहीं है। हमारी पहुँच यहीं तक थी अतएव हम इसे इतना ही खोद कर ऊपर निकाल सके। नीचे पानी का सोत फूट गया है अतएव नीचे खोदने में हमारे प्रयत्न पर पानी फिर सकता है।

बच कर चलिये इक्के और गाड़ियों की इस भीड़ में हटो बचो की आवाज को न सुनना अहितकर है। सम्भव है कि कहीं पहियों पर दौड़ने वाली रथ की लपेट में आप आजांय।

उनके पास इतनी सम्पत्ति कहां से आई और कैसे वे उस काल में जब संसार मिस्र की ओर सभ्यता की शिक्षा के लिए देख रहा था जब, खाफरे डोरसेने फेरू हम्मुरावी की बुद्धिमत्ता की सहायता से संसार में अपनी अमर कीर्त्ति छोड़ने का यत्न पिरामिड बनवाकर कर रहे थे उस समय सिन्धु तट पर रहने वाले संसार के सर्व श्रेष्ठ मानव गिने जाते थे। यह प्रश्न भी अवश्य विचारनीय है।

उद्यम

सिन्ध नदी के अंचल में अभी इतनी सैकत राशि, बालुकामय भूमि नहीं है जिसमें कृषि न हो सके। अतएव कृषि के द्वारा असंख्य सम्पत्ति के स्वामी बन जाना इसके लिये सम्भव है। फिर अपनी उप्निज्ज उपज को संसार के बाज़ारों में पहुँचाने के लिये इनके पास रथ हैं, सवारियां हैं और नौका ज्ञान भी हैं। समस्त संसार को अपनी अन्न राशि देकर उसके बदले में रत्न राशि बटोर लाने वाले ये ब्यापारी यदि समृद्ध न हों तो और कौन होगा। स्थल मार्ग से ही तुर्किस्तान, अफ़गानिस्तान, खुरासान, मैसोपोटामिया एलाम, यूनान और मिस्र के साथ ब्यापार करने वाले इन लोगों के पास धन की क्या कमी होगी।

उद्योग धन्धों की भी कमी नहीं है। अमीर गरीब सब के घर चरखा है। बालक वृद्ध सब कातना जानते हैं। रूई की कमी नहीं। अपने बनाये हुये सूती कपड़ों से इन्होंने समस्त परिचित संसार को पाट दिया है।

लोहे से सम्भवतः अभी इनका परिचय नहीं हुआ। परन्तु कोई हानि नहीं अपने ताँबे के पत्रों द्वारा इन्होंने सोना चांदी

आभूषण — और काँसे के आभूषणों से न केवल अपनी ही स्त्रियों को सजा रक्खा है वरन् इनके आभूषणों की माँग सब को हैं। हाथी दाँत की क्रमशः उतार पर कटी हुई चूड़ियाँ पहन कर इनकी स्त्रियाँ संसार की सुन्दरियों की स्पर्धा की वस्तु बन गई हैं। चारों ओर से चूड़ियों की माँग आ रही है। इसी प्रकार छोटी सीप को भी इन्होंने अपना हाथ लगाकर बहुमूल्य बना दिया है।

केवल स्त्रियों के आभूषण ही हार, हमेल, करधनी, कड़ा, और बाजू बन्द या रौड ही यह नहीं बनाते थे वरन पुरुषों के हाथ में सोने की अंगूठी पहिनाने का सौभाग्य भी इसी जाति को है।

पालिस किये हुये छोटे बड़े मिट्टी के सुदृढ़ वर्तनों बनाना ये लोग खूब जानते हैं। गृहस्थी की वस्तुओं को वे इन्हीं मिट्टी के बर्तनों में रखते हैं। लखनऊ के विचित्रालय के संग्रह में इनका एक कुठिला रक्खा हुआ है जान नहीं पड़ता कि चीनी मिट्टी का है कि साधारण मिट्टी का। ५ हज़ार वर्षों के समय के साथ युद्ध करता यह कुठिला उस जीवन की औद्योगिक स्थिति की कहानी, उनकी उन्नति का रहस्य जिस एक भाषा में और जितना स्पष्ट आज भी कह रहा है इतिहास के अगणित पत्रों में भी नहीं कह सकते।

वर्त्तन

बच्चों के मनोविनोद की सामग्री भी इनके पास है। एक बैल सा है उसका शिर धड़ से अलग से जुड़ा है, इस शिर के मध्य भाग से जाने वाला एक तागा उसकी अलग से जुड़ी पूछ को जोड़ता हुआ नीचे लटक रहा है। एक बच्चा रो रहा है उसके सामने अनेक रंगों से

बच्चों के मनोविनोद

विचित्र इस खिलौने को रंग दीजिये। यदि वह अब भी प्रसन्न नहीं हुआ तो तनिक पीछे से उस तागे को खींच दीजिये अक-अकस्मात् झटके से अपना शिर और दुम उठाकर यह बैल उसे अवश्य हंसा देगा।

छोटी बड़ी रंगीन हाँड़ियाँ, घड़े, धूपदान और वटखरे काम के भो हैं और बच्चों के खेलने के भी। जान पड़ता है कि जीवन की प्रत्येक आवश्यकता पर इनको दृष्टि थी और इन्होंने जीवन की प्रत्येक वस्तु बनाई थी। कौन जानता था 'काल बली' के सामने किसी की 'एक न चली' हो जायगा और समृद्धि और संस्कृति का यह नगर बालुका राशि में दब कर अपने अतीत को मिट्टी के अंचल में छिपा कर अनन्त काल के लिये सो जायेगा।

आज वह नगर तो जागा है परन्तु उसके निवासी नहीं जागे। हमारी कल्पना के सामने जो उनकी पूर्ति है उसी के आधार पर हम ताना बाना बुन रहे हैं नहीं जानते कि हम सत्य के कितना निकट पहुंच रहे हैं परन्तु जो कुछ हम देख रहे हैं वह बहुत से उज्ज्वल मोह और अभिमान की वस्तु है। आइये और कुछ देखें इनके पारस्परिक सामाजिक जीवन उनके धर्म के विषय में अभी बहुत कुछ देखना है।

समुदाय में रहने वाला सिन्ध तट का यह प्राचीन निवासी व्यापार और कृषि में उन्नति कर चुका है उसे सम्भवतः युद्ध की आवश्यकता नहीं पड़ती अतएव

युद्ध की कमी

लम्बी तलवारें और कवच उसके पास नहीं हैं छोटी मोटी लड़ाइयों में काम आने योग्य धनुष, बर्छे, फरसे, खञ्जर, गदालों और गोफनों का निर्माण करना वह जानता है। इन

वस्तुओं का उपयोग उसे कम पड़ता है कभी खेती की हानिकारिणी चिड़ियों पर वह अपनी गोफन से ऐसा अचूक निशाना मारता है कि लोग उसके लक्ष्य वेध की प्रशंसा करते हैं। परन्तु उसे युद्ध का जीवन निश्चय ही प्रिय नहीं है।

उसकी स्त्रियों उसके बनाये हुये आभूषणों से सजकर बालों की वेणी बनाकर शिर में पीछे की ओर जूड़ा बांध लेती हैं। पता नहीं लगता कि हम स्त्रियों को घर के काम से भी कभी अवकाश मिलता था या नहीं। सम्भवतः सामाजिक जीवन में वे भाग न लेती थीं परन्तु सुखी और प्रसन्न तो थीं ही।

उसके भोजन का मुख्य अन्य अनाज और अंगूरों से निर्मित होता था। जिनका संग्रह करना वे भली भांति

भोजन

जानते थे। परन्तु अन्य दालों तथा फलों के सम्बन्ध में वे अपना कोई चिह्न ऐसा नहीं दे गये जिससे हमें पता चल जाता कि शिकार से प्राप्त मांस और अण्डों के अतिरिक्त वे किन सालनों का प्रयोग करते थे।

उनके मनोविनोद के साधन में ललित कलाओं का स्थान कम है। भवन निर्माण और आवश्यक कला की ओर उनका

मनोविनोद

अधिक ध्यान दिखाई देता हैं उनके मनोविनोद का केवल एक साधन हमें मिला है वह हैं पांसे। कदाचित चौसर के पांसे द्यूत क्रीड़ा के द्वारा उनका मनोविनोद करते हों।

हमारी दाहक्रिया उन सिन्धु तट वासी पूर्वजों की ही देन है। हमारे अन्तिम संस्कार की अनेक बातें हमें उन्हीं से मिली

संस्कार

हैं। आज हम अपने पूर्वजों की भस्मावशेष को किसी हांडी में भरकर समय पर तीर्थ में विसर्जन करने के लिये गाड़ देते हैं। इसी प्रकार अब से ५ हजार वर्ष पहले अपने पूर्वजों की चिताभस्म का संग्रह करके सिन्धु तट का यह निवासी भी भूमि की धरोहर बना देता था। कदाचित् इस चिताभस्म के साथ मृत की अन्य वस्तुएं भी गाड़ दी जाती थीं। आज हमारे यहां जलप्रवाह की विधि है। परन्तु उनमें भी यह प्रथा थी या नहीं इसके प्रमाण नहीं मिलते। परन्तु इस बात का अनुमान करने की साक्षियां मिलती हैं कि मृत व्यक्ति के किसी अंश को वे कभी कभी गाड़ भी देते थे तथा किसी किसी अवस्था में उसे वन्य पशुओं का भोजन बनने के लिये भी छोड़ देते थे।

धर्म

सिन्धु तट का यह भावुक धर्म के प्रति भी सम्पूर्ण उदासीन नहीं था। प्रकृति की सुखदायिनी गोद में पलने के कारण वह प्रकृति पूजक तो था ही। परन्तु इस प्रकृति के स्वामी उसके सहायक पशुओं—गाय, बैल, बकरी, घोड़ा और कुत्तों के स्वामी उनसे घिरे त्रिनेत्र नन्दीश्वर पशुपति तक वह पहुंच चुका था। वे प्रकृति की अधिष्ठात्री धरती को देवी रूप में मूर्तिमान करके उसकी पूजा करते थे। उनके एक देवता की योगासनस्थ मूर्ति भी प्राप्त हुई है जो जैनियों की जिन मूर्तियों से मिलती जुलती है। सम्भवतः चतुर्भुज विष्णु के स्वरूप का भी उन्हें परिचय प्राप्त हो चुका था। चक्रस्थित शङ्कर को योनि स्थित लिङ्ग मूर्ति की भी पूजा करते थे। इनके अतिरिक्त वृक्षों पर स्थित उनके अधिष्ठाता देवता की ओर शरीर त्याग करके जाने वाले

आत्मा क ओर जा चुका था । पीपल वृक्ष की अधिष्ठात्री देवी की अपनी सात सखियों से युक्त मूर्ति उनकी एक मुद्रा पर अङ्कित है। इसी प्रकार आधे पशु और आधे मनुष्य के आकार की मूर्तियां भी उनकी पूजा की वस्तुओं में थीं। उनके पूजन की विधि में स्नान का बड़ा महत्व था।

वर्तमान काल पर प्रभाव

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान सभी धार्मिक भावनाओं के मूल में उन सिन्धु-तट वासियों की छाप है। ऐसा जान पड़ता है कि प्रकृति में दिव्य सत्ता का दर्शन उन्हें होने लगा था। सम्भव था कि यह सभ्यता फलते फूलते एक ही अद्वितीय रूप में व्यक्त हो गया है के सिद्धान्त तक पहुंच कर वैदिक आर्य सिद्धान्त और वेदान्त तक पहुंच जाती। आज की मूर्ति पूजा पर तो उनका स्पष्ट प्रभाव दिखाई ही पड़ता है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि आगे आने वाले सरल और भोले आर्य्यों ने अपने इन अग्रगामियों से धार्मिक भावनायें न ली हों। सम्भव है कि सरल जीवन व्यतीत करने वाले आर्य्यों ने शक्ति में इन पूर्व निवासियों को पराजित कर दिया हो परन्तु संस्कृति में उनसे पराजित हो गये हों और उनकी संस्कारों को आर्य संस्कृति का अङ्ग बनाकर अपनी उदारता का परिचय दिया हो और इस प्रकार इन पूर्व निवासियों का प्रेम और विश्वास प्राप्त करके उनके हृदय पर भी विजय पाई हो।

हम तो उन दोनों को धन्य कहते हैं जिन्होंने पराजित होकर विजेताओं को अपनी संस्कृतिका पाठ पढ़ाया तथा उन विजेताओं को भी जिन्होंने उस उच्च संस्कृति का विनाश करने की अपेक्षा उसे अपना कर वसुधा को कुटुम्ब मानने का अपना सिद्धान्त

चरितार्थ कर दिया।

इस प्रकार हमने देखा कि आज द्रविड़ कहकर जिस सभ्यता को हम तुच्छ समझते हैं उसका हम पर कितना ऋण है। आज से ३,४ हजार वर्ष पूर्व का आर्य जिसके सामने संस्कृति की शिक्षा के लिये नत हुआ होगा उसके प्रति हमारा यह भाव कितना घृणित और हेय था। यदि इतिहास से इस प्रकार के प्रेम की शिक्षा हम नहीं ले सकते तो हमारा इतिहास पढ़ना व्यर्थ है।

प्रश्न

(१) मोहन जोदड़ो और हड़प्पा कहां हैं ?

(२) इन स्थानों पर उपलब्ध संस्कृति के काल का निर्णय करके वर्तमान काल पर उसका प्रभाव समझाओ।

(३) "आर्यों ने बहुत कुछ मोहन जोदड़ो की सभ्यता से सीखा" किस प्रकार ?

छठा अध्याय

आर्य्य

मूल निवास स्थान

ऊंचा शरीर, विशाल मस्तक, बड़ी बड़ी आंखें, लम्बी पलकें, घने बाल, पतले होठ, चौड़ी मांसल छाती, विशाल भुजायें, ढाढ़ी मूछ से भरा हुआ मुख जिस पर तेज है, कोमलता है, सरलता है और गम्भीर विचार की मुद्रा है लेकर आर्य्य ने अपनी लम्बी उंगलियों में जब शस्त्र पकड़ा तो भारतवर्ष से पश्चिम अमेरिका तक अपनी विजय का डंका बजा दिया, जब लेखनी पकड़ी तो आकाश के तारे तोड़ कर पृथ्वी पर उतार दिये, अपनी कृतियों से जगत को चकित कर दिया, जब विचार में मग्न हुआ तो उन कल्पनाओं को जन्म दिया जिन पर अविश्वास करते डर लगता है फिर भी जिन्हें हम प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। अपनी तर्क बुद्धि से बाल की खाल निकाल दी। अपने लोक व्यवहार में इतना भोला है कि कोई उसे सरलता से ही ठग सकता है परन्तु कर्त्तव्य में इतना कठोर कि आंधी उसे हिला नहीं सकती, तूफ़ान उसे डिगा नहीं सकता। उत्तर दक्षिण ध्रुव प्रदेश में अपने अमर चिह्न छोड़ सकने की गौरी शङ्कर पर्वत माला की प्रदक्षिणा करके उसका नाम करण करने की सामर्थ उसमें है।

रूप रंग

आज समस्त ज्ञात जगत उसी की कीर्ति गाथा गा रहा है। परन्तु वह पहले कहां रहता था ? इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देते हुये आज वही आर्य्य आपस में विवाद करता है।

हम इस विवाद में अभी नहीं पड़ना चाहते । हम अभी केवल विभिन्न विद्वानों की सम्मतियां ही सकारण अभी देखेंगे ।

इस प्रश्न पर विचार करते समय आर्य्य परिवार की भाषा पर सबसे पहले हमारा ध्यान जाता है । मानव माता पिता भ्रातृ आदि शब्द आर्य्यों के अपने शब्द हैं। अतएव प्रत्येक आर्य्य की भाषा में ये शब्द अपने किसी न किसी रूप में अवश्य पाये जाते हैं ! संस्कृत का मनुः शब्द जर्मनी में मेनुस (menus) अंग्रेजी में मैन के रूप में उपस्थित है । पिता, पिदर फारसी, पिटर (जर्मनी) और फादर अंग्रेजी में है। इसी प्रकार माता, मादर, मैटर, मदर रूप में भ्राता, विरादर, ब्रदर रूपों में ।

उद्गम-भाषा के आधार पर

इन अत्यन्त निकट वर्त्ती शब्दों से इतना स्पष्ट होता है कि आज के आर्य्यों के पूर्वज एक भाषा भाषी थे जिनकी लम्बी यात्राओं में शब्दों के रूप और उच्चारण में परिवर्त्तन हो गया। अब देखना यह है कि वह भाषा कौन थी।

फिलिस्तीन स्थित कैपोडोसिया (Coppodocia) प्रदेश के वोगाज़ कोई (Boghaz Koi) के जर्मन अनुसन्धान से एक लेख प्राप्त हुआ है जिसमें, इन्द्र, वरुण, नासत्य (यमज) आदि देवताओं के वेही नाम प्राप्त हुये हैं जो संस्कत भाषा में शुद्ध

रूप में मिलते हैं। जेन्दावस्ता की भाषा को देव नागरी लिपि में यदि थोड़ा संस्कृत व्याकरण का ध्यान रखते हुये लिख दिया जाय तो ऊंचे से ऊंचे प्रतिशत शब्द विशुद्ध संस्कृत के मिलेंगे ।

ऊपर दिये हुये पिता, माता, भ्राता आदि शब्द पश्चिमी भाषाओं में रूढ़ि वाचक संज्ञायें हैं परन्तु संस्कृत में वे सार्थक हैं जैसे रक्षा करने वाला पिता । पश्चिमी भाषाओं में शब्द लेटिन और ग्रीक भाषाओं से पहुँचे जहां उनकी धातु में संस्कृत की धातुओं के अनुसार ही हैं इस समस्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जहां संस्कृत वैदिक संस्कृत भाषा बोली जाती रही होगी वह प्रदेश इन आर्य्यों का मूल निवास स्थान होगा ।

संस्कृत का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य जेन्दावस्ता तथा वेद ही हैं। अतएव कम से कम इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि इस भाषा को बोलने वाले प्रदेश में आर्य्यों ने सबसे पहले उन्नति की सीढ़ी पर पैर रक्खा।

अब दूसरी विचार धारा निवास के योग्य भूमि का है । इस सम्बन्ध में भी भाषा, ज्योतिष शास्त्र और भूमि रचना के

उद्गम—भूमि के आधार पर

सिद्धान्तों पर विचार किया गया है कुछ विद्वानों का मत है मध्य योरोप की कार्येथियन पर्वत-माला के समीप आर्य्यों का जन्म स्थान है । वाल्टिक सागर के तट पर आर्य्यों के निवास स्थान पर रूस के विद्वान भाषा के आधार पर बड़ा बल देते हैं। मैक्स मूलर उनका निवास स्थान मध्य ऐशिया प्रदेश मानते हैं। लोक मान्य बाल गंगाधर तिलक आर्य्यों की जन्म

भूमि वेदोक्त ज्योतिष के आधार पर उत्तर ध्रुव प्रदेश मानते हैं। भारतीय शास्त्र जल प्रलय के उपरान्त आर्य्यों का पुनर्विकास हिमालय प्रदेश अथवा तिब्बत को मानते हैं। प्रत्येक पक्ष और विपक्ष में अनेक युक्तियां दी जाती हैं और इस प्रकार यह विषय अभी तक विवादग्रस्त ही है।

इतना अवश्य निर्विवाद है कि पश्चिम में इंग्लैण्ड, नार्वे, फ्रांस, जर्मनी, आष्ट्रिया, हंगरी, इटली, बल्कान, प्रायद्वीप, तुर्की, ईरान और पूर्व में भारतवर्ष तक जो जाति बसती है उसके पूर्वज एक ही थे और एक ही भाषा बोलते थे। देश विशेष में बसने, जल वायु तथा आवश्यकताओं के दैनिक प्रभाव के कारण उनके उच्चारण और शब्द भंडार में बराबर अन्तर बढ़ता गया। कितना आश्चर्य है कि एक ही पिता की सन्तान क्षुद्र आर्थिक स्वार्थों के लिये पवित्र रक्त बन्धन का विचार किये बिना अपने बन्धुत्त्व को भूल कर अपने ही भाइयों का गला काटने के लिये बराबर महायुद्धों की तैयारी करने में, अणुबम के द्वारा बालक, वृद्ध अशक्त स्त्री पुरुषों का संहार करने लगा है और उसे अपनी विजय समझ कर गर्व से फूल उठता है संसार में अपने को सर्व श्रेष्ठ कहलाना चाहती है। इसे हम पतन कहें या उन्नति।

भारत से योरोप तक एक जाति

आर्य्यों का जन्म स्थान विवाद का विषय था इसका अध्ययन आगे की कक्षाओं के लिये छोड़ कर अब हम आर्य्यों के प्रसार के मार्ग पर चलेंगे।

अपने प्रारम्भिक जन्म भूमि से आर्य्य कब चला यह प्रश्न भी विवादग्रस्त ही है। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इतिहास-

वेत्ता इसे अब से ६००० वर्ष पूर्व की घटना मानते हैं। विज्ञान ने सिद्ध किया है कि पृथ्वी अपनी कक्षा चक्र के साथ २१००० वर्षों में महाअयन पूरा करती है। इसी महाअयन पर वर्ष की अयन संक्रान्ति की भांति दो संक्रान्तियां होती हैं। इन संक्रान्तियों के अवसर पर पृथ्वी के अक्ष में पात होता है और फलतः पृथ्वी के कुछ भू-भागों में हिम-पात होता है. और कुछ भूगोल हिम प्रदेश से खुले हुये प्रदेश हो जाते हैं। अतएव हमारे इस युग का प्रारम्भ अन्तिम हिम-पात से शुरू होगा कि जिसे लग-भग आठ या सात हजार वर्ष बीत चुके हैं। और यही समय आर्य्यों के गृह त्याग का जान पड़ता है।

आर्य्य एक साथ ही सब ओर भागे अथवा थोड़ा थोड़ा करके इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में मत-भेद है। परन्तु यह निश्चित है कि जिस देश में ये गये वहां एक साथ ही नहीं गये। एक समुदाय के उपरान्त दूसरा, दूसरे के उपरान्त तीसरा, इसी प्रकार प्रत्येक देश में आगन्तुक आर्य्य आते गये और धीरे धीरे एक द्वार से घुस कर देश के आन्तरिक भागों में बढ़ते गये।

स्थान त्याग

शरीर गठन में ये व्यक्ति बलिष्ठ थे उस समय के युद्ध साधनों से पूर्णतया परिचित थे। प्रकृति के संग रहते रहते शीतोष्ण वर्षा के सहन करने में भी समर्थ थे। अतएव इन्होंने शक्ति बल से पूर्व निवासियों को ढकेल कर विभिन्न देशों में अपने उपनिवेश बनाये और उनमे ऐसे स्थिर हो कर बस गये कि आज अपने उद्गम स्थान को भी भूल गये। अपना समस्त स्नेह गंवा बैठे और उदार से सङ्कीर्ण बन गये।

प्रसार के साधन

इन आर्य्यों ने जहां ये गये अपनी रक्त की विशुद्धता बनाये रखने का सतत प्रयत्न किया। परन्तु संस्कृतियों को अपनी उदारता से सदैव ग्रहण किया। ग्रीस तथा रूम में बसने वाले आर्य्य ने मिश्र से, मिश्र ने बैबीलोनिया से, बैबी-लोनिया ने फिलिस्तीन से, फिलिस्तीन ने ईरान से और फिर ईरानियोंने अपने मूल स्थान से संस्कृति पाई। आगामी आर्यों ने उजड़े हुये प्रदेशों में अपनी नवीन संस्कृति का प्रसार किया। बसे हुये प्रदेशों की संस्कृति को अपने में मिला दिया। कुछ तो देशों में भौगोलिक अन्तर के कारण कुछ अन्य संस्कृतियों के मिश्रण के कारण भी इस एक जाति की आर्य्य जनता में संस्कृ-तियों का इतना अन्तर दिखाई देता है। इसका प्रमाण रूस की स्लेव संस्कृति है जिसने समस्त पश्चिमी योरोप को प्रभावित किया। भूमध्य सागरीय द्रविड़ संस्कृति है जिसकी अमर देन इटली से भारतवर्ष तक दिखाई देती है।

आर्य्य नाम की सार्थकता

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष से योरोप तक फैला हुआ एक ही आर्य्य कुटुम्ब है जिसे कुछ विद्वान इण्डो योरोपियन अथवा इण्डो जर्मनिक कुटुम्ब कहते हैं। आज वैज्ञानिक आविष्कारों ने भौगोलिक बन्धन तोड़ दिये हैं अतएव आज ये नाम भी सङ्कीर्ण हो गये हैं। टेराडेल फ्यूजो से लेकर कनाडा के उत्तर प्रदेश तक इङ्गलैण्ड से लेकर जापान तक, आज उस जाति के मनुष्य अपना मस्तक ऊँचा किये हुये उपस्थित हैं। इन समस्त प्रदेशों को उन्होंने भले ही विजित न कर लिया हो परन्तु अपनी संस्कृति का पाठ तो सब को दिया ही है अतएव अब समय आ गया है कि

क्षुद्र भौगोलिक सीमाओं से ऊपर उठकर इन्हें इनके वास्तविक नाम "आर्य्य" से पुकारा जाय। आर्या शब्द अपने मौलिक अर्थ (श्रेष्ठ) में भी इनका परिचायक होगा और समस्त आर्यों के परस्पर अन्तर, अमेरिकन, इंग्लिश, जर्मन, रूसी, टैलियन, पारसी, अरब, भारतीय आदि के मिटाने में सहायक होगा। सम्भव है कि इसी एक शब्द के गृहण के द्वारा परस्पर स्नेह भी उत्पन्न करके महात्मा पूज्य पिता गांधी का संदेश भी विश्व को सत्य और अहिंसा के द्वारा सिखाया जा सके तथा वेदों के उपदेश 'कृण्वन्तो विश्व मार्य्यम्' संसार को श्रेष्ठ बनाओ का लक्ष्य भी पूरा किया जा सके।

इन मौलिक आर्य्यों का उद्गम और प्रसार पर विचार करके हम उनके उद्यम तथा संस्कृति पर भी थोड़ा विचार कर लेना चाहते हैं। क्योंकि विभिन्न देशों में पहुंचने पर भौगोलिक परिस्थितियों के अनुकूल, अन्य संस्कृतियों के गृहण से पड़े हुऐ प्रभावों का अन्तर समझने के लिये मौलिक बात जान लेना आवश्यक है।

ग्रीस, ईरान और भारतवर्ष यही तीन स्थान हैं जिन आर्य जाति की प्राचीन तम संस्कृति और साहित्य उपलब्ध होते हैं। भले ही कार्पेथियन पर्वमाला से डैन्यूब के मार्ग पर चल कर आर्य्य ग्रीस होते हुए भारत में पहुंचे हों अथवा मध्य ऐशिया से तिब्बत से अथवा उत्तर ध्रुव से चल कर वे सब संसार में फैल गये हों।

इनके सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्ति के आधार

परन्तु उनके प्राचीन तम उद्योग धन्धों और संस्कृति का परिचय हमें इन्हीं तीनों देशों के साहित्य से चलेगा।

ग्रीस और भारत के आर्य्य प्रकृति के पूजक थे वे आकाश सूर्य, चन्द्र आदि देवताओं का पूजन करते थे। उनके निमित्त उत्सव या पर्व मनाते थे। इन उत्सवों या पर्वों की विधि में अन्तर अवश्य है परन्तु उत्सव अवश्य होते थे। ईरान के साहित्य में इन प्रकृति देवताओं से ऊपर अहुर मज्द' का परिचय मिलता है। सम्भव है कि विकास की दूसरी सीढ़ी हो। परन्तु प्रकृति को देवता मान कर उसका पूजन करना आर्यों की मौलिक संस्कृति जान पड़ती है।

प्रकृति पूजन

विवाह का काल और उनकी विधियों में भी इन दोनों देशों में विचित्र साम्य है। पिता माता की स्वीकृति तथा पूर्ण युवक होने पर विवाह, कन्या पक्ष से वर पक्ष का सम्मान और दहेज देने की प्रथा भी पाई जाती है। परन्तु आसुर विवाह कन्या बेच कर धन लेना भी केवल पारसीक साहित्य में मिलता है।

बिवाह विधि

अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान की भावना भी इन सब देशों की अपनी वस्तु है। मृत संस्कार भी तीनों में एक से हैं केवल भारतियों ने समाधि प्रदान किन्हीं विशेष स्थितियों में किया है परन्तु शेष दोनों देशों में सामान्यतया प्रचलित था।

वीरता और वीर पूजा आर्य जाति का सामान्य गुण था। इसके लिये विशेष शिक्षा और परीक्षा होती थी। इस शिक्षा और परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले, सर्व प्रथम आने वालों का सामाजिक सत्कार होता था। युवतियां ऐसे वर की वधू बन कर गौरव का

अनुभव करती थीं। अति साहस के कार्य ढूंढ़ ढूंढ़ कर करने की च्छा भी तीनों देशों में पाई जाती है अतएव इसे भी उनकी मौलिक प्रवृत्ति माना जा सकता है। परन्तु युद्ध की छापा-मार प्रवृत्ति उसमें दिखाई नहीं देती। सम्मुख युद्ध में शरीर शक्ति के प्रदर्शन और विजय को ही वह सच्ची विजय समझता था।

वीर होते हुये भी स्वभाव का सरल और निष्कपट होना उनका विशेष गुण था। शरणागत की रक्षा के लिये जाति की जाति युद्ध में लग जाने के लिये तत्पर हो जाती थी। यहां तक कि शरण में आये हुये पशु की रक्षा के लिये भी व्याकुल जड़ भरत का आख्यान इनके पशु प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है।

वीर पूजा ने इनमें नेतृत्व की भावना को जन्म दिया था। प्रत्येक जाति का सर्व प्रधान वीर उनका नेता होता था। उनक इसी वीर पूजा ने आर्य जाति के संघों में भी वीरों को अपना प्रधान चुना। विद्वानों का आदर भी आर्य जाति की अपनी मौलिक विशेषता है। इस प्रकार आर्य्य प्रवृत्ति जहां एकाधिकार की दिखाई देती है वहां उस एकाधिकार पर नियन्त्रण भी रखती है। भारतवर्ष तथा ग्रीस का प्राचीन इतिहास इस बात की साक्षी दे रहे हैं।

उद्योग धन्धे—अब इनके सामान्य उद्योग धन्धों पर विचार करना है। इस भ्रमण शील आदिम आर्य्य का मुख्य उद्योग अवश्य पशु पालन रहा होगा। परन्तु अपने पशुओं को चराने के उपयुक्त भूमि की खोज में उसे कृषि का ज्ञान

हो जाना भी स्वाभाविक है। अस्त्र शस्त्रों की शक्ति के कारण उसे खनिज पदार्थों तथा अनेक कलाओं का ज्ञान भी निश्चित ही है। चर्म, ऊन और रेशम उसके पवित्र वस्त्र थे परन्तु रूई के उपयोग से भी वह अपरिचित नहीं था। सिले हुये वस्त्रों की अपेक्षा बिना सिले वस्त्र कमर में लपेट लेना तथा कन्धों पर डाल कर अपने धड़ को ढक लेना वह जानता था। आज के रूमाल की जगह वह एक अंगोछा भी रखता था जिसे वह कमर में बांध लेता था।

अपने अस्त्र शस्त्रों के लिये मियान बनाना तथा शरीर और युद्ध रत पशुओं की रक्षा के लिये कवच बनाना भी उसे आता था।

उसकी वीर पूजक प्रवृत्ति ने उसे युद्ध व्यवसायी भी बना दिया था। उसकी घुट्टी में पड़े हुये इस व्यवसाय ने ही सदैव उसका अहित किया परन्तु उसमें तेज और युद्ध व्यवसायी वीरता सदा बनाये रक्खी।

आश्चर्य होता है कि प्राचीन भावुक आर्य नीच से नीच व्यक्ति का एक स्थान पर आदर करके उसके सामने घुटने टेक कर बैठ सकता है। उसका अभ्यागत समझ कर सत्कार कर सकता है वह दूसरे ही समय युद्ध व्यवसाय में सैंकड़ों वीरों का प्राणनाश करके गौरव समझता रहा है।

बात यह है कि वीरता और उदारता सगी बहने हैं और वे दोनों सदैव उसके साथ रहीं। कभी एक ने अपना वेग दिखाया कभी दूसरी ने। परन्तु इन दोनों के सहयोग से जिस मानव ने जन्म लिया था वह उसी पद के योग्य था जिस पर आज वह प्रतिष्ठित है।

प्रश्न

(१) प्राचीन आर्यों के उद्गम के सम्बन्ध में कौन कौन से मुख्य मत हैं ?

(२) इस काल के आर्य्य के उद्यम क्या थे ? तथा क्यों ?

(३) प्राचीन आर्या जाति के धार्मिक विश्वासों तथा रहन सहन का वर्णन करो।

(४) आर्या जाति ने जनतन्त्र को कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखा, क्यों ?

(५) प्राचीन आर्यों के रूप-रंग और आचार-विचार का वर्णन करो।

पूर्व वैदिक काल में भारतवर्ष
म हा का न्ता र
गुजरात
अ र ब
सा ग र
बं गा ल
की
खा डी

वैदिक काल में
भारतवर्ष
पक्थ
कुभा नं०
गोमती नं०
केकय
यदु
वितस्ता नं०
असिक्नी नं०
द्रुह्यु
विपाशा नं०
परुष्णी नं०
सुतुद्री नं०
सरस्वती नं०
दृषद्वती नं०
सिन्धु नद
सृंजय
उत्तर कुरु
उत्तर मद्र
मूजवन्त प०
यमुना नं०
गंगा नं०
पांचाल
कोशल
काशी
विदेह
मगध
रेवा नं०

सातवाँ अध्याय

भारतवर्ष में आर्य्यों का प्रवेश

भारतीय और पारसी आर्यों के अन्तर पर विचार

भारतीय साहित्य में देवासुर संग्राम की बड़ी चर्चा है। इसी प्रकार पारसी साहित्य में देवासुर संग्राम के गीत गाये जाते हैं। इसके आधार पर कुछ विद्वानों ने यह अनुमान निकाला है कि ईरान और भारतवर्ष के आर्या कभी एक ही प्रदेश सम्भवत: ईरान में रहते थे। परन्तु धार्मिक विरोध के कारण उनमें परस्पर संघर्ष आरम्भ हुये। इस धार्मिक विरोध का कारण भी ढूँढ़ निकाला गया। यह इस प्रकार है कि ईरान के आर्यों की एक संस्था ने एक अहुर-मज्द नामक सर्वशक्तिमान देवता की पूजा करनी आरम्भ की। फलत: प्रकृति को देवता मान कर पूजने वाले आर्यों के सम्प्रदाय से लगातार युद्ध आरम्भ हुये। उस युद्ध में पराजित होकर प्रकृति पूजक आर्या ईरान छोड़ कर भारतवर्ष की ओर बढ़े और पंजाब में जाकर बस गये।

तर्क अच्छा है और देखने में पुष्ट जान पड़ता है। परन्तु इस तर्क की आधार भूमि निर्बल है, न तो वैदिक साहित्य में न पारसी साहित्य में कहीं संकेत भी मिलता है कि देवासुर युद्ध का कारण देव पूजा थी। दोनों साहित्यों द्वारा आर्थिक स्थितियां ही युद्ध का कारण बताई गई हैं। देवताओं के स्वर्ग को असुर चाहते थे, अतएव: असुर देवताओं पर बार बार

आक्रमण करते थे। इस प्रकार का वर्णन वैदिक साहित्य में है तथा पारसी साहित्य में देव पारस के निवासियों को कष्ट देते थे, लूट मार करते थे, खा जाते थे अतएव देवासुर संग्राम होता था इस प्रकार का विवरण मिलता है।

एक बात की ओर और भी लोगों का ध्यान नहीं गया। न तो भारतीय आर्य्यों का असुर के पूजकों से युद्ध होता था इस प्रकार का वर्णन कहीं मिलता है। न असुर पूजक ईरान के आर्यों से देव पूजक आर्यों के युद्ध का वर्णन मिलता है। भारतीय साहित्य में तो देव और असुरों का दोनों के देवताओं का ही युद्ध वर्णन मिलता है परन्तु पारसी साहित्य में पारसी आर्य्यों का देवताओं से युद्ध होने का वर्णन अवश्य है।

साथ ही जिन कथाओं से इस प्रकार की गवाही ली गई है तथा प्रथम अनुच्छेद में वर्णित निष्कर्ष निकाला गया है वह एक पत्तीय है। सत्य इस प्रकार जान पड़ता है।

आर्यों का समुदाय एक स्थान पर रहता था। उनमें से एक समुदाय को एक ऐसा भू-भाग (स्वर्ग सम्भवतः काश्मीर की घाटी) प्राप्त हो गई। इस घाटी पर पहुँच कर ये अधिक सुखी हो गये जिस प्रकृति के वे उपासक थे उसका सम्पूर्ण यौवन उन्हें देखने को मिल गया अमृत जैसा मीठा जल और कल्प वृक्ष ऐसे सुस्वादु फलप्रद वृक्षों की सम्पत्ति का उपयोग करते देख कर उनके साथी अन्य लोगों की ईर्ष्या हुई। उन्होंने इस स्वर्ग में रहने वाले आर्यों पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। इस प्रकार के आक्रमण एक बार नहीं अनेक बार हुये। कभी एक समुदाय पराजित हुआ कभी दूसरा परन्तु अन्तिम विजय इस स्वर्ग के निवासियों की हुई और इन पर आक्रमणकारियों को इस पर

मसखरे (कारि) नट (वंशनर्त्तिन) पासों से खेलने वाले कितव, शंख, वीणा और तूण बजाने वाले इनका मनोविनोद करते थे।

मनोविनोद की कलाओं के संग संग ही उपयोगिनी ललित-कलाओं का विकास भी अवश्य हुआ होगा। वेदों में आलंकारिक वर्णन देख कर हमें अनुमान होता है कि काव्य में इनकी प्रवृति हो चुकी थी।

अब थोड़ा वैदिक काल की संस्कृति पर भी विचार कर लीजिये। प्रकृति के इस पुजारी को प्रकृति का दर्शन करते करते प्राकृतिक घटनाओं का पता चल गया था।

वैज्ञानिक ज्ञान

वह इन घटनाओं से कार्य का रस सम्बन्ध स्थापित कर चुका था वह जानता था कि सूर्य्य जब तपता है तो जल को बल पूर्वक खींच लेता है। तब इन्द्र इन मेघों को अपने बिजली रूपी वज्र से छेद कर जल वर्षा कर देता है।

त्रिवृत्त पार्श्व पर विभक्त होनी वाली सूर्य की किरणों का ज्ञान भो इसे हो चला था। यज्ञ उसका मुख्य कर्म था, अतएव वेदी रचना में लगे इसके पुरोहित की रेखा गणित से परिचय प्रारम्भ हो चुका था। गणित में दहाई के नियम तक सम्भवतः यह पहुंच चुका था।

पुरुष सूक्त से प्रतीत होता है कि परमात्मा के सम्बन्ध में भी इनकी धारणा स्पष्ट होने लगी थी। उसने तीन प्रकार के प्रश्न (प्रश्निन जीवन के कर्मों के सम्बन्ध में

विवेक बुद्धि

प्रश्न पूछने वाले) अभि प्रश्निन जीवन के रहस्यों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने वाले, प्रश्न विवाकभू मामेत मुकद्में के प्रश्नों की चर्चा की है। सम्भवतः

उनके उत्तर देने वाले व्यवस्थाकार दार्शनिक और वकील इन तीन प्रकार के बुद्धि व्यवसायी भी उत्पन्न हो चुके थे।

उसने धर्म का परित्याग करने वाले व्रात्य, कितव (जुआ खेलने वाले) जार व्यभिचारी तथा परिवृत्ति (बड़े भाई या बहिन के रहते छोटे भाई या बहिन के विवाह) की निन्दा की है। यह उसकी संस्कृति का उच्च अंश है।

गृहस्थ जीवन की मर्य्यादा बांधते हुये उसने अधिक से अधिक ६० वर्ष की आयु तक दाम्पत्य जीवन का वर्णन किया है। उसको उसने ५ भागों में बांट दिया है।

जीवन विभाग जिसमें पहले के दो काल २४ वर्ष तक संयम के थे अन्तिम ३ गृहस्थ धर्म पालन के थे। यह मर्य्यादा केवल पुरुष के लिये ही नहीं, स्त्री के लिये भी थी।

स्त्री के लिये पतिव्रत धर्म की ओर उसकी प्रवृति अवश्य थी। परन्तु पति की मृत्यु के उपरान्त स्त्री देवर से विवाह कर सकती थी। अन्य सभी व्यवहारों में स्त्री स्व-

स्त्री का स्थान तन्त्र थी। परन्तु उत्तर वैदिक काल में उसे पतिव्रतधर्म पर विशेष बल देने तथा स्त्री को नियंत्रण में रखने की ओर उसकी प्रवृति बढ़ चली होगी।

आखेट प्रेम भी उसके स्वभाव में था। इसीलिये (शिकारी) कुत्ते पालने वाले, बनों में मार्ग दिखाने वाले तथा किरात बन में शिकार करने वाले व्यक्तियों से भी उसका

शिकार से प्रेम परिचय था।

सोमरस का तो वह पान करता ही था जिस में एक प्रकार का हलका नशा था परन्तु सुराकार की गणना करते समय कदाचित सुरा (शराब) के स्वाद का भी उसे पता चल गया हो।

हैं जलप्रलय (चतुर्थहिमपातकाल) में जो मनुष्य वच रहे थे उन्हीं के द्वारा संसार फिर बसाया गया तथा उन्हें वेद मंत्रों का ज्ञान था विभिन्न कालों में भौगोलिक परिस्थितियों से प्रभावित होने के कारण उनकी वैदिक सभ्यता में या तो विकास हुआ अथवा ह्रास। जातियों का विकास और ह्रास असम्भव नहीं है। दक्षिण अमेरिका, इङ्का और अमारा जाति किसी समय सभ्यता के ऊंचे शिखर पर पहुंच चुकी थी इसके प्रमाण उनके भवनों के रूप में उपस्थित हैं परन्तु आज वे किस स्थिति से हैं यह तो प्रत्यक्ष ही है।

इस काल पर विचार करते समय उस काल के आर्य भारतवर्ष की भौगोलिक सीमा निर्धारित कर लेनी आवश्यक है।

भौगोलिक सीमा

वर्तमान काबुल और कन्धार; पंजाब और संयुक्तप्रदेश का पश्चिमी प्रदेश आर्यों का क्रीड़ा क्षेत्र बन चुका था। कुभा (काबुल नदी) क्रमु (कुर्रम) गोमती (गोमल) सुवास्तु (स्वात) सिन्धु वितस्ता (झेलम) आसक्नी (चनाव) परुष्णी (रावी) विपाशा (ब्यास) शतद्रू (सतलज) सरस्वती दृद्वती और गंगा यमुना नदियों के तट पर उनकी यज्ञवेदियां बन चुकी थीं। गांधार, सप्तसिन्धु (पन्चनद) और ब्रह्मावर्त्त उनके मुख्य देश थे जिनमें अलिन, पक्थ, विषाणिन् सिन्ध के पश्चिमी भागों में अनुद्र ह्यु पंचनद प्रदेश में तथा तुर्व सुयदु पुरु और भरत ब्रह्मावर्त्त तक फैल चुके थे। इनमें से क्रमशः शक्ति एक राज्य से दूसरे राज्य में जाती रही। वैदिक काल के अन्तिम भाग में शक्ति भरत वंशी राजाओं के हाथ में आ

चुकी थी। इन्होंने लगभग समस्त ब्रह्मावर्त्त तथा पञ्चनद पर अधिकार करके उसे बसने के योग्य बनाकर भारतवर्ष नाम दे दिया था क्योंकि इस नाम का सम्बन्ध दुष्यन्त के पुत्र भरत से है।

अब हम इस कालके उद्योग धन्धों तथा सम्पत्ति पर विचार करेंगे।

यजुर्वेद का तीसवां अध्याय पूरा का पूरा व्यवसायों से सम्बन्ध रखता है। इनकी समस्त कलाओं को हम चार मुख्य भागों में बांट सकते हैं। पहली जीवनोपयोगी कलायें, प्रसाधन कलायें, युद्धोपयोगी कलायें और ललित कलायें।

जीवनोपयोगी कलाओं में तक्षाण (बढ़ई) कुलाल (कुहार) रज्जुकार (रस्सो बनाने वाला) गोपाल अविपति और प्रजा-पति (गड़रिये) कीनाश (किसान) वास: पल्पूली (धोबी) राज मित्र (रंगरेज) अयस्ताप (लुहार) धीवर और शौष्कल (मत्स्य जीवी) कैवर्त्त और आन्द (नदी पार करने के लिये बांध बनाने वाले आदि हैं।

प्रसाधन कलाओं में हमें मणिकार (मनिहार) रूपकार और हिरण्यकारों (सुनार) के दर्शन मिलते हैं।

युद्धकला की सामग्रियों से सम्बन्ध रखने वाली समस्त कलायें दिखाई देती हैं। इषु कार (तीर बनाने वाले) धनुष्कार, ज्याकार (तांत बनाने वाले) हस्तिप, अश्वप आदि तथा लोहारों का वर्णन मिलता है।

इनके मनोविनोद की कलायें, नृत्य गीत, वाद्य आदि के लिये तो कलाकार थे ही इनके अतिरिक्त स्तुतिपाठक (रेम)

वैदिक काल में भारतवर्ष
सिन्धु
ब्रह्मावर्त
सरस्वती
दृषद्वती
ब्रह्मर्षिदेश
ब्रह्मपुत्र
महाकान्तार
गुजरात
नर्मदा
ताप्ती
गोदावरी
कृष्णा
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
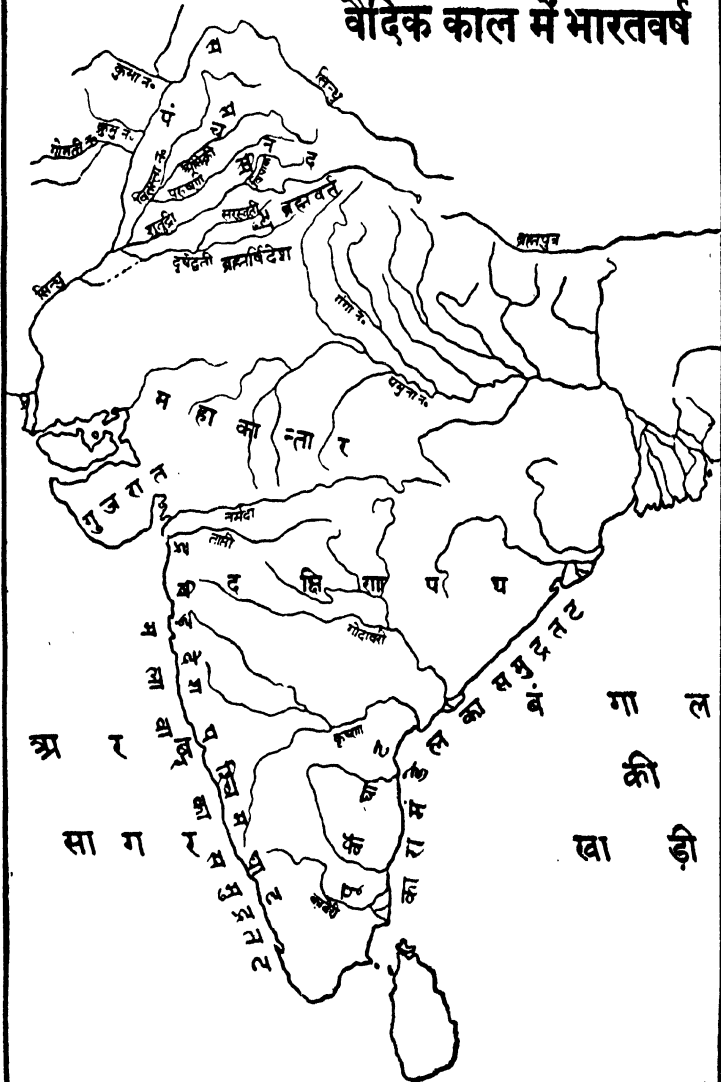
सर्वथा प्रतिकूल जान पड़ती है। और फिर उस दशा में जबकि असुर आर्य्य कहे जाने वाले भारतियों के शत्रु हों।

हमारा मत है कि आर्य चाहे वह ईरान का रहा हो चाहे भारतवर्ष का एक ही देश के निवासी थे। उनमें राजनैतिक कारणों से युद्ध हुआ उसका परिणाम एक सन्धि हुई जिससे भारतवर्ष और ईरान का बटवारा हो कर दोनों सम्प्रदायों में शान्ति उत्पन्न हुई। जो असुर सम्प्रदाय भारतवर्ष में बसा उसे भारतीय आर्यों ने भूमि की अधिकता क कारण रहने दिया और दोनों समुदाय अलग अलग अपनी उन्नति और विकास में लग गये।

यहां तक आर्यों के भारत प्रवेश का वर्णन करके अब हम भारतीय आर्य काल के इतिहास पर थोड़ा विचार करेंगे।

भारतीय आर्य काल के प्राचीनतम साहित्य वेद से **आरम्भ करके हम महाकाव्य काल (रामायण महाभारत तक के काल) को तीन मुख्य भागों में बांट सकते हैं। पहला वैदिक काल, दूसरा उत्तर वैदिक काल, तीसरा महाकाव्य काल इन तीनों की विभाजक रेखा खींचना असम्भव सा है।** क्योंकि उपनिषद् काल में वैदिक ऋचाओं पर शास्त्रीय विवेचन मिलता है। इस शास्त्रीय विवेचन में अनेक इतिहास ऐसे मिलते हैं जिनका सीधा सम्बन्ध इतिहास काल से है। परन्तु इन तीनों कालों में उनकी धार्मिक भावनाओं में इतना अन्तर है कि हमें विवश होकर यह काल विभाजन स्वीकार करना पड़ता है।

सब से पहले हम वैदिककाल के इतिहास पर विचार करेंगे

भाषा और भाव योजना की दृष्टि से ऋग्वेद प्राचीनतम

साहित्य है। अतएव इसके साक्ष्य से ही प्राचीनतम इतिहास का पता लगेगा। साथ ही यजुर्वेद भी प्राचीन है। क्योंकि यजुर्वेद की भाषा भी नवीन नहीं है। हम अपना ध्यान इन्हीं दोनों पर केन्द्रित रक्खेंगे और इस काल के इतिहास और संस्कृति पर प्रकाश डालने की चेष्टा करेंगे।

पूर्व वैदिककाल

भारतीय आर्यों के इस काल के निर्णय में भी बड़ा भारी मतभेद है। कुछ विद्वान इसे ईसा से २५००० वर्ष पूर्व रखते हैं

समय

लोकमान्य तिलक इसे ईसा से ६००० वर्ष पूर्व और सौकोबी महोदय ईसा से ४५०० वर्ष पूर्व का कहते हैं। यदि द्रविड़ आर्य सभ्यता काल के विकास से पहले की सभ्यता माना जाय तो ईसा से ३३२०० वर्ष पहले की द्रविड सभ्यता के विनाश के लिये ३०० वर्ष का समय देना आवश्यक होगा और यह काल ईसा से ३०:० वर्ष पूर्व का समझना पड़ेगा। ऋग्वेद संहिता है जिसका संकलन कृष्णद्वैयान व्यास ने किया जिनका काल ईसासे १४५० वर्ष पूर्व है। इस संकलन का कारण यह था कि वेदों के अर्थ दुरूह होते जा रहे थे अतएव उनकी अर्थ रक्षा के लिये उनकी पाठ विधि और शुद्ध उच्चारण को बनाये रखने की आवश्यकता थी। परन्तु ऋग्वेद संहिता के अन्तिम भाग में ऐसे इतिहास मिलते हैं जो द्वैपायन काल के ही हैं अतएव ऋग्वेद का काल ईसा से ३०८० वर्ष पूर्व से लेकर १५०० वर्ष पूर्व तक मानना पड़ेगा।

भारतीय विद्वानों की विचार परम्परा ही भिन्न है। वे आर्यों द्वारा ही समस्त सभ्यताओं का प्रसार मानते हैं। वे कहते

चढ़ाई कर देने का विचार छोड़ देना पड़ा।

इस पराजय का कारण सम्भवतः यह था इस समुदाय में संगठन की भावना बलवाना हो गई। प्रकृति के विभिन्न रूपों के पुजारियों ने जो इस देश में बसे थे मतैक्य करके एक संगठन बना लिया और एक के नेतृत्त्व में शस्त्रों का उन्होंने निर्माण किया फिर जेता असुर पूजकों से युद्ध किया। असुर पूजक बलवान अवश्य थे परन्तु उनके पास केवल शरीर बल होने के कारण शस्त्र बल के अभाव में वे पराजित हो गये। इस पराजय के उपरान्त भी कभी कभी युद्ध होते रहे। परन्तु व्यापक और संगठित आंक्रमण न असुरों ने देवों पर किये न उन देवों ने असुरों पर।

यदि भारतीय विचार परम्परा पर ध्यान दिया जाय तो त्रिविष्टप (तिब्बत) से आर्यों का उद्गम मान कर एक का पर्वत मार्ग से पृथ्वी के स्वर्ग का शरीर में निवास स्थान मानना उचित होगा, दूसरों का संयुक्त प्रदेश, पंजाब, काबुल और ईरान में। युद्ध भी साधारण जनता में नहीं हुआ। वह सदैव सुख शान्ति से रहती रही केवल सेना नायकों में थोड़े से सैनिकों के साथ युद्ध होता रहा।

भारतीय साहित्यकारों द्वारा वर्णित देवासुर संग्राम को भी दो भागों में बांटा जा सकता है। पहला पूर्व भाग, दूसरा उत्तर भाग। पूर्वभाग में देवता और असुर दोनों में विद्याज्ञान उदारता भक्ति और परस्पर सद्भावना की आर्यों ने मुक्त कण्ठ से स्तुति की है। इन्द्र अपने अस्थि निर्मित वज्र से वृत्तासुर को मारता अवश्य है परन्तु वृत्तासुर उसे धर्मोपदेश देता है बलि ने देवता वामन को दान में अपना शरीर नपवा दिया,

प्रह्लाद ने वैदिक देवता विष्णु को प्रगट होने के लिये वाध्य कर दिया। शम्बर तन्त्र विद्या का आचार्य था और नाड़ी विज्ञान, अर्क चिकित्सा के आविष्कारक असुर ही थे। आर्यों के सृष्टि उत्पादन और विलय करने वाले देवता ब्रह्मा और शंकर असुरों पूज्य और इष्टदेवता थे। शंकर को असुरों का आराध्य ही माना जाय और आर्यों द्वारा स्वीकार कर लिया गया मान लिया जाय तो भी असुरों की ब्रह्मभक्ति का समाधान उनकी उदार और पवित्र भावनाओं को बिना माने न होगा।

दूसरे काल में असुरों के प्रति आर्यों की धारणा बदल गई थी। यह वह काल है जब असुर पहले की गई सन्धि देव भूमि पर आक्रमण न करने की शर्त्त का उल्लंघन करने लगे थे। वैदिक आचार उन्होंने तो छोड़ ही दिये थे वैदिक आचार परायण लोगों को भी कष्ट देते थे। उस दशा में उनका चित्रण केवल निशाचर, मांस भक्षी, मद्यप का और काले कुरूप के रूप में किया गया है जो स्वाभाविक सा जान पड़ता है।

एक बात और ध्यान देने की है। यह असुर वैदिक काल से लेकर महाकाव्य कालों तक भारतवर्ष में ही रहे हैं। हिरण्य-कश्यप और हिरण्याक्षय से लेकर बलि तक असुर वंश भारतवर्ष में ही रहा। बाणासुर भारतवर्ष का ही क्षत्रिय था। कंस और उसका दरबार, घटोत्कच और उसकी माता हिडिम्बा भारतवर्ष में ही थे। सुन्द, उपसुन्द हिमालय की तटवर्तिनी भूमि में राज्य करते थे। अतएव यह धारणा कि असुर ईरान के थे और देव पूजक आर्य्य भारत भारतवर्ष के निवासी थे। भारतीय साहित्य के

लगा था। उसने अरण्य बास (वन में रहने) को गृहस्थ जीवन से अच्छा समझना प्रारम्भ कर दिया था।

सामाजिक आर्थिक सन्तुलन के लिये निश्चित पेशों के द्वारा जाति का निर्णय प्रारम्भ हो चला था परन्तु ज्ञान की प्राप्ति के लिये अभी जाति का बन्धन बाधक नहीं था। रैक्व नामक ठेला चलाने वाला भी धर्मोपदेश का अधिकारी देखा जाता है। वर्णों में परस्पर विवाह की प्रथा में बन्धन लग गये थे परन्तु अभी वे अधिक कठोर नहीं थे इसी प्रकार विवाह में भी नियमों में परिवर्त्तन हो रहा था।

जाति निर्णय

इस काल की स्त्री अब उतनी स्वतन्त्र नहीं थी जितनी पूर्व वैदिक काल में थी पुनर्विवाह पर बन्धन लग चुके थे परन्तु पति की उपस्थिति में उसे स्वतन्त्रता थी। पति के साथ वह प्रत्येक कार्य में भाग ले सकती थी। ब्रह्मचारिणी का जीवन बिताते हुये वह ज्ञान विज्ञान में भी अपनी बुद्धिमत्ता दिखा सकती थी। ऐसी विदुषी स्त्रियों का सम्मान राजा लोग आसन से उठ कर करते थे। परन्तु सामान्य स्त्री अपने गृहस्थ जीवन में प्रसन्न और सुखी थी।

स्त्रियों की स्थिति

इस वैदिक काल के उद्योग धन्धों का पूर्ण विकास जाति गत पेशों के कारण हो रहा था। जैसे जैसे आवश्यकतायें बढ़ती जाती थीं वैसे वैसे उनके उद्योग धन्धे भी बढ़ रहे थे। कांच के उद्योग को आर्यों ने सीख लिया था। लाख, शीशा और जस्ता का उद्योग भी पनप रहा था। युद्ध सम्बन्धी आवश्यकताओं

उद्योग धन्धे

बड़ों के कारण युद्ध सम्बन्धी कला का विकाश भी हो रहा था। जिसने महाकाव्य काल में माया युद्ध का रूप ले लिया था।

राज्य शासन में विभाग का सूत्रपात हो गया था। अब एक समुदाय में बसे हुये ग्राम विश और जन की अपेक्षा गिनती के द्वारा १०, २०, १०० और हजार गावों के अधिपति होने लगे थे। यही प्रथा सूबेदारी शासन प्रथा के मूल में है। वर्त्तमान गवर्नरी शासन इसी का परिवर्त्तित रूप है। अर्थात् एक संस्कृति के स्थान पर भू-भाग शासन व्यवस्था की इकाई बन गये थे। राज्य शासन में अब अर्थ मंत्री भी आ गया था जिसे संगृहीता कहते थे। दण्ड व्यवस्था भी विकसित हो रही थी। बड़े अपराधों का दण्ड राजा स्वयं निर्णय करते थे।

राज्य शासन

धर्म और साहित्य इस काल की मुख्य विशेषतायें हैं जिन्होंने इसको पूर्व वैदिक काल से अलग कर दिया है। परमात्मा की एक सत्ता का अनुभव इन्होंने प्राप्त कर लिया था। उसके प्राप्त करने के साधनों को भी इन्होंने दो भागों में बांट दिया था। पहला कर्म का मार्ग दूसरा ज्ञान का मार्ग। कर्म का मार्ग यज्ञ प्रधान था। अतएव यज्ञों का विस्तृत विकास हो रहा था। उसके नियम और आवश्यक सामग्रियों में वृद्धि हो रही थी और धीरे धीरे यज्ञ विधान जटिल होने लगे थे। साथ ही ज्ञान द्वारा शरीर के तत्त्वों का विश्लेषण करके उनसे परे ब्रह्म की प्राप्ति के लिये शरीर को अन्नमय कोष बता कर आनन्द मय कोष परमात्मा में स्थिति करने की प्रवृत्ति चल

धर्म और साहित्य

जल में अपना प्रतिबिम्ब देखने की आज्ञा दी। दोनों ने देखकर बताया कि "यह आत्मा सुसज्जित और सुन्दर है"।

विरोचन तो इस प्रकार शरीर को ही आत्मा समझता हुआ प्रसन्न होकर चला गया परन्तु इन्द्र को सन्तोष न हुआ। उसने अपनी शंका फिर उपस्थित की। 'कहा यदि वस्त्राभूषणों से सज जाने से आत्मा सुसज्जित शरीर हो जाता है तो क्या रोगों और दोषों से रोगी और दोषी भी हो जाता है?

प्रजापति ने उसे फिर तप की आज्ञा दी और तप के उपरान्त उसे आत्म तत्त्व का उपदेश किया।

अपने स्वरूप को जानने की इच्छा

इन्द्र विरोचन के आख्यान द्वारा हमें स्पष्ट जान पड़ता है कि वैदिक ऋचा काल के उपरान्त उसके साथ ही आत्म जिज्ञासा बढ़ने लगी थी। अभी तक मंत्र दर्शन का ही काल था परन्तु अब उन मन्त्रों के रहस्य विवेचन की ओर प्रवृत्ति चल पड़ी थी पूर्व वैदिक काल तथा उत्तर वैदिक काल की मौलिक प्रवृत्तियों में यही अन्तर है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् पग पग पर इसी अन्तर की ओर संकेत करते हैं।

समय

इस समय का निश्चिय करने के लिये हमें वैदिक काल का अन्तिम समय और महाकाव्य काल का प्रारम्भिक समय दोनों एक में मिलाने पड़ेंगे। इस प्रकार यह काल वैदिक और महाकाव्य काल की सन्धि का काल होगा। अर्थात् यदि हमने वैदिक काल को ३००० ई० से १५०० ई० पूर्व तक रक्खा है तो इस

काल को २००० ईसा पूर्व से १००० ई० पूर्व तक रखना पड़ेगा।

इस काल का राजनैतिक इतिहास लगभग पूर्व वैदिक काल की भांति ही था। केवल कुछ राज वंश और बढ़ गये थे जो विन्ध्याचल के उत्तर भाग तथा गण्डक की नदी तक फैल गये थे। इस प्रकार आर्यों के भारत का विस्तार पूर्व में बिहार प्रान्त का पश्चिमी भाग दक्षिण में विन्ध्याचल का उत्तरी भाग तथा मालवा और उत्तर में काबुल तक था। सम्भवतः कोसल, विदेह, मागध, वत्स और शूरसेन राज्य इसी काल में विकसित हुये जिन्हों ने आर्य्यों के इतिहास पर अधिक प्रभाव डाला। पूर्ववर्त्ती राज्यों की सीमा रेखाओं में भी परिवर्त्तन हो गया था। ऋग्वेद काल के दशराज युद्ध ने यदु आणव और द्रुह्युओं की शक्ति तोड़ दी थी। उनमें से कुछ लोग भारतवर्ष छोड़ कर उत्तर पश्चिम मार्ग से मध्य ऐशिया के सुमेरु (उर) लोगों पर विजय प्राप्त करने चले गये थे।। पंजाब में कुरु, पाञ्जालों का तथा काश्मीर की ओर केकय लोगों का राज्य था। अब युद्ध कम हो गये थे परन्तु जब कभी होते थे तो उनकी भयंकरता अधिक बढ़ जाती थी। साधारण प्रजा पर आक्रमण तो न होते थे परन्तु उन्हें युद्धों से कष्ट अवश्य होता था।

राजनैतिक इतिहास

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों वर्णों का अब रूप अलग अलग स्पष्ट हो गया था। सम्भवतः जन्म से वर्ण निर्धारण की प्रथा बल पा रही थी। ब्राह्मण राज कार्य से पीछे हट कर चिन्तन और त्याग के जीवन की ओर झुकने

सामाजिक स्थिति

रूप में ही आर्य्य संस्कृति में लग-भग वे सब बातें आ गई थीं जिन पर आज के आर्य्य ने अपनी सभ्यता का विशाल भवन खड़ा किया है। केवल परमात्मा के स्वरूप के सम्बन्ध में उसे विचार करना रह गया था जिसे उसने अपने उत्तर वैदिक काल में पूरा कर दिया। इस पर हम अगले परिच्छेद में विचार करेंगे।

प्रश्न

(१) आर्य्य भारतवर्ष में कहां से आये ? भिन्न भिन्न मतों का वर्णन करके अपनी सम्मति दो। भारत और पारस के आर्यों में क्यों युद्ध होते रहे ? सब की सम्मतियाँ देकर अपने मत को प्रमाण देकर पुष्ट करो।

(२) पूर्व वैदिक काल के आर्य्य की रहन सहन, वेश-भूषा आचार विचार, राज्य व्यवस्था और धर्म का वर्णन करो।

(३) इस काल की स्त्री की स्थिति पर निबन्ध लिखो।

———

आठवाँ अध्याय

उत्तर वैदिक काल

वैदिक सभ्यता के भारतवर्ष में प्रसार होते ही भारतीय विद्वानों का मन गम्भीर विचार में लग गया। जब असुरों से सन्धि हो गई तथा दोनों में परस्पर विरोध जो केवल राजनैतिक था समाप्त हो गया तो एक प्रकार से शान्ति का सुख दोनों जातियां प्राप्त करने लगीं। इस दशा में दोनों का मन गम्भीर चिन्तन की ओर चला गया तो कोई आश्चर्य नहीं।

एक दिन इन्द्र (देव पति) और विरोचन (असुर नायक) दोनों प्रजापति (अपने पूर्वज ऋषि) के पास अपनी राज सभा से सम्मति लेकर अत्यन्त विनय के साथ शिष्य भाव से पहुंचे और पूछा कि हे भगवान्! हम आत्मा को जानना चाहते हैं। प्रजापति ने उन्हें तप और ब्रह्मचर्य्य का उपदेश दिया और कहा कि "तप के द्वारा आत्मा को पवित्र करके आत्मबोध के अधिकारी बनो।"

जब वे गुरु की आज्ञा के अनुसार तप करके फिर प्रजापति के पास आये तो उन्होंने एक शकोरे में जल भर कर उन्हें दिया और कहा कि "इसमें अपने को देखो"। उन्होंने देखा और कहा कि' हमने लोभ से युक्त अपने को पूर्णतया देख लिया। फिर प्रजापति ने उन्हें अपने को खूब सजाकर फिर

भारतवर्ष में निवास
करनेवाली जातियाँ
मंगोलियन
भारतीय आर्य्य
द्रविड़
मंगोलीय- द्रविड़
आर्य्य-द्रविड़
सीदियन् द्रविड़
तुर्क - ईरानी
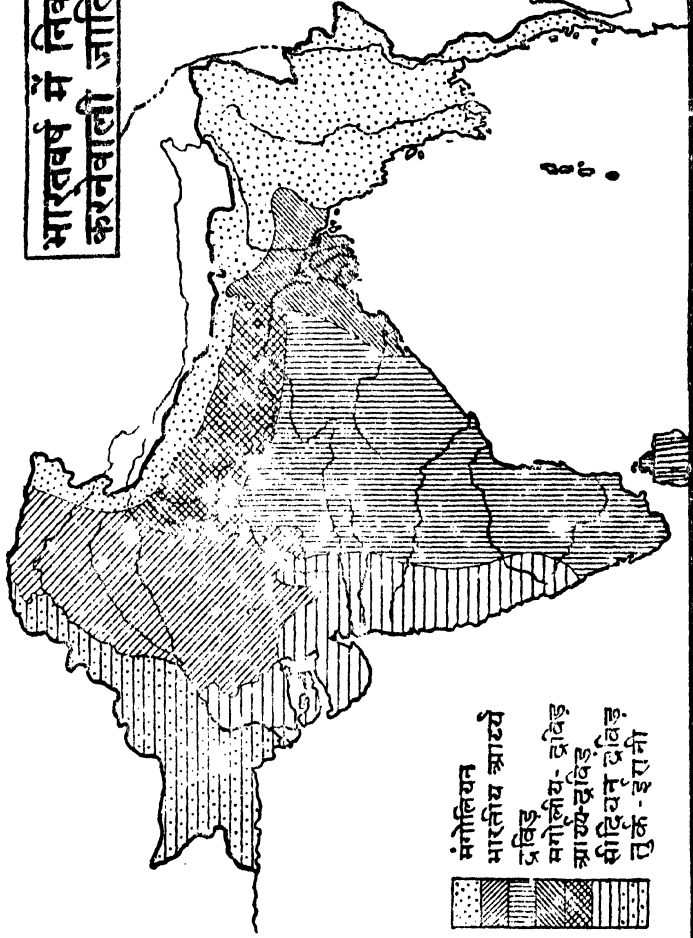
वर्ण-भेद का सूत्रपात इसी काल में हो गया था। ऋगवेद में पाञ्चजन्य शब्द ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और दस्यु (चाण्डाल) के लिये प्रयुक्त होता हुआ प्रतीत होता है। इसी का अधिक विकास उत्तर वैदिक काल में हुआ। यह कहना ठीक नहीं है कि शूद्र अनार्य थे क्योंकि पुरुष सूक्त में शूद्रों की गणना आर्य्यों के साथ की गई है तथा दस्यु इनसे अलग है जो अनार्य्य या चाण्डाल थे।

वर्ण-भेद

इनकी युद्ध शैली सम्मुख युद्ध की थी। छापा मार युद्ध की प्रवृत्ति तो इस वैज्ञानिक युग की ही देन है। अन्यथा अपने अस्त्र-शस्त्र, तलवार, फरसे, गदा, तीर, कमान और गोफन लेकर युद्ध भूमि में सम्मुख उपस्थित शत्रु सेना पर बढ़ बढ़ कर वार करना ही, भागे हुये पर शस्त्र प्रयोग न करना, शरणागत की रक्षा करना इनके युद्ध के नियम थे। युद्ध के लिये दुर्गों का उपयोग भी करते थे। युद्ध में बालक, वृद्ध, स्त्री, अशक्त और पशुओं को इन्होंने सर्वदा अवध कहा है।

युद्ध शैली

बहु विवाह की प्रथा इनमें नहीं थी परन्तु राजाओं और धनाढ्यों के लिये एक से अधिक विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। यज्ञ इनके गृहस्थ जीवन का मुख्य अङ्ग था उसमें ये सपत्नी भाग लेते थे। स्वयं यजमान होते थे तथा अन्य चार ब्राह्मणों से सहायता लेते थे। यज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थ का आवश्यक कर्म समझा जाता था।

गृहस्थ धर्म

जन उस संघ को कहते थे जिसका शासन प्रबन्ध एक केन्द्र

से होता था। समस्त जन अनेक विशों में बंटा रहता था और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे। समस्त जन का स्वामी राजा होता था। कहीं कहीं जन संघ द्वारा भी शासित होते थे परन्तु संघ शासन आर्य्य की प्रकृति के विरुद्ध है। वह वीर के आदर्श का पूजक है उसी के नेतृत्त्व में अधिक प्रसन्न रहता है

राज-नैतिक व्यवस्था

ये राजा लोग पैत्रिक परम्परा से होते आते थे परन्तु निरंकुश नहीं थे। इन पर शासन करने के लिये ब्राह्मण शक्ति थी। जो सभा और समितियां द्वारा राजा के स्वेच्छाचार को वश में रखती थी। ऐसी घटनाओं को भी वैदिक इतिहास में संकेत मिलता है जहां प्रजा की इच्छा के विरुद्ध चलने पर राजा को राज्य त्याग करना पड़ा। समिति का कार्य जाति के विकास के लिये विचार विमर्श करना तथा सभा का कार्य्य राजनैतिक विषयों पर विचार करना जान पड़ता है। यद्यपि वैदिक साहित्य से इन दोनों परिषदों का प्रयोजन स्पष्ट नहीं होता।

इनके अतिरिक्त राज्य के अन्य कर्मचारियों में से नापति, ग्रामणी और पुरोहित मुख्य थे। सेनापति का कार्य युद्ध सम्बन्धी ग्रामणी का कार्य्य आन्तरिक प्रबन्ध सम्बन्ध था पुरोहित राजाओं को तथा समस्त प्रजाओं को धार्मिक व्यवस्थायें देता था, राज-कार्य्य तथा न्याय कार्य्य में राजा को मंत्रणा देता था, युद्ध कार्य में पंचों द्वारा तथा उचित सम्मितियों द्वारा युद्ध चालन में सहायक होता था। एक प्रकार से पुरोहित प्रधान मन्त्री का कार्य्य करता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग के आरम्भिक

पड़ी थी इसके लिये, प्राण साधना और मधु विद्या आदि अनेक साधना पद्धतियों का प्रचार हो चला था।

आश्रम धर्मका विकास भी इस कालकी मुख्य वस्तु है। ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ के उपरान्त सन्यास लेकर संसार के बन्धनों से छुटकारा पा कर आत्म चिन्तन करना तथा समिधा (यज्ञा की लकड़ी) हाथ में लेकर बन में आये हुये शिष्यों को आत्मा का उपदेश देना इस काल में अपने पूर्व विकास को प्राप्त हो चुका था। जीवन में संस्कारों का प्रवेश बढ़ रहा था। और उपवर्ति (जनेऊ धारी) को अध्यात्म विद्या का उपदेश देना चल पड़ा था।

आश्रम धर्म

साहित्यमें भी विकास हो रहा था। गायन शास्त्र और उसके लिये स्वर रचना, वैदिक ऋचाओं के लिये पाठ विधि, तंत्र साहित्य, मारण मोहन आदि अभिचार तथा आख्यानों और उदाहरणों द्वारा अपने विषय को समझाने करने वाला साहित्य इस समय प्रारम्भ हो चुका था। सरल छन्दों की अपेक्षा कल्पना अलंकार का पूर्ण वर्णन इस काल के छन्दों में अधिक पाया जाता है। महाकाव्य काल में यहीं आकर पूर्णतया विकसित हो गई। ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् उस काल का मुख्य साहित्य है।

साहित्य

इस प्रकार सांस्कृतिक दृष्टि से ही तो उत्तर वैदिक काल पूर्व वैदिक काल से अलग था, राजनैतिक दृष्टि से विशेष अन्तर न था।

प्रश्न

(१) पूर्व वैदिक काल से उत्तर वैदिक काल के आर्यों में कितना अन्तर था ?

(२) वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्णन करो ?

(३) सूबेदारी प्रथा जैसी प्रथा की प्राचीनता पर सकारण विचार करो ?

गौतम बुद्ध

रामायण और महाभारत के
अनुसार
भारतवर्ष
किरात
कोशल
काशी
पांशुराष्ट्र
मत्स्य
मथुरा
कुरुक्षेत्र
विंध्य पर्वत
नर्मदा नदी
माहिष्मती
विदर्भ
करूष
कुन्तल
उत्कल
दक्षिण कोशल
कुंतिराष्ट्र
कृष्णा नदी
द्वारका
Girish
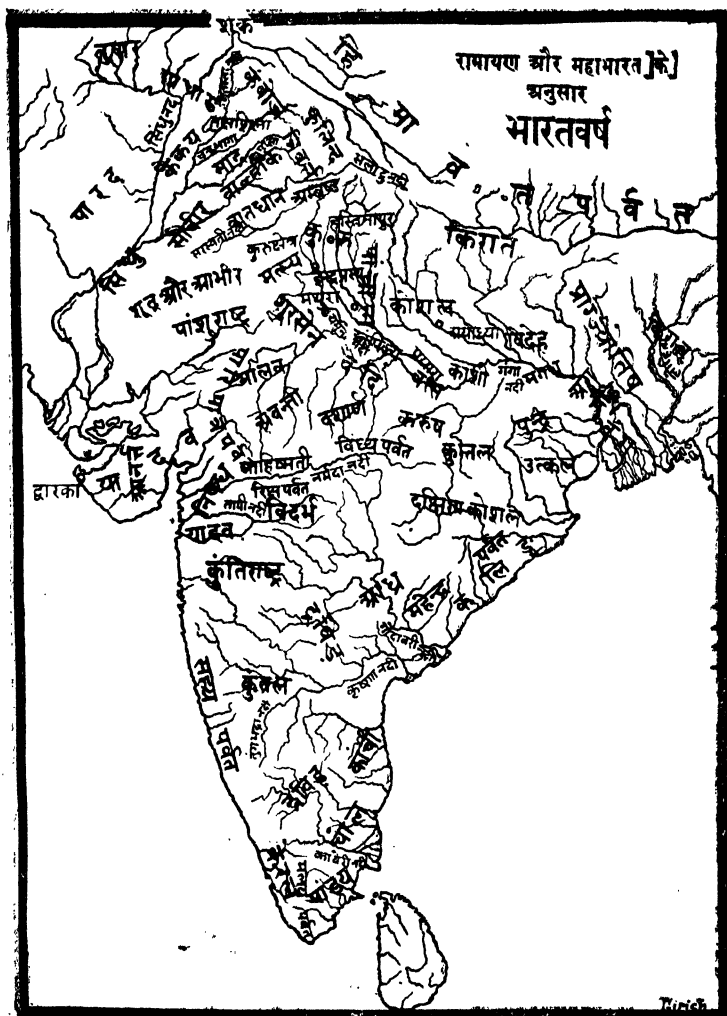
नौवाँ अध्याय

महाकाव्य काल

भारतवर्ष का मान चित्र देखिये। और इस में प्रदर्शित कोशल, विदेह केकय विन्ध्य पर्वत, सह्य पर्वत, तथा द्रविड़ देश पर ध्यान दीजिये। हमारा प्राचीन इतिहास इन्हीं स्थानों से जुड़ा हुआ है। कोशल के महाराज दशरथ का विवाह केकय देश की राजकुमारी से तथा दशरथ पुत्र श्रीरामचन्द्र का विवाह विदेह राज कन्या से होता है। इस प्रकार सिन्धु तट से गण्डकी तक एक सूत्रता का हमें पता चलता है। फिर अगस्त्य की जिस दक्षिण यात्रा का पहले वर्णन हो चुका है उस पर विचार कीजिये तथा सह्य पर्वत पर उनके आश्रम की कल्पना करके उसके उत्तर समुद्र तट निवासी असुरों तथा दक्षिण वासी राक्षसों की कल्पना करके श्रीराम की वन यात्रा से मिलाइये। आप देखेंगे कि समस्त भारतवर्ष को एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न स्पष्ट दिखाई देगा। इस सार्वभौमिक एकता का सब से पहला प्रयत्न हमें रामायण काल में मिलता दिखाई देगा।

यह सच है कि भारतीय आर्यों ने मुसलमान और ईसाई लोगों की भांति शास्त्र बल से अपनी संस्कृति का प्रचार कभी नहीं किया। परन्तु इस राजनैतिक एकता ने ही उनकी संस्कृति की छाप उत्तर हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक इतनी गहरी लगादी थी कि जिसे अनेक शक, हूण, कुशान, यूची, तुर्क, मुगल

और अन्त में गौराङ्ग शक्ति ने मिलकर अपने लोहे की रगड़ से मिटा देने का लगातार २५०० वर्ष तक यत्न किया परन्तु इसे केवल मैला न कर सके, मिटा न सके। आज हम स्वतंत्र हैं, हमारा काम केवल इतना है कि उस पर इस रगड़ के कारण उनके लोहे से छुटे हुये मैल को धोकर स्वच्छ कर दें। हमारी संस्कृति फिर जगमगा उठेगी जिसको एक बार फिर उज्ज्वल होते हुये देखकर फिर संसार हमारे सामने, हमारे अग्र जन्मा के सामने अपनी संस्कृति की शिक्षा के लिये झुक जायगा, उस संस्कृति की शिक्षा प्राप्त करेगा जिससे दण्डक जैसा वन भी खिल उठेगा, हरा हो जायगा, उसका विनाश न होकर सुख से वह परिपूर्ण हो उठेगा। बापू की प्रभाती गाई जा चुकी है अब देर केवल हमारे उठने की है तथा यत्न पूर्वक लग जाने की है।

भारतीय संस्कृति की इस अमर कहानी में हमें जो कुछ मिलना है उसका काल निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। यह निश्चित है कि उत्तर वैदिक काल में इस संस्कृति का जन्म हो चुका था अतएव आधुनिक विद्वानों के मतानुसार इसे लगभग ईसा से १५०० वर्ष पूर्व तक ले जाया जा सकता है तथा अधिक से अधिक ईसा की छठी शताब्दी पूर्व तक हम इसे ला सकते हैं। यद्यपि इस सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मत-भेद है परन्तु अधिकतया विद्वान इसी को ठीक समझते हैं। अतएव हम भी इसी काल को महाकाव्य काल की श्रेणी में रक्खेंगे।

समय

एक बात और समझ लेने की है। राज पुरोहितों तथा गुरुओं की परम्परा में आने वाले उनके पुत्र अथवा शिष्य अपने मूल पुरुष के ही नाम से पुकारे जाते थे। अतएव एक

ही नाम को विभिन्न कालों में देख कर उन्हें एक ही पुरुष को मानने की भूल न करनी चाहिये। भारतवर्ष के इतिहास लिखने वालों की इसी भूल ने ऋग्वेद को १५०० ईसा पूर्व तक तथा अनेक राजाओं को आगे घसीटने का यत्न किया है। अतएव राम और दलीप दोनों के काल के वशिष्ठ अथवा विश्वामित्र एक ही व्यक्ति न मानने चाहियें वरन् उनके वंशधर अथवा शिष्य परम्परा के व्यक्ति मानने चाहियें।

अब हम इस काल के मुख्य राजवंशों का वर्णन करेंगे। ऊपर कोशल विदेह वत्स और केकय राजवंशों का वर्णन हम कर चुके हैं। इनके राज्य वर्तमान अवध, मिथिला, बुन्देल खण्ड और सिन्धुसागर दोआबों में थे। इनके अतिरिक्त, काम्पिल्य (कन्नौज के पास) कुरु पूर्वी पंजाब और उत्तर गंगा यमुना के दोआबे में शूरसेन, मथुरा के निकट हैहय, मागध काशी तथा पटना के समीप, कुन्तिभोज उत्तरी महाराष्ट्र प्रदेश, अंग वङ्ग बङ्गाल में, उत्कल कलिङ्ग, उड़ीसा और उत्तरी सरकार प्रदेशों में, अवन्ती मालवा में माहिष्मती खानदेश के पास, प्राग्ज्योतिष आसाम में, सौराष्ट्र में यादव और आनर्त पश्चिमी राजपूताना और काठियावाड़ तक आर्य्य राष्ट्र फैले हुए थे।

राजवंश

दक्षिण में द्रविड राज्य थे जो सम्भवतः पांड्य, चोल और केरल के नाम से प्रख्यात थे। निश्चित नहीं कहा जा सकता कि अगस्त्य के दक्षिण गमन के साथ ही आर्य भी दक्षिण की ओर नहीं गये और उन्होंने आन्ध्र प्रदेश को मिला कर इन राज्यों में अपना प्रभुत्व नहीं जमा लिया।

उत्तर वैदिक काल में वर्णित राज्य प्रबन्ध ही इस समय की राज्य व्यवस्था थी परन्तु राजा के मुख्य मन्त्रियों में एक कञ्चुकी का नाम और बढ़ गया था। यद्यपि कञ्चुकी मुख्य मन्त्री न था, प्रधान मन्त्री का पद इस समय भी पुरोहित के ही हाथ में था परन्तु कञ्चुकी राजा का विश्वासी और सखा होता था। युद्ध में, रनिवास में तथा सभा में वह उसके साथ रहता था राज्य का अधिकार पूर्णतया पैत्रिक हो गया था। राजा अपने राज्य त्याग के समय अपनी सन्तान में राज्य का बटवारा कर देता था जिससे अनेक छोटे-छोटे राज्य बनने लगे थे और केन्द्रीय शक्ति कम होने लगी थी। सूबेदारी की प्रथा एक प्रकार से समाप्त हो गई थी। छोटे-छोटे राज्य सीधे केन्द्र से शासित होते थे और प्रजा वलि के रूप में राज कर देती थी यह समस्त आय का ⅙ भाग होता था। अपराधों और विवाद ग्रस्त विषयों का निर्णय करने के अधिकरण (Judges) नियत थे जो अमानत, भूमि के बटवारे आदि के अभियोग सुनते थे तथा गम्भीर अपराधों पर अपराध के अनुसार प्राण दण्ड तक देते थे। प्राण दण्ड के अभियोग राजा स्वयं सुनता था।

राज्य प्रबन्ध

राजा की शक्ति बढ़ चली परन्तु महाकाव्य काल के प्रारम्भिक के युग में वह सपूर्णतया स्वतंत्र न था। उसे सभा या समिति का निर्णय मान्य करना पड़ता था परन्तु इस काल के अन्तिम भाग में मन्त्रियों तथा सभाओं का अधिकार भी राजा के हाथ में चला गया था। राजा पूर्णतया स्वच्छेचारी हो गया था।

राजा की शक्ति

अतएव विद्वानों और ब्राह्मणों ने उसका या तो त्याग कर दिया था या उसके वेतन भोगी हो कर उसके उचित अनुचित सभी कार्य्यों में उन्हें योग देते थे। भले ही राजा का कार्य्य उनकी सम्मति के सम्पूर्ण प्रतिकूल ही क्यों न हो।

राजा स्वच्छन्द होते हुये भी कभी-कभी अनाचार करके भी प्रजा के सुख के लिये दोनों काव्य कालों में यत्न करते थे। वर्ष में एक बार प्रजाकी स्थिति देखने के लिए उन्हें राज्य भरका दौरा करना पड़ता था। यह कार्य सम्भवतःसरद ऋतु में आरम्भ होता था। अपने इस दौरे में उसे सड़कों, कुओं, कुल्याओं, नहरों, का सुधार करना होता था। इस प्रकार के सभी अन्य कार्य्य उसे करने पड़ते थे।

प्रजा का न्याय

प्रजा के न्याय को लिये उसके पास राजधानी में तथा दौरों के समय उसके पड़ाव तक पहुंचने की सुविधायें थीं। वे अपनी प्रार्थनायें लिख कर तथा मौखिक दोनों प्रकार से राजा के पास पहुंचाया करते थे।

परस्पर राजाओं में दूत

परस्पर राजाओं में दूत सम्बन्ध भी था। ये सन्धि विग्रहिक (सन्धि और युद्ध दोनों कालों में काम करने वाले) होते थे। दूतों के द्वारा निश्चित शर्तें दोनों राजाओं को मान्य होती थीं। परन्तु स्वेच्छा चारी राजा होने के कारण बहुधा दूतों के प्रयत्न निष्फल होते थे

असुरों के जो कुल भारतवर्ष में थे उनमें अपने चरित्र से पतित होने वाले आर्य्य भी सम्मिलित होते जाते थे। उनका वंश धीरे धीरे भौतिक उन्नति में अवश्य आगे बढ़ रहा था।

इन असुरों का शारीरिक विकास पूर्णता को पहुँच चुका था। उनमें धर्मपरायण भी थे परन्तु आर्यों के विरोधी होने के कारण वे अधिकतर दुष्ट ही कहे गये हैं।

सामाजिक स्थिति-वर्ण व्यवस्था दृढ़ हो चुकी थी। जन्म से जाति का भाव दृढ़ हो चुका था तथा क्षत्रिय से "ब्राह्मण" बनना कठिन बन गया था। महाभारत काल में

सामाजिक

तो यह लगभग असम्भव था परन्तु रामायण काल में यह सम्भव था। इतना होते हुये भी शूद्रों की स्थिति निन्दनीय नहीं थी। राजाओं और राज-कुमारों द्वारा शूद्रों का सत्कार होता था और वे उनकी सेवायें और सत्कार ग्रहण करते थे। आचार विचार के लिये नियम बन गये थे उन पर चलने वालों का सम्मान होता था। जो लोग उन आचारों का पालन नहीं करते थे वे अपने वर्ण और जाति से पतित हो जाते थे। ब्राह्मण धर्म जिसमें ब्राह्मणों का महत्त्व और सम्मान विशेष है जाग रहा था। क्योंकि ब्राह्मण धीरे धीरे लौकिक जीवन से दूर हट रहा था और पारलौकिक जीवन की ओर बढ़ रहा था। अतएव अब दान लेने के लिये वह सहज में तैयार न होता था। त्याग उनके जीवन का अंग बन गया था।

क्षत्रिय जाति की शक्ति दिनों दिन बढ़ रही थी अब सम्भवत: क्षत्रिय ही देश का नेता बन रहे थे। बाल्मीकि ने राम को स्वयं भगवान के रूप में उपस्थित

क्षत्रिय

किया है जिसका अर्थ केवल यह है कि जो समर्थ क्षत्रिय थे देश के वही नेता थे।

वैश्यों को व्यापार और कृषि से अच्छी आय हो जाती

थी उससे देश की सम्पदा बढ़ रही थी। व्यापार में मुद्रा और बाटों का चलन हो चुका था। दान और राज कर में वस्तुओं के अतिरिक्त मुद्रा का व्यवहार भी होने लगा था। कौड़ी सिक्के के रूप में प्रचलित थी।

वैश्य

कला का अधिकांश कार्य शूद्रों द्वारा तथा निकृष्ट कला का काम चाण्डालों द्वारा होता था। चाण्डाल का कार्य फांसी देने या वध करने में भी था।

शूद्र

साधारण सामाजिक जीवन यज्ञ योगादि के रूप में विकसित हो रहा था। नित्य कर्म और पञ्च यज्ञ जीवन के लिये आवश्यक बन चुके थे। दो प्रकार से लोग अपने नित्य कर्म करते थे। एक वे जो अग्नि को सदैव रख कर उसी में यज्ञ आदि का कार्य करते थे। दूसरे जो अग्नि के बिना भी अपने पूजन के कार्य करते थे।

साधारण सामाजिक जीवन

शिक्षा का ढंग प्राचीन उपनिषद् काल की गुरुकुल प्रणाली ही थी परन्तु शूद्रों को वेदों की शिक्षा का अधिकार नहीं सा रहा था।

शिक्षा का ढंग

राजाओं का जीवन ऐश्वर्य और सांसारिक सम्पत्ति की ओर झुक चला था। सुन्दर सिले हुये वस्त्र जिन का पिछला दामन पृथ्वी पर लटकता रहता था तथा अगला पैर के घुटनों तक पहना जाता था। नीचे कमर में लपेटे जाने की अपेक्षा सीने तक आने वाले चूड़ीदार पाजामें का प्रचार बढ़ चला था।

राजाओं का जीवन

परन्तु कमरे में पटका तथा चादर का प्रचार भी था। टोपी के स्थान पर पगड़ी का प्रयोग ही होता था।

शैली और अस्त्र शस्त्र युद्ध का ढंग वही प्राचीन आर्यों का था परन्तु मायायुद्ध छिपे रह कर शत्रु पर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करना असुरों के द्वारा होने लगा था।

शैली और अस्त्र शस्त्र

परन्तु आर्य इसे उचित नहीं समझते थे। यद्यपि उन्होंने इनमें बचाव के साधन निकाल लिये थे। अस्त्र शस्त्रों में भी विज्ञान की सहायता ली गई थी। तलवार और धनुष के स्थान पर ऐसे यंत्रों का आविष्कार किया गया था जिनसे एक ही बार में सैंकड़ों और सहस्त्रों वीरों को मारा जा सके। सम्भव है कि वे अस्त्र बम जैसे ही हों। परन्तु अग्नि बाण से रक्षा करने के भी साधन उन्हें ज्ञात थे। रथ, घोड़े, हाथी और पैदल उनकी सेना के अंग थे।

महाकाव्य काल इस दृष्टि से अपने पिछले सभी कालों से श्रेष्ठ था तथा आगे आने वाले काल में उतनी उन्नति फिर भारतवर्ष के आर्य न कर सके।

कलाओं का विकास

सुई का काम कढ़ाई और बुनाई दोनों रूपों में बहुत उन्नत हो चुका था। साथ ही कलाओं के विकास के साथ ललित कलायें भी आगे बढ़ रही थीं। भय का बनाया हुआ राजभवन अपनी विचित्रता से दुर्योधन को धोखा देकर ही कौरव पाण्डव युद्ध का कारण बना जिसका फल यह हुआ कि भारतवर्ष फिर संभल न सका। क्या काव्य, क्या संगीत, क्या नृत्य, क्या मूर्ति कला सभी में कुशलता से कलाकार अपना हाथ दिखाते थे।

महाकाव्य काल के प्रारम्भ में स्त्री अपने पति की मंत्री, सखी और कला कुशल सङ्गिनी थी। युद्धों में उसके साथ जाती थी। इस समय उसका रूप ही नहीं वरन् स्त्रियों की स्थिति अपने गुणों से भी वह पति का प्रेम प्राप्त किये हुये थी। सभाओं में वह वाद विवाद में भी भाग लेती थी। परन्तु अन्तिम काल में स्त्रो पहले की अपेक्षा अधिक घर की वस्तु बन गई थी। उसके रूप में अधिक बल था, गुणों में कम। उसके आंसू नर संहार करा सकते थे परन्तु उसके उपदेश उन्हें रोकने में असमर्थ थे। द्रौपदी के खुले बालों ने महाभारत तो करा दिया परन्तु गांधारी के सब उपदेश बाल की बूंद बन कर दुर्योधन को गीला न कर सके। बहु विवाह की प्रथा चालू हो गई थी। परन्तु विशेष स्थितियों में स्त्री भी अनेक पतियों की पत्नी बन कर आदर पा सकती थी।

विज्ञान

युद्ध की कलाओं के साथ साथ विज्ञान भी अपनी उन्नति की सीमा पर पहुंच चुका था। यज्ञ वेदियां बनाते बनाते उसे रेखा गणित का पूर्ण ज्ञान हो चुका था। पैथा गोरस की ४७ वीं साध्य का इन ज्यामिति-कारों को ज्ञान था। इसी प्रकार अपने संस्कारों और यज्ञों के मुहूर्त्त निकालने के लिये उसे खगोल विद्या में भी प्रवेश हो चुका था। गणित में π पाइ और + < लम्बक और अनन्त Infinity का ज्ञान उसे हो चुका था। सूर्य्य, चन्द्र ग्रहण की प्रक्रिया में वह इतना सच्चा था कि वर्षों पहले उसके समय निकाल कर रख सकता था। बीज गणित भी विकसित हो चुका था।

भूगोल के सम्बन्ध में उसकी जो धारणा उसकी सच्चाई का निश्चित परिचय तब तक नहीं मिल सकता जब तक पुरातत्त्व वेत्ता उस काल के भूगोल का पूरा पता न लगा लें। उसके विचार से पृथ्वी सप्तद्वीपा थी अर्थात् उसमें सात महा द्वीप तथा चार महा सागर थे। उसकी समय गणना का विचित्र ढंग से लेखा रक्खा जाता था। इस प्रकार के गणित से लगभग सभी प्रकार वह परिचित हो चुका था।

भूगोल के सम्बन्ध

इसी काल में वेदाङ्गों और स्मृतियों का विकास हुआ। समस्त ज्ञान को शृङ्खला बद्ध करके क्रम से उसे रखने और सूत्र रूप में उसे समझाने की प्रवृत्ति चल पड़ी थी। शिक्षा कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द और ज्योतिष सभी ओर वह विचार करने लगा था। इनके अतिरिक्त धार्मिक जीवन को दर्शन (Philosophy) के साथ जोड़ देने का कार्य्य इस काल की विशेषता है। प्रत्येक आचार में दर्शन का दृष्टिकोण उपस्थित करके उसे जीवन को ऊँचा उठाने के लिये करने की प्रवृत्ति इसी काल में आरम्भ होती पाई जाती है। यद्यपि सूत्रकाल महाकाव्य काल के अन्त से प्रारम्भ होता दिखाई देता है परन्तु है वह इसी के साथ जुड़ा हुआ इसका अभिन्न अङ्ग ही।

इसी काल में वेदाङ्ग

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकाव्य काल प्रागैतिहासिक काल का स्वर्ण युग था। इस काल में भारतीय आर्य्यों का विकास अपनी सब से ऊँची चोटी पर पहुंच चुका था।

रामायण और महाभारत काल का तुलनात्मक अध्ययन

रामायण और महाभारत से हम इतने अधिक परिचित हैं कि उनका वर्णन करना पिसे का पीसना होगा। अतएव इस प्रसंग में हम केवल दो बातों पर विचार करेंगे। वे ये हैं—

पहली वे बातें हैं जिनके द्वारा भारतवर्ष के आर्य्यों को संसार के कर्म करने की प्रेरणा मिली; दूसरी वे बातें जिनके कारण भारतवर्ष की उन्नति का भवन एक बारगी भूमि में मिल कर न जाने कितने काल के लिये लुप्त हो गया।

रामायण काल मानव जीवन का आदर्श काल था। इसमें बाल्यावस्था से लेकर बुढ़ापे तक जीवन नियम के भीतर चलता था। क्या राजा क्या सामान्य जन सब को अपने वर्णाश्रम धर्म का विधिपूर्वक पालन करना होता था। परन्तु यदि कोई अपने वर्ण धर्म का त्याग करके किसी अन्य वर्ण का आचार सच्ची मन से बिना किसी को हानि पहुंचाये धर्म की रक्षा करते हुये करता था तो उसे इसकी स्वतंत्रता थी। राजा का काम केवल इतना था कि वह कोई ऐसा कार्य्य न होने दे जिससे प्रजा को कष्ट हो। प्रजा के सुख के लिये राजा का सुख बलि-दान किया जा सकता था।

रामायण काल का आर्य्य अधिक सरल और भोला था। न तो उसके युद्धों में छल कपट था, न राजनैतिक चालें ही उसे आती थीं। वह ब्राह्मणों के, ऋषियों के सामने झुकना जानता था और उनके उपदेश का पालन करके अपना जीवन ऊंचा उठाता था। प्रकृति के भी वह अधिक निकट था। समस्त सम्पदायें होते हुये भी उसका धार्मिक जीवन पवित्र और दोषों से रहित था।

शराब और जुआ अभी उसके संगी नहीं बने थे। इसी लिये कदाचित वह इतना पवित्र जीवन बना सका था। भाई भाई में स्नेह, पिता पुत्र का प्रेम, स्वामी सेवक की उदार भावना और मर्यादा पूर्वक जीवन व्यतीत करना उसके स्वभाव के अङ्ग थे।

शिक्षा के लिये गुरुकुल आवश्यक थे। अतएव चाहे राजकुमार हो, चाहे सामान्य जन। दोनों को गुरुकुल के कठोर जीवन का ज्ञान था। अन्तर्जातीय विवाह भी स्वीकृत होते थे परन्तु कम। स्त्री को स्वयम्वर का अधिकार था परन्तु सम्प्रदान। कन्या दान की प्रथा अधिक प्रचलित हो चुकी थी। स्त्री के लिये पतिव्रत धर्म ही सब कुछ था।

युद्धों में संहत संग्राम (गुत्थम गुत्था) की लड़ाई का चलन था। माया युद्ध को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था।

परन्तु महाभारत काल में इन सबसे भारतवर्ष का आर्य पीछे हट चुका था। उसके जीवन आदर्श सुख भोग हो चुका था। वह वृद्धावस्था में सन्यास लेने की अपेक्षा गृहस्थ में अटका रहना दिखाई देता है। अन्य वर्ण का व्यक्ति यदि अन्य वर्ण का आचार ग्रहण करना चाहे तो या तो उसकी निन्दा होती थी या उसका दमन किया जाता था। यहाँ तक उच्च कलाओं की शिक्षा भी किसी किसी को नहीं दी जाती थी। राजा का सुख प्रधान कार्य बन गया था। परस्पर राजाओं में विरोध होता था परन्तु प्रजा की पशु धन बलपूर्वक छीन लिया जाना एक साधारण बात थी।

महाभारत काल का आर्य्य भोला-भाला धार्मिक वीर न था। वह राज नीति के दाँव पेच लड़ाना जानता था। अतएव

अपनी शक्ति और धन के अभिमान में ब्राह्मणों को अपने सेवक की भांति रखना चाहता था जिनसे शिक्षा ले सके और समय पड़ने पर युद्ध आदि में कार्य्य भी। अब ब्राह्मण या तो क्षत्रियों से अलग बिल्कुल वनवासी था या क्षत्रियों के घर पर उन्हें शिक्षा देता था। उसकी सम्मति राज कार्य में मान्य नहीं थी वरन् राजा की सम्मति उसे मान्य करनी पड़ती थी।

इस राजन्य कुल में युद्ध और जुवा एक साधारण वस्तु थी। शराब उनके लिये ऐसा ही पेय पदार्थ था जैसा जल। शराब पीकर परस्पर युद्ध करना यादव वंश के विनाश का कारण हुआ। अब वृद्ध पिता युवा पुत्र की आज्ञा के अनुसार जीवन बिताने वाला, भाई भाई का हक छीन लेने वाला था। उदार भावना से दूसरे के सुख में सुखी होना, दूसरे की बड़ाई प्रसन्न होना आर्य्य नहीं चाहता था। दुर्योधन की समस्त दुष्टता केवल पाण्डवों का उत्कर्ष न सहने के कारण थी। शिशुपाल केवल कृष्ण की कीर्ति न सह सकने के कारण मारा गया।

गुरुकुल भी शेष थे परन्तु उन गुरुकुल में विरले ही राजकुमार शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरुकुल अब केवल ब्राह्मणों के लिये थे अथवा साधारण जनता के छात्रों के लिये। गुरु भी राजा द्वारा दी गई वृत्ति से जीविका चलाते थे। उन पर उनका अपना अधिकार कम था। अन्तर्जातीय विवाह की प्रथा लगभग समाप्त हो चुकी थी। कन्या सम्प्रदान और स्वयंवर के अतिरिक्त बल पूर्वक कन्या हरण की प्रथा भी चल पड़ी थी। इसमें सज्जन असज्जन का भेद न था वरन् यह कार्य क्षत्रिय के लिये उचित और बड़ाई का समझा जाता था।

युद्ध साधनों के विकास के साथ युद्ध शैली में भी परिवर्तन हो गया था। सहत संग्राम की अपेक्षा व्यूह रचना (मोर्चाबन्दी) पर विशेष ध्यान दिया जाता था। यद्यपि अब भी युद्धों में यथा सम्भव सामान्य प्रजा को कष्ट नहीं पहुंचाया जाता था परन्तु इन युद्धों में शत्रु पक्ष को हराने के लिये उचित अनुचित सभी साधनों का उपयोग हो चला था।

रामायण काल की आचार और दर्शन की एकता अब टूट चुकी थी। अब व्यक्तिगत आचार या दर्शन का प्रभाव लग भग नहीं सा था। धन-धान्य से पूर्ण, ऐश्वर्य के नशे में चूर जाति की आंखों पर यदि परदा पड़ जाय तो उसे असंगत न कहना चाहिये। परन्तु बन में रहने वाला ब्राह्मण दर्शनों के भी गम्भीर तत्वों के विवेचन में इतना आगे बढ़ गया था कि उसके शिष्य कृष्ण ने जो उपदेश दिया वह आज संसार की आंखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है। दुःख है कि भारत के वे ही आर्य्य उस उपदेश को आगे चल कर अपने जीवन में उतार न सके।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि रामायण काल, धर्म और धन के सन्तुलन के पूर्ण उपयोग का काल था परन्तु महा-भारत काल में इसमें विषमता उत्पन्न हो गई थी। धर्म अलग हो गया था, धन अलग। दोनों में सम्बन्ध न था। एक ओर ऐश्वर्य्य था तो दूसरी ओर त्याग। ऐश्वर्य्य त्याग को अपने साथ नहीं लेना चाहता था। त्याग ऐश्वर्य्य की उपेक्षा करके अपनी पवित्रता बनाये रखना चाहता था। फल यह हुआ कि महाभारत की आग में जल कर दोनों स्वाहा हो गये।

प्रश्न

(१) रामायण काल भारतवर्ष के नीचे से ऊंचे चढ़ने का काल था, महाभारत काल ऊंचे से नीचे उतरने का। प्रमाण देकर सिद्ध करो।

(२) महाकाव्य काल के दोनों भागों की संस्कृति, धर्म, राज्य व्यवस्था, स्त्री के अधिकार का अन्तर प्रमाण देकर समझाओ।

(३) तुम्हारी दृष्टि में महाभारत होना क्या आवश्यक था? यदि न हुआ होता तो भारतवर्ष के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ता?

दसवाँ अध्याय

जाति भेद

महा काव्य काल में जिस जाति भेद का वर्णन किया गया है उसने धीरे धीरे अपने गोड़ पसारने आरम्भ किये और धीरे धीरे भारतवर्ष के सारे कोने नाप लिये। अब आप पर्वतों की गहरी घाटियों में पहुंचये या बनों में, मैदान में हो या समुद्र तट पर एक न एक जाति का व्यक्ति आपके सामने होगा। आप उससे धर्म नहीं पूछ सकते परन्तु जाति पूछ सकते हैं। उससे जाति के अपने गुणों को पूछना चाहिये तो भले ही वह चुप हो जाये परन्तु वे जाति का कहलाना वह अपने अपमान की वस्तु समझता है। इस अध्याय में इस सर्व ग्रासी जाति भेद के गुण दोषों पर थोड़ा विचार कर लेना अनुचित न होगा।

यहां जातियों के विकास पर फिर सिंहावलोकन कर लेना उचित जान पड़ता है। पूर्व वैदिक काल में पांच वर्णों तथा

उत्पत्ति

पेशों का ही वर्णन मिलता है। उत्तर वैदिक काल में जन्म से वर्ण निश्चय की ओर झुकाव दिखाई पड़ता है। परन्तु रामायण काल में जन्म से ही वर्ण स्थिर हो गये थे एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण में जा तो सकता था परन्तु महा कठिन तप के द्वारा ही महाभारत काल में यह असम्भव हो गया। इसी प्रकार जातियों में भी जन्म से ही निश्चय होने लगा था।

पहले गुरुकुल में रहने वाले छात्र जिस पेशे में रुचि रखते थे उसे सीख कर उस जाति में सम्मिलित हो जाते थे। पीछे प्रत्येक पेशे के लड़के को अपने पैत्रिक व्यवसाय की ही शिक्षा कुछ घर पर कुछ गुरुकुलों में मिलने लगी। ब्राह्मण गुरु Designer का कार्य्य करते थे। शिष्य उन की प्रायोगिक शिक्षा गुरुकुलों में प्राप्त करके जीवन में उनका उपयोग करने लगे। इस प्रकार प्रत्येक वर्ण से निकल कर व्यक्ति पेशों में लगने लगे थे। परन्तु इस के उपरान्त जब शक्ति महत्त्व बढ़ा तब जिन के हाथ में शक्ति थी वे आदर के अधिकारी बने जिन के पास शक्ति नहीं थी वे पीछे पड़ते गये। रामायण काल का ब्राह्मण ही जब महाभारत काल में राजाओं का उपजीवी बन गया तब पेशे वाले यदि अधिक निम्न स्तर पर उतरगये तो क्या आश्चर्य है।

इस प्रकार पेशों का विकास हुआ और पेशे में लगे व्यक्ति समाज में [illegible] दृष्टि से देखे जाने लगे। परन्तु इससे भी उतना अहित नहीं हुआ था। पेशे में लगा हुआ प्राणी आपनी आर्थिक तथा धार्मिक मर्य्यादा में ही पीछे हुआ था। सामाजिक मर्य्यादा में उसे सम्मान का स्थान सदैव प्राप्त रहा यह सामाजिक हीनता की भावना उत्पन्न कर देना तो हमारे गौराङ्ग महाप्रभुओं की देन है। अब से पचास चालीस वर्ष पूर्व ग्राम्य जीवन में चमार और ब्राह्मण बालक के सामाजिक स्तर में कोई अन्तर न था। हम सब एक साथ खेलते थे और गले मिले भाई जान पड़ते थे। चमार, धोबी और धानुक आदि हमारे चाचा ताऊ काका आदि होते थे। यदि हमने अपने अज्ञानसे उनका नाम ले दियातो डाट पड़ती थी। परन्तु आज क्या है? हमारे वे सब स्नेह के सामा-

जिक सम्बन्ध पानी के बुलबुले के समान बुझ गये। कारण पर विचार करते दुख होता है और अपनी बीती हुई असहाय अवस्था पर ग्लानि होती है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह अभिशाप हमें लग गया केवल इसलिये कि हमने अंग्रेजों की दासता की जंजीर सोने का हार समझ कर गले में पहन ली और अपने धर्म के साथ अपनी संस्कृति में भी उनसे हार मान ली।

आज इस जाति भेद के फलस्वरूप जो दुष्परिणाम बताये जाते हैं उन पर विचार कर लेना भी आवश्यक जान पड़ता है।

इस का पहला कुपरिणाम राष्ट्रीय राजनैतिक एकता का अभाव बताया जाता है। पहले तो राष्ट्रीय राजनैतिक एकता ही भारतवर्ष के लिये नवीन वस्तु है, पश्चिम की देन है। दूसरे आज जिसे राष्ट्रीय राजनैतिक एकता कहा जाता है उसका अर्थ संगठित होकर समीपवर्त्ती स्वतंत्र राज्यों को पराजित करके लूटना ही है। यह ठीक है कि जाति भेद से राष्ट्रीय एकता में बाधा पड़ सकती है परन्तु संस्कृतिक एकता का जो फल हमें प्राप्त हुआ है वह इतना उत्तम है कि उसी के बल पर आज तक भारतीय संस्कृति अपना अस्तित्त्व बनाये है।

समाज का टुकड़ों टुकड़ों में बट जाना इसका दूसरा दोष है। ठीक है समाज आज असंख्य टुकड़ों में बटा हुआ है परन्तु इससे हानि की सम्भावना तब तक नहीं है जब तक एक समाज पक्षपात के कारण दूसरे की उन्नति में बाधक न हो। सांस्कृतिक एकता रखते हुये समाज के टुकड़ों में बंट जाने से जो हानि होती है वह थोड़ी ही होती।

इसका तीसरा दोष यह बताया जाता है कि इससे व्यवसाय पैत्रिक बन गये। इसमें दोष का स्थान यही है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता उसकी अपनी रुचि के लिये स्थान नहीं रहा। मनोविज्ञान की एक दृष्टि से यह आक्षेप ठिक है परन्तु एक दूसरी दृष्टि से भी इस पर विचार किया जा सकता है जिस पर हम जाति के गुणों का वर्णन करते हुये करेंगे। जाति गत पक्षपात और विद्वेषों के कारण समाज के टुकड़े टुकड़े हो जानाभी एक दोष कहा जाता है। यह दोष भी इससे पहली श्रेणी का ही है अतएव इस पर भी आगे विचार किया जायगा।

अब हम जाति भेद की अच्छाइयों पर दृष्टिगात करेंगे।

भारतीय संस्कृति को जीवित रखने का श्रेय इस जाति भेद को ही है। इसके लिये उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। "भंङ्गी भी मुसलमान होने को तैयार नहीं हुऐ"। वाली बीरबल की कहानी चाहे अक्षरश: सत्य न भी हो किन्तु भाव में सत्य अवश्य ही है। किसी हिन्दु ने स्वेच्छा से अन्य धर्म कदाचित ही स्वीकार किया होगा।

समाज में सदाचार बनाये रखने का ६० प्रतिशत श्रेय जाति व्यवस्था को ही है। जिन जातियों में आज भी यह जीवित है जिन्हें आज भी अपने हुक्के पानी के बन्द हो जाने का भय है वे आज भी अपने सदाचार को बनाये रखने में समर्थ हैं।

पंचायतों द्वारा सामाजिक अपराधों में दण्ड देकर जाति में बनाये रखने की प्रथा न तो जाति जीवन की जितनी रक्षा की है अनेक कठिनाइयों से धिरे मध्यकालीन हिन्दू के जाति जीवन की रक्षा किसी अन्य उपाय से होना सम्भव न था

अपने जाति गत व्यवसाय को सीखने में जो सुविधा जाति के व्यक्ति को है अच्छी से अच्छी शिक्षा देकर भी अन्य जाति के व्यक्ति को वह सुविधा प्राप्त नहीं हो सकती। हरदोई ज़िले के गोपामऊ कस्बे के सथिया लोग आँख बनाने के काम में इतने कुशल हैं कि बड़े से बड़े डाक्टर भी चकित हो जाते हैं। इसका कारण केवल यही है कि यह उनका वंश गत व्यवसाय है।

घर में चिराग़ जला कर तब मस्जिद में चिराग जलाना उचित होता है। अतएव यदि जातिगत पक्षपात में लगे व्यक्ति को हम दोष देना चाहें तो इसे हम उचित न कैसे कहेंगे। जैसे आज पश्चिम में उन्नति के लिए इकाई राष्ट्र को माना जाता है परन्तु उन्नति के लिए इकाई जाति को बनाकर यदि चला जाए तो शीघ्र उन्नति की सम्भावना हो सकती है। जाति में मनुष्य का व्यक्तिगत हित रहता है। राष्ट्र के हित में शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों का हित अवश्य अधिक रहता है। अतएव अपने हितके लिए प्रयत्न करने में मनुष्य अपनी अधिक शक्ति लगा सकता है राष्ट्र के लिए उतनी नहीं। आदर्शवाद की बात जाने दीजिऐ देशों के वास्तविक इतिहास पर आँख लगा कर देखिये जातियों के विकास से देश बढ़े हैं राष्ट्र की हित भावना से नहीं।

कोई भी राष्ट्र बिना वर्ग विभाजन के लिए रह नहीं सकता। ये वर्ग आर्थिक या सामाजिक दो ही प्रकार के हो सकते हैं। आर्थिक वर्गों से संघर्ष बढ़ता है। योरोप के मह युद्ध इसी प्रकार के वर्ग संघर्ष के कारण हुये थे। परन्तु सामाजिक वर्ग रचना में प्रत्येक वर्ग को अपनी हर प्रकार की उन्नति का अवसर मिल

सकता है अतएव वर्ग संघर्ष की सम्भावना कम हो जाती हैं। भारतवर्ष के पूरे इतिहास में परशुराम की कहानी को छोड़ कर कोई ऐसा उदाहरण नहीं दिया जा सकता जिसमें जाति का जाति से युद्ध हुआ हो। सर्वपल्लीराधाकृष्णन् के शब्दों में सच तो यह है "कि भारतवर्ष ने सामाजिक संघर्ष की समस्या का जो समाधान उपस्थित किया है उसकी जोड़ का समाधान संसार की किसी जाति ने नहीं दिया"। यह कैसे ?

इन वर्ग युद्धों का कारण आर्थिक विषमता है इसका निवारण जाति भेद के द्वारा ही हो सका। कपास से कुर्ते तक भारतीय सामाजिक व्यवस्था में रुई को धुनिया, कतनहारी, जुलाहे, और दर्जी के पास होकर आना होगा अर्थात रुई का कुर्त्ता बनने तक लागत में इतने लोगों को अवश्य भाग मिलेगा। भारतीय हिन्दू के किसी पर्व, किसी संस्कार पर विचार कीजिए आपको सम्पत्ति के वटवारे की समस्या का हल मिल जाएगा।

इस प्रकार जाति भेद के दोषों से गुणों का महत्व अधिक था परन्तु आज स्थितियाँ बदल गई हैं। मशीनों के इस युग में, सम्पत्तिवाद के इस दौर में हमारी जाति व्यवस्था पिछड़ी हुई वस्तु है। साथ ही उस में अनेक वास्तविक दोष पारस्परिक घृणा और संकीर्णतायें आ गई हैं। अपने मौलिक रूप में सत्य आज असत्य के इतने पर्दों में छिप गया है कि उसे देख सकना सम्भव नहीं जान पड़ता। अतएव आज या तो हमें उसका सर्वथा त्याग कर देना होगा या उसमें जड़ से परिवर्तन करने की अवश्यकता पड़ेगी।

प्रशन

(१) आज के जाति भेद तथा महाकाव्य काल के जाति भेद का अन्तर समझाओ ?

(२) क्या सम्पति के वितरण में जाति भेद के द्वारा जो सुधार किया गया वह सर्वश्रेष्ठ हैं ? इन दोनों पक्षों पर विचार लिखो।

(३) जाति भेद के गुण व दोष बतावो ?

उत्तरीय भारत
महाकाव्य काल
झेलम
चनाब
रावी
ब्यास
सतलज
गंगा
कुरु
गोमती
पांचाल
यमुना
सूरसेन
मत्स्य
कोशल
विदेह
अंग
ब्रह्मपुत्र
मगध
चेदी
सोन
वंग
अवन्ति
भोज
चंबल
सिन्ध
ताप्ति
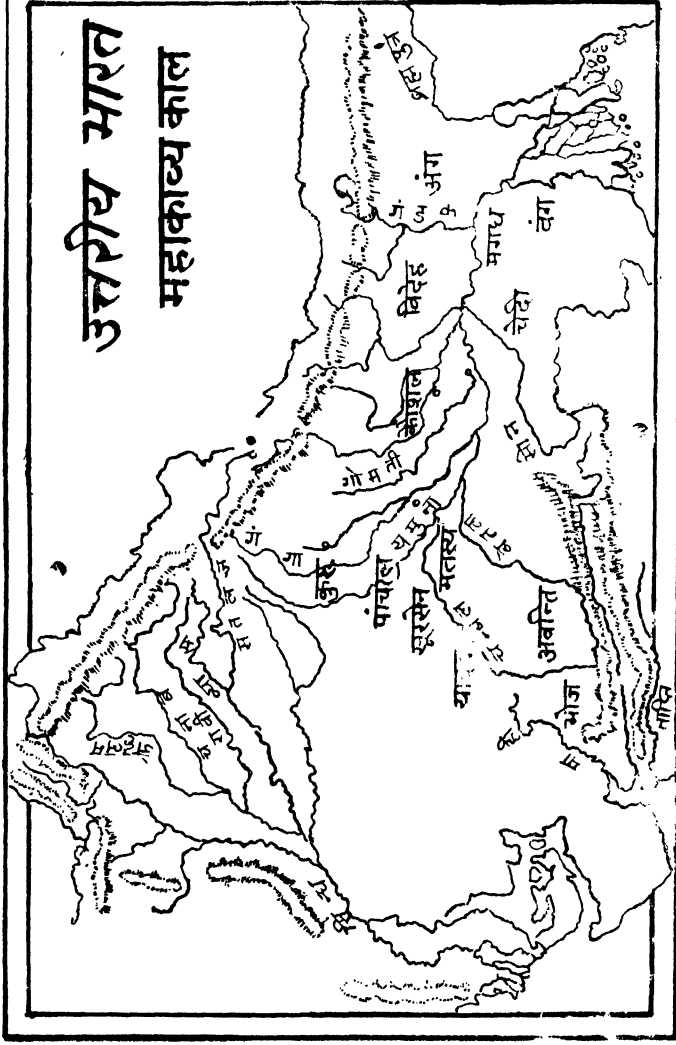
ग्यारहवाँ अध्याय

महाभारत का परिणाम

महाभारत के पश्चात् का काल (अहिंसा युग)

६०० ई० पूर्व से ३२५ ई० पूर्व

ऊपर कहा जा चुका है कि महाभारत में क्षत्रियों की शक्ति का विनाश होगया। लगभग समस्त भारतवर्ष में युद्ध करने योग्य वीरों का अभाव होगया। फल यह हुआ कि एक प्रकार की मुर्दनी सी देश पर छा गई। पाण्डवों के वंशजों में न तो वह क्षत्रिय तेज रह गया था न शक्ति। अतएव राज्यशासन भी चल रहा था परन्तु निर्जीव। युद्धोपयोगी कलाओं का तो लगभग अन्त हो गया था। परन्तु व्यापार कृषि और साधारण कलायें अपनी गति पर चल रही थीं। युद्धों की आवश्यकता ही नहीं थी। केवल नाग शक्तिमान रह गये थे जिन्हें पाण्डवों के वंशधर जनमेजय ने नष्ट कर दिया। अब एक थकावट सी सारे भारतवर्ष में छा गई थी।

इस बीच में युद्धों से ऊबी हुई जनता ने धर्म का आश्रय लिया। विद्वान दार्शनिक पहले से ही अलग थे इस सुस्ती के काल में उनकी परम्परा भी मिट चली थी अतएव यज्ञ ही एक ऐसा साधन रह गया था जिससे धर्म का पालन किया जा सके। अतएव यज्ञों का प्रसार होने लगा। महाभारत के नर मेध से रक्त की प्यासी क्षत्रिय जाति की प्रतिक्रिया पशुमेध में आ पड़ी। यज्ञों में बलि देना आवश्यक समझा जाने लगा और फिर बेचारे बेज़बान पशु की बलि देने में तो किसी प्रकार

की बाधा ही नहीं थी। धर्म के नाम पर पशुओं के रक्त की नदियां बहाई जाने लगीं। और भूखे मनुष्य पशुओं का पेट मांस से भरने लगे।

परन्तु अति की एक सीमा होती है। उत्तर वैदिक काल में ही यज्ञ व्यवस्था से पीड़ित ऋषभ देव ने त्याग के मार्ग को यज्ञ के मार्ग से उत्तम कहा था। परन्तु शक्ति के मद में मतवाले क्षत्रियों ने उनकी बात नहीं सुनी थी। अब सब कुछ गँवाकर मुरदे की सी शांति का अनुभव करने वाले जब पशु रक्त में स्नान करने लगे तब एक महात्मा उन्हें सुमार्ग पर लाने के लिये अवतीर्ण हुआ।

भारतवर्ष का शृङ्खलाबद्ध और तिथि सम्वतों से युक्त इतिहास इन्हीं महात्मा की जन्म तिथि से लिखना सम्भव हो सका है। इनका नाम था वर्धमान। विहार प्रान्त के क्षत्रिय कुण्ड नगर में महाराज सिद्धार्थ की स्त्री वैशाली की राज कन्या श्री त्रिशला देवी के गर्भ से आज से २५४६ वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा से ठीक ६०० वर्ष जिस पुत्र रत्न ने जन्म लिया उसी का नाम वर्धमान था। जिसने अपनी कठोर तपस्या की अपूर्व शक्ति से महावीर नाम प्राप्त किया। कुछ लोग इन्हें लिच्छिवि वंश का बताते हैं परन्तु जैन धर्म ग्रन्थ इन्हें सूर्य वंशीय कहते हैं तथा इनकी माता का वंश लिच्छिवि कहते हैं। इनके बड़े भाई का नाम नन्दिवर्धन था। इनका विवाह यशोदा देवी से हुआ जिस से एक कन्या भी हुई थी।

महावीर स्वामी

महावीर स्वामी ने ३० वर्ष की अवस्था में गृह त्याग किया तथा १२ वर्ष तक गम्भीर तपस्या करके आत्मबोध

प्राप्त किया तथा पार्श्वनाथ की प्रचारित पद्धति को सुव्यवस्थित करके उसे एक सर्वाङ्ग पूर्ण धर्म का रूप दे दिया। इसी लिये लोग महावीर स्वामी को ही जैन धर्म का प्रवर्त्तक मानते हैं। इस समय महावीर स्वामी को केवलिन् कहा जाता था।

जैन धर्म में चार मुख्य सिद्धान्त पार्श्व नाथ के काल से ही चले आते थे। जिन में सत्य, अहिंसा अस्तेय और विराग थे।

जैन धर्म में चार मुख्य सिद्धांत

महावीर स्वामी ने शौच को जोड़ का **पन्च याम** प्रतिज्ञाओं का निर्माण किया। अर्थात् जैन के लिये सच बोलना, हिंसा न करना, चोरी न करना, सांसारिक वस्तुओं का त्याग तथा पवित्रता आवश्यक थे। ईश्वर पर जैन धर्म का विश्वास नहीं है। वह जगत में केवल जीव और प्रकृति को ही सब कुछ मानता है।

इन्होंने अपनी शिक्षायें प्राकृत में दीं। तथा अपने धर्म के लिये तथा भक्ति के लिये सबको द्वार खोल दिये। शूद्र से लेकर ब्राह्मण तक उनके शिष्य थे, राजा से लेकर रङ्क तक सब उनकी भक्ति करते थे। इस प्रकार ३० वर्ष तक अपने धर्म का उपदेश करके ७२ वर्ष की आयु में पटना जिले के पावा स्थान में अपना शरीर त्याग दिया।

जैन धर्म

ऊपर जिन पांच प्रतिज्ञाओं का वर्णन किया गया है वे प्रतिज्ञायें मुक्ति के साधन के लिये आवश्यक थीं परन्तु साधारण जीवन में भी उनका उपयोग प्रत्येक गृहस्थ के लिये आवश्यक था **जैनियों में दो वर्ग हैं।** पहले यति अथवा सांधु दूसरे श्रावक या उपासक। साधु के लिये तपस्या के कठिन नियम हैं अहिंसा

का कठोर उपदेश है। मांस मछली का तो कहना ही क्या ? छान कर पानी पियो, छनी हुई वायु में श्वास लो, भूमि पर बुहारते हुए चलो, दाढ़ी मूँछ के बाल उस्तरे से बनवाने की अपेक्षा उखाड़ डालो। सम्भवतः इसी कठोर तपश्चर्य्या को पूर्ण करने के लिये दिगम्बर जैनियों का सम्प्रदाय बन गया। शरीर को कठोर तप के द्वारा सुखा देने से ही यति केवल पद का अधिकारी हो सकता है यह इस सम्प्रदाय का विश्वास है। जैनियों का दूसरा सम्प्रदाय श्वेताम्बर है जिस के लिये सत्य आचार, सत्य विचार (ज्ञान) तथा सत्य विश्वास की आवश्यकता है। अहिंसा के नियमों पर इन्हें चलना आवश्यक है परन्तु उतने कठोर तप की आश्यकता श्रावक को नहीं है।

जैन धर्म का मुक्ति

जैन धर्म की मुक्ति शरीर से आत्मा का बन्धन छूट जाना है परमात्मा के नाम से कोई सर्वव्यापी सत्ता में जैनियों का विश्वास नहीं। जीवन के झूठे बन्धनों से छुट जाने पर साधारण जीव ही परमात्मा हो जाता है और इन्हीं बन्धनों से छुटकारा पा जाना मुक्ति है। जैनी अपने यतियों की मूर्ति बनाते हैं तथा उनका पूजन भी करते हैं। २४ तीर्थङ्करों का प्रतिमा पूजन का जैनियों में बड़ा प्रचार है।

जैन धर्म का प्रसार

जैन धर्म का प्रसार भी खूब हुआ मध्य भारत से लेकर दक्षिण तक जैनियों ने सब को अपने धर्म का उपदेश दिया। उनके प्रचारकों में मिशनरी भावना अत्यधिक थी अतएव सभी वर्णों के लोगों ने उनके उपदेश स्वीकार किये। किंतु वैश्यों और शूद्रों में इस धर्म का प्रचार विशेषतया हुआ।

साहित्य और कला में भी जैन धर्म ने बहुत कुछ दिया। इसका परिचय स्थान २ पर दिया जायगा।
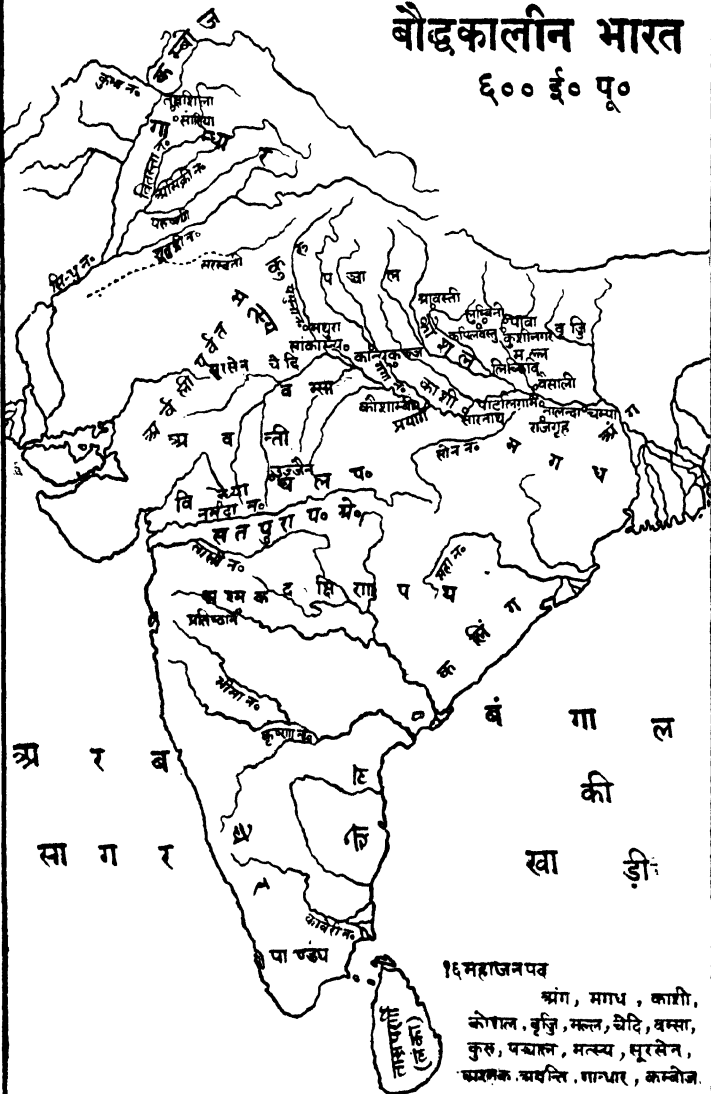
हमने इस काल को अहिंसा का युग कहा है। उसका मुख्य कारण यही है कि इस युग में अहिंसा पर जितना बल दिया गया उतना ब्रह्म विचार पर नहीं। कहना तो यह चाहिये कि इस काल में अहिंसा और सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी धार्मिक भावना का प्रचार ही नहीं हुआ। अहिंसा और सत्य के दूसरे पुजारी गौतमबुद्ध थे।

गौतमबुद्ध का जन्म शाक्य वंश में गोरखपुर से ५६ मील उत्तर पूर्व में कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन की रानी प्रजावती के गर्भ से हुआ। बाल्यावस्था से विचार शील सिद्धार्थ प्राणि-दया जन्म के साथ ही लाया था। घायल हंस की सेवा करके उसने अपने भविष्य का कार्य-क्रम लोगों को बता दिया था। वीर कार्यों में विजयी होकर, यशोधरा से विवाह करके, राहुल का पिता बन कर, सुन्दरियों के बन में भी वह अपने को अकेला अनुभव न करता था। बैल के लगने वाले कोड़े, तीतरों द्वारा कीड़ों का चुगा जाना उसे कष्ट पहुंचाते थे। परन्तु उसको मुक्ति के मार्ग का पथिक बनाने के लिये वृद्ध का दृश्य, रोगी का दृश्य, मृत यात्रा का दृश्य और अन्त में एक संसार का त्याग करने वाले सन्यासी के दृश्य के चार अङ्क देखने थे। अतएव ३० वर्ष की आयु तक वह राजमहल के पिंजड़े में बन्द पक्षी की तरह फड़फड़ाता रहा। परन्तु इन दृश्यों को देख कर अपने सारथी छन्दक की प्रेरणा से वह जिस काम के लिये आया था उसके लिये निकल पड़ा।

काशी, राजगृह और गया में तपस्या का जीवन बिताकर जब उसका शरीर अधमरी अवस्था में पड़ा था, दयालु कृषक कन्या द्वारा जब खीर चटा कर उसे फिर जीवन दिया गया तब उसकी गुत्थी सुलझी। उसने सत्य को देखा और सिद्धार्थ से बुद्ध बन गया।

अब उसे अपने जीवन का मिशन मिल गया जिसके लिये

उसने प्रचार का कार्य हाथ में लिया। संस्कृत को विद्वानों की भाषा समझ कर उन्होंने उसे छोड़ दिया। वह धर्म क्या! जो सब के लिए न हो, वह भाषा क्या ? जिस पर चाण्डाल और ब्राह्मण का एक सा अधिकार न हो उसने प्राकृत पाली को चुना और उसी में अपने उपदेश प्रारम्भ कर दिये। उसके जीवन-काल में ही सारे उत्तर भारत में उसके धर्म का डंका पिट गया। उसके पीछे तो उसका दिखाया हुआ मार्ग आज भी संसार की ५० करोड़ जनता का सहारा है और यदि ईसाई धर्म के भांति प्रचार का सहारा मिल जाय तो संसार को अपनी गोद में स्थान दे सकता है। इस प्रकार विश्व धर्म को जन्म देकर भगवान बुद्ध ने ८० वर्ष की अवस्था में कुशी नगर में निर्वाण प्राप्त किया।

बौद्ध धर्म

बुद्ध भगवान ने परमात्मा के सम्बन्ध में जो मौन धारण किया उसके फलस्वरूप आगे विकसित होने पर बुद्ध धर्म में परमात्मा क्या जगत की भी पारमार्थिक सत्ता नहीं रह गई। आगे के बौद्ध विद्वानों ने जगत को क्षणभर दिखाई देने वाला माना और कहा कि प्रत्येक क्षण इसमें परिवर्त्तन होता रहता है अतएव जो चीज हमें आज दिखाई देती है वह कल नहीं रहेगी बदल जायगी और दूसरी हो जायगी। अतएव यह जगत नाशवान है साथ ही जीवन भी एक दीये के समान है जबतक कुछ बातें तेल बत्ती और बर्त्तन के समान एक साथ बनी रहती हैं जीवन रहता है। उन चीजों के बिखर जाने से दीपक की भांति ही जीवन भी नहीं रहता। इसी कानाम निर्वाण (बुझ जाना) है।

हमें निर्वाण प्राप्ति के लिये जीवन को एकत्र करने वाली वासनाओं बुरी इच्छाओं और बुरे विचारों का त्याग करना होगा।

क्योंकि इन्हीं के कारण जगत के सारे दुख और कष्ट हैं। तथा जब तक ये इच्छायें बनी रहेंगी दुःख और कष्ट दूर न होंगे। इन वासनाओं के त्याग के लिये तप को उतनी आवश्यकता नहीं जितनी सदाचार और सद्विचार की है। अतएव सदाचार और सद्विचार से ही मुक्ति मिल सकती है। इस मुक्ति पाने के मार्ग में जाति या वंश वाधक नहीं है। जब तक आत्मा निर्वाण को प्राप्त नहीं होता इन्हीं वासनाओं से बंधा हुआ अनेक प्रकार की योनियों में घूमा करता है। परन्तु जब सदाचार से वह शुद्ध हो जाता है। तब वह मुक्त हो जाता है निर्वाण पदवी को पहुंच जाता है और आवागमन के बन्धन से छूट जाता है जाति पांति का बन्धन असत्य और झूठा है। सब में एकसा ही आत्मा है और सब संस्कारों के बन्धनों में बंधे हुए हैं। अतएव व्यवहार में सब भाई भाई के समान बराबर है।

सदाचार में निम्नलिखित ५ बातों पर विशेष बल बौद्ध धर्म में दिया गया है अहिंसा का पालन करो, अपरिग्रह (किसी से कुछ भी न लेना) सीखो, असत्य का त्याग करो, मादक वस्तुओं को त्यागो और पवित्र जीवन की रक्षा करो। इस प्रकार इस धर्म का आधार उदारता प्रेम और क्षमा हैं जो संसार के सभी धर्मों में उत्तम गुण माने गये हैं। बौद्ध धर्म के प्रसार के आधार भी यही गुण हैं जिन से अधिक ईसाई धर्म भी नहीं कह सका। संक्षेप में बौद्ध धर्म चार सत्यों पर विश्वास करता है वे ये हैं—

१. समस्त जगत् क्षणिक और दुःख पूर्ण है

२. समस्त दुःखों का कारण मनुष्य का लोभ और तृष्णा या वासना है।

३. इस लोभ-तृष्णा या वासना के सम्पूर्ण तथा मिट जाने से ही दुःख से छुटकारा मिल सकता है।

४. इस प्रकार अपने पन का अभिमान मिट जाने से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है। अतएव जगत को जीवों के लिये आठ मार्गों का उपदेश दिया गया है। जो निम्नलिखित हैं।

१. अपने लक्ष्य को संसार से ऊपर उठाओ।

२. उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये मन को ऊँचे और सत्य विचार में लगाओ।

३. उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपने विश्वास को सच्चा और पक्का बनाओ।

४. उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बुद्धि का सदुप्रयोग करो।

५. उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये पवित्र आचार का जीवन बनाओ।

६. सदाचार सिखाने वाले पवित्र और सत्यगुणों को सदैव हृदय में स्थिर करो।

७. उस उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिये सत्य-ध्यान पर स्थिर रहो।

८. जगत के परस्पर व्यवहार में नम्रता सीखो।

चाहे जगत् की सच्चाइयों पर विचार कीजिये, चाहे मार्गों पर आपको कहीं सङ्कीर्णता नहीं मिलेगी। किसी समुदाय में मनुष्य को बांध कर युद्ध की खाई खोदना और एक दूसरे से अलग कर के अपनी उम्मत को दूसरे से श्रेष्ठ कहने की प्रेरणा आपको बौद्ध साहित्य में नहीं मिलेगी। जैसा कि बहुधा पश्चिम के धर्मों में दिखाई देता है। बुद्ध ने अपने को श्रेष्ठ कहने की अपेक्षा श्रेष्ठ बनने पर अधिक बल दिया। उसने कहीं नहीं कहा कि मैं तुम्हारी

मुक्ति का ठेकेदार हूँ यद्यपि अपने जातकों में वह सदैव प्राणी मात्र का उद्धार करने में लगा रहा है । यही कारण था कि किसी समय संसार का आधा सभ्य जगत उसके चरणों पर झुक गया था और आज भी जापान से हिन्दुस्तान तक उसके दिखाये मार्ग से प्रकाश पा रहे हैं ।

बौद्ध और जैन धर्म की तुलना

अन्तर

जैन धर्म	बौद्ध धर्म
१. जीव और प्रकृति को नित्य मानता है । ईश्वर को स्वीकार नहीं करता ।	१. पहले ईश्वर के संबन्ध में चुप था पीछे जीव और प्रकृति के साथ किसी भी वस्तु को नित्य नहीं मानने लगा ।
२. मुक्ति प्राप्त करने के लिये शरीर को तप द्वारा सुखा देने पर विशेष बल देता है ।	२. मुक्ति प्राप्त करने के लिये तप की आवश्यकता नहीं मानता आगे चल कर हठ-योग की साधनायें मानने लगा ।
३. अहिंसा के भाव की अति कर दी ।	३. अहिंसा अति पर नहीं पहुंची ।
४. मूर्तिपूजा की भावना भूल में ही रही ।	४. मूर्ति पूजा की भावना नहीं रही ।
५. संघ बना कर संगठित रूप में धर्म प्रचार का यत्न नहीं किया गया ।	५. संघ बने, धर्म प्रचार के लिये विदेशों में मिशनरी भेजे गये ।

६. राज्य शक्ति का धर्म प्रचार के लिये उपयोग नहीं किया गया। यद्यपि अनेक राजा इस धर्म में भी दीक्षित हुये।	७. राज्य शक्ति का भी धर्म प्रचार के नाम पर उपयोग किया गया जिससे सैनिक बल से भी धर्म प्रचार हुआ।

समानतायें

१. दोनों धर्म अहिंसा सत्य और सदाचार पर विशेष बल देते थे।

२. दोनों धर्म मुक्ति पाने के लिए जाति भेद नहीं मानते थे।

३. दोनों धर्मों के उपदेश उस समय की बोलचाल की भाषा में दिये गये।

४. दोनों धर्मों ने दुःखी और ग़रीब जनता को अधिक से अधिक सहारा दिया।

५. दोनों धर्मों में मिशनरी भावना थी और दोनों ने प्रचार का कार्य किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन दोनों धर्मों में प्राचीन वैदिक धर्म की पशुबलि सम्बन्धी यज्ञ की प्रतिक्रिया उपस्थित है। वर्ण-व्यवस्था को नष्ट करने की भावना, जन-साधारण को धर्म के उपदेश देने की इच्छा, परस्पर अन्तर बढ़ाने की अपेक्षा बन्धुत्व की ओर प्रवृत्ति पाई जाती है। दोनों धर्म समय के अनुकूल और परिस्थितियों से प्रेरित होकर उपजे

थे। यदि समय पर ये दोनों धर्म न चले होते तो कदाचित बढ़ती हुई क्षत्रिय शक्ति फिर महाभारत के लिये तैयारी करने में लग जाती, ठीक उसी प्रकार जैसे इस समय योरोप को गांधी एक जैसे शांति दूत की आवश्यकता है वैसी ही आवश्यकता उस समय भी थी।

धर्मों का वर्तमान पर प्रभाव

हमने उनसे बहुत कुछ लिया है। इनके उपदेश हमारे रक्त के साथ मिलकर हमारी संस्कृति का एक अंग बन गये हैं परन्तु हम पर उनका एक ऋण और भी है। हमें अपने पुराने इतिहास का परिचय भी उन्हीं की गाथाओं, जातकों, पिटकों, उनके सुत्तग्रन्थों, विनयों, अभिधम्म ग्रन्थों, निकायों से शिला-लेखों और स्तूपों से ही सम्बद्ध क्रमबद्ध और शुद्ध रूप में मिल सका है। इस काल के ज्ञान के लिये हमें अंधकार में टटोलना नहीं पड़ता।

अहिंसा युग तक की राजनैतिक स्थिति

महाभारत के युद्ध के अन्त में केन्द्रीय शक्ति का विनाश हो गया और सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति एक प्रकार से अशक्ति सी हो गई। यहाँ भारत काल में ही यवन भारतवर्ष में आने लगे थे, परन्तु इस समय तक इनका एक ही राज्य था, जिससे यादवों का युद्ध हुआ था। परन्तु महाभारत में क्षत्रियों के विनाश के उपरांत सम्भवतः उत्तरी पश्चिमी भारतवर्ष और काश्मीर में व्यास नदी तक यवनों के अनेक छोटे २ राज्य बन चुके थे। साथ ही इन यवनों का संबन्ध फारस के साम्राज्य से होने के कारण बलवान भी थे।

उत्तरी पंजाब में यवन सत्ता का बल बढ़ जाने के कारण हिन्दू

शक्ति की धुरी भो पूर्व या दक्षिण को हट गई थी। अब आर्य-शक्ति पुरुषपुर (पेशावर) इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)

अयोध्या कौशल में हटकर पूर्व में अयोध्या, (साकेत और श्रावस्ती) कल्याण, (कौशाम्बी) राज्यगृह (पाटली-पुत्र और दक्षिण में उज्जैन में जा टिकी थी। अयोध्या के राजा श्री राम के वंशज थे, जिन्होंने पूरब में मिथिला तक दक्षिण में काशी तक फैल कर पूरे अवध प्रांत को अपने अधिकार में कर लिया था। अवध का राज्य प्रदेश कौशल कहलाता था। इनकी राजधानी अयोध्या, साकेत अथवा श्रावस्ती में रहीं।

कल्याण के राजा चन्द्रवंशी थे जो पुरु वंश की संतान थे। इनका राज्य यमुना के दक्षिण समस्त बुन्देलखण्ड

वत्स गंगा यमुना का दोआबा आगरा और ग्वालियर तक सम्भवतः था इस राज्य को वत्स देश कहते थे।

राजगृह में पूर्वी संयुक्त प्रदेश तथा गंगा के दक्षिण का बिहार का सूबा था इसमें पहले श्रेणिक बिम्बसार के वंशज राज्य करते थे पीछे शिशुनाग और नन्दवंश

मगध के अधिकार में आया इसकी राजधानी पाटलि-पुत्र (पटना) अथवा राजगृह में रही। इस देश को मगध कहते थे।

अवन्ती उजैन में प्रमार बंश की एक शाखा का राज्य था वर्तमान मालवा प्रदेश इनके राज्य में था। इस देश को अवन्ती कहते थे।

मध्य पंजाब में भी क्षत्रियों का एक स्वतन्त्र राजा था। यह भी पुरु वंश की एक शाखा के आधीन था। इनके अतिरिक्त

अनेक छोटे २ राज्य थे जो स्वतंत्र थे, आपस में लड़ते रहते थे। कुछ ऐसे भी राज्य थे, जो प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा शासित थे। इनमें से शाक्य (कपिल वस्तु) मौर्य (पिप्पली कानन) और लिच्छवि (वैशाली) तथा भारत (वर्तमान मारवाड़) और सौराष्ट्र (सोरठ) मुख्य थे।

जब ऐसे दो राज्य आपस में मिल जाते थे तो उनकी शक्ति बढ़ जाती थी। परन्तु विरोध के कारणों की भी कमी नहीं थी। अतएव युद्ध एक साधारण घटना थी।

राजा के मन्त्रियों को संख्या बढ़ चली थी अब राजा अपने अन्य सात मन्त्रियों की सहायता से राज-काज करते थे जिनमें महामन्त्री, उपराज, सेनापति और व्यावहारिक मुख्य थे। अपराधों पर दंड व्यवस्था अधिक कठोर हो गई थी।

मुख्य मुख्य राजाओं का काल इस प्रकार है :—

अयोध्या के राजा प्रसेनजित और उनका पुत्र अजातशत्रु छठी या पांचवीं शताब्दी ई० पूर्व तक।

कल्याण और कौशाम्बी के राजा उदयन लगभग पांचवीं या छठी शताब्दी ई० पूर्व में ही थे।

मगध का राजा श्रेणिक बिम्बसार पांच सौ तेतालीस ई० पूर्व में चार सौ उन्सठ ई० पूर्व में अथवा कुछ लोगों के मत के अनुसार पांच सौ बयासी ई० पूर्व में ५५४ ई० पूर्व तक राज्य करता था।

अजातशत्रु ४६१ ई० पूर्व से ४५६ ई० पूर्व तक अपने पिता को मारकर गद्दी पर बैठा और अंत में बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। कुछ लोगों का मत है कि यह ५५४ ई० पूर्व से ५२७ ई० पूर्व तक रहा।

उदयन ४५६ ई० पूर्व से ४१३ ई० पूर्व तक। इसकी मृत्यु के उपरांत मगध का राज्य शिशुनाग राजा के वंश में चला गया। इन्होंने पाटलीपुत्र से हटाकर अपनी राजधानी राजगृह में बनाई। ईसा से ३४३ ई० पूर्व में यहां पद्मनंद ने मगध पर अधिकार कर लिया। और उन नंदों के वंश में नौ राजा हुए जिन्होंने कुल १८ वर्ष राज्य किया।

डाक्टर वेणीप्रसाद के मत से शिशुनाग बिम्सार का पूर्वज था और यहाँ पद्मनंद ने उदयन के किसी वंशज को मारकर लगभग ४१३ ई० पूर्व के मगध का राज्य प्राप्त किया। उसके वंशजों ने ६० वर्ष राज्य किया। यहीं मत अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है। क्योंकि नन्दों के ६० वर्ष के राज्य की कल्पना पुराणों में मिलती है और उसी का उपयोग चन्द्र बरदाई ने अपने अनंद सम्वत् (विक्रमी सम्वत् में से ६० वर्ष घटा कर) किया है भाव यह है कि भारतवर्ष में नन्द वंश के ६ राजाओं के लिए ६० वर्ष का समय दिया है जो आगे के इतिहास से भी मेल खाता है।

अवन्ती के केवल महासेन का परिचय मिलता है जो वत्स देश के राजा उदयन का समकालीन है।

इसके अतिरिक्त अधिक पुराने इतिहास के लिए पुराणों में खोज का काम हो रहा है। संभव है कि कुछ समय में और पुराना इतिहास भी प्रकाश में आ सके।

दक्षिण में उत्तर की अपेक्षा अधिक शांति थी इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र प्रदेश में अश्मक गोदावरी और महानदी के बीच में कलिंग मद्रास तट पर चोलकारो मण्डल तट पर चेल और धुर दक्षिण में पाण्ड्य राज्य थे।

सामाजिक स्थिति

जैसा पहले कहा जा चुका है कि बौद्ध और जैनियों से पहले जाति व्यवस्था बँध चली थी और ब्राह्मण पीछे हट रहे थे। क्षत्रिय आगे बढ़ रहे थे। परन्तु बाहर से आने वालों के लिये अभी तक आर्य धर्म में स्थान था। वे लोग कभी २ अपना अलग वर्ग बना कर आर्य धर्म में ही सम्मिलित हो जाते थे। कभी आर्यों की ही अनेक जातियों में से किसी न किसी को गिन लिया जाता था। बौद्ध धर्म और जैनधर्म ने तो इस जाति भेद की जड़ पर ही कुल्हाड़ा मार दिया और कड़े होने वाले जाति-भेद के बन्धनों को यदि मिटा नहीं दिया तो ढीला अवश्य कर दिया। आश्रम व्यवस्था भी ढीली पड़ चुकी थी। लोग संसार में उलझने लगे थे, कि उसे छोड़ना ही नहीं चाहते थे। अंतर-जातीय विवाह की प्रथा भी बल पा रही थी। यद्यपि स्त्रियाँ सामाजिक कार्य और शास्त्रार्थ में भाग लेती थीं, परदे का प्रचार न था, परन्तु सम्मान की दृष्टि से उनका पद गिर गया था। वैदिक काल की दास प्रथा अब भी चालू थी परन्तु दासों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था।

आर्थिक व्यवस्था

भूमि की नाप जोख का काम आरम्भ हो चला था और उसके अनुसार लगान कड़ाई से लिया जाता था। सूती ऊनी और रेशमी कपड़ों की सुगन्धित तेल इत्र युद्ध के सामान तथा अन्य प्रकार की सब कारीगरियाँ प्रचलित थीं। खेती और व्यापार मुख्य उद्यम थे। धनी व्यापारियों को श्रेष्ठी कहते थे इन श्रेष्ठी जनों का व्यापार स्थल और जल दोनों मार्गों से था, खुले हुए

भयङ्कर समुद्रों ने भी अपने पाल के पंख खोले । चिड़िया की भाँति इनकी नौकायें समुद्र की छाती चीरती हुई विदेशों के तटों पर पहुंचती थी। तथा अपनी कारीगरी तथा उपज की वस्तुएँ देकर विदेशों का सोना बटोर लाती थी। जब कोई ऐसा श्रेष्ठी निस्संतान मर जाता था तब उसका धन राजकोष में इकट्ठा हो जाता था।

ललित कलाएँ

नगरों के विलास के जीवन में ललित कलाएँ भी अपने पूरे यौवन पर थीं बेल-बूटों से सजी हुई लकड़ी की चार दीवारी में घिरे हुए अनेक खंड के भव्य भवनों में नृत्य और संगीत की कला खेलती थी। प्राकृत और पाली भाषा में ईंट पत्थरों पर भारत का इतिहास लिखा जा रहा था। भूमि की नाप-जोख और नहरों के निर्माण पर गणित का विकाश हो रहा था। वैद्यक, ज्योतिष और विज्ञान पर पंडित मण्डली में विचार होता रहता था।

इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से अस्ताव्यस्त भारतवर्ष की सांस्कृतिक एकता जो उसे यहां महाभारत के युग में मिली थी अभी तक बनाये हुए था।

यवन संस्कृति से संघर्ष और पुनरुत्थान काल

(३२५ ई० पू० २०० ई० पू० तक)

इसा की छटी शताब्दी पूर्व से ईरान (पारस) की शक्ति अपने उच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी, इनके विजेताओं ने उत्तरी पश्चिमी भारतवर्ष से लेकर मिश्र और बल्कान प्रायद्वीप तक सफल आक्रमण किये और अपनी विजयों के साथ यूनान को

सिकन्दर का रास्ता
थल मार्ग
जल मार्ग
मकदुनिया
सिकन्द्रिया
बाख्तर
तक्षशिला
सिकन्द्रिया
सिकन्द्रिया
सिकन्द्रिया
बाबुल
पर्सिपोलिस
अ र ब
भा रत वर्ष

फारस का साम्राज्य
मिस्र का साम्राज्य
सर नदी
आमू नदी
बेक्ट्रिया
पार्थिया
मीडिया
ईरान
मोहनजोदड़ो
हड़प्पा
सिन्धु
सिनाई
लीबिया
बेबीलोन
असुर
निनीवेह
फ़रात नदी
दजला नदी
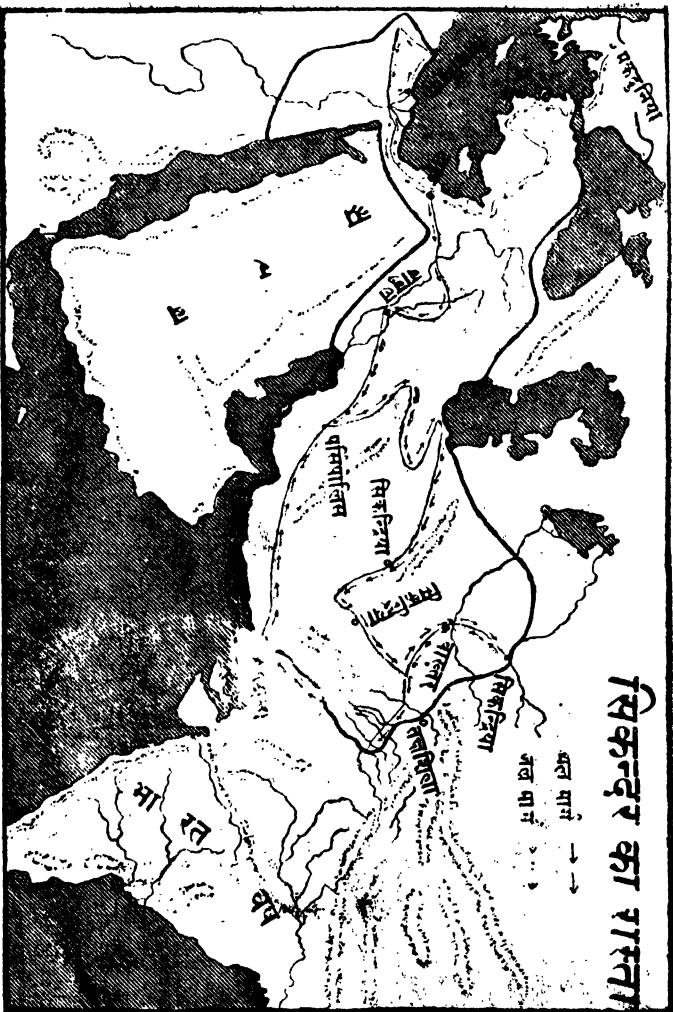
भारतवर्ष से मिला दिया था। परन्तु ईसा की पूर्व की चौथी और तीसरी शताब्दी में इनकी शक्ति पतन की ओर झुक चली थी, दारा प्रथम का यूनान पर प्रथम आक्रमण असफल सा हुआ तथा जेरेक्सीज का आक्रमण अत्यन्त घातक होते हुये भी असफल ही रहा। दारा द्वितीय अपनी शक्ति का संचय कर ही रहा था कि सिकन्दर के आक्रमण ने उसकी शक्ति सदा के लिये तोड़ दी।

जिस समय पारस के ये सम्राट पश्चिम में उलझे हुये थे उस समय भारतवर्ष के और पश्चिमी भाग के क्षत्रियों को फिर शक्ति प्राप्त हुई। एक बार फिर पञ्जाब से गांधार तक आर्य्य शक्ति प्रबल हो उठी और पारसी शक्ति निर्बल हो गई। परन्तु यह उदय केवल उस ज्वालामुखी की पूर्व सूचना थी जो आगे आने वाला था।

सिकन्दर का आक्रमण

ईसा से लग-भग ३३० ई० पूर्व यूनान के एक मकदूनिया प्रदेश से हृदय में उत्साह की लहर अपने शस्त्रों में आग और बिजली तथा अश्व सेना में वायु का वेग लिये हुये सिकन्दर चला। उसने अपने वेग में फारस के दारा तृतीय को बहा दिया। गान्धार के आम्भीक को धन के लोभ के हिंडोले पर झुला कर, सीमा प्रान्तीय वीर क्षत्रियों का सर्वनाश करके वह झेलम के इस पार कटक के पास सिन्धु नदी पर पुल बांध कर उतर आया।

परन्तु यहाँ आकर पुरु की सेना की दीवाल से मिश्र तुर्की, फारस और अफगानिस्तान को बहा ले जाने वाली यूनानी सैनिकों की धारा टकरा गई। दीवाल तो टूट गई परन्तु उस धारा का बल भी टूट गया। इतिहास साक्षी है कि मालव और

क्षुद्रकगणों के साथ दब कर सन्धि करके ही महाबली सिकन्दर की सेना युद्ध के लिये उपस्थित मगध सेना से पीछा छुड़ा कर पीठ मोड़ कर लौट गई। ईसा से ३२५ या ३२४ वर्ष पूर्व भारतवर्ष फिर यूनानी शक्ति से स्वतंत्र होने की चेष्टा में लग गया।

परन्तु यूनान और भारतवर्ष के इस सम्पर्क ने दोनों उच्च संस्कृतियों में आदान-प्रदान का स्थल मार्ग भी खोल दिया।

संक्षेप में दोनों का एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ा इसका विवेचन हम नीचे करते हैं।

सिकन्दर द्वारा बनवाये गये स्मारकों के द्वारा यूनानी स्थापत्य कला का भारतीय स्थापत्य कला पर प्रभाव पड़ा। भारतीय स्थापत्य कला और मूर्तिकला से यूनानी प्रभावित हुये विशेषत: जैन धर्म की नग्न मूर्त्तियों से।

यूनानी ज्योतिष शास्त्र से भारतियों ने अपने ज्योतिष शास्त्र में संशोधन किये परन्तु भारतीय रेखा गणित शास्त्र से यूनानियों को नई साध्यें प्राप्त हुई।

न्याय दर्शन में यवन न्याय दर्शन (Loqic) का प्रभाव पड़ा और भारतवर्ष में नव्य न्याय के नाम से यवन न्याय दर्शन की प्रचलित विचार धारा आई परन्तु भारतीय दार्शनिक विचारों से विशेषत: वेदान्त से यवन प्रभावित हुये।

भारतीय ब्राह्मण की त्याग, तपस्या और निष्काम स्वतंत्र भावना के सामने यूनानी दार्शनिक और स्वयं सम्राट इतने प्रभावित हुये कि अरस्तू के चरण छोड़ कर उन्हें एक बार फिर भारतीय ब्राह्मणों के चरणों के समीप बैठने की उत्सुकता उत्पन्न हुई। यदि यह ब्राह्मण सिकन्दर के साथ जा सका होता तो

सम्भव था कि यूनानी संस्कृति की रूप रेखा में भी परिवर्तन हो जाता। परन्तु अपने गौरव के अभिमान में मग्न संसार को तुच्छ समझने वाला ब्राह्मण किसी राजा का अनुगत कैसे होता। सम्भव था कि यदि सिकन्दर और जीवित रहता तो यह प्रभाव अधिक बढ़ जाता।

भारतवर्ष पर इस का राजनैतिक प्रभाव भी पड़ा। अभी तक छोटे छोटे राज्यों को इस बात की प्रेरणा नहीं मिली थी कि वे परस्पर संगठित होकर बाहर के आक्रमणकारियों का सामना करें। परन्तु इस युद्ध ने उन्हें संगठन का मूल्य समझा दिया। तथा केन्द्रीय शक्ति की आवश्यकता भी विचारक ब्राह्मणों और क्षत्रियों के हृदय में भरदी। अतएव भारत के इतिहास के आगे के कुछ पृष्ठ इस भावना के परिचायक हैं।

पञ्जाब की राजनैतिक एकता हो चुकी थी इधर मगध का राज्य शेष उत्तरी भारत को एक सूत्र में बाँधने का यत्न कर रहा था। जो आगे चल कर मौर्यकाल में सम्पन्न हुआ।

प्रश्न

(१) क्या अहिंसा की भावना आर्य्यों की प्रकृति के अनुकूल है? दोनों पक्षों पर विचार करो।

(२) अहिंसा युग की राजनैतिक स्थिति, संस्कृति और रहन सहन पर विचार करो।

(३) सिकन्दर का आक्रमण भारतवर्ष पर व्यर्थ हुआ? प्रमाणित करो।

(४) इस आक्रमण का क्या प्रभाव पड़ा?

(५) जैन और बौद्ध धर्म की तुलना करो।

बारहवाँ अध्याय

चन्द्रगुप्त मौर्य्य

वस्तुतः चन्द्रगुप्त मौर्य्य का इतिहास तक्षशिला में शिक्षित चणक नामक ब्राह्मण के पुत्र चाणक्य का इतिहास है। कहा नहीं जा सकता कि यदि धननन्द द्वारा निर्वासित पिप्पली कानन में गड़रिया का जीवन व्यातीत करने वाला मगध के वन्दी मौर्य्य सेनापति का पुत्र चन्द्रगुप्त यदि चाणक्य से न मिला होता तो क्या होता। अपनी शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा से योग्य बना कर सिकन्दर और मालव गणों के युद्ध के समय अपनी संगठन बुद्धि से चन्द्रगुप्त को सेनानी बनाकर ही चाणक्य ने चन्द्रगुप्त में भावी सम्राट के लक्षण दिखा दिये थे।

वीरता और बुद्धि की कठोरता से युक्त इस्पात चन्द्रगुप्त चाणक्य की सान पर चढ़ कर ऐसी खरी तलवार बन गया जिसकी धार के सामने समस्त मध्य ऐशिया का सम्राट सिकन्दर का उत्तराधिकारी सिल्यूकस भी फिर गया। ईसा से ३०५ वर्ष पूर्व जिस विजय की कामना लेकर वह आया था उसके बदले पराजय लेकर परिवर्तन में काबुल कन्धार, विलोचिस्तान और अपनी कन्या देकर सिल्यूकस को लौटना पड़ा।

चन्द्रगुप्त में यह शक्ति कहां से आई। मगध के धननन्द से असन्तुष्ट चाणक्य ने मगध राज्य पर प्रतिष्ठा के योग्य चन्द्रगुप्त को साथ लेकर पंजाब के छोटे राजाओं की

सहायता से आक्रमण किया। अपनी कपट बुद्धि से उसका विनाश करके जब चन्द्रगुप्त को मगध के सिंहासन पर बिठा दिया तो उसे शान्ति से बैठने न दिया। उसकी दृष्टि में एक छत्र साम्राज्य था। जब तक समस्त भारतवर्ष चन्द्रगुप्त के चरणों के नीचे न झुकता चाणक्य को शान्ति कब थी। समस्त उत्तर भारतवर्ष की विजय यात्रा के उपरान्त ही चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक हुआ। सिल्यूकस कन्या हेलेन के चन्द्रगुप्त से ब्याह का पुरोहित बन कर चाणक्य का काम पूरा हो गया। उसने उचित और विद्वान मंत्री वर्ग को चन्द्रगुप्त का सहायक बना कर शास्त्र चिन्ता का, राजनीति शास्त्र के निर्माण का कार्य्य आरम्भ किया। आज उसी कौटल्य का अर्थ शास्त्र न केवल अर्थ शास्त्र की एक उत्तम पुस्तक है वरन् चन्द्रगुप्त के इतिहास के निर्माण में भी सहायक है।

चन्द्रगुप्त के इतिहास के सम्बन्ध में हमें मुद्राराक्षस नामक नाटक जिसका अनुवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने किया है। तथा सिल्यूकस के राजदूत मेगस्थनीज के वर्णनों से भी ज्ञात होता है। मुद्राराक्षस केवल चन्द्रगुप्त के राज्याभिषेक की कथा कहता है। मेगस्थनीज का वर्णन उसकी राज्य व्यवस्था और सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश डालता है।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त का साम्राज्य बिहार से लेकर काबुल तक तथा उत्तर में हिमालय से लेकर तामिल प्रदेश, कोनकन तट और तिनेवली की पहाड़ियों तक था। कुछ लोगों का मत है कि चन्द्रगुप्त के अन्तिम काल में तक्षशिला में विद्रोह हो गया था परन्तु उसका प्रमाण कम है। बिन्दुसार के काल में होने वाले विद्रोह का उसके पुत्र अशोक ने दमन किया

था। अतएव सम्भवत: चन्द्रगुप्त के राज्य काल में शान्ति रही।

जैनियों के मतानुसार आर्य्य धर्म का अनुयायी चन्द्रगुप्त १२ वर्ष के दुर्भिक्ष के कारण दुखी हो कर जैन हो गया तथा राज्य त्याग कर दिया। दक्षिण पठार पर जैनधर्मानुसार उपवास करके उसने अपना शरीर त्याग दिया।

इस प्रकार चन्द्रगुप्त का राज्यकाल २९७ ई० पूर्व तक है वह स्वयं बड़ा चरित्रवान साहसी वीर और विजेता था सेना संचालन और संगठन शक्ति में अपने समय में अद्वितीय था। राज नीति के दांव-पेचों को भली भांति समझता था। साथ ही अपने गुरु चाणक्य पर असीम श्रद्धा और नम्रता ने उसे अपने समस्त महत्व के साथ इतना ऊंचा उठा दिया कि उसकी समता में कोई अन्य नहीं रक्खा जा सकता।

चन्द्रगुप्त का व्यक्तिगत चरित्र

उसे पशुओं के लड़ाने का बड़ा शौक तथा आखेट की बड़ी रुचि थी परन्तु उसके स्वभाव में निर्दयता न थी। सब धर्मों का सत्कार करता था तथा उदार और वीर का वह प्रशंसक था।

चन्द्रगुप्त मौर्य्य के पुत्र विन्दुसार ने सम्भवत: अङ्गदेश तथा दक्षिण में अपनी सीमा और बढ़ाई तथा तक्षशिला के विद्रोह दमन करने की चेष्टा की। इसके अतिरिक्त राज्य की सुरक्षा के अतिरिक्त उसका राजनैतिक कार्य और कोई नहीं मिलता। यूनानी राजा एण्टीगोस सोटर का राजदूत भी इस समय के दरबार

विन्दुसार

में रहता था। इसी से २७४ ई० पूर्व सम्भवतः इसने शरीर त्याग करके संसार के एक महान शासक के लिये राज्यासन छोड़ दिया। इसका नाम अशोक था।

अशोक उज्जयिनी का उपराज था। मन्त्रि मण्डल उसे सम्राट बनाना चाहता था क्योंकि उसका बड़ा भाई सुषुम तक्षशिला में विद्रोह किये बैठा था। अतएव राज्याभिषेक से पूर्व सुषुम का दमन आवश्यक था। अशोक ने तत्काल सुषुम पर आक्रमण किया और उसे पराजित करके विद्रोह शान्त किया। परन्तु इस संघर्ष में उसे तीन चार वर्ष लग गये। अतएव उसका राज्याभिषेक सम्भवतः ईसा से २६६ या २७० ई० वर्ष पूर्व हुआ। इस प्रकार बंगाल से पुनः गान्धार तक एक छत्र साम्राज्य की स्थापना करके नन्दों से शासित कलिङ्ग गणों की विजय ही भारतवर्ष को एक सूत्र में बांधने के लिये शेष थी अतएव उसने ईसा से २६१ वर्ष पूर्व कलिङ्ग राज्य का विध्वंस कर दिया।

अशोक

परन्तु इस प्रकार भारतवष की राजनैतिक एकता स्थापित करने के उपरान्त अशोक का मन उस क्षत्रिय धर्म से फिर गया जिसकी शक्ति से साम्राज्य स्थापित रहते हैं और वंशानुगत परम्पराओं में स्थिर रहकर किसी देश को अजेय बना देते हैं। उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

बौद्धों ने अशोक के इस जीवन को अमर बना दिया। उसकी यशो गाथा से सिंहल से लेकर उत्तर भारत के बौद्ध ग्रन्थों के इतिहास रंगे हुये हैं। बौद्धों ने इसे प्रियदर्शी कहा

अर्थात् जिसका दर्शन प्रिय हो परन्तु आर्य्य इतिहासकारों ने एक बड़ी मधुर उपाधि दी। उन्होंने उसे देवानां प्रिय कहकर पुकारा। उसमें मधुरता यह है कि देवानां प्रिय का शब्दार्थ देवताओं का प्यारा तथा उसका भावार्थ भोला भाला मूर्ख है। कुछ भी हो जिसे बौद्धों ने अशोक का पतन काल कहा था उसे आर्य्यों ने क्षात्र धर्म का काल कहकर उसकी बड़ाई की तथा जिसे बौद्धों ने उसका उन्नति काल कहा उसे आर्य्यों ने भूल का काल अवश्य समझा।

बौद्ध होने के उपरान्त ही अशोक की मनुष्यता का विकास हुआ इसमें सन्देह नहीं। अब वह सचमुच भोला भाला तथा धर्म परायण सम्राट बन गया। उसने शस्त्र बल की उपेक्षा करके प्रेम से साम्राज्य स्थापित करने की चेष्टा की। उसने अपने प्रेम के आदेशों के प्रचार के लिये तीन प्रकार से कार्य्य किये। पहला काम उसने ईसा से २४२ वर्ष पूर्व बौद्ध विद्वानों की सभा करके धर्म के सम्बन्ध में मत भेद दूर किये।

धर्म प्रचार के लिये उसने दूसरा उपाय यत्रतत्र पर्वतों पर शिला लेख, स्तूप और लाट बनवाये। जिन पर धर्मोपदेश तथा प्रचारिक उपदेश लिखा दिये।

तीसरा उपाय उसने विदेशों में धर्म प्रचारक भेज कर किया उसने अपने भाई महेन्द्र और बहिन संघमित्रा को लङ्का भेजा। इस प्रकार अपने गुरु मथुरा निवासी उपगुप्त की शिक्षाओं का उसने न केवल स्वयं पालन किया वरन् उनका प्रचार कैस्पियन सागर से पूर्व चीन तक करा दिया।

प्रारम्भ में उसे बौद्ध इतिहास लेखकों ने अत्याचारी और निर्दयी चित्रित किया है परन्तु यदि वह ऐसा होता तो मंत्रि मण्डल उसके भाई सुषुम के स्थान पर उसे राजा बनाने के लिये निमन्त्रित न करता। परन्तु उसकी मनुष्य मात्र की हित कामना तथा उसका परिश्रम शील जीवन उसे भारतवर्ष के महान् राजाओं में स्थान देते हैं। बौद्ध राजवंशों में तो उसे अद्वितीय स्थान प्राप्त है।

अशोक का व्यक्तिगत चरित्र तथा उस का स्थान

मौर्य्य साम्राज्य का इतना ही सर्वोत्तम काल है। अतएव इस समय ही इन दोनों राजाओं की राज व्यवस्था तथा उन के व्यक्तित्व का राज शासन पर संस्कृति और आचार विचार पर प्रभाव भी देख लेना चाहिये। अतः अब हम फिर चन्द्रगुप्त मौर्य्य से आरम्भ करेंगे।

प्राचीन आर्य्य राजनीति के अनुसार चन्द्र गुप्त ऐकाधिकारी था परन्तु सभा और समिति की अपेक्षा इस समय मन्त्रि मण्डल था जो उसे राज्य शासन सम्बन्धी सम्मतियां देते रहते थे।

राजा का अधिकार

अब राज्य विस्तार के साथ केन्द्र द्वारा ही सब पर शासन करना सम्भव नहीं था। अतएव समस्त राज्य सूबों में बंटा हुआ था और सूबे अनेक छोटे छोटे भागों में। सूबों के प्रधान उपराज होते थे जो बहुधा राज वंश के ही व्यक्ति होते थे। वैसे तो सब उपराज राजा के प्रति उत्तरदायी थे परन्तु मन्त्रियों की देख रेख में उपराज कार्य्य करते रहते थे।

सूबे

प्रधान सचिव, पुरोहित, महावलाधिकृत (सेनापति) तथा युव राज होते थे। इनके आधीन समाहर्त्ता (राजकीय आय व्यय का लेखा रखने वाले) सन्निधान (कोषाध्यक्ष) और न्यायाधिकरण या आदेशिक पूरे देश के न्याय विभाग की देख रेख करने वाले भी मन्त्रि मण्डल थे। किलों की रक्षा के लिये दुर्गपाल तथा कृषि स्मृद्धि की रक्षा के लिए अन्न पाल भी थे जो पैत्रिक परम्परा से होते थे।

राजा के मंत्रिमण्डल में

जो पंचायतों से शासित थे जिसका प्रधान ग्रामीण था। ग्रामों के समुदाय गण कहलाते थे इनके शासक गोप गणक या स्थानिक कहलाते थे। गणों का समुदाय जनपदों या आहरों में और अनेक जनपद सूबों में सम्मिलित होते थे। आज की व्यवस्था से तुलना करके देखिये। ग्राम, जिला, कमिश्नरी और सूबे की भांति थी सम्भवत: जनपद कमिश्नरी से छोटे और जिलों से बड़े रहते होंगे तथा गण परगने और तहसील के मध्यवर्त्ती होंगे। इस से प्रबन्ध व्यय अवश्य कम होता होगा।

राज्य शासन की इकाई ग्राम थी

उसका न्याय विभाग भी बड़ा विकसित था। ग्रामों का प्रबन्ध तथा न्याय के लिये पंचायतों का वर्णन किया जा चुका है। न्याय का सबसे बड़ा अधिकारी राजा स्वयं था परन्तु साधारणतया पंचायतें ही न्यायाधिकरण का कार्य्य करती थीं जो केन्द्र से लेकर ग्राम तक सर्वत्र फैली थी। अपराधों पर दण्ड व्यवस्था बड़ी कठोर थी विशेषतया राजनैतिक अपराधों में मृत्यु दण्ड

न्याय विभाग

ही दिया जाता था। मदिरा पान और जुआ खेलना और रिश्वत लेना भी अपराध समझा जाता था तथा उसके लिये कठोर दण्ड कोड़े लगाना आदि निश्चित थे। ये दण्ड जनता में ढिंढोरा पीट कर सार्वजनिक स्थानों पर दिये जाते थे।

गुप्तचर व्यवस्था

गुप्तचर व्यवस्था का बड़ा अच्छा प्रबन्ध था प्रतिवेदक न केवल राजधानी और नगरों में ही वरन् धनिकों तथा राजा के अन्तःपुर तक सेना में और ग्रामों में फैले हुये थे। इनके विभाग का प्रधान महा मन्त्री स्वयं था। जो राजा को प्रत्येक समय आवश्यक सूचनायें देता रहता था। इन प्रतिवेदकों के निवेदन पर तथा उनकी सूचनाओं की शुद्धता पर अपराधियों को गुप्त रूप से भी दण्ड दिया जाता था जिससे जनता में आतङ्क के साथ ही गुप्त अभिसन्धियों की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती थी।

राज्य की स्थिरता का प्रधान अंग सेना थी

अतएव एक बड़ी और शक्ति शाली सेना के बिना इतने बड़े साम्राज्य का प्रबन्ध और शांति सम्भव न थे। अतएव छः समितियों द्वारा प्रबन्धित एक सेना सदैव प्रस्तुत रहती थी। प्रत्येक समिति में ५ सदस्य होते थे। नौ सेना, रसद, पदाति (पैदल) अश्वारोही, रथ और गज सेना का प्रबन्ध प्रत्येक समिति अलग अलग करती थी।

साधारण जनता की सुख सुविधा का भी बड़ा ध्यान रक्खा जाता था। राजा स्वयं प्रति ५ वें वर्ष अपने समस्त

जनता की सुख सुविधा

साम्राज्य का दौरा करता था। राजा के पास प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रार्थना लेकर पहुँच सकता था। परन्तु राजा की जीवन शंका से राजा अंगरक्षकों द्वारा घिरा रहता था जिन में स्त्रियां और पुरुष दोनों थे। ये अंगरक्षक महाप्रतिहार की आधीनता में रहते थे। राजा पालकी पर चढ़कर शिकार आदि के लिए निकलता था। जिस पर परदा पड़ा रहता था परन्तु समय पर राजा प्रजा को दर्शन देकर उनकी प्रार्थनाएं लेता था।

राजा ने प्रजा के सुख तथा सैन्य संचालन के लिए राज्य भर में सड़कें बनवाई थीं, पाटलिपुत्र से तिब्बत, अंग, तक्षशिला और अवन्ती तक जाने के प्रशस्त और सुन्दर मार्ग थे जिनके किनारे छायाप्रद वृक्ष, कुएं और धर्मशालायें बनी थीं। इनके अतिरिक्त **राज्य भर में औषधालयों का प्रबन्ध** था। शिक्षा की उन्नति के लिए पाठशालायें थीं। वृद्धों और आशक्तों का प्रबन्ध पंचायत के आधीन था। राजा दुर्भिक्ष (अकाल) के समय राजकोष का धन निर्धन प्रजा में बाँट देता था।

नगरों का प्रबन्ध

नगरों का प्रबन्ध करने के लिए म्यूनिसिपेलटी जैसी संस्था थी। जिसमें ३० सदस्य तथा छः समितियाँ थीं। जो व्यापार, कलाकौशल, यातायात, विदेशी आगन्तुकों, जन्म-मरण का लेखा, आयकर का प्रबन्ध करती थीं। इनके अतिरिक्त व्यापारिक नगर (संगृहण) बन्दरगाह। पट्टनों का भी अच्छा प्रबन्ध था।

इस समस्त राज व्यय के लिए कृषि की उपज का ¼ भाग
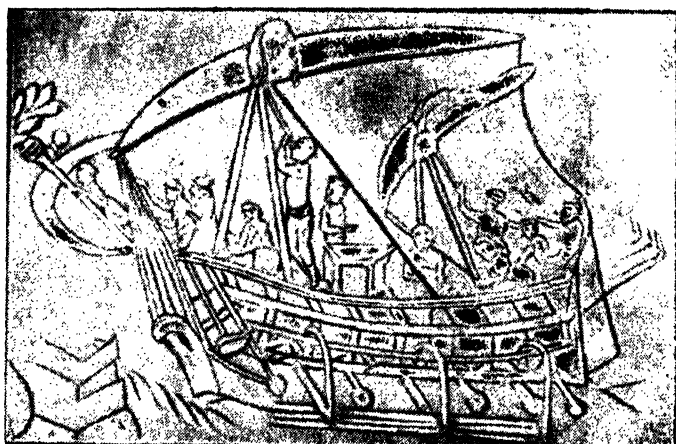
पूर्व मौर्यकाल का भारतीय जलयान

राजा लेता था। व्यापारिक कर भी कदाचित लगता था। इसका विशेष विवरण नहीं मिलता। जुवे और शराब पर भी कर था।

पाटलीपुत्र

मेगस्थनीज ने पाटलीपुत्र के वैभव सौन्दर्य का विस्तार से वर्णन किया है। उस काल के अभ्युदय का दीनता के इस युग में दर्शन करना असम्भव है। परन्तु जब हम आज से२०० वर्ष के पहले २ मील चौड़े ६ मील लम्बे मोटी लकड़ी से चार दीवारी से घिरे आयत नगर की ओर कल्पना की आँखे उठा कर देखते हैं तो आश्चर्य से चकित हो जाते हैं। चारों ओर जल पूर्ण परिखा (खाई) से घिरे इस नगर में प्रवेश करने के लिए पहले लकड़ी के उठ जाने वाले पुलों को पार किजीए फिर चौपड़ के बने हुए बाजारों में प्रवेश करने के लिए दुर्ग के गोपुर के ऊपर नौबत बजाने वालों के साथ ही सैनिकों की प्रतिवेदकों की तीखी दृष्टि के तीर सहन कीजिये।

राज भवन के सौन्दर्य का क्या कहना। सोने चांदी की बेलों से सजे ऊंचे खम्भों पर टिकी हुई इस छत मानो भारतीय और यूनानी कला का एक में संयोग दुहरा रही है। राजमहल के अनेक गुप्त गृह हैं, और गुप्त मार्ग भी। जिनसे राजा प्रतिहारियों की आंख बचाकर रात में ही निकल जा सकता है तथा उसके गुप्त प्रतिवेदक उसे राजमंत्री और महाप्रतिहार की अभिसन्धियों की सूचना देने भी आ सकते हैं।

राज भवन के एक ओर निर्मल जल से पूर्ण सरोवर है जिसमें अनेक रंगों की मछलियां तैर रही हैं। सरोवर के चारों ओर सघन कुञ्जवन मानो नगरो नगर में एक ओर विलास ही स्वयं आ गया है।

जन-गणना का कार्य प्रारम्भ हो चुका था। साथ ही व्यवसायों के अनुसार जन-गणना में विभक्त जातियों का भी वैसा ही प्रधान था जैसा महाकाव्य काल में।

सामाजिक व्यवस्था

परन्तु अन्तर्जातीय विवाह और विधवा विवाह पर कोई रोक नहीं थी। विदेश गमन की स्वतन्त्रता तथा जल यात्रा का भी अभी कोई निषेध नहीं था। सम्भवत: अभी जाति व्यवस्था केवल आर्थिक सन्तुलन के काम में आती थी। उसमें कोई कठोर बन्धन नहीं आया था अतएव निर्दोष थी। साधारण जीवन सरल और सदाचारी था। शिला लेख इस बात की साक्षी देते हैं कि शिक्षा का प्रसार अधिक था। शिक्षा का माध्यम संस्कृत और प्राकृत दोनों थीं तथा लिपियां भी ब्राह्मी और खरोष्ट्रीय दोनों थी। सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा भारतवर्ष की विशेषता है जो यहां सदा बनी रही वह इस समय भी है। दास प्रथा का भी प्रचार था।

शिल्प और स्थापत्य कला कर यूनानी प्रभाव पड़ चुका था। इसी प्रकार अन्य कलाओं में भी उन्नति हो रही थी। व्यापार का विकास अपनी सर्वोत्तम स्थिति पर था।

प्राचीन आर्य धर्म अब भी जीवित था। यद्यपि बलि की प्रथा बन्द हो चली थी परन्तु अशोक ने अपने प्रचार द्वारा बलि प्रथा के साथ ही आर्य धर्म पर भी बड़ा प्रभाव डाला। ब्राह्मणों का महत्त्व बहुत घट गया। अतएव धर्म के सम्बन्ध में स्वच्छन्दता चल पड़ी थी। राजा की ओर से धार्मिक सहन शीलता का भाव सदैव बना रहा परन्तु आर्य धम में शिव और

धर्म व्यवस्था

विष्णु की पूजा जो महाकाव्य काल में प्रारम्भ हुई थी इस समय अधिक प्रचार पा गई थी। बौद्ध भी बुद्ध भगवान की मूर्त्ति बना कर पूजा करने लगे थे। कर्म का स्थान भक्ति ले रही थी। परन्तु हठयोग की क्रियाओं और तन्त्र शास्त्र के साथ ही फलित-ज्योतिष का प्रचार भी बढ़ रहा था। बौद्धों में भी श्रमण और यति सम्मान की दृष्टि से देखे जाते थे। पाप, पुण्य, इहलोक और परलोक पर लोगों का ध्यान बार बार खींचा जा रहा था। साधारण जीवन में दर्शन की अपेक्षा सदाचार पर विशेष बल दिया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि मौर्य्य साम्राज्य भारतवर्ष के ज्ञात इतिहास का स्वर्ण युग है। जिसमें देश की सर्वतोमुखी उन्नति हुई।

वह योग्य, परिश्रमी, सरल स्वभाव का, विचारशील, शांति प्रिय व्यक्ति था।

वह धर्म का प्रचारक था परन्तु उसने अन्य धर्मावलम्बियों पर अत्याचार नहीं किया। उसने सदैव प्रजा की धार्मिक भावना को ऊंचे उठाने का यत्न किया।

वह मनुष्यों से ही नहीं वरन्. पशुओं से भी प्रेम करना सिखाता था। इसके लिये उसने पशु चिकित्सालय भी खुलवाए थे।

उसने शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति की चेष्टा की।

इसका उद्देश्य संसार को शान्ति और प्रेम का सन्देश देना था अतएव उसने विदेशों में भी अपना प्रेम का सन्देश भेजा।

उसने इस प्रेम प्रचार की लगन में सेना की ओर ध्यान नहीं दिया और यही मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण हुआ। उसकी वीर धर्म की उपेक्षा ने साधारण जनता में इसका प्रतिबिम्ब उपस्थित किया। लोग वीर धर्म से उदासीन होकर बौद्ध और सन्यासी बनना अधिक अच्छा समझने लगे। इस लिये वीर भावना दब गई और सैनिक शक्ति निर्बल हो गई।

कुछ ऐतिहासिक इसकी तुलना सिकन्दर से करते हैं परन्तु H. G. Wells के शब्दों में वह विश्व के इतिहास का एक चमकता हुआ सितारा है। जिसकी ज्योति अनन्त काल तक मन्द न होगी। अभी तक वाल्गा के तट से जापान तक उसके यश के गीत गाने वाले उपस्थित हैं।

हैदराबाद (दक्षिण) दक्षिण में गंजाम जिले में जयगढ़ में, पुरी जिले में धौली में, सहसराम में, बम्बई के सुपारा, में रूपनाथ जबलपुर में, काठियावाड़ में, गिरिनार पर्वत, वैराठ (जयपुर) कालसी जिला देहरादून, नौशेरा जिला (नौशेरा में) शहवाज गढ़ी जिला पेशावर में उसके शिला लेख मिलते हैं।

उसकी राजाज्ञायें शिवालक पर्वत इलाहाबाद, आरा, सांची, सारनाथ, तथा वस्ती जिले में लाटों पर लिखी हैं। इन के अतिरिक्त उसके और भी लाटों पर राजाज्ञायें लिखवाई जो कुल १२ मिली हैं। गुफाओं में सुरक्षित शिला लेख भी पाये गये हैं जो उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में खरोष्ठी लिपि में तथा विहार की बरबारा पहाड़ियों में ब्रह्मी लिपि में हैं।

आज का भारतीय चक्र जो राष्ट्रीय झण्डे के मध्य में

अशोक का साम्राज्य
काबुल
कम्बोज
गज़नी
पेशावर
तक्षशिला
श्रीनगर
गान्धार
यवनराज्य
साकल
मुलस्थानपुर
अम्बाला
टोपरा
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
बैराट
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
पाटलिपुत्र
सहसराम
मगध
चम्पा
बोधगया
अंग
विदिशा
रूपनाथ
उज्जैन
सांची
सौराष्ट्र
गिरनार
पुलिंद
ताम्रलिप्ति
जौगढ़
सोपारा
राष्ट्रीय
कलिंग
स्वर्णगिरि
सिद्धपुर
तंजोर
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
(लंका)
शिलालेख

बनता है अशोक के ही धर्म चक्र का प्रतीका है तथा उसके स्तम्भ की चोटी पर बने हुये सिंहों का चित्र हमारा राष्ट्रीय चिह्न बन रहा है।

मौर्य्य साम्राज्य का पतन विदेशियों का भारत प्रवेश

'धार्मिक असहिष्णुता का काल' २०० वर्ष ई० पूर्व से १३५ ई० पूर्व तक

जैसा अशोक की नीति में कहा गया है। राज्य सदाचार के सिद्धान्तों से नहीं चलते। अहिंसा और सत्य मनुष्य को ऊंचा उठाने वाले अवश्य हैं परन्तु वे आदर्श सामान्य मनुष्य की पहुँच से बाहर हैं तथा मनुष्य के भीतर बैठा हुआ पशु उसे सदैव विद्रोह के लिये उकसाया करता है। अशोक के वंशजों में कोई ऐसा न रहा जो मनुष्य के भीतर के इस पशु को दबाने में समर्थ होता।

मौर्य्य साम्राज्य के पतन के कारण

उत्तर पश्चिम में विदेशियों के आक्रमण निरन्तर हो रहे थे। यूनानी (वैक्टीरियन एण्टओकस) २०६ ई० पूर्व शकों को उसके निवास स्थान से यूची भगा रहे थे वे उत्तर पश्चिम मार्ग से भारत में प्रवेश कर रहे थे उनकी शक्ति का सामना करने के लिये सैनिक शक्ति आवश्यक थी जो बौद्ध धर्म के अहिंसा प्रचार ने लगभग मुरदा कर दी थी।

अशोक के काल में ही सूबों के उपराजों को लगभग स्वतन्त्रता प्राप्त हो चुकी थी। उसकी मृत्यु के साथ ही सम्प्रति और दशरथ अशोक के पौत्र स्वतन्त्र हो गये और दोनों में शक्ति के बट जाने से सैनिक शक्ति और भी निर्बल हो गई।

अशोक के उपरान्त बौद्धों में धार्मिक सहनशीलता नहीं रही। ब्राह्मण प्राचीन आर्य धर्म के मानने वाले थे। उन पर जब अत्याचार आरम्भ हुये तो उन्होंने बौद्ध शक्ति को भीतर ही भीतर खोखला करना आरम्भ कर दिया। काश्मीर से लेकर दक्षिण तक जहां जहां प्राचीन आर्य धर्म पर अत्याचार होता था वहां वहां आर्य शक्ति विद्रोह करती थी। जहां उसका विद्रोह सफल होता था, एक स्वतन्त्र आर्य राज्य की स्थापना हो जाती थी। जहां असफल होता था उनका निर्दयता और रक्तपात से दमन होता था जिससे फिर एक उत्तेजना पैदा होती थी और विद्रोह की योजनायें बनने लगती थीं।

बौद्धों में अधिक सम्पत्ति के आ जाने से प्रचार हीनता बढ़ रही थी। विहार और संघाराम दुराचार के केन्द्र बन रहे थे जिससे न केवल धर्म की हानि हो रही थी वरन् राज्य शक्ति भी निर्बल हो रही थी क्यों कि इन संघारामों का राज्य सत्ता से सीधा सम्बन्ध था।

आर्य धर्म में विद्वान और कठोर प्रचारक बौद्ध शक्ति को क्षीण करने में उत्तर और दक्षिण भारत एक कर रहे थे। ईसा की पहली शताब्दी में काशी राज की राजकन्या का यह वाक्य उस समय की स्थिति का पता बताने वाला है। अपने झरोखे पर बैठी राजकन्या कहती है।

किं करोमि क गच्छामि को वेदानुद्धरिष्य ? मैं क्या करू, कहां जाऊं, वेदों का उद्धार कौन करेगा ? क्योंकि वह जानती थी कि केवल उसके धर्म पर ही आक्रमण नहीं होगा वरन् उसका चरित्र भी कुछ मुण्डित बौद्ध श्रमणों के लिये खेल की वस्तु बन जायगा। उस समय कुमारिल भट्ट का उत्तर भी

प्राचीन आर्या संस्कृति के अभिमान और तेज का द्योतक था। उसने कहा "मा चिन्तय वरारोहे भट्टाचार्य्योत्र जीवति" चिन्ता मत करो यह भट्टाचार्य्य जीवित हैं शास्त्र से और शस्त्र से तुम्हारी रक्षा करेगा। ब्रह्म तेजस्वी गुरू के इस वाक्य ने काशी को बौद्ध धर्म का अनुयायी होने से बचा लिया। (बौद्धों के शास्त्रार्थ और शस्त्रबल उसे बौद्ध न बना सके।

इस प्रकार आर्य्य धर्म के प्रचारकों ने भी भारत की शक्ति को टुकड़ों टुकड़ों में बांट कर धर्म की रक्षा तो की परन्तु देश की रक्षा के लिये असमर्थ बना दिया।

संक्षेप में बौद्ध धर्म के उत्थान के साथ ही मौर्य्य साम्राज्य का पतन जुड़ा था वही हुआ भी।

प्रश्न

(१) चन्द्रगुप्त मौर्य्य कौन था उसने किस प्रकार राज्य प्राप्त किया?

(२) मेगस्थनीज द्वारा वर्णित भारतवर्ष की सांस्कृतिक तथा राजनैतिक स्थिति का वर्णन करो।

(३) अशोक के व्यक्तित्व का वर्णन करके हिन्दू और बौद्ध के दृष्टिकोणों से उसके कार्य्यों पर विचार करके उसके नामों की सार्थकता समझाओ।

(४) मौर्य्य साम्राज्य के पतन के कारणों पर विचार करो।

———

तेरहवाँ अध्याय

मौर्यान्त काल की राजनैतिक स्थिति

तुलनात्मक चार्ट की ओर देखिये। आप देखेंगे कि इस काल में कौन कौन सी शक्तियां भारतवर्ष में अपनी सत्त जमा रही थीं।

सम्मुख के चार्ट से प्रतीत होता है कि भारतवर्ष के मुख्यतया तीन भाग हो गये थे। पश्चिम की धुरी मगध थी, दक्षिण की आन्ध्र तथा उत्तर पश्चिम की पंजाब और काबुल थी।

अब हम इनका अलग अलग वर्णन करेंगे।

शुङ्ग वंश के प्रथम राजा पुष्यमित्र शुङ्ग के राज्यारोहण से पूर्व मगध शक्ति निर्बल हो गई थी अतएव उत्तर पश्चिम प्रदेश में यूनानी शक्ति फिर प्रबल हो उठी। इस वंश की दो शाखायें थीं एक शाखा यूथीडिमुस थी जिसने उत्तरी पूर्वी पंजाब पर अधिकार जमा लिया था इस वंश का प्रथम परिचय हमें पुष्यमित्र शुङ्ग से युद्ध और डिमेट्रियस की पराजय में मिलता है। यह घटना इसे १८५ वर्ष पूर्व के लगभग की है। इस वंश का दूसरा राजा मेनेडर था जिसने पुष्पमित्र के वंशज वसुमित्र पर ई० से ११० वर्ष पूर्व चढ़ाई की और पराजित हुआ। यूनानी वंश की दूसरी शाखा यूक्रेटाइढस वंश की थी इसका अधिकार पश्चिमी दक्षिणी पंजाब तथा काबुल

पश्चिमोत्तर प्रदेश

मगध

दशरथ से बृहद्रथ तक
१६१ ई० पूर्व तक
|
शुङ्ग वंश
|
पुष्य मित्र १८५ ई० पू० से
|
अग्निमित्र
|
आठ राजा (वसुमित्र ११० ई०पू०
मिलिन्द पराजय) भगभद्र
(हेलियोडोरस का आगमन)
देवमूर्ति ७२ ई० पूर्व
|
वसुदेव कण्व २८ ई० पू० तक
|
खारवेल

आन्ध्र

शिशुक २१३ से १८२ ई० पू०
|
कृष्ण १८२–१७२ ई० पू०
|
शातकर्णी १७२-१६२ ई० पू०
|
गौतमीपुत्र शातकर्णी १००–४४ई०पू०
|
हाल १७ से २१ ई०
|
यज्ञश्री १५७ से १८६ ई०

पश्चिमोत्तर प्रदेश यूनानी

डेमीड्रियस १८५ ई०पू० के लगभग
|
मेनेण्डर ११० ई० पू०
शक
|
मेन्स या माओस ७५ ई० पू०
|
मेजेज ५८ ई० पू०
|
महपन ७८ ई० से १२० ई० तक
|
चष्टन + +
|
रुद्र दमन १५० ई० के लगभग

पर था। इन राजाओं से शुङ्ग वंश का दूत सम्बन्ध बना रहा तथा उन्हीं का राजदूत होलियोडोरस वसु मित्र के वंशज भगभद्र की राज सभा में आया था यह घटना ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व की है। इसके वन्शजों ने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिआ था और कृष्ण का उपासक था।

परन्तु इन दोनों राज्यों को शकों ने ध्वस्त कर दिया। ये शक जेहूँ सेहूँ के तट के निवासी थे परन्तु मध्य ऐशिया की यूची जाति से पराजित होकर दक्षिण की ओर बढ़े थे। इनकी दो शाखायें हो गईं एक ने ईरान पर अधिपत्त जमाया तथा दूसरी ने काबुल, पंजाब,राजपूताना,मालवा,गुजरात और सिन्ध पर अधिकार जमाया। इस वन्श का पहिला सम्राट मेन्स यामाओम था जिसने ईसा से ७५ वर्ष पूर्व यूनानी काबुल राज्य का अन्त कर दिया। उसके उत्तराधिकारी मेजेज ने ईसा से ५८ वर्ष पूर्व पंजाब को भी यूनानियों से जीत लिया तथा अपना सम्वत् ईसा से ५७ वर्ष पूर्व में चलाया। जिसका विक्रम सम्वत् के नाम वैसे आज भी प्रचार है।

शकों के ईरान से उत्तर पश्चिम भारत तक फैले हुए साम्राज्य के शासक क्षत्रिय कहलाते थे। जो लगभग स्वतंत्र राज्य थे। परन्तु जातीय संगठ इनमें बड़ा बलवान था। इन क्षत्रियों पर बाहरी आक्रमण होते ही सब संगठित होकर युद्ध करते थे। इनके राज्य सौराष्ट्र, सिन्ध, मालवा, राजपूताना, मथुरा और पञ्जाब में विस्तृत थे।

इस वंश में प्रथम भारतीय राजा नहपन है शक वंश का प्रथम राजा महपन ७८ ई० से १२० तक राज्य करता

रहा इसी का वंशधर रुद्रदमन हुआ जिसका काल १५०
ई० के लगभग है। यह मालवा प्रदेश का स्वामी था।

मगध की स्थिति में स्थिरता नहीं थी। पुष्यमित्रशुङ्ग,
पराक्रमी राजा था। कुछ लोगों का मत है कि शुङ्ग वंश विदेशी
वंश था तथा कुछ का मत है कि शुङ्ग वंश
ब्राह्मण वंश था। यह सच है कि शुङ्ग काल
में ब्राह्मणों से प्रचारित धर्म को प्रश्रय मिला
और बौद्ध धर्म के विकाश काल में ब्राह्मण धर्म को जीवित
रहने की प्रेरणा इन्हीं से मिली अतएव सम्भव है कि शुङ्ग
वंश ब्राह्मण वंश रहा हो।

मगध

शक्ति में भी यह वंश समर्थ था। ऊपर कहा जा चुका है
कि यूनानियों को इस शक्ति ने एक बार नहीं दो बार
ठोकर मार दी। पुष्यमित्र शुङ्ग का काल ईसा से १८५ वर्ष
पूर्व से प्रारम्भ होता है। इसके पौत्र वसुमित्र शुङ्ग ने यूनानी
राजा मेनेण्डर (मिलिन्द) को पराजित किया। अपने विश्वास
घाती मंत्री वसुदेव कण्व द्वारा इसका वंशज देवमूर्ति ७२ ई०
पूर्व में मारा गया तथा शुङ्ग वंश का अन्त हो गया वसुमित्रकण्व
का वंश भी अधिक काल तक न चल सका केवल ४७ वर्ष के
शासन के उपरान्त इस वंश का विनाश आन्ध्र प्रदेश के
शतकर्णी राजाओं द्वारा हो गया।

आन्ध्र प्रदेश विन्ध्याचल के दक्षिण का देश है। इस वंश
का उदय उत्तर वैदिक काल से महाकाव्य काल तक पीछे ले
जाया जा सकता है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस
वंश को पराजित करके मगध साम्राज्य का
अङ्ग बना लिया था। परन्तु अशोक के राज्य

आन्ध्र प्रदेश

के उपरान्त आन्ध्र राज्य फिर शक्तिमान हो गया। इसका प्रमुख राजा शिशुक या शिमुख ईसा से २१३ वर्ष पूर्व आन्ध्र देश का अधिकारी हुआ। इनकी राजधानी प्रष्ठान या पाथन थी। शिशुक या उत्तराधिकारी कृष्ण शात वाहन था इसने पश्चिम में समुद्र तट तक प्रदेश जीत लिया इसका काल लगभग १८२ ई० पूर्व से १७२ ई० पूर्व तक है।

तृतीय शात वाहन राजा शातकर्णी ने साम्राज्य का और भी अधिक विस्तार किया और दक्षिणमें मैसूर से उत्तर का समस्त प्रदेश आन्ध्रराज्य में सम्मिलित कर दिया इस प्रकार दक्षिण भारतवर्ष को लग भग अपने वश में करके शात वाहन बंशजों ने उत्तर भारत की ओर दृष्टि दी और गौतमी पुत्र शतकर्णी अथवा उसकी संतान पुलुमयी ज्ञानकर्णी कण्व बंश का अन्त करके मगध को भी आन्ध्र साम्राज्य का अङ्ग बना लिया। इस प्रकार आंध्र साम्राज्य में एक बार फिर पूर्वी आधे भारतवर्ष और दक्षिण भारतवर्ष को संगठित होने का अवसर मिला।

परन्तु इस बंश का अन्तिम राजा पुलुमयी को शक क्षत्रिय रुद्रदमन की कन्या से विवाह करके भी बार बार उससे पराजय ही प्राप्त हुई। और धीरे धीरे उत्तर का सब राज्य शात वाहन वंश के अधिकार से निकल कर शकों के अधिकार में आ गया अथवा छोटे छोटे अनेक राज्यों में विभक्त हो गया।

श्री शतकर्णी के समय एक धक्का मगध शक्ति तथा शात वाहन शक्ति को कलिंग देश के नाग बंशीय राजा खारवेल ने भी दे दिया था खारवेल के काल के सम्बन्ध में बड़ा मत भेद है कुछ लोग इसे शुंग वंश का प्रथम नायक पुष्यमित्र का सम कालीन मानते हैं तथा कहते हैं कि उस काल में उसने मगध के

दक्षिण तथा विन्ध्याचल के उत्तरपूर्व से पश्चिम में मालवा तक अपनी विजय या डंका बजा दिया था उसने मगध के राजा वृहष्टिमित्र को भी पराजित किया था परन्तु अन्त में पुष्य मित्र शुङ्ग से पराजित हो गया।

इस काल की सामाजिक स्थिति

जैसा कि ऊपर कहा जाचुका है यह काल धार्मिक संघर्ष का काल था अतएव इस काल में बौद्ध और आर्य परस्पर लड़ते रहे। मगध का बौद्ध साम्राज्य अब पतित होने लगा था अत-एव बौद्ध लोग पश्चिम की राज शक्तियों का आश्रय ले रहे थे शात वाहन और शुङ्ग दोनों वंश ब्राह्मण थे इन्होंने राज शकितयों को हाथ में लेकर एक बार फिर आर्य धर्मका प्रचार प्रारम्भ करदिया परन्तु बौद्धों ने विदेशी राज्यों से गठ बन्धन आरम्भ करके परस्पर युद्ध की परम्परा बनाये रखी। एक बौद्ध राजा पराजित हो जाता था तो दूसरा बौद्ध राजा युद्ध के लिये उभारा जाता था इस प्रकार भारतवर्ष में जन साधारण को शान्ति नहीं थी। धर्म के नाम पर अत्याचार भी होने लगे थे। बौद्ध शक्ति में प्रभावित क्षेत्रों में आर्य धर्म के मानने वालों को प्रायः दण्ड दिया जाता था साथ ही आर्य धर्म मानने वाले प्रदेशों में बौद्धों की कुशल नहीं थी साधारण सामाजिक जीवन भी सुव्यवस्थित न रहा था।

राजनैतिक अशान्ति के कारण देश का व्यापार और कलायें यवन कला की ओर जा रही थीं परन्तु स्थापत्य कला में उन्नति हो रही थी। कुछ राजा कविता प्रेमी भी थे। जैसे शात वाहन राजाओं के उत्कर्ष काल में राजा हाल स्वयं कवि था उसने सप्त-

सती का प्राकृत भाषा में निर्माण किया। जो शृङ्गार रस की एक अद्भुत रचना है। संस्कृत की उन्नति फिर हो चली थी।

धर्म जन-साधारण में भगवान बुद्ध के द्वारा पहुँचाया हुआ धर्म स्थान पा चुका था परन्तु ब्राह्मण, आर्य धर्म के पुनरुद्धार में लगे हुये थे। उन्होंने बौद्ध और जैनधर्म की आवश्यक बातें जैसे धर्ममूर्तिपूजा,शिव और विष्णु पूजा,अहिंसा और सामान्य सदाचार के सिद्धान्त अपने धर्म में ले लिये थे। परन्तु वर्ण धर्म को प्रधानता देकर फिर सामाजिक ढांचे को ढालना चाहा था। विदेशियों को अपना धर्म सिखाने तथा उन्हें स्वधर्म की दीक्षा देने में अभी ब्राह्मणों को संङ्कोच नहीं हुआ था। जो विदेशी आर्य धर्म को मानने लगते थे उन्हें एक अलग वर्ण में रख दिया जाता था इस प्रकार जातियों की संख्या बढ़ रही थीं। आश्रम व्यवस्था का लग-भग लोप सा हो गया था। केवल ब्राह्मण बालक ही गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त करते थे। बौद्धों की शिक्षा के लिये देश में सर्वत्र विहार और संघ थे। बौद्ध धर्म में भी हीनयान और महायान सम्प्रदाय अलग अलग दिखाई देने लगे थे।

राजनैतिक उलट फेरों के कारण देश के अन्तर का व्यापार तो रुक सा गया था परन्तु विदेशों से समुद्र मार्ग से व्यवसाय अब भी उन्नति पर था। देश से मूल्यवान पत्थर, मोती, मसाले तथा रेशमी, ऊनी, सूती कपड़ों से भरे भारतीय व्यापारी जहाज रूम सागर से लेकर चीन तक अब भी व्यापार करते थे। तथा विदेशों में अपने उपनिवेश बनारहे थे। स्याम के दक्षिण में चम्पा, कम्बोडिया, जावा, वोर्नियो, वाली, सुमात्रा तथा मेलाया

आर्थिक व्यवस्था

प्रायद्वीप में इस समय भारतीय उपनिवेश थे। इसी प्रकार आर्मीनिया, मेसोपोटामिया, पूर्वी अफ्रीका और मिश्र में भी आर्यों की बस्तियों के जो चिन्ह भू-तत्त्व-वेत्ताओं को प्राप्त हुये हैं वे इसी काल से सम्बन्ध रखते हैं।

मौर्यकाल की भांति ही इस समय भी राज्यों का विभाग था और उसी प्रकार के अधिकारी थे।

सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्था।

परन्तु आहरों में राज कर एकत्र करने वाला एक भाण्डागार होता था जिसके अधिकारी को भाण्डागारिक कहते थे। असवर्ण विवाह में कोई रोक टोक अभी नहीं उत्पन्न हुई थी। वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण में अन्तर्जातीय विवाह तो होते ही थे विदेशियों से विवाह विधि में कोई रोक टोक नहीं थी। इस समय जातिव्यवस्था में ऊंच नीच का भाव आने लगा था। कलाकार, बढ़ई, माली, लोहार, नाई, केवट आदि नीचे उतर रहे थे। उनसे ऊपर व्यवसाई थे फिर शासक वर्ग, नगर पति, संघों के नेता उनसे अच्छे समझे जाते थे। तथा सर्व श्रेष्ठ स्थिति में सामन्त, महारथी, महाभोज अथवा महासेनापति की गणना थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि जाति भेद में ऊंच नीच का भाव सबसे पहले इसी काल में दिखाई दिया जो आगे चलकर हिन्दू समाज के गले की फांसी बन कर उसके कष्टों का कारण बन गया।

एक विशेषता इस काल में और उत्पन्न हुई। कोई भी व्यक्ति अपना धर्म परिवर्तन करके भी जाति में अन्तर उत्पन्न नहीं कर पाता था। ब्राह्मण यदि बौद्ध हो जाय तो भी ब्राह्मण ही रहता था। हिन्दू धर्म इस दिशा में जन प्रिय होने लगा था।

प्रश्न

(१) इस काल को भारतवर्ष की उलझी हुई कहानी कहते हैं, क्यों ?

(२) इस काल की सामाजिक स्थिति की तुलना मौर्य काल तथा महाकाव्य काल से करो।

(३) सिद्ध करो कि यह काल ब्राह्मण राज्यकाल था।

———

चौदहवाँ अध्याय

विदेशी शक्तियाँ

(विदेशी शक्तियों का प्राबल्य तथा बौद्ध धर्म की अन्तिम शिखा और वर्त्तमान हिन्दू संस्कृति का जन्म ।

१२० ई० पूर्व से ३० ई० तक

हम ऊपर देख चुके हैं कि मौर्य साम्राज्य के पतन के उपरान्त अनेक प्रयत्न इस लिये हुए थे कि फिर भारतीय राजनैतिक एकता प्राप्त की जा सके परन्तु इस प्रयत्न के आधार ब्राह्मण थे। शातकर्णियों के एक विज्ञप्ति में मिलता है "कि" शातकर्णी केवल वैदिक संस्कृति की रक्षा के लिये शस्त्र ग्रहण किये हैं जिस दिन योग्य क्षत्रिये सम्मुख होगा शातकर्णी अपना शस्त्र उसे सौंप कर स्वयं वही त्याग का मार्ग लेगा। ४५० वर्ष के शातकर्णी शासन में केवल दो एक विलास प्रिय राजाओं का होना उनके त्यागमय जीवन का आदर्श है। परन्तु क्षत्रिय जाति बौद्धधर्म के महामंत्र से ऐसी मुग्ध हुई कि उसने ८०० वर्ष तक करवट ही नहीं बदली। फलतः जलशूर ब्राह्मण रणशूर का कार्य्य और अधिक न चला सका विशेषतया उस दशा में जबकि उत्तर पश्चिम से एक एक पर एक आघात निरंतर हो रहे थे। शकों को उसने आभीरों में बदल दिया, गुर्जरों में बांट दिया, कच्छियों की संज्ञा दी। उन्हें शक्ति मिली वे तो सँभले परन्तु भारतवर्ष का

वैदिक क्षत्रिय सोता ही रहा। उसने अपनी सत्ता को बौद्धधर्म के समुद्र में डुबा दिया। फलतः फिर एक आक्रमण हुआ और भारतवर्ष का अधिकांश उत्तरी पश्चिमी भाग विदेशियों के आधीन हुआ। यह आक्रमण कुशाण वंश का था।

कुशाण वंश

कुशाण वंश यूची वंश की वह शाखा थी जिसने शकों को जेहूं सेहूँ के तट से ईरान और भारतवर्ष में भगा दिया था परन्तु अन्त में उसे भी अपना स्थान छोड़ कर दक्षिण की ओर हटना पड़ा।

हमारा सम्बन्ध मध्यऐशिया के इस इतिहास से नहीं है अतएव उसका वर्णन छोड़ कर हम भारत से कुशाण वंश के सम्बन्ध पर विचार करते हैं।

हिन्दूकुश पर्वत माला के समीपवर्त्ती भाग पर शासन करने वाले कुशाण राजा कदफ या कुयुलकफस से कुशाण वंश का भारतवर्ष से सम्बन्ध प्रारम्भ होता है। उसके पुत्र वेमकदफ ने शकक्षत्रप को पराजित करके काबुल और पंजाब पर अधिकार कर लिया और सिन्धु की घाटी से पततवों को पराजित करके समस्त उत्तरी भारतवर्ष पर अधिकार कर लिया। यह घटना ईसा की पहली शताब्दी की है।

कनिष्क के विचार

कनिष्क की जितनी ख्याति उसके युद्धों तथा विजयों पर नहीं निर्भर है उतनी उसकी बौद्धधर्म की सेवाओं पर निर्भर है। उसने बौद्धधर्म को मध्यऐशिया का धर्म बना दिया। यद्यपि उसके पहले के सिक्कों पर सूर्याचन्द्र आदि हिन्दू देवताओं के चित्र हैं परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि अशोक की भांति इन युद्धों के वीभत्स दृश्यों ने ही उसे बौद्धधर्म का अनुयायी बना

दिया। उसने देखा कि बौद्ध धर्म का मूलतत्त्व अनेक सम्प्रदायों में बँट कर उलझन का विषय बन गया है अतएव उसने सत्य का निर्णय करने के लिये अपने गुरु पारस्व की प्रेरणा से समस्त बौद्ध विद्वानों को एकत्रित करके १०० ई० में एक सभा की। कुण्डलवन में (श्रीनगर के पास) सुदूर प्रदेशों से पधारे हुये ५०० बौद्ध पण्डितों की इस सभा में धर्म के तत्त्वों पर वादविवाद होने लगा। दो दल स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। एक सरल जीवन और सदाचार को ही धर्म का मुख्य अंग मानते थे, दूसरे उस में बौद्धमूर्त्ति का पूजन और हठयोग की क्रियाओं को परमावश्यक समझते थे। फल यह हुआ कि दो विभिन्न सम्प्रदाय इस समय एक दूसरे से स्पष्ट रूप में अलग हो गये। बौद्ध धर्म के सरल जीवन और सदाचार को मानने वाले सम्प्रदाय तथा बुद्ध भगवान की मूर्ति पूजा तथा हठयोग को मानने वाले सम्प्रदाय को महायान सम्प्रदाय कहते हैं।

कनिष्क की विजय

ईसा को दूसरी शताब्दी में कुशाण वंश का सूर्य उदय हुआ। वेमकदफ के पुत्र कनिष्क ने १२० ई० में इस साम्राज्य का भार अपने हाथों में लेकर उसे एक वास्तविक साम्राज्य बना दिया। उसने न केवल मध्यऐशिया के तिब्बत, यारकन्द कारागर और खुतन को साम्राज्य में सम्मिलित किया वरन् काश्मीर, मध्य देश राजपूताना, सिन्ध और पश्चिमी संयुक्त प्रान्त को अपने आधीन करके एक महान साम्राज्य की स्थापना की। उसने पुरुषपुर (पेशावर) को अपनी राजधानी बना कर इस समस्त प्रदेश का बड़ी योग्यता से शासन किया।

उसका सब से बड़ा कार्य्य बौद्ध धर्म की दूसरी विराट सभा (महासंघ) की आयोजना थी। काश्मीर के कुण्डल वन में एकत्र बौद्धधर्म के उपदेशों का संग्रह कराकर उन्हें तीन पिटकों में विभाजित करा दिया। बौद्धधर्म त्रिपिटक धर्म के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस प्रकार त्रिपिटक भाष्य को पूरा करा कर उसने उसके प्रसार के लिये मध्यऐशिया का मार्ग खोल दिया। और युद्ध व्यवसायी यूची जाति को शान्ति का सन्देश दिया। उसने ४५ वर्ष तक राज्य किया।

बौद्धधर्म प्रचार

इस प्रकार अशोक के काल का बौद्ध धर्म विदेशों तक फैल कर शुद्ध सदाचार परक न रह सका। कुछ विदेशियों के प्रभाव से कुछ साधना के निश्चित मार्ग के कमी के कारण उसमें परिवर्तन हो गया। अब गौतमबुद्ध साधारण सुधारक की अपेक्षा बुद्ध भगवान हो गए और उनका पूजन होने लगा इस मत का प्रवर्तक नागार्जुन था।

कनिष्क स्वयम् महायान सम्प्रदाय को मानता था परंतु उसने किसी अन्य सम्प्रदाय पर अत्याचार नहीं किया। वह हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मों का समान आदर करता था।

उसने प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों पर बौद्ध पंडितों से टीकाएं लिखवाईं तथा इसके मुख्य तत्वों को पीतल के पत्रों पर खुदवा कर श्रीनगर के पास स्तूप में सुरक्षित रखवा दिया।

कनिष्क के उपरान्त उसका दूसरा पुत्र हुविष्क गद्दी पर बैठा क्योंकि पहला पुत्र वशिष्क उसी के काल में स्वर्गवासी हो गया था। परंतु इसके काल में उत्तर का विद्रोह प्रारम्भ हो

कनिष्क

चला था। तथा उसके पुत्र वासुदेव को पेशावर छोड़ कर मथुरा को राजधानी बनाना पड़ा ।

कुशाण वंश के इस साम्राज्य के साथ ही बौद्धधर्म की भी अन्तिम ज्योति चमक कर बुझने की ओर चल पड़ी थी। अन्तिम वासुदेव कुशाण के विनाश के साथ ही हिन्दूधर्म के वकटक और नागवंशीय राजाओं ने न केवल विदेशी शासकों को ही अन्त के समीप पहुंचा दिया वरन् नवीन हिन्दू संस्कृति का प्रसार भी प्रारम्भ कर दिया।

भारशिव वंश का प्रथम प्रधान नेता वीर सेन था । वीर सेन ने मथुरा और दोआबे की कुशाण राज्य से मुक्त करके हिन्दु संस्कृति को फिर से जगाया। इस प्रकार नाग वंश का शासन बिहार से मालवा तक फैल गया। ये राजा शैव थे । तथा इनका शासन संघ विधान द्वारा शासित था । जिनमें मालवा, राजपूताना, पद्मावती, मथुरा के गण राज्य सम्मिलित थे। इसका अन्तिम राजा भव नाग था।

वाकटक साम्राज्य

वांकटक साम्राज्य का उदय तीसरी ईसा की शताब्दी के मध्य भाग में हुआ। विन्ध्य शक्ति के द्वारा स्थापित यह राज्य बुन्देलखण्ड से उदित हुआ । पहले यह वंश नाग वंश के आधीन था परन्तु इस के पुत्र प्रवर सेन की शक्ति के समक्ष नाग वंश का दीपक बुझ गया। इसने सम्राट की पदवी धारण की तथा इसके पौत्र रुद्रसेन प्रथम का विवाह भव नाग की कन्या से हुआ। परन्तु गुप्त वंश के अभ्युदय के साथ रुद्रसेन के पुत्र पृथ्वी सेन का प्रकाश भी धीमा पड़ गया। दक्षिण में

इस वंश की शक्ति बनी रही परन्तु चालुका वंश के विकास से उस शक्ति का भी अंत हो गया।

इस काल की राजनैतिक स्थिति

क्षत्रित के रूप में पुनः सूबेदारी की प्रथा ने बल पा लिया था। वे क्षत्रय लगभग स्वतंत्र होते थे अतएव केन्द्र की शक्ति के निर्बल होते ही केन्द्र से अपना सम्बन्ध तोड़ देते थे। मध्य काल के राज्यों की स्थिति इसीलिये दृढ़ नहीं थी क्या शुङ्ग क्या सात वाहन क्या शक, क्या कुशाण, क्या नाग क्या वकटक साम्राज्य इसीलिये टिक नहीं सके। राज्य प्रबन्ध के कार्य्य में पुरानी प्रथा ही चली आती थी। उसमें कोई विशेष संशोधन नहीं हुआ।

धार्मिक जागृति के लिये इस काल का विशेष महत्व है और इसीलिये इस काल को इसके पूर्ववर्त्ती काल से अलग करना पड़ता है। बौद्ध धर्म में सदाचार की

धार्मिक जागृति

शिक्षा का महत्व होते हुये भी बुद्ध धर्म के उपदेशों पर प्रामाणिक संग्रहों का अभाव सा हो गया था। अतएव लोग धर्म-पदों की मन मानी व्याख्या करने लगे थे। कनिष्क का यह कार्य्य धर्म के क्षेत्र में नवीन क्रांति का कार्य्य था। उस में पिटकों पर भाष्य लिखा कर धर्म की व्याख्यायें निश्चित करा दी। तथा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये उत्तर पश्चिम का मार्ग भी खोल दिया। जिससे मुसलमानों के काल तक मध्य ऐशिया बौद्ध धर्म का आश्रय बना रहा। बौद्धों में इसी समय हीनयान और महायान शाखा का अन्तर स्पष्ट हुआ। धार्मिक सहिष्णुता का पुनः इस काल में प्रसार हुआ।

भारतवर्ष
शाक, कुशान और शातवाहन-
साम्राज्य
कश्मीर
तक्षशिला
मथुरा
अयोध्या
मालवा
सांची
विदिशा
उज्जैन
प्रयाग
कौशाम्बी
कपिलवस्तु
पाटलिपुत्र
नेपाल
गिरिपुर
सोपारा
नासिक
कलिंग
उदयगिरि
कांची
लंका
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
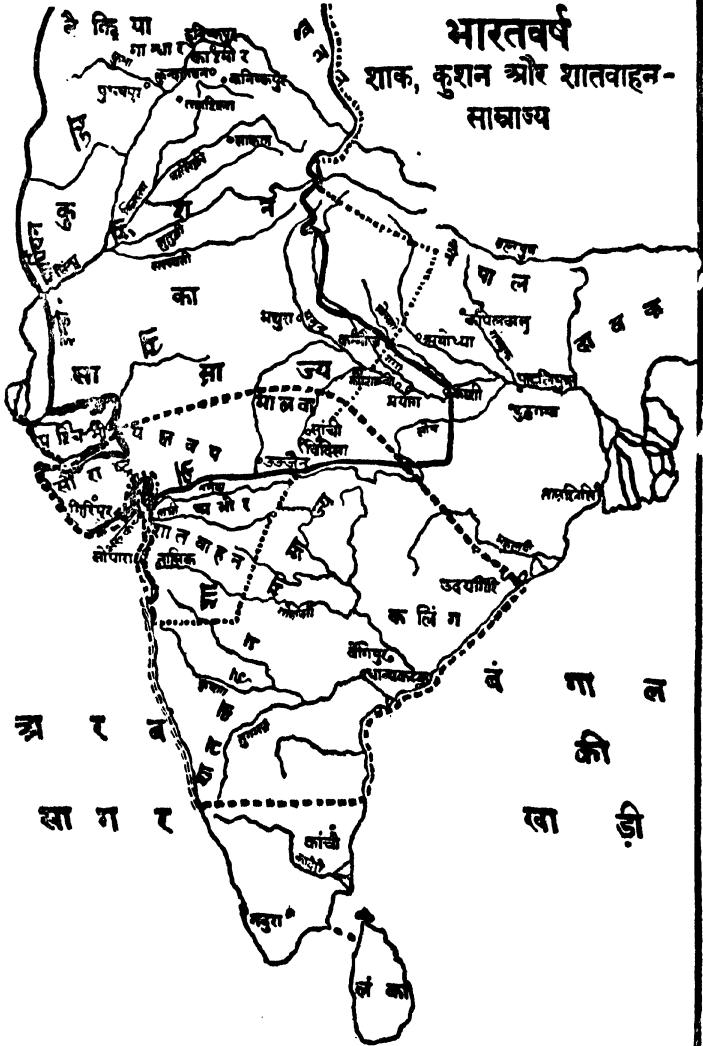
वर्त्तमान हिन्दू धर्म को भी इसी काल में विशेष बल प्राप्त हुआ। बौद्ध धर्म कुशाण राज्य काल में दीपक की सी अन्तिम ज्योति दिखा बुझने लगा था। अतएव शैव और वैष्णव धर्मों ने अपना प्रसार कार्य्य आरम्भ कर दिया था। यह काल नवीन हिन्दू धर्म के जन्म और बाल्यावस्था का काल था। समाज में विदेशी जातियों के प्रति मिश्रण से सम्पूर्ण आर्य्य रक्त के दूषित होने की आशंङ्का दिखाई पड़ने लगी थी अतएव नवागत जातियों को नवीन धर्म में ही शुद्ध किया जाता था। उन्हें सम्पूर्णतया अपने में मिलाया नहीं जाता था। रक्त शुद्धि के लिये विवाह आदि में विचार होने लगा था। शक ब्राह्मणों से आर्य्य ब्राह्मण विवाह सम्बन्ध नहीं करते थे। इसी प्रकार शक क्षत्रिय भी विशुद्ध क्षत्रियों से अलग रक्खे जाने लगे थे।

परन्तु अभी तक विदेशियों को सम्पूर्णतया विदेशी रखने की प्रवृत्ति में विशेष बल नहीं उत्पन्न हुआ था। उन्हें अलग वर्ग बना कर ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अथवा शूद्रों की श्रेणी में बांट दिया जाता था। साथ ही अनेक ऐसी जातियां भी बनने लगी थीं जो इन वर्णों में किसी में नहीं थीं। कुछ ऐसी जातियां भी बन गई थीं जिनमें अनेक द्विजाति के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने धर्म से पतित होने के कारण एकत्र होकर एक संघ के रूप में नवीन जाति का रूप ले रहे थे।

कहा जाता है कि पहला ईसाई प्रचारक भी इसी काल में भारतवर्ष में आया था परन्तु यहां उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इस काल में समुद्र की यात्रा में भी विकास हुआ। मानसून की गति विधि का भी अन्वेषण किया गया तथा भारतवर्ष

और यूनान तथा रोम के व्यापार में भी वृद्धि हुई। साथ ही स्थल मार्गों से भी भारतवर्ष का व्यापार बढ़ा।

कला कौशल

इस काल में कला कौशल का जितना आदान प्रदान भारतवर्ष और यूनान में हुआ उतना सम्भवतः सिकन्दर और मौर्य्य काल में भी नहीं हुआ था। कनिष्क ने अपनी राज सभा की शोभा के लिये यूनान से कारीगर बुलाये और ऐशिया माइनर की उनकी कृतियों के अनुरूप बौद्ध धर्म की कृतियों के अनुसार नवीन मूर्त्ति कला को जन्म दिया। इस कला को जो यूनानी तथा भारतीय कला के मेल से बनी गांधार कला कहते हैं। इसी प्रकार भारतीय वेदान्त का प्रचार भी युनान के बहुदेव वादी विचार से इसी समय स्पष्टतया सम्पर्क में आया।

गांधार कला का उदय.

इसी समय साहित्य की उन्नति भी हुई। अश्वघोष नाम का संस्कृत कवि इस काल का अति मधुर कवि है जिसने बुद्ध भगवान का जीवन चरित्र और अनेक नाटक लिखे।

चरक और सुश्रुत नामक वैद्यक ग्रन्थ इसी काल की देन है।

प्रश्न

(१) "कनिष्क बौद्ध धर्म की अन्तिम शिखा था" प्रमाणित करो तथा बौद्ध धर्म के लिये उसके किये हुये कार्यों का विवेचन करो।

(२) "कनिष्क ने यूनान और भारतवर्ष को मिला दिया" किस प्रकार हिन्दू धर्म को नव जागृति का काल इस काल को कहते हैं?

पन्द्रहवाँ अध्याय

आर्य धर्म का पुनः उदय

(६००-५०० ई०)

वर्ण आश्रम व्यवस्था में आर्य धर्म की जड़ इतनी पक्की गाड़ दी थी कि बौद्ध धर्म अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर भी उसे निर्मूल न कर सका। लगभग ६०० वर्ष के निरन्तर आघातों को सहन करके फिर आर्य्य धर्म एक बार गुप्त पताका के नीचे लहलहा उठा।

यह गुप्त वंश आज ऐतिहासिकों के लिये विवाद का विषय बना हुआ है। कुछ लोग इसे विदेशीय सिथियन वंश कहते हैं तथा कुछ लोग इसे शुद्ध क्षत्रिय वंश बताते हैं।

गुप्त वंश का उदय

कुछ लोगों का मत है कि प्रमार वंश की हैहय शाखा में ही इस वंश को भी मानना चाहिये।

कुछ भी हो गुप्त वंश ने आर्य धर्म के साथ जो उपकार किया उसके लिये हिन्दू जाति उनकी सदैव ऋणी रहेगी और इसी लिये उनका इतिहास सदैव स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

इस वंश का प्रथम राजा चन्द्र गुप्त प्रथम था। लिच्छिवि वंश की राजकुमारी, कुमार देवी के सम्बन्ध से उसे शक्ति प्राप्त हुई। पाटलीपुत्र का कन्या दान के साथ प्राप्त करके उसने बिहार और गंगा यमुना के दोआबे पूर्वी भाग तक अपना

चन्द्रगुप्त प्रथम

अधिकार फैला लिया। कुछ लोगों का मत है कि अपने अन्तिम काल में उसे मगध छोड़ देना पड़ा था जिसे उसके पुत्र समुद्र गुप्त ने पुनः विजय करके अपने साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार ३२० ई० में अपने राज्याभिषेक से सम्पत आरम्भ करके उसने ३३५ ई० में अपने पुत्र के लिये सिंहासन सिद्ध कर दिया।

समुद्र गुप्त

(३३५-३७५) भारतवर्ष का यह नैपोलियन न केवल शक्ति में नैपोलियन से तुलना करता था वरन् अपनी विद्या और कला प्रेम में उससे कहीं आगे था। पिता के अपहृत पाटलीपुत्र का उद्धार करके उसने पूर्व में यमुना नदी तक अपने राज्य की सीमा पहुँचा दी फिर दक्षिण की दिग्विजय के लिये चल पड़ा।

गंगा के दक्षिण छोटा नागपुर प्रदेश पर अधिकार करके महा नदी, गोदावरी तथा कृष्णा नदियों के समुद्र संगम तक अपनी विजय पताका फहराते हुये उसने महाराष्ट्र, खान देश, मालावार और दक्षिणी राजपूताना को भी अपने वश में कर लिया। इस प्रकार उसके साम्राज्य की सीमा पूर्व में बंगाल की खाड़ी से आरम्भ करके पश्चिम में मालवा तक पहुँच गई।

समुद्रगुप्त की नीति

महान विजयी सम्राट होते हुये भी चन्द्रगुप्त ने किसी विचार शीलता से दक्षिण का समस्त देश अपने अधिकार में नहीं रक्खा। वह जानता था कि आवागमन के सुलभ साधनों के प्रभाव में एक केन्द्र से समस्त विस्तृत साम्राज्य पर शासन करना सरल कार्य नहीं है। उसका अश्वमेध यज्ञ तथा आधीन राजाओं को करद के रूप में आमन्त्रित करना इसी बात की
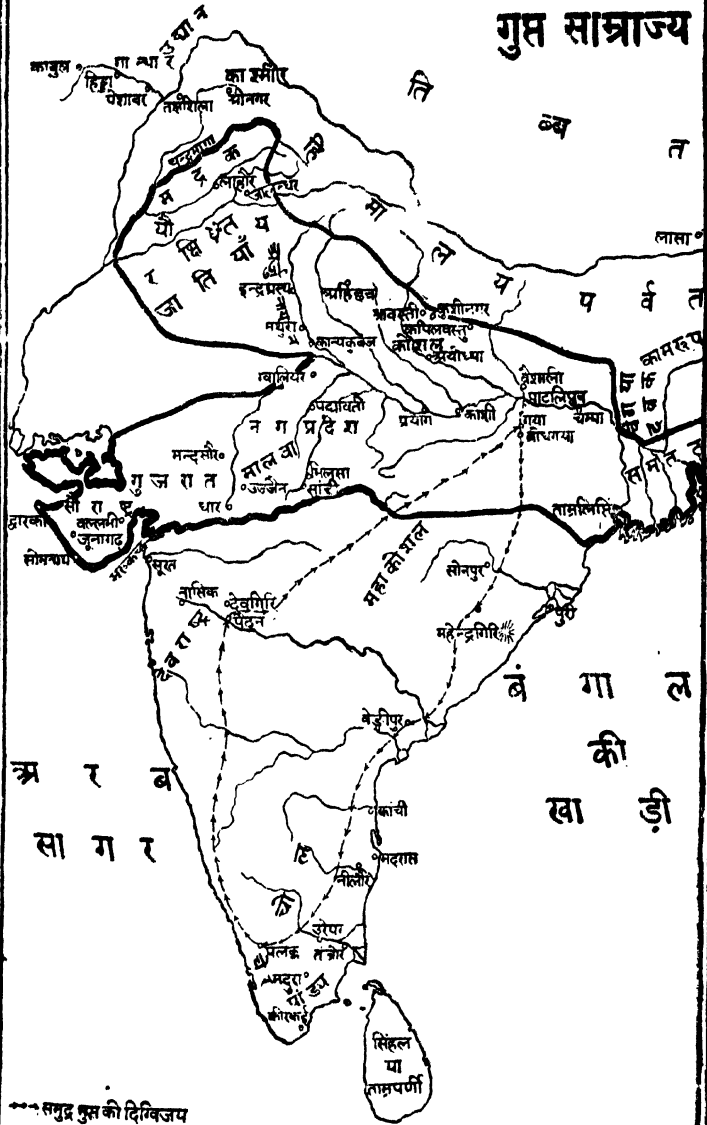
गुप्त साम्राज्य
काबुल
गान्धार
पेशावर
तक्षशिला
काश्मीर
श्रीनगर
ति ब्ब त
लाहौर
हि मा ल य प र्व त
इन्द्रप्रस्थ
अहिच्छत्र
मथुरा
श्रावस्ती
कपिलवस्तु
कोशल
अयोध्या
कान्यकुब्ज
ल्हासा
कामरूप
ग्वालियर
वैशाली
पाटलिपुत्र
प्रयाग
काशी
गया
बोधगया
चम्पा
न ग प्र दे श
मन्दसौर
मालवा
भिलसा
उज्जैन
सांची
गु ज रा त
धार
सौ रा ष्ट्र
द्वारका
वल्लभी
जूनागढ़
सोमनाथ
ताम्रलिप्ति
महाकोशल
सूरत
नासिक
देवगिरि
पैठन
सोनपुर
पुरी
महेन्द्रगिरि
बं गा ल
की
खा ड़ी
वेंगीपुर
अ र ब
सा ग र
कांची
मदरास
नेल्लोर
तंजोर
मदुरा
सिंहल
या
ताम्रपर्णी
समुद्र गुप्त की दिग्विजय

सूचना देते हैं। पश्चिमीय शक क्षत्रियों से भी उसने अधिक छेड़ छाड़ नहीं की क्योंकि दुआबे के उत्तरी छोटे छोटे क्षत्रियों को पराजित करना सरल था परन्तु पञ्जाब राजपूताना तथा सिन्ध में बसे हुये समस्त शक क्षत्रियों से छेड़-छाड़ करने का फल भयङ्कर युद्ध हो सकता था। उसका नव निर्मित साम्राज्य अभी इस योग्य नहीं था। परन्तु कनिष्क के उत्तराधिकारी देव पुत्र शाही तथा सिंहल के राजा मेधवर्मा की भेंट बताती हैं कि वे भी उसका सम्मान करते थे।

ऊपर कहा जा चुका है कि गुप्त काल आर्य संस्कृति के पुनरुत्थान का काल था। समुद्रगुप्त उस उत्थान का कर्णाधार था। स्वयं वैष्णव धर्म का अनुयायी और भक्त समुद्रगुप्त का था। वीणा बजाते हुये उसके चित्र मुद्राओं पर धार्मिक विश्वास अङ्कित पाये जाते हैं। संस्कृत को प्राकृत के तथा कला प्रेम आवरण से निकाल कर उसने पुनः सम्मान प्रदान किया। अपनी मुद्राओं पर श्लोक खुदवाये। स्वयं आर्य संस्कृति का उपासक होते हुये भी उसने बुद्ध गया का बौद्ध विहार निर्माण कराया। बौद्धों को उसने सदैव सहायता दी। उसकी विजय धार्मिक भावनाओं से प्रेरित थी। अत्याचार और लूट-मार के लिये नहीं हिन्दू धर्म का अश्वमेध यज्ञ इस प्रकार की विजय के बिना सफल नहीं हो सकता। अतएव नैपोलियन की भांति उसका उद्देश्य तुच्छ नहीं था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३७५ से ४१३ तक) योग्य पिता का योग्य पुत्र भारतवर्ष की राज्य परम्परा में अनेकों स्थलों पर देखा गया है। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य उसका उत्तम उदाहरण है।

विजेता समुद्रगुप्त का पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शकारी के नाम से भी विख्यात है। उसका कारण यही है कि मालवा और गुजरात के शक्ति शाली शक क्षत्रियों का दमन करके उन्हें देश से निकाल कर उसने यह उपाधि और साथ ही विक्रमादित्य (वीरता के सूर्य) की सार्थक उपाधि प्राप्त की थी।

बरार और उत्तरी महाराष्ट्र के वाकटक वंशीय राजा से अपनी कन्या प्रभावती का विवाह करके क्षत्रिय वंश में अपनी सम्पूर्ण विरोधी शक्ति को एक प्रकार से मिटा दिया। अपने पिता के जीते हुये साम्राज्य में अपनी विजयों से उसने न केवल सीमा ही बढ़ा दी वरन् राज्य की आय भी बढ़ा दी। गुजरात की विजय से पश्चिमीय समुद्री व्यापार पर उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया। उसके पश्चिमी व्यापार का प्रसार भी योरोप के देशों तक हो गया।

चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलीपुत्र होते हुये भी उसके काल में अयोध्या और उज्जयिनी को अत्यधिक उन्नति हुई। सम्भवतः उज्जयिनी को भी उसकी राजधानी होने का गौरव प्राप्त रहा हो क्योंकि शकों को पराजित करके पश्चिमी राज्य के प्रबन्ध की जितनी सुविधा उज्जैन से थी उतनी अयोध्या पाटलीपुत्र से नहीं थी।

चन्द्रगुप्त विक्रम के दान की कहानी बन गया है। कहानी बनने योग्य उदारता तो उसमें स्वीकार करनी ही होगी। न्याय-परायणता के लिए उसकी सिंहासन बत्तीसी की कहानियां भले ही कपोल-कल्पना समझी जाये। परन्तु उसके न्याय शील होने की ओर अवश्य संकेत करती है। धार्मिक उदारता को प्रकट

चन्द्रगुप्त द्वितीय का व्यक्तित्व

करने के लिये उसका सेनापति बौद्ध अमरकर्दन था, वह स्वयं वैष्णव तथा उसके अन्य मंत्री शैव थे। पुराणों के अनुसार प्रतीत होता है कि उसने बौद्ध-धर्म के महायान सम्प्रदाय के साधुओं से हठयोग की शिक्षा भी प्राप्त की थी। गान विद्या का भी वह पण्डित था क्योंकि दीपक राग सम्बन्धी उसकी कहानियां भी बहुत प्रसिद्ध हैं। वह स्वयं विद्वान था तथा उसकी सभा के नवरत्न (धन्वन्तरि, वररुचि, वाराह मिहिर, शंख, अमरसिंह, वेताल, घटकर्दर, कालीदास, क्षयणक) अपनी ऐसी कृतियां छोड़ गये हैं जो साहित्य जगत में चन्द्रगुप्त के विद्या प्रेम को सदैव प्रकाशित रक्खेगी।

इसके राज्य काल में चीनी यात्री फाहियान भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करने आया। वह भारतवर्ष में लगभग छः वर्ष रहा इस बीच में उसने समस्त भारत-

फाह्यान का वर्णन

वर्ष के तत्कालीन प्रसिद्ध नगरों का पेशावर से लेकर वैशाली तक दर्शन किया तथा बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया फिर लङ्का से जावा, सुमात्रा होता हुआ अपने देश लौट गया। उसने भारतवर्ष का विस्तृत वर्णन लिखा है। वह लिखता है।

देश सम्पन्न और धनी है। वस्तुयें इतनी सस्ती हैं कि कोड़ियों में उनका मूल्य किया जाता है सब लोग आतिथ्य सत्कार को अपना कर्त्तव्य समझते हैं। व्यापारी वर्ग इतना धर्म सम्पन्न है कि उनकी ओर से अनेक औषधालय तथा सदावर्त सदैव चलते रहते हैं। केवल चाण्डाल ही इस समय अस्पृश्य हैं जो नगर के बाहर रहते हैं। साधारण गृहस्थ जीवन अत्यन्त सरल और सदाचार का है। लोग लहसुन

प्याज नहीं खाते, शराब नहीं पीते। चोर डाकुओं का भय कहीं नहीं है। विद्या का बड़ा प्रचार है। सारे देश में बौद्ध विहारों का जाल है जहाँ शिक्षा की सब प्रकार से सुविधा है। ब्राह्मणों और विद्वानों में अनेक बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान् हैं। राजा प्रजा से प्रेम करता है तथा प्रजा राजा से। विहारों तथा संघों में धार्मिक उत्सव बड़े उत्साह से मनाये जाते हैं। सब में परस्पर प्रेम था। राज्य भर में सुन्दर सड़के थीं जिनके किनारे छायाप्रद वृक्ष लगे थे, स्थान-स्थान पर कुयें और धर्मशालायें थीं जिनमें भोजन मुफ्त मिलता था।

राज्य कर बहुत थोड़े थे। भूमि कर ही आय का मुख्य साधन था जो कुल उपज का $\frac{1}{6}$ भाग होता था। यह ध्यान देने की बात है कि कर बँधा हुआ नहीं था जितनी उपज हो चाहे कम चाहे अधिक उसका $\frac{1}{6}$ भाग देना पड़ता था। इनके अतिरिक्त राज्य को विदेशी व्यापार की चुंगी, वनों से आय, चमड़े के व्यवसाय, खनिज पदार्थ और औषधियों के विक्रय करों से भी आय होती थी। अपराधियों द्वारा प्राप्त अर्थ दण्ड भी राज्य की आय का साधन था।

गाँव का प्रबन्ध ग्रामिक के अधिकार में था जो ग्रामवासी वृद्धों की सहायता से प्रबन्ध करता था। अनेक ग्राम, प्रदेश या विषय के अन्तर्गत होते थे। तथा प्रदेश प्रान्त के आधीन थे प्रान्त को 'भुक्ति' भी कहते थे। यहां राज वंश का कोई प्रधान ही अधिकारी होता था। नगरों का प्रबन्ध नागरिक-समिति के हाथ में था जिसका प्रधान प्रान्तीय शासक द्वारा नियुक्त होता था। अर्थ और दण्ड व्यवस्था के अधिकार बंटे हुये नहीं थे। दोनों का प्रबन्ध एक ही शासक द्वारा होता था। समस्त राज्य

का अधिकारी स्वयं राजा था जिसकी सहायता के लिये मन्त्रि परिषद् होती थी। राजा अपने उत्तराधिकारी का निर्वाचन स्वयं करता था।

दण्ड व्यवस्था कठोर नहीं थी। साधारणतया अर्थ-दण्ड ही दिया जाता था। परन्तु विशेष अपराधों पर अथवा बार-बार अपराध करने पर अंग-भंग करने का दण्ड दिया जाता था। परन्तु चोर डाकुओं की कमी के कारण इस प्रकार के दण्ड देने की आवश्यकता ही कम पड़ती थी।

सिन्धु से यमुना तट तक बौद्ध धर्म का शेष भारत की अपेक्षा अधिक प्रचार था। वैसे समस्त भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के मठ और विहार थे। इन विहारों में यात्री तथा भिक्षुओं की सुख सुविधा का पूर्ण प्रबन्ध था। पाटलिपुत्र में बौद्ध धर्म के दोनों सम्प्रदायों के बिहारों से प्रमाणित होता है कि धर्म-पालन की सब को इच्छानुसार स्वतन्त्रता थी। इन विहारों में आये दिन उत्सव मनाये जाते थे। श्रावस्ती, कपिलवस्तु, गया और कुशी नगर की शोभा उजड़ चली थी। फाह्यान के इस वर्णन से अनुमान होता है कि बौद्ध धर्म अवनति की ओर जा रहा था।

चन्द्रगुप्त के उपरान्त राज्यासन पर आसीन हुआ। इसका राज्य काल ४१३ से ४५५ ई० तक है इसके अन्तिम काल में

कुमार गुप्त

हूण शक्ति ने भारत-वर्ष पर लगातार आक्रमण आरम्भ कर दिये थे। अतएव राज्य को बड़ा धक्का लगा था।

कुमारगुप्त का उत्तराधिकारी स्कन्दगुप्त बड़ा वीर और

सैनिक धर्म को मानने वाला योद्धा था। इसका समय, पुष्य

स्कन्द गुप्त

मित्रों तथा हूणों से युद्ध करते ही बीता। इसने अपना जीवन स्वदेश की सेवा में निछावर कर दिया तथा एक बार हूणों की गति रोक दी। पंजाब से आगे वे न बढ़ सके। ४६७ ई० तक युद्ध का जीवन बिताकर अल्पायु में ही इस वीर सेनानी का शरीरपात हो गया।

इसके उपरान्त गुप्त वंश की शक्ति क्षीण हो गई। स्कन्दगुप्त के पुत्र ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया तथा सैनिक धर्म को तिलाञ्जलि दे दी। फल यह हुआ कि हूणों को भारत पर अधिकार करने का अवसर मिल गया। ४८४ ई० में हूण वंशीय तूरमाण ने पञ्जाब तथा मालवा को अपने आधीन कर लिया और गुप्त वंश की शक्ति केवल मगध में रह गई। ४६४ ई० के लगभग गुप्त वंश का पराक्रमी राजा बुद्धगुप्त था परन्तु वह हूणों को भगाने में असमर्थ सिद्ध हुआ।

गुप्त कालीन स्थिति

गुप्त काल भारतवर्ष का स्वर्ण युग कहलाता है। उसका कारण यही है कि इस काल में भारतवर्ष की सर्वतोमुखी उन्नति हुई। धर्म, कला, साहित्य, राज्य व्यवस्था, सामाजिक स्थिति, व्यापार आदि सब उन्नति की स्थिति पर पहुँच गये थे कि फिर उस काल के उपरान्त अब तक भारतवर्ष क्या किसी देश की इतनी सर्वमुखी उन्नति नहीं हो सकी। आज पश्चिम अपने विज्ञान और समृद्धि पर जो अभिमान करता है वह उसे पशु बनाने तथा पशुओं के से युद्ध और भोग का ही जीवन देने के योग्य हो सका। परन्तु गुप्त काल
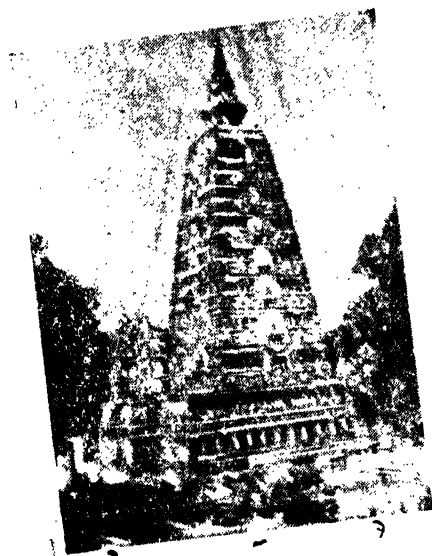
बौध गया

ने अपनी समृद्धि के विकास के साथ साथ ही मनुष्यता के विकास को सदैव ध्यान में रक्खा। हम फाह्यान के वर्णनों में इस ओर कुछ सङ्केत कर चुके हैं। यहां प्रत्येक दिशा की उन्नति का संक्षेप में वर्णन करते हैं।

बौद्ध धर्म की व्यापकता के मुख्य कारणों पर हिन्दू धर्म के विद्वानों का ध्यान गया। उस समय के पण्डितों का हिन्दू धर्म आज का सङ्कीर्ण और छुआछूत से मर जाने वाला लाजवन्ती का पौदा नहीं था। वरन् उसमें ऐसा लासा था जिसका एक बार स्पर्श हो जाने से मनुष्य फँस जाता था और उसी का होकर रह जाता था। उन विद्वानों ने इस हिन्दू धर्म की परिभाषा को और फैला दिया। इसी काल में हिन्दू धर्म कुछ मूलभूत सिद्धान्तों तथा मौलिक प्रचार को मानने वाला बन गया। जो लोग ईश्वर को मानते हों, पुनर्जन्म पर विश्वास रखते हों, कर्म फल को मानते हों तथा गो ब्राह्मण का सत्कार करते हों, जीवन को पवित्र बनाने तथा पवित्र आचरण पर श्रद्धा रखते हों, कुछ अभक्ष्य वस्तुएँ न खाते पीते हों वे हिन्दू हैं। फिर उन्हें ईश्वर पूजन किस प्रकार करना चाहिये किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये आदि का बन्धन नहीं था। इस समय वस्तुतः धर्म सङ्कीरणता से ऊपर उठ कर मनुष्य मात्र को समस्त सम्प्रदायों और पंथों को अपने उदर में रख लेने की सम्पूर्ण शक्ति से सम्पन्न होकर हिन्दू धर्म सच्चा आर्य धर्म प्रतिनिधि हो उठा था।

फलतः प्रत्येक धार्मिक भावना का आदर और अपने धर्म पालन की स्वतन्त्रता का उदार भाव जो उसे संसार के सब

धर्मों से श्रेष्ठ और विकसित सिद्ध करता है इसी काल की देन है। जैनियों द्वारा इसी काल में, पञ्च-साधु मूर्तियों तथा स्तम्भ का निर्माण हुआ। बौद्ध धर्म के प्रति उदारता का वर्णन तो फाह्यान के वर्ण में आ ही चुका है।

बौद्धकाल की अव्यवस्था में अनेक ब्राह्मण पण्डित गृह त्यागी हो चुके थे अब फिर वे अपनी वनवास परम्परा छोड़ कर संसार के उपकार में आ लगे। अपने धर्म की इस उदार भावना का उपदेश देकर सभी धर्मों की उत्तम बातों का अपने धर्म में समावेश करके उसे व्यापक बनाना इन्हीं का कार्य था। बौद्ध धर्म के ही अस्त्र अहिंसा के साधन और शान्ति के मार्ग से जैसी आश्चर्यजनक क्रान्ति इन ब्राह्मणों ने कर दिखाई मुसलमानों की नंगी तलवार ६०० वर्ष की निरन्तर शक्ति से भी न कर सकी।

समुद्रगुप्त से विक्रमादित्य तक सङ्गीत शास्त्र की बड़ी उन्नति हुई वीणा का गान्धर्व गायन अथवा उत्तर वैदिक काल के उपरान्त पुनः प्रचार हुआ। रागों का नाम

कला

करण भी इस काल की मुख्य विशेषता है। दीपक राग का सम्बन्ध विक्रम से ही माना जाता है।

मूर्तिकला तथा चित्र कला में पुनः गान्धार शैली (कनिष्क काल की यूनानी और भारतीय शैली के मिश्रण) के स्थान पर भारतीय कला का पुनरुज्जीवन हुआ। उस काल की नक्काशी तथा पत्थर की कलायें अपने आप में इतनी सम्पूर्ण हैं कि बिना किसी अन्य कला के मिश्रण के ही वे अपने आप संसार की सुन्दरतम रचना बन गई हैं। अजन्ता की गुफायें उनके
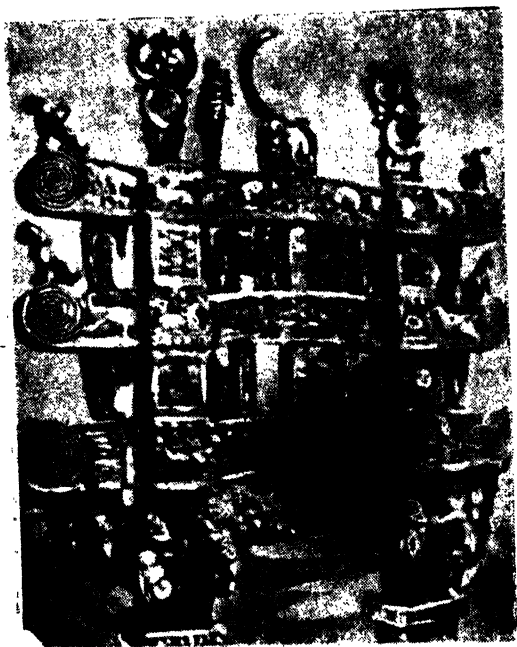
सांची स्तूप का द्वार

प्रमाण हैं। इसी प्रकार ग्वालियर राज्य में उदयगिरि की गुफायें भी हैं।

भारतीय शैली की चित्र कला में बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा भाव व्यञ्जना की ओर अधिक ध्यान है। छाया की अपेक्षा रेखा के द्वारा भाव को जीवित कर देना इस काल की मुख्य विशेषता है। अजन्ता और अलोरा के गुप्त कालीन चित्रों की एक एक रेखा एक भाव को मानों बोले दे रही है।

पीतल और लोहे की कला में भी अत्यधिक उन्नति हुई थी। नालन्द बिहार में स्थित भगवान बुद्ध की ८० गज की पीतल मूर्ति तथा दिल्ली की कुतुब मीनार के समीप स्थित लोहे की कीली भारतीयों के धातु विज्ञान का जीता जागता उदाहरण है।

भीतर गाँव (कानपुर जिला) देवगड (झांसी) मुकरा (नागौद राज्य मध्य प्रदेश) के विशाल मन्दिर उस काल की स्थापत्य कला के संसार में अद्वितीय उदाहरण हैं जो आज मुसलमानों के मन्दिर विनाशकारी आघातों की निरन्तर चोट खाकर बचे खुचे अवशेष हैं।

इस काल की मूर्त्तियाँ सारनाथ और उदयगिरि की गुफाओं में पाई गई हैं। उनकी विशेषता उनके अङ्गों का अनुपात तथा उनकी मुख मुद्रा हैं। वस्त्र निर्माण कला में भी इस काल में बड़ी उन्नति हुई।

संस्कृत साहित्य का पुनरुत्थान करने में इस काल को सब से अधिक श्रेय प्राप्त है। संस्कृत में प्रत्येक साहित्य अपनी

साहित्य

उन्नत दशा को इसी काल में पहुंचा इसी काल का महाकवि कालिदास अपनी प्रतिभा से संसार को चकित कर रहा है। जिस समय समस्त योरोप अन्धकार में डूबा हुआ था उस समय भारतवर्ष का यह सरस्वती न केवल सुन्दर शकुन्तला नाकट की रचना कर रहा था वरन् अपने प्रकृति प्रेम को मेघदूत में अपनी उपमाओं को रघुवंश और कुमार सम्भव में निर्माण कर रहा था। विशाखदत्त का मुद्रा राक्षस नाटक भी इसी काल की रचना है। ज्योतिष शास्त्र के विकास के लिये भी यह काल संसार का अग्रणी है। पृथिवी के गोल होने को भारतीय सदैव से जानते थे परन्तु पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है इसका प्रथम वर्णन सम्भवतः इसी काल के ज्योतिषी बाराह मिहिर को प्राप्त है। इसी समय पञ्जिका निर्माण की प्रथा चली। सूर्य के सम्बन्ध में सिद्धान्त पञ्चचक इसी समय पूर्ण हुये। कुछ लोगों का मत है कि इन पाँच सिद्धान्तों में से अन्तिम दो यूनानी सम्पर्क से भारतवर्ष में आये। इसी समय उज्जैन की वेधशाला में एक ऐसे यन्त्र का आविष्कार हुआ था जो स्वयं वह था अर्थात् बिना मनुष्य की शक्ति से चलता था तथा ग्रह, उपग्रहों की गति दिखलाता था। इसी प्रकार ग्रहों की चाल के सम्बन्ध में भी बड़ा कार्य हुआ।

आयुर्वेद शास्त्र में शास्त्र चिकित्सा, तेजाब, अग्नि और पट्टी बांधने की शिक्षा का सर्वोत्ताम विकास इसी काल में हुआ। इसी काल में सश्रुत संहिता के बाल को चीरने वाले शास्त्रों का निर्माण हुआ।

योग द्वारा शारीरिक तथा मानसिक शक्ति के विकास

फाह्यान की भारत-यात्रा
काराशहर
काशगर
करगलिक
खुतन
पेशावर
तक्षशिला
टङवा
सवाथी
कुशीनगर
रामग्राम
कन्नौज
अयोध्या
वैसाली
ताम्रलुक
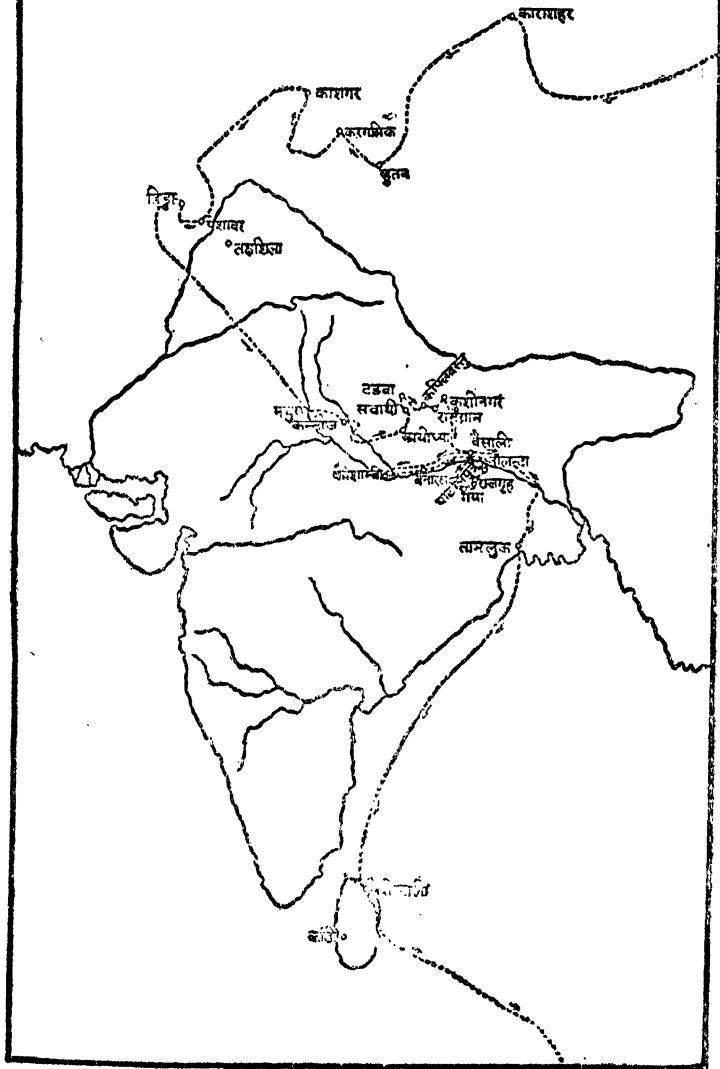
का भी तथा उसके द्वारा रोगों का उपचार करने तथा शत्रुओं को वश में करने की विद्या की भी इसी काल में अधिक उन्नति हुई।

इस काल की राज्य व्यवस्था सचमुच एक आश्चर्यजनक वस्तु है। आज तक कोई राज्य बिना गुप्तचर व्यवस्था के नहीं चलता दिखाई देता। परन्तु गुप्त काल में न तो गुप्तचर व्यवस्था थी न एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने के लिये पास पोर्ट की आवश्यकता। समझ में नहीं आता कि वह कैसा जन प्रिय शासन था जिसमें गुप्तचरों की आवश्यकता ही नहीं थी।

राज्य कर जैसा ऊपर कहा जा चुका है आय पर निर्भर था पुराने $\frac{1}{4}$ से घटाकर यह कर भी $\frac{1}{6}$ कर दिया गया था।

राज्य व्यवस्था

फाह्यान द्वारा वर्णित राज्य व्यवस्था सचमुच एक आदर्श व्यवस्था जान पड़ती है। ऐसा जान पड़ता है कि गुप्त राजा केवल धर्म के लिये राजा का कार्य्य करते थे उन्हें अपने सुख की अपेक्षा प्रजा के सुख की अत्यधिक चिन्ता थी। इसी लिये गुप्त काल जैसी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आज तक कोई प्रजातन्त्र राज्य भी न दे सका।

राज्य वंश के प्रान्तीय अधिकारियों के अधीनस्थ गोप होते थे जो १० से १००० ग्रामों तक के प्रधान होते थे। ऐसा जान पड़ता है कि इस समय राज्य प्रबन्ध की इकाई १० से घट कर १ पर आ गई थी। प्रबन्ध विभाग अप्राकृतिक भौगोलिक सीमा की भांति १, १०, १००, १००० ग्रामों में विभक्त था।

दण्ड व्यवस्था जन-साधारण से जैसे जैसे उच्च अधिकारियों की ओर बढ़ते थे कठोर होती जाती थी। यदि कोई अधिकारी वैसा ही अपराध करता था जैसा साधारण जन तो उसे साधारण जन की अपेक्षा कठोर दण्ड दिया जाता था। जब कि साधारण जन केवल अर्थ दण्ड देकर मुक्ति पा सकता था। इसीलिये राज कर्मचारी अत्याचार करने का साहस नहीं कर सकता था।

सामाजिक स्थिति हिन्दू धर्म की व्यापकता बढ़ने के कारण अनेक वर्ग हिन्दू धर्म में सम्मिलित हो गये थे। अतएव आर्य्य रक्त को शुद्ध रखने के लिये अन्तर्जातीय विवाह सम्बन्धी नियम अधिक कठोर होने लगे थे। परन्तु अनुलोम विवाह (उच्चवर्ण का निम्न वर्ण में विवाह) होने से अधिक हानि नहीं समझी जाती थी। इसी काल में निश्चित हुआ कि अनुलोम विवाह से उत्पन्न हुई सन्तान अपनी सातवीं पीढ़ी में शुद्ध पिता के रक्त की सन्तान बन जाती है। परन्तु इसके प्रतिकूल (प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न सन्तान) अपना अलग वर्ग निश्चित कर लेती थी। मांस, मदिरा, लहसुन, प्याज और जुआ त्याज्य वस्तु थे। बाल विवाह नहीं होता था। जाति भेद अधिक बढ़ गया था और आश्रम धर्म की अपेक्षा वर्ण धर्म प्रधान हो उठा था।

सती प्रथा नहीं थी। स्त्रियों को अध्ययन की सुविधायें थीं वे शास्त्रार्थ भी करती थीं। पति व्रत धर्म का महत्व था परन्तु विधवा विवाह की भी आज्ञा थी। पति के वंश में विधवा का विवाह अच्छा समझा जाता था। काम भाग में स्त्री का अधि-

स्त्रियों की स्थिति

कार संकुचित हो चला था। परन्तु अभी वह पूर्णतया पराधीन नहीं हुई थी। उसके विचारों को स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

व्यापार में भी देश की सर्वोत्तम उन्नति का यही काल था। समुद्री व्यापार अधिक उन्नति पर था। पाल के द्वारा चलने वाले इतने बड़े बड़े जहाज़ बनने लगे थे जिनमें १०० यात्री तक जा सकते थे। सुमात्रा, जावा और कम्बोडिया व्यापार के प्रधान केन्द्र थे जिनसे व्यापार अधिक था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्त साम्राज्य अनेक बातों में भारतवर्ष का सर्व श्रेष्ठ और संसार के लिए आदर्श काल था।

गुप्त शक्ति के ह्रास के कारण इतने सुव्यवस्थित साम्राज्य के ह्रास के कारणों पर विचार करते हुए आश्चर्य होता है कि किस प्रकार यह निर्दोषशासन प्रणाली भी स्थायी न हो सकी यद्यपि कुछ कारण अवश्य हैं जैसे:—

भारतवर्ष की राजनीतिक एकता बनाये रखना सुलभ यातायात के साधनों के बिना सम्भव नहीं है क्योंकि भारतवर्ष एक देश नहीं महाद्वीप के समान है। अतएव राज्य शक्ति के निर्बल होते ही दूरस्थ आधीन राज्य स्वतन्त्र हो जाते थे फिर शक्ति बँट जाती थी और परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता था। जिस से विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने वाली शक्ति निर्बल हो जाती थी।

दूसरा कारण विदेशियों के लगातार आक्रमण थे जिसके कारण राज्य शक्ति निरन्तर युद्ध में लगी रहने के कारण निर्बल हो गई और कभी धन का अभाव और कभी सेना का अभाव इसके विनाश के कारण हुए।

तीसरा कारण पौराणिक आधार से सिद्ध होता है। गुप्त वंश की निष्पक्ष राज नीति से भी तत्कालीन बौद्ध संघ सन्तुष्ट न थे। राज्य से आर्थिक सहायता पाने वाले बौद्ध संघ राज्य के प्रति श्रद्धा की भावना नहीं रखते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दु राज्य सुख कर नहीं था। उनकी राष्ट्रपिता राष्ट्र की नहीं वरन् धर्म की उपासक थी। कुछ ऐसा ही भाव था जैसा स्वतंत्र प्राप्तिकाल तक भारतवर्ष में मुसलमानों का रहा। ये बौद्ध संघ गुप्त रूप से प्रत्येक आक्रमणकारी को राज्य के विरुद्ध सहायता देते थे। इस प्रकार भीतर ही भीतर आर्या शक्ति को खोखला कर रहे थे। स्कन्द गुप्त के काल में मथुरा का विद्रोह और उसके पीछे हूण और बोद्ध शक्ति का स्पष्ट हाथ था।

इस प्रकार दोनों ओर विपत्ति से घिरी गुप्त राज लक्ष्मी स्कन्द गुप्त के अन्त में चंचल हो उठी थी और हूण शक्ति के प्रबल आक्रमण की रोक थाम के लिए असमर्थ नहीं थी।

इन्हीं सब कारणों ने तथा सबसे बड़े काल भाग्य ने भारतवर्ष की शक्ति को विदेशियों के पैरों के नीचे कुचलवा दिया।

उन्नति का चक्र चल चुका था, चीन और भारतवर्ष मे होता हुआ यह चक्र पश्चमी एशिया मिस्र और युनान तक जाकर रोम में पहुँच चुका था अतएव आगे आने वाले मुसलमान साम्राज्य की स्थापना के लिए भारतवर्ष की शक्ति का आर्या बल का क्षय होना आवश्यक था। बिना वैसा हुए विधि का विधान कैसे पूरा होता। बौद्ध और हूण तो केवल उसके हाथ के खिलौने थे जो आर्या शक्ति के विनाश के कारण बन गए।

आर्य्य शक्ति का अन्तिम काल

५०० से ११०० तक

इस काल को हम सुविधा के लिये ३ भागों में बांट सकते हैं। पहला हूणों का अभ्युदय ५०० से ६०० ई० तक, दूसरा हिन्दू संस्कृति की अन्तिम शिखा वर्धन वंश ६०० से ७०० ई० तक तथा राजपूत जाति का वीर काल ७०० से लग-भग ११०० तक। इनमें से पहले काल में राजनैतिक अव्यवस्था तो रही परन्तु हिन्दू धर्म की सर्व ग्राहिणी प्रवृत्ति बनी रही। दूसरे काल में दीपक की अन्तिम लौ की भांति आर्य्य शक्ति चमक कर बुझ गई। तीसरे काल में संस्कृतिक एकता होते हुये भी भारतवर्ष के पारस्परि द्वेष और कलह का केन्द्र बन गया। पहले काल में बौद्ध धर्म को उत्थान का बल मिला। दूसरे काल में हिन्दू धर्म फिर ऊपर उठ आया। तथा अन्त में हिन्दू धर्म बन्धनों में जकड़ने लगा। उसकी पाचक शक्ति निर्बल पड़ने लगी। संक्षेप में इस काल की यही विशेषतायें हैं। अब हम ऐतिहासिक दृष्टि से इन तीनों भागों पर अलग अलग विचार करेंगे।

हूण काल

भारतवर्ष के रङ्ग मंच पर आने के लिये मध्य ऐशिया अनादि काल से नेपथ्य Green Room का कार्य्य करता रहा है। ये हूण भी इसी मध्य ऐशिया की जेई सेई नदियों के उत्तरवर्ती तुर्किस्तान के निवासी थे। सफेद रंग मोटे होठ, चपटी नाक, चौड़े कन्धे, काले नेत्र, भयानक आकार, भारी शब्द और पैर धमक

हूण कौन थे

कर चलने वाले मानों अपने शरीर की बनावट तथा अपने व्यवहार से ही अपने चरित्र का आततायीपन प्रकट करने वाली इस जाति ने जितना नर संहार किया सम्भवतः संसार के इतिहास में सहज ही न इतना नर संहार किसी अन्य जाति ने किया होगा।

अपने घर से चलते ही इन्होंने पूर्व और पश्चिम भारतवर्ष तथा योरोप में रक्त की नदियां बहा कर अपनी कठोरता से संसार को कम्पित कर दिया परन्तु भारतवर्ष में आकर फूस की चिनगारी की भांति एकाएक भयंकर किस प्रकार बुझ गये, किस प्रकार विशाल हिन्दू जाति रूपी अजगर इन्हें निगल कर पचा गया उसका उदाहरण भी कहीं न मिलेगा।

पहले ईरान काबुल, कंधार और सिन्धु देश का पश्चिमी भाग विजय करके इनका आक्रमण स्कन्द गुप्त के राज्य पर ४५५ ई० के लग-भग हुआ था जिसमें पराजित होकर ये भाग गये थे परन्तु स्कन्द गुप्त की मृत्यु के समय लग-भग ४६५ ई० में इन्होंने फिर भारतवर्ष पर आक्रमण किया। इस समय निरन्तर युद्ध में फँसे रहने के कारण स्कन्द गुप्त के राज कोष में कमी आगई थी अतएव स्कन्द गुप्त उन्हें भारतवर्ष से फिर भगाने में नहीं लग सका। हूणों ने इस बार पञ्जाब पर अधिकार कर लिया। असीम नर संहार करके पञ्जाब में जब हूणों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करली तो उन्होंने राजपूताना और सिन्ध की ओर दृष्टिपात किया। इस समय गुप्त सम्राट बुद्ध गुप्त बौद्ध बन कर अहिंसा का पुजारी बना हुआ था उसने जनता की रक्षा की अपेक्षा धर्म सेवा को ही अपना कर्त्तव्य समझता था। अतएव ५०० ई० में हूण सरदार तोरमाण ने

मालवा और सौराष्ट्र प्रदेशों पर अधिकार कर लिया । परन्तु क्षत्रियों की पराजय को हिन्दू पण्डितों ने विजय में बदल दिया। उसे हिन्दू संस्कृति की दीक्षा दी और सम्राट घोषित करके अपनी उदार भावना का परिचय देने के साथ ही उसके हृदय में बैठे हुये जन्मजात अत्याचारी स्वभाव रूपी पशु पर भी विजय प्राप्त की। वल्लभी के गुप्त राजा भानुगुप्त ने भी उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया ।

तोरमाण के हृदय की कोमलता देख कर उसके पुत्र ने अपने पिता को निर्बल समझा । वर्बर हूण रक्त ने जोर मारा उसने विद्रोह कर दिया । परन्तु तोरमाण ने उसका दमन किया वह भाग कर उत्तर की ओर चला गया।

५१० ई० में तोरमाण की मृत्यु के उपरान्त उसने सियाल कोट को राजधानी बनाया। पहले उसके शिकार बौद्ध हुये क्योंकि बौद्धों ने तोरमाण के साथ विद्रोह करने के लिये उकसा तो दिया था परन्तु समय पर सहायता नहीं दी थी । असंख्य बौद्धों का विनाश करके उनके विहार और मठों का विनाश करके उसने हिन्दुओं पर अत्याचार आरम्भ किया।

वह नहीं जानता था कि उसके फारस लेकर यमुना तट तक विस्तृत साम्राज्य को ध्वस्त करने के लिये उसकी जाति ने, उसके जाति स्वभाव गत अत्याचारों ने एक तूफान पैदा कर दिया है। तुर्क और ईरानी उसके पश्चिमी राज्य को तथा नरसिंह गुप्त बालादित्य और यशोवर्मन उसके भारतीय राज्य की कमर तोड़न के लिये संगठित हो रहे हैं।

फल वही हुआ जो अन्याय और अत्याचार का होता है। मालवा और मगध के इन दोनों महाराजाओं की सम्मिलित

सेना ने ५२८ ई० में मिहिर कुल पराजित हुआ। परन्तु अहिंसा के उपासक इन दोनों राजाओं ने उसके प्राण न लिये। उसे गद्दी से उतार कर पंजाब से निर्वासित कर दिया तथा उस के छोटे भाई को राज्याधिकार दिया। परन्तु मिहिर कुल ने अपने शरणदाता काश्मीर नरेश से विश्वासघात किया। अपने षडयंत्र में बौद्धों से सहायता लेकर उसने काश्मीर नरेश की गद्दी छीन ली तथा पुनः गांधार और पंजाब पर अधिकार कर लिया। इस बार इसकी बर्बरता ठोकर खा चुकी थी। अन्त में ५४० ई० में अपने समस्त अत्याचारों के लिये पछताता हुआ मिहिर कुल मर गया।

हूणों के आक्रमण का प्रभाव

हूणों प्रभाव को हम दो भागों में बांट सकते हैं। १. राजनैतिक दूसरा मनोवैज्ञानिक। राजनैतिक प्रभाव को हम राज्य व्यवस्था और देश की सार्वभौमिक एकता के रूप में। मनोवैज्ञानिक प्रभाव में आगे आने वाली जातियों की उस मानसिक स्थिति में देख सकते हैं जिसके कारण समस्त सद्गुणों के होते हुये भी भारतीय आज ६०० वर्ष से दासता के बन्धन में बंधे हुये हैं।

राजनैतिक प्रभाव

भारतवर्ष की राजनेतिक एकता हुणों के आक्रमण से एक दम नष्ट हो गई। नरसिंह बालादित्य और यशोवर्मन के समस्त उद्योग फिर भारतवर्ष को राजनैतिक एकता में बांध नहीं सके। देश में पंचायत राज्य की भावता जो ग्राम से लेकर राजाओं तक नियंत्रण करती थी निर्बल हो गई। अब ग्राम भी केवल नाम मात्र के लिये पंचायत के आधीन रह गये।

इस के स्थान पर जातीय पंचायतों का संगठन आरम्भ हुआ जिनका कार्य्य राजनैतिक न होकर पूर्णतया सांस्कृतिक हो गया। अब पंचायतें जाति बहिष्कार का साधन बनने लगी जिसका कठोरतम नियन्त्रण राजपूत काल में दिखाई दिया।

राजनैतिक क्षेत्र में राजाओं की शक्ति पर जनता का नियंत्रणसर्वथा लुप्त हो गया। इस प्रकार राजा लोग सम्पूर्णतया स्वेच्छाचारी हो गये।

राज्य कर व्यवस्था पर भी इसका प्रभाव पड़ा-सम्पूर्ण जनता जो कृषि प्रधान थी आय कर विभिन्न भागों से बढ़ चला। क्योंकि राजाओं को सदैव युद्ध के लिये प्रस्तुत रहना पड़ता था अतएव रुपये को एकत्र करने की भावना प्रत्येक राजा के हृदय में थी।

इस प्रकार एक सम्पन्न शासक वर्ग का निर्माण हुआ जिसका जीवन या तो युद्ध का जीवन था या विलास का। इन दोनों ने मिलकर भारतीय आर्य्य संस्कृति को सबसे बड़ा आघात पहुँचाया

मनोवैज्ञानिक प्रभाव

जनता ने समझ लिया कि अब राजा उनका वास्तविक रक्षक नहीं है अतएव राज्य की रक्षा के लिये जनता में उदासीनता का भाव उत्पन्न हो गया। राजा यदि युद्ध में हार जाता था तो प्रजा नवीन विजयी राजा का स्वागत करती थी। उसे कर देने लगती थी। राजा और प्रजा के बीच इस प्रकार के अन्तर से एक जहां राष्ट्र की राष्ट्रीय शक्ति का विनाश हो गया वहां एक लाभ यह भी हुआ। राज्य परिवर्त्तन का फल जनता की संस्कृति पर लग भग नहीं सा पड़ता था। इस प्रकार

राज्य परिवर्त्तन होते हुये भी हिन्दू संस्कृति भी अपनी गति पर चलती रही।

हिन्दू संस्कृति में इस समय सङ्कोच की वृत्ति दिखाई देने लगी थी। उदार ब्राह्मणों ने इन विदेशी हूणों को अपने धर्म में दीक्षित तो कर लिया उन्हें क्षत्रिय की उपाधि से भूषित भी किया जो इस युद्ध व्यवसायी जाति के लिये वैदिक धर्मानुकूल उचित ही था, परन्तु रक्त शुद्धि की भावना के बल पाने के कारण अन्तर्जातीय विवाह और परस्पर सम्बन्ध की भावना उत्पन्न हो सकी। इस प्रकार विस्तार से सङ्कोच की मनोवृत्ति हिन्दू संस्कृति में पहली बार अपने बल के साथ इसी प्रभाव के कारण दिखाई दी। यदि वह प्रवृत्ति है जिसने जाति भेद में दोष के कीटाणु उत्पन्न कर दिये।

युद्ध प्रिय जाति के मिलन से भारतीय क्षत्रिय में भी कुछ ऐसे गुण उत्पन्न हो गये जो श्रेष्ठ होते हुये भी अति को पार कर जाने के कारण हानि कर ही हुये इस का विशेष विवरण हम राजपूत जाति के इतिहास में करेंगे।

हिन्दू संस्कृति की अन्तिम शिखा ६००-७०० ई० तक

इस काल का अध्ययन करने से पूर्व हमें इस समय उत्तर भारतवर्ष में उपस्थित राज्यों पर एक बार दृष्टि डाल लेनी चाहिये।

बंगाल उस समय गौड वंश के आधीन था।

मगध में अब भी गुप्त वंश की शाखा चल रही थी। परन्तु इनका अपने समीपवर्त्ती राजाओं से पूर्व में बंगाल और आसाम से तथा पश्चिम में कन्नोज से निरन्तर युद्ध होता रहता था।

कन्नौज में मौरवी वंश के राजा राज्य करते थे। इन्होंने कभी मगध और बंगाल तथा आंध्र देश तक अपना अधिकार जमा लिया कभी फिर शक्ति हीन हो गये और केवल कान्य कुब्ज प्रदेश के अधिकारी रह गये । हर्ष के काल में कन्नोज का राजा गृह वर्मा था ।

मध्य देश में यशो वर्मा के वंशजों का अधिकार था। मालवा में गुप्त वंश के उत्तराधिकारी राज्य कर रहे थे। इस यशोवर्मा का परिचय हम मिहिर कुल युद्ध में दे आये है ।

खम्भात की खाड़ी के समीप गुर्जरवंश जो सम्भवतः हूणों से शुद्ध हुए क्षत्रिय थे राज्य कर रहे थे। इनकी राजधानी भृगुकच्छ (भड़ौच) थी ।

काठियावाड़ के समीप हूण वंशधर मैचक वंश का राज्य था इनकी राजधानी वलभी थी। मैचक वंश के राज्य काल में इस नगर की बड़ी उन्नति हुई। दक्षिण में उड़ीसा और पश्चिमी मध्य देश में वाकटक वंश उन्नति पर था। तथा दक्षिण में चालुक्य साम्राज्य का विस्तार रहा था।

ऐसे अस्त व्यस्त समय में पंजाब के थानेश्वर प्रदेश से वर्धन वंश की दीप शिखा की ज्योति चमक उठी जिसने एक बार राजनैतिक अन्धकार में आशा की ज्योति थोड़ी देर के लिये हिन्दू जाति में चमका दी ।

वर्धन वंश

परिचय — निश्चय पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि यह वंश किस जाति से सम्बन्ध रखता है। कुछ विद्वान इसे कायस्थ वंश का मानते है।

सम्भव है कि हर्ष वर्धन का पिता यह आदित्य वर्धन क्षत्रिय जाति का हो परन्तु राज्य कार्य्य में युद्ध व्यवसाय छोड़ कर लग जाने के कारण कायस्थ रहा हो इस प्रकार कायस्थ जाति में क्षत्रिय रक्त की उपस्थिति ने उसे पुनः क्षत्रिय राज्य की स्थापना की प्रेरणा दी हो ।

कुछ भी हो ईसा की छठी शताब्दी के अन्त में यशोवर्मा और बालादित्य के कार्य्य को पूर्ण करते हुए, हूणों की शक्ति का उत्तर भारत में नाश करते हुये हमें सब से पहले आदित्य वर्धन के दर्शन होते हैं । उसका विवाह मालवा के गुप्त वंशीय महाराज महासेन गुप्त की बहिन से विवाह भी उसके क्षत्रिय होने की सूचना देते हैं ।

आदित्य वर्धन के प्रारम्भ किये हुए कार्य को उसके पुत्र प्रभाकर वर्धन ने पूरा किया उसने गुजरात, सिन्ध और राजपूताना के हूणों के राज्यों का नाश करके उत्तर पश्चिम भारत में एक साम्राज्य की नींव डाली । मालवा के राजा अपने मामा महासेन गुप्त को भी पराजित किया । तथा कन्नौज के राजा गृहवर्मा से अपनी कन्या का संबंध स्थापित करके अपने साम्राज्य का विस्तार यमुना से सिंधु नदी तक फैला दिया । उसने सिंधु नदी के उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश से हूणों को भगाने के लिये अपने बड़े पुत्र राजवर्धन के अधिनायकत्व में एक सेना भेजी । अभी राजवर्धन अपनी विजय पूर्ण भी नहीं कर पाया था कि उसके पिता का परमात्मा के यहां से बुलावा आ गया । ६०५ ई० में उसका शरीरपात हो गया ।

हर्षवर्धन उसका छोटा पुत्र था वह पिता की मृत्यु के समय उसके पास था। प्रजा उसे राजा बनाना चाहती थी परन्तु राज-वर्धन जैसे बड़े भाई के रहते हर्षवर्धन कैसे राजा बनता। पिता की मृत्यु का समाचार पाकर लौटे हुए राजवर्धन को अभी क्रिया कर्म से भी छुट्टी न मिली थी कि समाचार मिला कि मालवा के राजा देवमाधव गुप्त ने बंगाल के गौड़ वंशादि राजा शशाङ्क की सहायता से उसके बहनोई, कन्नौज के राजा गृहवर्मा का वध कर दिया। तथा उसकी बहिन को बंदी कर ले गया।

राज्यवर्धन का क्षत्रिय रक्त खौल उठा। पिता के क्रिया कर्म का भार हर्षवर्धन पर छोड़कर उसने तुरन्त मालवा पर आक्रमण करके देवगुप्त को उसके पाप का दण्ड दिया और बंगाल की ओर शशाङ्क को दण्ड देने के लिए बढ़ा परन्तु शशाङ्क ने उसे छल से अथवा युद्ध में पराजित करके मार डाला।

इस प्रकार हर्षवर्धन ६०६ ई० में थानेश्वर का अधिकारी हुआ। उसका सबसे पहिला कार्य मालवा तथा बंगाल की सम्मि-लित शक्ति का विनाश करना था। सोलह वर्ष का बालक हर्ष-वर्धन अपनी समस्त शक्ति को संगठित करके उसने मालवा पर आक्रमण किया तथा गुप्त वंश की सम्पूर्ण शक्ति तोड़कर उन्हें पूर्व की ओर भागने पर विवश किया।

फिर उसने पूर्व की ओर दृष्टि डाली और ६२० ई० तक बंगाल को अपने साम्राज्य में मिला लिया। सम्भवतः शशाङ्क मारा गया या भाग गया।

आसाम के राजा भास्करवर्मा ने उसे बहुमूल्य रत्न भेंट करके मित्रता कर ली। सम्भवतः इसी समय बंगाल से निपट कर उसने दक्षिण के चालुक्य राज्य पर दृष्टि डाली। चालुक्य राजा पुलिकेशी

ने इसका युद्ध में स्वागत किया। कहा जाता है कि इस युद्ध में हर्ष पराजित हो गया और दोनों राज्यों में मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गया। यह मित्रता राजनैतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण थी परन्तु हर्ष ने इसका उपयोग सिन्धु नदी के उत्तर तट से हूणों को भगाने में नहीं किया। इस कारण यह जान पड़ता है कि हर्ष की प्रवृत्ति युद्ध करते करते युद्ध से विरत हो गई थी। अतएव वह धर्माचरण में लग गया।

इस प्रकार हर्षवर्धन का साम्राज्य बंगाल, विहार, संयुक्त प्रदेश पूर्वी पंजाब, तथा पूर्वी मालवा प्रदेश पर स्थापित हो गया था। अतएव हर्ष ने अपने साम्राज्य के मध्य भाग कन्नौज में राजधानी स्थापित की।

हर्ष के व्यक्तित्व का पता हमें बाणभट्ट की पुस्तक हर्षचरित्र से मिलता है इसके अनुसार यह बाल्यावस्था से ही वीर, उदार और गुरुजनों की भक्ति करने वाला था। वह स्वयं बड़ा विद्वान् था उसकी लिखी हुई नाटिका "रत्नावली" चरित्रविश्लेषण की दृष्टि से भले ही उत्तम पुस्तक न हो परन्तु नाट्यशास्त्र सम्बन्धी सभी नियम उसमें यथोचित रूप से पाले गये हैं। आगे के नाट्यशास्त्र लिखने वालों ने उदाहरण के रूप में उसी से सामग्री ली है। प्रारम्भ में वह वैदिक धर्म का अनुयायी था परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि आगे चलकर बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया। तथा उसने सैनिक शक्ति की ओर ध्यान नहीं दिया।

हर्ष का व्यक्तित्व

इसी के समय में दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वानसांग भारत वर्ष में आया। उसने भारतवर्ष तथा हर्ष के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। नीचे उसी के आधार पर हर्ष के राज्य-प्रबन्ध, सामा-

हर्ष का साम्राज्य
६४० ई० में भारत
काबुल
गान्धार
पुरुषपुर
तक्षशिला
श्रीनगर
कश्मीर
जालन्धर
स्थानेश्वर
मतिपुर
सिन्ध
इन्द्रप्रस्थ
मथुरा
गुर्जर
नेपाल
ग्वालियर
प्रयाग
काशी
पाटलिपुत्र
गौड़
उज्जैन
मालवा
वल्लभी
समतट
नर्मदा
महाकोसल
उद्र
(उड़ीसा)
ताप्ती
अजन्ता
एलौरा
नासिक
पुलकेशी
का
साम्राज्य
कलिंग
पू० चालुक्य
कृष्णा
बंगाल
की
खाड़ी
अरब
सागर
पेनार
नीलौर
कावेरी
नागपट्टन
सिंहल द्वीप

जिक व्यवस्था तथा धर्म आर्थिक सम्बन्ध में जो कुछ प्रतीत होता है लिखा जाता है।

ह्वानसांग का विवरण—यह चीनी यात्री भारतवर्ष में ६३० ई० में आया तथा यहाँ १४ वर्ष रह कर स्वदेश लौट गया। वह लिखता है—

सारा देश प्रांतों में विभक्त था। इनके अधिकारी वेतन के स्थान पर जागीरें पाते थे। राज्य की आय का साधन भूमिकर व्यापारिक चुङ्गी तथा घाटों के कर थे। राजा के पास एक बड़ी सेना थी, सैनिकों को वेतन मिलता था परन्तु राज-पथ सुरक्षित नहीं थे। चोरी डाके का बराबर भय बना रहता था। हर्ष ने यथासंभव शासन प्रबन्ध को सुधारने का प्रयत्न किया। अतएव अपराधी को कठोर दण्ड दिया जाता था। राज-विद्रोह करने वाले को आजीवन कारावास अथवा प्राण-दण्ड की व्यवस्था थी। भयङ्कर अपराधों में अङ्ग भङ्ग का दण्ड दिया जाता था। नाक कान काट लेना चोरी डाके के साधारण दण्ड थे परन्तु सामान्य जनता पर राज-कर का अधिक भार नहीं था। अतएव वह सुखी थीतथा सैनिकों को अत्याचार करने की आज्ञा नहीं थी।

राज्य-व्यवस्था

इस समय हिंदू-समाज में बन्धन बढ़ रहे थे। अन्तर्जातीय विवाह बन्द से हो गये थे। बाल-विवाह की कुरीति का प्रारम्भ हो चला था। भोजन साधारण और सरल था। लहसुन, प्याज और मांस का प्रचार कम था। गो-वध तो सर्वथा दण्डित था। ब्राह्मण समाज में ऊपर उठ चुके थे परन्तु राजाओं द्वारा सम्मान पाने के अतिरिक्त

सामाजिक स्थिति

उनका और कोई मूल्य न था। राज्य कार्य्य में राजा फिर स्वच्छन्द सा हो चला था।

स्त्रियों की स्थिति

स्त्री अब घर के भीतर की वस्तु बनने लगी थी। यद्यपि स्त्री शिक्षा का प्रसार था परन्तु राजनीति में उसका प्रभाव नहीं था। पर्दे की प्रथा का चलन नहीं था। स्त्री को भी सन्यासी होने की आज्ञा थी। साधारण स्त्री का जीवन दुःखमय नहीं था।

आर्थिक व्यवस्था

सामाजिक वर्ण व्यवस्था के अनुसार व्यापार पर आर्थिक व्यवस्था वैश्यों का एक-मात्र अधिकार हो गयाथा। विदेशी व्यापार तो वैश्यों के ही हाथ में था। जन-साधारण में खेतों का अधिक प्रचार था। अनेक प्रकार के वस्त्रों का व्यवसाय भी भारतवर्ष की आर्थिक दशा पर प्रकाश डालता है। सोने चांदी और धातु की कलाओं में भी भारतीय उन्नति कर रहे थे। धन की कमी न होने के कारण या लोगों का रहन सहन बहुत ऊंचा था। समस्त भारतवर्ष में पक्के मकानों की अधिकता थी जिन पर चूने का प्लास्टर था। शिक्षा प्रसार के लिये गुरुकुलों में भूमि लगी हुई थी जिनमें १०,००० विद्यार्थी तो केवल नालन्द के विश्वविद्यालय में थे जिसमें प्रत्येक धर्म की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध था। विद्यार्थी को विद्यालय में प्रवेश पाने के लिये तीन परीक्षायें देनी होती थीं जनमें दार्शनिक विद्वान् मौखिक परीक्षा लेते थे।

धर्म

बौद्धधर्म अवनति पर था हिंदू धर्म नवीन संस्कारों के साथ उन्नति का रहा था। धार्मिक सहन-शीलता की भावना बढ़ रही थी। बौद्धों की शक्ति सम्पूर्णतया टूट गई थी। यद्यपि अनेक बौद्ध विद्वान अब भी धामिक शिक्षा देते थे तथा बौद्धधर्म असम्मान की दृष्टि से

नहीं देखा जाता था।

प्रयाग की सभा

६४३ ई० में बौद्ध धर्म की सभा बौद्ध धर्म की अन्तिम शिखा थी। हर्ष ने पहले कन्नौज में इसका आयोजन किया फिर वहां से सब विद्वानों के साथ प्रयाग में आया। यह सभा निरन्तर ५ दिन तक चलती रही। शिव सूर्य तथा बुद्ध भगवान की मूर्तियों की पूजा की गई। बुद्ध भगवान का जुलूस प्रतिदिन निकलता था। कहा जाता है कि हर्ष प्रति पांचवे वर्ष प्रयाग में आकर सर्वस्व दान कर देता था।

हम देखते हैं कि हर्ष के राज्यकाल में हिन्दू राष्ट्रयिता अपनी अन्तिम चमक दिखा गई और सन् ६४७ में हर्ष के निधन के साथ सदा के लिये बुझ गई।

हर्ष वर्धन की मृत्यु के उपरान्त व्यक्तिगत वीरता प्रदर्शन काल

(७०० से १००० तक)

यह काल राजपूतों की वीरना का काल है। हर्ष की मृत्यु से केन्द्रीय शक्ति क्षीण हो जाने के कारण अनेक छोटे २ राज्य बन गये जिनमें शक्ति अधिकतया राजपूतों के हाथ में आ गई। हूण आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय क्षत्रियों में हूण रक्त भी मिश्रित हो गया था जिसमें स्वभावतः युद्ध के गुण थे। इन राजपूतों ने स्वयं न तो शान्ति से बैठना चाहा और न अन्य राज्यों को शान्ति से बैठने दिया अतएव इन चार सौ वर्षों का इतिहास परस्पर युद्ध और शौर्य्य प्रदर्शन का इतिहास है।

इस राजपूत शब्द को लेकर एक विवाद चल पड़ा है। स्मिथ, टाड आदि बिदेशी विद्वान् तथा अन्य भारती विद्वानों में मतभेद है। हम दोनों मतों पर संक्षेप विचार करेंगे ।

पहले के विद्वान इन्हें शक अथवा हूणों के वंशज मानते हैं। उनका मत है कि हिन्दू जाति ने इन युद्ध व्यवसायी जातियों को हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिया और गुण कर्म के अनुसार उन्हें जाति दे दी । कुछ ब्राह्मण बन गये जो आज शाकलद्वीपी ब्राह्मणों के नाम से अलग उपस्थित हैं। कुछ ने क्षत्रिय धर्म स्वीकार कर लिया जो इतिहास राजपूत नाम से प्रसिद्ध हुये।

इसके प्रतिकूल भारतीय पुराणों तथा काव्य ग्रथों में इन्हें शुद्ध क्षत्रिय और अग्नि सेउत्पन्न माना है। यह लोग कहते हैं कि राक्षसों का विनाश करने के लिये वशिष्ठ मुनि ने उन्हें यज्ञ से उत्पन्न किया था। यज्ञ से चौहान, प्रमार, प्रतिहार और चालुक्य इन चार वंशों की उत्पत्ति पुराणों में कही गई है ।

अब इन मतों पर संक्षेप से विचार करेंगे ।

उक्त दोनों मतों पर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि राजपूतों के कुछ वंश कम से कम आदिम क्षत्रिय नहीं हैं। वशिष्ठ की कथा को यदि हम पौराणिक अतिशयोक्ति मान लें तो उसमें इतना सत्य अवश्य है कि कुछ विदेशीय वंशों को शुद्ध करके उन्हें क्षत्रिय जाति में स्थान दिया गया। अब प्रश्न यह है कि ये वंश कौन से हैं ?

आर्य धर्म की एक विशेषता असगोत्र विवाह में अब भी वैदिक युग की देन है । सगोत्र विवाह द्विजों में, (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में) नहीं होता । इस प्रकार यदि इस राजपूत वंश को देखें तो उसमें सगोत्र विवाह का नियम नही है। अतएव निश्चित

होता है कि ये गोत्र वैदिक काल की मर्यादा से परिचित हैं ।

परन्तु हो सकता है कि शुद्ध करने वाले ने इनमें इस वैदिक मर्यादा को भी स्थापित करदिया हो। परन्तु मैं पहले कह चुका हूं कि रक्त शुद्धि पर आर्य जाति का ध्यान महाकाव्य काल के उपरान्त ही पहुंच गया था। मौर्य्यों का वृषल (अधार्मिक) और नन्दों को शूद्र कहने वाली आर्य्यजाति जब अन्तर्जातीय विवाह का अनुमोदन करके भी अपनी कन्या विधर्मी या विदेशी रक्त में न दे सकी तब उसके ६०० वर्ष पीछे तो आर्य्य जाति की सङ्कीर्णता बढ़ी ही है घटी नहीं। अतएव वैवाहिक प्रथा पर विचार करने से प्रतीत होता है कि ये जातियां अवश्य शुद्ध क्षत्रिय हैं ।

दूसरा कारण उनके आकार प्रकार की बनावट है। हूणों की मुख्य परख उनकी चपटी नाक और रंग में सफेदी है जो सम्भवतः राजपूत जाति में आपको ढूँढ़ने से भी नहीं मिलेगी। कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की उष्ण जलवायु से उनका रंग बदल गया होगा परन्तु अपनी चपटी नाक वे कहाँ ले गये क्या भारत की जलवायु ने उस नाक को भी आर्य्य की भाँति ऊँचा उठा दिया।

एक अन्य प्रश्न उठ सकता है कि अन्ततः वे शुद्ध होने वाले हूण और शक गये कहाँ ? उनका अवशेष आज क्या है ? प्रश्न आज १५०० वर्ष पश्चात् हो रहा है अतएव उसका उत्तर यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। परन्तु यदि खोज का कार्य्य किया जाय तो इस जाति प्रधान देश में ब्राह्मण से लेकर शूद्रों तक उनकी स्वतंत्र जातियाँ उपस्थित हैं जिनमें सगोत्र विवाह होते हैं, रंग में भी सफेदी की झलक उपस्थित है विशेषतया उनके घर की स्त्रियों में तथा नाक का चपटापन भी कुछ सीमा तक

उपस्थित है। कुछ सीमा तक इसलिये कि असंख्य स्वधर्म उसें पतित आर्य्य स्त्री पुरुष उन जातियों में सम्मिलित हो गये और रक्त के मिश्रण से यह अंतर भी थोड़ा रह गया।

भारतीय क्षत्रिय ने हूण जाति से उसकी वर्वरता तो पूर्णतया ले ली। केवल उस वर्वता को भारतीय विवेक के साँचे में ढाल कर संसार के लिये लालच की वस्तु बना दिया परन्तु अपना सर्व नाश कर दिया। आगे के परिच्छेद में हम उसी का दर्शन करेंगे।

राजपूत काल

राज्य

सिन्ध में ब्राह्मण वंश का राजा दाहिर राज्य करता था इस पर अरबों का पहला आक्रमण ७१२ ई० में हुआ राजा हार गया और मारा गया परन्तु उसकी रानी ने खलीफ़ा के सेनापति मुहम्मद बिनक़ासिम से वीरता पूर्वक युद्ध किया। वह भी पराजित हुई। स्त्रियों ने जौहर किया और सिन्ध अरबों के आधीन हो गया इस आक्रमण की एक मुख्य विशेषता है। वह है मूर्तियों का न तोड़ा जाना तथा धर्म के नाम पर अत्याचार न किया जाना। हिन्दुओं ने जज़िया अवश्य दिया परन्तु मुसलमान साम्राज्य का अंग बनकर भी सिन्ध में धार्मिक असहिष्णुता का नंग नाच नहीं देखा।

इस आक्रमण का प्रभाव भी अच्छा पड़ा। अरबों ने भारतीयों से ज्योतिष, गणित और वैद्यक का ज्ञान प्राप्त किया उन्हें दहाई का ज्ञान भारतवर्ष से इस समय ही प्राप्त हुआ जिसका उन्होंने योरोप में प्रचार किया। मुसलमानों ने संस्कृत-

साहित्य से अनेक पुस्तकों के अरबी में अनुवाद कराये। हितोपदेश की कहानियाँ कलेला और दमना के रूप में अरब में पहुँची वहां से विकृत रूप में ईसप की कहानियां बन कर योरोप में। यहीं से इसी समय चतुरंग (रथ, हाथी, घोड़ा और पैदलों से युद्ध दो राजाओं के युद्ध का) खेल अरब में शतरञ्ज के नाम से पहुँचा। अरबों ने अपनी रुचि के अनुसार रथ को हाथी में बदल दिया और हाथी को ऊँट में।

अर्थात् इस आक्रमण में अरबों ने भारतीयों से बहुत कुछ सीखा। भारतीयों को वे कुछ न दे सके। सिन्ध में इस समय संघ शासन की व्यवस्था थी। खलीफा शक्ति के निर्बल होते ही सिन्ध फिर हिन्दू राजाओं के अधिकार में आ गया।

चित्तौड़ में शीसौदिया राज्य वंश की स्थापना वाप्पा रावल ने की थी। इस बंश की यश-गाथा भारतवर्ष का गौरव है अतएव उसका वर्णन आगे आयेगा।

मालवा में प्रतिहार या परिहार वंश का राज्य था। इस वंश का राजा भोज अपने दान और विद्या प्रचार के लिये बहुत प्रसिद्ध है। यह सातवीं शताब्दी को हुआ था। इसके पुत्र महिपाल देव ने कन्नौज तक जीत लिया था।

अजमेर में चौहान वंश उन्नति पर था। उस वंश में पृथ्वीराज का वर्णन मुहम्मद गौरी के वर्णन के साथ किया जायगा।

वहल या बुन्देल खण्ड को जैजाकमुक्ति भी कहते हैं। यहाँ के चन्देलों ने राज्य विस्तार किया था।

कन्नौज में हर्ष वर्धन के उपरान्त यशोवर्मा ने एक साम्राज्य स्थापित किया परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त काश्मीर के राजा ललितादित्य ने कन्नौज को जीत लिया। परन्तु काश्मीर की शक्ति क्षीण होने पर वह राठौरों (गहरवारों) के अधिकार में आ गया।

दिल्ली और पञ्जाब में तोमर वंश का राज्य था। इसके अन्तिम राजा से दिल्ली का राज्य चौहान वंश के पृथ्वीराज को प्राप्त हुआ।

पञ्जाब में कुशान वंशीय राजाओं के वंशधर राज्य करते थे जिनमें जयपाल और आनन्दपाल ने महमूद ग़ज़नवी का सामना किया था।

बंगाल में पाल वंश और पीछे सेनवंश का राज्य रहा। पाल वंशीय राजा अपनी धार्मिक उदारता के लिये प्रसिद्ध थे। बौद्ध धर्म के अनुयायी होकर भी इन्होंने सदैव ब्राह्मणों का सत्कार किया। सेन वंशी राजा हिन्दू थे।

दक्षिण में महाराष्ट्र प्रदेश में चालुक्य वंश का राज्य दूसरी सदी से था। परन्तु इस वंश के पुलिकेशन द्वितीय ने हर्ष को पराजित करके लगभग समस्त दक्षिणी पठार को अपने आधीन कर लिया। इसके दरबार में पारस के राजा कैखुसरो का राजदूत आया था जिसका चित्र अजन्ता की गुफाओं में है। एक बार यह राज्य राष्ट्रकूटों के हाथ में आ गया परन्तु फिर चालुक्य वंश के अधिकार में आ गया।

पठार के मध्यवर्ती भाग में राष्ट्रकूटों का राज्य था। इन्ही के एक राजाकृष्ण ने अलौरा की गुफाओं में कैलास मन्दिर

करवाया था। अंत में इस वंश के राज्य को चालुक्यों ने नष्ट कर दिया।

पूर्वी हैदराबाद में चालुक्यवंश को एक शाखा ने दसवीं सदी में राज्य स्थापित किया। इस वंश का एक राजा विक्रमादित्य हुआ जो बड़ा विद्वान और विद्वानों का आदर करने वाला तथा वीर था। महाकवि बिल्हण ने इसी को स्तुति में विक्रमाङ्क देवचरितम् नामक महा काव्य लिखा।

दक्षिण में पल्लव वंश का राज्य भी एक वार उन्नति पर था परन्तु आठवीं शताब्दी में इसकी शक्ति चोल वंशीय राजाओं ने चालुक्य वंश की सहायता से नष्ट कर दी। यह वंश मन्दिर निर्माण कार्य के लिये प्रसिद्ध है।

धुर दक्षिण में चोल राज्य अत्यन्त समुन्नत राज्य था। इसने लङ्का पर भी अधिकार कर लिया तथा अपने वाणिज्य द्वारा अण्डमन, निकोबार तथा मलाया प्रायद्वीप तक अपने उपनिवेश बसाये। सम्पूर्ण भारतीय आदर्श परम व निर्मल कला को भी इस राज्य द्वारा बड़ी उन्नति हुई। इनका व्यापार मिस्र और यूनान तक फैला हुआ था।

इस काल का सिंहावलोकन

संक्षेप में हम उनके चरित्र को दो शब्दों में कह सकते है अर्थात् वे आदर्श वीर हैं अब इन शब्दों के भाव पर विचार कीजिये तो राजपूत जाति को समस्त व्यक्तित्व उपस्थित हो जायगा। उसके भूत को वर्तमान की आँखों से देखने का यत्न करें तो आप देखेंगे।

राजपूत जाति के गुण

घोड़ा और तलवार उस के भिन्न हैं तथा उसका भरोसा

भी इन्ही पर है। सगा भाई भी उसका शत्रु हो सकता है वह उसका त्याग कर सकता है परन्तु अपने इन दोनों मित्रों से उसका सम्बन्ध मृत्यु के दिन छूटेगा यह मृत्यु भी कदाचित् किसी दिन अपने विपक्षी की सेना में अगणित शत्रुओं से घिरे सामने छाती पर घाव खाकर होगी।

तनी हुई मूँछें, उभरा हुआ सीना, कमर में तलवार लगाये वह अपने घोड़े पर तन कर बैठता है। उसकी मुख मुद्रा में अभिमान है। अपना और अपने वंश के गौरव का इतना ध्यान है कि नाक पर मक्खी बैठने से नाक काट कर फेक सकता है। परन्तु इतना कृतज्ञ है कि एक वार के उपकार का जीवनभर बदला चुका कर भी अपने को उऋृण नहीं समझता। शत्रु के हाथ में तलवार न देख कर उसका हाथ वार करने के लिये नहीं उठता। शरण में आये हुए शत्रु की सर्वस्व गँवाकर भी रक्षा करेगा। पराजित और युद्ध से भागे हुये शत्रु के प्राण नाश करना उसके धर्म में नहीं। परन्तु सामने किसी को मूँछ मरोड़ते देख कर उसका खून खौल उठता है। अब दो ही मार्ग हैं या तो स्वँय मर जाय या विरोधी की मूंछ नीची करदे वह वीर है अतएव अपनापन उसे इतना प्यारा है कि प्राण चले जाय अपना धर्म, अपनी संस्कृति और अपने आदर्श से डिग नहीं सकता। उसका धर्म है हिन्दू, उसकी संस्कृति है आर्य्य, उसका आदर्श है वीरता। इन्हें वह अपना समझता है।

अपनी बात का धनी, युद्ध में कठोर, व्यवहार में भोले और सरल व्यक्ति के साथ आप अकड़ कर बात नहीं कर सकते परन्तु यदि आप छल करना जानते हैं तो उसे पराजित

कर लेना, उस शेर को पिंजड़े में बन्द कर देना सरल है। अब वह आपके वश में है परन्तु उसे खाना भी आप अकड़ कर वश करने का अभिमान दिखा कर नहीं खिला सकते परन्तु उसके साथ स्नेह व्यवहार कीजिये ऐसा प्रकट कीजिये कि आप उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं वह पिछला छल भूल जायगा। आपके साथ प्राण रक्षक और दाहिना हाथ बन जायगा।

उसकी स्त्री, कन्या और माता के चरणों की धूल भी संसार की प्रमदाओं में आपको नहीं मिलेगी। पति, पुत्र और भाई युद्ध के लिये जा रहे हैं। आरती सजाये, रोचना लिये अपने संबन्धियों को तिलक देती है और आँसू के स्थान पर मधुर हास से अपने स्वजनों को विदाई देती हैं। क्या उसमें प्रेम नहीं है। नहीं, यदि युद्ध में पति मारा गया है तो उस केशव के साथ चिता पर प्रचण्ड दहकती हुई आग की सेज पर वह सोलह शृङ्गार करके साथ लेती हैं। परन्तु यदि युद्ध भूमि से भाग आता है तो किले के फाटक बन्द हैं। उसे किले में आने की आज्ञा नहीं क्योंकि उसे विश्वास नहीं कि वीर पत्नी, वीर माता ऐसे पुरुष का वरण करेगी, ऐसे पुत्र को जन्म देगी जो युद्ध से पीठ दिखाये कोई उससे। इस प्रकार का छल करके किले में घुसना चाहता है।

आवश्यकता होगी तो वह भी अपने पति, पुत्र अथवा पिता का बदला लेने को तलवार पकड़ लेगी अब उस रणचण्डी की गति रोकना, उस कराली से टक्कर लेना साधारण कार्य नहीं ? अपने सतीत्व की ओर कुदृष्टि से देखने वाले की गर्दन वह अपनी तलवार से भेंटती हैं। इसमें किसी की रोक नहीं। समय पर बँध जाने पर उसकी बहिन छुरी उसके साथ है। या तो उसके सतीत्व

की ओर कुदृष्टि से देखने वाले का खून पीयेगी या आत्म-घात में उसकी सहायिका बनेगी।

आज पुत्र अनेक राजनैतिक कारणों से युद्ध विरत रहना चाहता है परन्तु माता देखती है कि स्वदेश की रक्षा के लिये पुत्र का युद्ध पर जाना आवश्यक है अतएव अपने दूध की लाज उसे दिलाती है उसे दूध क्षमा नहीं करेगी। यदि अपनी जाति मर्यादा की रक्षा में उसका पुत्र पीछे रह गया। कायर पुत्र से निपूती रहना उसकी दृष्टि में अच्छा है।

आप शत्रु सेना का बल अधिक है, उसकी सन्तान राजपूत निर्बल हैं परन्तु यदि उसके पति, पुत्र और भाई केसरिया बाना पहिन कर स्वर्ग जाने के लिये तैयार होकर गये हैं तो वह भी उसके साथ ही जायगी। वे शत्रुओं की लोहे की आग में जलेंगे तो वह दहकती हुई लकड़ी की आग में। पहले ही उनका स्वागत करने के लिये जल कर स्वर्ग पहुंच जांयगी।

माताओ! आज तुम्हारे जैसी गौरव सम्पन्न माताओं की इस देश को आवश्यकता है। स्वर्ग को अपने जीवन से पवित्र करने वाली देवियो! आशीर्वाद दो कि तुम्हारी सन्तान फिर तुम्हारे दिखाये संसार के इतिहास में दुर्लभ पथ पर चल कर अपने देश का गौरव बढ़ा सकें। राजपूत जाति के अवगुण जिस प्रकार राजपूत जाति के गुण दो शब्दों में कहे जा सकते हैं उसी प्रकार उनके अवगुण भी। वे शब्द अति वीरता हैं। उनकी इस अति भावना ने ही इतना संकुचित बना दिया कि वे दूसरों की उन्नति न सह सके। जहाँ पड़ोसी राज्य उन्नति करने लगा उन्हें अपना अपमान समझ पड़ा फिर युद्ध के लिये बहाने की कमी नहीं। पड़ोसी राज्य के कुछ सिपाही गाँव के किसी

बाग में ठहर गये । बाग के मालिक से कुछ कहा सुनी हो गई । अब दोनों राज्यों की सेनायें रणभूमि में आ गई जो पराजित हुआ वह तो नष्ट हो ही गया जेता की शक्ति भी क्षीण हो गई उसे तीसरे राज्य ने हरा दिया । इसी प्रकार परस्पर युद्धों ने राजपूत जाति की वीरता को जहां महत्व प्रदान किया वहां उनकी शक्ति सदैव क्षीण की ।

पत्नियों और माताओं की पूजा करने वाली राजपूत जाति कन्याओं के सम्बन्ध में निष्ठुर हो गई । रूपवती कन्या का हरण वह भी राजकुल की कन्या का हरण एक सामान्य बात थी । फिर युद्धों की एक परम्परा चल पड़ना क्या आश्चर्य था । यह युद्ध ही हो कर रह जाते तो भी ठीक था । इनके परिणाम-स्वरूप होने वाले वंशगत विरोधों ने राजपूत शक्ति की जितनी हानि पहुंचाई उतनी और किसी कारण से नहीं हुई ।

पारस्परिक युद्धों में अधिक उलझे रहने के कारण राजपूत जाति दूसरों के प्रति उदारभाव और सहन-शीलता के गुण से सर्वथा रिक्त हो गई । इसके फलस्वरूप समस्त जाति का संगठन छिन्न भिन्न हो गया । और संगठन के अभाव में शक्ति कहां । इन्हीं युद्धों की अति के कारण राजपूत राज्यों का शासन प्रबन्ध शिथिल हो गया । उनमें स्वयं प्रबन्ध की ऐसी कुशलता थी कि युद्ध रत रहते हुये भी शासन ठीक से चलता जाता । न कोई ऐसा मन्त्रिमण्डल था जो राज्य शासन पर अधिकार रखता तथा सुधार करता । फलतः सामान्य जनता सैनिक शक्ति से अलग हो गई । अब केवल पेशेवर सैनिक थे शेष जनता को युद्धों तथा जय पराजय से कोई प्रयोजन नहीं रहा । और सेवा की

पराजय के उपरान्त देश पराजित समझा गया। अर्थात् अति के कारण राष्ट्रियिता का भाव पूर्णतया लुप्त हो गया ।

इस काल की व्यवस्था

जैसा ऊपर कहा जा चुका है दक्षिण भारत के पाण्ड्य चोल और चोल और केरल प्रदेशों को छोड़ कर समस्त शेष भारतवर्ष में राष्ट्र की सम्पूर्ण सत्ता राजा के हाथ में आ गई थी। उसके आधीन युवराज मंत्री, पुरोहित, राज वैद्य और राज ज्योतिषी होते थे। इन सहायकों के नाम से ही विदित होता है कि यह मन्त्रिमण्डल राजा के व्यक्तित्व का अधिक सहायक था। राज्य शासन का कम। राजा के दरबार में अब मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा सैनिक सरदारों का महत्व बढ़ गया था। राज्य कार्य में सम्मति सब की ली जाती थी परन्तु निर्णय सेनापति के द्वारा हो होता था जो बहुधा स्वयं राजा ही होता था।

ग्रामों का प्रबन्ध बहुधा ग्राम पञ्चायत और मुखिया द्वारा ही होता था। पंचायत माल और फौजदारी दोनों प्रकार के अभियोग सुनती थी। तथा उसका निर्णय अन्तिम होता था। ग्राम का सम्पूर्ण राज कर जो आय का ⅙ होता था पंचायत द्वारा एकत्रित होकर राजा के अधिकारी शौल्किक को दे दिया जाता था जो उसे केन्द्रीय कोष में पहुंचाने का उत्तरदायी होता था। शौल्किक के अधिकार में भी एक सेना होती थी ।

राज्य शासन का प्रधान अङ्ग सेना थी। आधीन राज्य भी सेना अपने प्रभु राजा को देते थे। सेना में हाथी, घोड़ा और पैदलों का प्रयोग होता था। सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति का जीवन सैनिक जीवन था। परन्तु सामान्य मनुष्य भी युद्धोपयोगी अस्त्र शस्त्र रख सकता था अतएव निर्बलता की अशक्ति की भावना नहीं थी ।
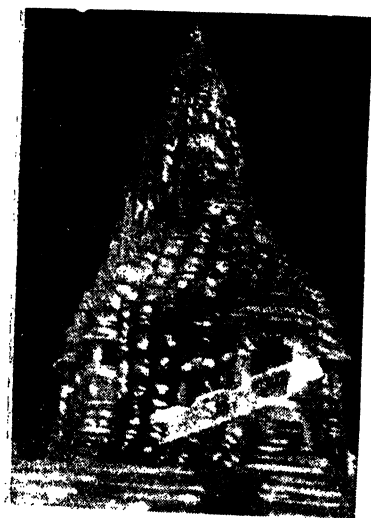
भूनेश्वर का मन्दिर

राजा प्रजा के हित के लिये कुयें, तालाब, नहरों, गोचर-भूमि आदि के लिये प्रबन्ध करते थे। बनों में राज्याधिकार नाममात्र का था।

दण्ड व्यवस्था में भी परिवर्तन हो गया था। राजा प्रधान नयाधीश था। उसकी सहायता के लिये अन्य न्याय कर्त्ता भी थे। परन्तु न्याय व्यवस्था में रीति रिवाज पर अधिक ध्यान दिया जाता था। दण्ड का विधान सब के लिये एकसा नहीं था। मनुष्य की सामाजिक स्थिति के अनुसार दण्ड दिया जाता था। कभी २ विशेष अपराधों के लिये राजा नियम बना देता था।

वर्ण विभाग और जाति भेद अत्यन्त सुदृढ़ हो गया था।
आश्रम धर्म की ओर से लोगों का ध्यान सम्पूर्ण
सामाजिक दशा तया हट गया था। ब्राह्मण राज कार्य्य से अलग
हो चुके थे अतएव अब उनका काम संहि-
तायें बनाना ही रह गया था। जिस में ब्राह्मणों ने अपने लिये विशेष ध्यान रक्खा वे भारतीय राजनीति में पीछे ढकेल दिये जाने के कारण वैदिक संस्कृति की रक्षा के लिये लग गये थे। अतएव वर्ण व्यवस्था का दृढ़ संगठन करके उन्हों ने हिन्दू जाति को कछुआ बना दिया जिस पर तलवारों के घावों का प्रहार नहीं पड़ सकता था। परन्तु इसी रक्षा के यत्न में उन्हें वे नियम बनाने पड़े जिन से बाहर का अंश उन में प्रविष्ट न हो सके अथवा उनमें से ही दूषित अंश फिर अंदर न आ सके। इस नियम के अनुसार जाति की रक्षा तो हो गई परन्तु भूल या असावधानी से होने वाले अपराध के लिये भी क्षमा का अवसर अथवा फिर जाति में प्रवेश होने का मार्ग बन्द हो गया। इस प्रकार जाति भेद का

दूषित प्रभाव उत्पन्न हो गया। यद्यपि स्वयंम्बर की प्रथा थी और स्त्री शिक्षा भी होती थी। पर्दे की प्रथा नहीं थी किन्तु कन्या हरण से रक्षा पाने के लिये हिन्दू जाति में इसी समय बाल विवाह का प्रचार हुआ तथा बहु-विवाह की प्रथा ने भी इसी समय अधिक बल प्राप्त किया। शक्ति सम्पन्न व्यक्तियों का जीवन विलास की ओर झुक गया। अब राजाओं के दरबार में उपदेश देने वालों की अपेक्षा उनका गुण गाने वाले उनको वीर कार्य्यों में उत्तेजना देने वाले चारणों का आदर होने लगा।

आर्थिक-व्यवस्था

जाति भेद की प्रथा के अनुसार आर्थिक संगठन पर भी प्रभाव पड़ा। अब आर्थिक व्यवस्था में उत्तर भारत का संगठन लगभग टूट गया। गांव अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये स्वतन्त्र होने लगे। प्रत्येक व्यवसायी का गांव में बसना या बसाना आवश्यक समझा जाने लगा। परन्तु उद्योगों में इस प्रकार व्यक्ति जो अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कृषक वर्ग पर निर्भर रहना होता था। अतएव औद्योगिकों की स्थिति समाज में नीचे स्तर पर उतर गई। उन्हें अपनी सेवाओं के परिवर्त्तन में कृषकों से धन की अपेक्षा अन्न मिलने लगा। युद्धोपयोगी यन्त्रों का निर्माण करने वाले भी इसी प्रकार अपनी आजीविका कमाने लगे। अतएव उनका सम्मान भी गिर गया। वस्तुतः उत्तर भारत की आर्थिक व्यवस्था का कोई ढांचा नहीं रहता। परन्तु दक्षिण भारत में स्थिति अनुकूल थी। वहां व्यापार और कला-कौशल दोनों उन्नत थे। सामुद्रिक व्यापारियों के संघ थे जिनके द्वारा ऊपर वर्णित मिश्र से लेकर कम्बोड़िया तक व्यापार होता था। इस समय

खुजराहों का मन्दिर

दक्षिण भारत अधिक सम्पन्न और धनवान था। जिसका पता दक्षिण की इमारतों और मन्दिरों से मिलता है जो लगभग इसी काल में बनी।

कला। मूर्त्ति निर्माण कला तथा स्थापना में इस समय विशेष उन्नति हुई। भुवनेश्वर, खजुराहो, आबू काण्डी के मन्दिर तथा जगन्नाथ पुरी के मन्दिर इस काल की स्थापत्य कला के सर्वोत्तम उदाहरण हैं।

साहित्य में भी यह काल अपनी उन्नत स्थिति में बना रहा। कल्याण ने काश्मीर राज वंश का इतिहास राज तरंगिणी लिखी, बिल्हण के बिक्रमाङ्क देव चरित्र का वर्णन ऊपर आ चुका है। जय-देव का गीत-गोविन्द भोज का अलङ्कार शास्त्र, भाव-भूति के नाटक, विष्णु शर्मा का पंचतंत्र, सोमेन्द्र का प्राकृत भाषा में कथा सरिसागर इस काल की प्रमुख साहित्यिक रचनायें हैं। प्रान्तीय भाषाओं का विकास इसी समय प्रारम्भ हुआ क्योंकि राजनैतिक कारणों से संस्कृत अब समस्त देश की राष्ट्र भाषा न रह सकी। और परस्पर सम्बन्ध टूट जाने से भी प्रान्तीय भाषाओं का विकास हुआ।

इनके अतिरिक्त भास्कराचार्य्य ने नवीन सूर्य्यसिद्धान्त, हेम-चन्द्र सूरि ने प्राकृत व्याकरण, चक्रपाणि और वाग्भट्ट ने वैद्यक सोमेश्वर ने खगोल शास्त्र पर पुस्तकें लिखीं।

दक्षिण में अपेक्षाकृत शान्ति थी अतएव इस काल में दक्षिण से अनेक दार्शनिक विद्वान भी निकले। श्री निम्बार्क और रामानुज के अद्वैत विषयक नवीन सिद्धान्त द्वैताद्वैत का और विशिष्टा अद्वैत का प्रचार हुआ। इसी समय जगत्गुरु परम दार्शनिक अद्वैत

वादी शङ्कर ने संसार को चकित कर देने वाले अद्वैत सिद्धान्त का प्रचार किया।

बौद्ध धर्म का इस समय ह्रास हो गया और जैनधर्म सिकुड़ कर केवल कुछ वैश्यों में ही सीमित रह गया। इस युद्ध के काल में इन धर्मों का नष्ट हो जाना स्वाभाविक था। परन्तु हिन्दू धर्म में भी इसी समय अनेक समुदाय बन गये। शैव वैष्णव शाक्त धर्मों की उपासना पद्धति का इसी समय प्रचार हुआ। दार्शनिक विचारों में भी जैसा ऊपर कहा गया है मौलिक मत-भेद उत्पन्न हुए। परन्तु साधारण जनता का धर्म कुछ विश्वासों, धार्मिक त्यौहारों तथा कुछ निश्चित आचारों पर सीमित रह गया। यद्यपि ब्राह्मणों ने इन विश्वासों और त्यौहारों में गूढ़ धार्मिक तत्त्वों का योग दिया था परन्तु आगे आने वाले संघर्ष काल में उन गूढ़ तथा उपयोगी बातों पर लोगों का ध्यान नहीं रहा और केवल लोग लकीर पीटने लगे।

धर्म

संक्षेप में इस काल में हिन्दू जाति अपने गौरव की अन्तिम चमक दिखाकर बुझने की सामग्री कुछ अपने में इकट्ठा कर रही थी कुछ बाहर से आने की आवश्यकता थी जिसे मुसलमानों के आक्रमण ने पूर्ण कर दिया।

———

पथ्वीराज

(250 B. C.—200 A. D.)

२५०	पूर्व ईसा	बाख्तर तथा पार्थिया का स्वतन्त्र होना
२३४	,, ,,	आन्ध्र वंश का आरम्भ
२००–१९०	,, ,,	डेमीट्रियस का शासन
१९०	,,	,, अफ़ग़ानिस्तान पश्चिमी पंजाब तथा सिन्ध आदि का विजय करना
१८०–१६०	,,	मलिन्द का शासन
१७४–७२	,,	शुङ्ग वंश
१७४–१६०	,,	यूची का चीन से पश्चिम की ओर गमन
१६५	,,	एक यूची के दबाव से वख्तर में चले आते हैं।
१४०–१३०	,,	शक आदि के आक्रमण
७२–२७	,,	कण्व वंश
१५–ई०	,,	कड फीसिस प्रथम (१५-४५)
४५	ईस्वी	,, ,, सम्पूर्ण यूची का राजा

५०	,,	,, द्वितीय का आक्रमण यवन राज सत्ता का अन्त
७८–१२०	,,	कनिष्क का शासन
७८	,,	शक सम्वत्
१००	,,	बौद्ध धर्म का तीसरा अधिवेशन
१२०–१७८	,,	कनिष्क के उत्तराधिकारी
१७३–२०२	,,	यजनश्री आन्ध्र
२२६	,,	आन्ध्र वंश का अन्त
३२०–३५	,,	चन्द्रगुप्त प्रथम
३३५–७५	,,	समुद्र गुप्त
३४२–५०	,,	समुद्र गुप्त की दक्खिन विजय
३७५–४१३	,,	चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य
३८८–४००	,,	चन्दगुप्त का मालवा, गुजरात काठियावाड़ विजय
४०५	,,	फहियान का आगमन
४११	,,	,, का लौट जाना
४१३–५५	,,	कुमार गुप्त
४५५–८०	,,	स्कन्द गुप्त
४५५	,,	श्वेत हूणों का प्रथम आक्रमण
५६५	,,	,, ,, द्वितीय आक्रमण
४७६	,,	आर्य भट्ट का जन्म

४४८ ,, हूणों द्वारा फारस विजय

४९५ ,, तोरमाण की मालवा विजय

५१० ,, ,, का राज्याभिषेक

५२८ ,, बालादित्य और यशोधर्मन् महरगुल को हराते हैं।

५७८ ,, ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी का जन्म

५९० ,, हर्ष का जन्म

६०५ ,, गृहवर्मन का वध और राजश्री का बन्दी होना

६०६–४८ ,, हर्ष वर्धन

६०६+१२ ,, उत्तरी भारत में दिग्विजय

६१३ ,, हर्ष का बौद्ध धर्म ग्रहण

६२० ,, पुल केशिन से युद्ध और हर्ष की पराजय

६३० ,, ह्वेनसांग का आगमन

६४३ ,, इलाहाबाद का धार्मिक सम्मेलन

६४५ ,, ह्यूनसांग लौट कर चीन गया

६४७ ,, हर्ष की मृत्यु

५७० ,, मुहम्त साहब का जन्म

५७० ,, ,, ,, का मक्का से

६२२ ,, मदीना को कूच हिजरी सम्वत का आरम्भ

६४१	,,	अरबों का फारस विजय करना
७१०	,,	मुहम्मद कासिम का सिन्ध पर आक्रमण
९८८	,,	सुबुक्तगीन का जैपाल को हराना
९९९	,,	महमूद गज़नवी का सिंहासन पर बैठना

———

सोलहवाँ अध्याय

परिच्छेद १

धार्मिक असहिष्णुता का काल

(१००० से १५३५ तक)

मुसलमानों का भारतवर्ष में प्रवेश

मुसलमान धर्म ५६६ ई० में मक्का में एक ज्योति का प्रकाश हुआ जिसने अपने प्रकाश से अरबों की आंखें खोल दीं। उनको अन्धकार से निकाल कर एक ऐसा मार्ग दिखा दिया जिसके कारण अरब संगठित हो सका तथा उसके अनुयायियों ने एक बार संसार कंपा दिया। इन्हें हज़रत मोहम्मद कहते हैं।

हज़रत मोहम्मद सैयद घराने में उत्पन्न हुये उनके जीवन के प्रारम्भिक चालीस वर्ष उनके धर्म के इतिहास के लिये मूल्यवान नहीं है। परन्तु इन वर्षों में उन्होंने आंखें खोल कर अपने देश को देखा। अपने स्वदेशियों में फैले हुये परस्पर विरोध और आये दिन के युद्ध देखे। उनका हृदय इस दुर्व्यवस्था का प्रतिकार सोचने के लिये इन ४० वर्षों तक अवश्य लगा रहा होगा।

अन्ततः वह दिन आया जब उन्हें इस दुदशा को दूर करने के लिये दैवी प्रेरणा मिली। उन्होंने मक्का में ही अपने धर्मोपदेश प्रारम्भ किये। परन्तु मक्का निवासियों ने जब उनका अनादर किया तो वे मक्के से मदीने ६२२ ई० में चले गये। मदीने वालों

ने उनके उपदेश स्वीकार कर लिये तथा उन्हें अपना नेता मान कर संगठन कर लिया। हज़रत ने अपने स्वदेश वासियों का अज्ञान देख कर समझ लिया था कि बिना शक्ति के यह अरब सद्धर्म का मार्ग न ग्रहण करेंगे और समय पर उनके शत्रु बन कर विरोध और युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देंगे। अतएव उन्होंने अपनी संगठित शक्ति से मक्का पर आक्रमण किया उसे विजय करके धर्म का प्रचार आरम्भ किया। यहां यह न भूलना चाहिये कि यह विजय केवल राजनैतिक थी। धर्म प्रचार के लिये अत्याचार नहीं किया गया। हज़रत मोहम्मद साहब पर कूड़ा फेंकने वाले की सेवा करने वाले हज़रत बल पूर्वक यदि धर्म-परिवर्तन और धार्मिक अत्याचार का उपदेश देने वाले हज़रत मोहम्मद होते तो ऐसी घटना का अवसर ही नहीं आता।

धर्म की रक्षा के लिये, धर्म प्रचार के लिये युद्ध करना और युद्ध करके प्रचार में बाधा देने वाली राजनैतिक शक्तियों को तोड़ देना तो उनके उपदेश का अंग अवश्य है परन्तु बल पूर्वक धर्म परिवर्त्तन का उपदेश अथवा धर्म प्रचार के लिये अत्याचार की आज्ञा देना मोहम्मद जैसे पैग़म्बर के लिये सर्वथा अनुपयुक्त था।

परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस्लाम धर्म के प्रचारक के हृदय में हिन्दू धर्म की सर्वभक्षी नीति अवश्य रही होगी। अतएव इस्लाम धर्म के नित्य अथवा नैमित्तिक आचार विचारों के विरोध में ही इस्लाम धर्म के आचार विचार बनाये गये हैं।

हज़रत मोहम्मद साहब का शरीर सन् ६३२ ई० में छूट गया। परन्तु उनके अनुयायी अबूबकर, उमर उस्मान और

अली नामक खलीफाओं ने ५० वर्ष में ही स्पेन से लेकर काबुल तक देश अपने रंग में रंग दिया। केवल भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है और हिन्दू संस्कृति ही एक ऐसी संस्कृति है जो ८०० वर्षों तक बराबर संघर्ष करके भी अपनी सत्ता बनाये रख सकी। ऐसा क्यों हुआ इस पर हम इस काल के अन्त में विचार करेंगे।

अरबों के पहले आक्रमण का वर्णन हम कर चुके हैं। उसके उपरान्त भारतवर्ष लग-भग ३०० वर्षों तक मुसलमानो आक्रमणों से मुक्त रहा। इसका कारण सम्भव यही था कि मुसलमान शक्ति कुछ तो पश्चिम के युद्धों में उलझ रही तथा कुछ भारतीय परिस्थितियां तब तक अनुकूल न हो सकी थीं।

भारतवर्ष पर दूसरा आक्रमण सुबुक्तगीन ने ६६६ ई० में उत्तरीय पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के राजा जयपाल के राज्य पर किया तथा कई ज़िले अपने अधिकार में कर लिये। इस पर जयपाल ने स्वयं आक्रमण किया परन्तु पराजित होकर उसे सन्धि करनी पड़ी। ६६१ ई० में जयपाल ने फिर एक बड़ी सेना एकत्र करके आक्रमण किया परन्तु दुर्भाग्य से जयपाल फिर पराजित हुआ। इस प्रकार सुबुक्तगीन को जयपाल के राज्य की लूट से बहुत बड़ी धन राशि प्राप्त हुई।

६६७ ई० में सुबुक्तगीन मर गया। और उसका पुत्र महमूद गद्दी पर बैठा। पहले उसने खुरासान, सीस्तान और पूर्वी फारस अपने अधिकार में किये। फिर अपने बचपन के स्वप्न, भारतवर्ष का धन लूटने को पूरा करने के लिये उसने भारतवर्ष पर लगातार आक्रमण किये। उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

पहला--१००० ई० उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश ।

दूसरा और तीसरा १००० ई०, वा १००१ ई० जयपाल के राज्य पर । जयपाल की पराजय हुई और उसे लूट में बड़ा धन मिला । वीर क्षत्रिय अपने इस बार की पराजय के अपमान से जीवित चिता में जल कर मर गया ।

चौथा--१००४ ई० भीरा के राजा पर कर न देने के कारण महमूद की विजय ।

पांचवा--१००६ ई० मुल्तान के मुसलमान बादशाह दाऊ पर, आक्रमण मार्ग में अनंग पाल की पराजय ।

छटा--१००८ ई० लाहौर, तथा नगरकोट के राजा जयपाल के पुत्र अनंग पाल पर । युद्ध में अनंग पाल का हाथी भाग खड़ा हुआ और जीती हुई बाजी हार में बदल गई । इसी को भाग्य का खेल कहते हैं ज्वालामुखी (कांगड़ाके समीप) के मंदिरोंकी लूट

सातवाँ १००९ ई० नरायन पर

आठवाँ १०१० ई० फिर मुल्तान पर

नवाँ १०१३ ई० निन्दुन पर

दसवाँ १०१४ ई० थानेश्वर पर

ग्यारहवाँ १०२५ ई० लोहकोट पर

बारहवाँ १०१८ ई० बुलन्दशहर । राजा हरदत्त मुसलमान हो गया, महाबन के राजा कुलचन्द पर, राजा की पराजय तथा मथुरा की लूट तथा इसी सिलसिले में १०१९ ई० में कन्नौज पर यहाँ के राजा राजपाल ने बिना युद्ध ही आधीनता स्वीकार कर ली ।

तरहवाँ १०२० ई० चन्देल राजा गण्ड पर जिसने राजपाल को मार डाला था क्योंकि राजपाल ने बिना युद्ध आधीनता स्वीकार कर ली थी। गण्डकी पराजय और राज्य की लूट।

चौदहवाँ १०२१ ई० किरात लोह कोट और लाहौर पर विद्रोह के कारण।

पंद्रहवाँ १०२२, २३ ई० में कालिञ्जर और ग्वालियर पर क्योंकि दोनों ने कन्नौज के राजा राजपाल को मारने का यत्न किया था।

सोलहवां १०२५ ई० सोमनाथ मन्दिर पर, मुलतान अजमेर को लूटता हुआ पहुँचा परन्तु क़िले की दीवार शीघ्र न तोड़ सका। राजा भीमदेव (गुजरात के स्वामी) के नेतृत्त्व में मन्दिर की रक्षा के लिए आई हुई सेना से युद्ध हुआ। एक बार महमूद की पराजय होती सी जान पड़ी उसकी सेना विचलित हो उठी परन्तु उसने जेहाद के नाम पर, धर्म प्रचार के नाम पर तथा धन का लोभ दिखा कर अपनी सेना को उत्साहित किया। युद्ध में हिन्दुओं की हार हुई तथा ब्राह्मणों ने मन्दिर की रक्षा के लिये असंख्य धन भी देना चाहा परन्तु महमूद ने कहा कि मैं मूर्ति नाशक हूं मूर्ति विक्रेता नहीं तथा गदा के प्रहार से मूर्ति चूर चूर कर दी। उसके टुकड़े ग़जनी की मस्जिद के फर्श पर लगाने के लिये असंख्य धन राशि और चन्दन के फाटक के साथ लूट ले गया। इस लूट के उपरान्त उसने अन्हलवाड़ा पर भी आक्रमण करके उसे पराजित किया।

उसका अन्तिम आक्रमण १०२६ ई० में खोखरों पर हुआ क्योंकि इन्होंने उसे सोमनाथ का मन्दिर लूट कर लौटते समय बड़ा कष्ट दिया था।

१०३० ई. में उसका शरीरान्त हो गया।

महमूद के आक्रमणों पर राजनातक दृष्टि से विचार

महमूद ग़जनी के आक्रमणों का उद्देश्य ही उसके इन आक्रमणों की राजनैतिक स्थिति को स्पष्ट कर देता है। भारतवर्ष के पूर्व पश्चिम के ब्यापार पर उसकी बचपन से दृष्टि थी। भारतवर्ष के असंख्य धर्म की कहानी उसके हृदय में सुनहली कल्पनाओं के चित्र खींच रही थी। अपने सम्राट होने पर कल्पना चित्रों को मूर्तिमान किया। उसने न तो इससे कुछ अधिक सोचा था और न इससे कुछ अधिक उसने कर दिखाया। भारतवर्ष की उस समय राजनैतिक स्थिति ही ऐसी थी कि क़िसी भी योद्धा के लिये जिसके पास संगठित सैनिक शक्ति हो भारतवर्ष पर विजय प्राप्त कर सकता था अतएव महमूद ग़जनवी की विजय कोई विशेष महत्व की वस्तु न थी। परन्तु सबसे विशेष महत्व की वस्तु थी आगामी मुसलमानों के लिये भारतवर्ष का मार्ग खुल जाना। उसने राजपूत शक्ति को तोड़ दिया तथा आगामी गोर शासकों के लिये भारतवर्ष सरलता से जीत लेने योग्य हो गया।

भारतवर्ष में जो मुसलमान राज्य इस ग़जनवी वंश द्वारा स्थापित हो गये थे उन्होंने भावी मुसलमान आक्रमणों के लिये सदैव उत्तर पश्चिम का द्वार खुला रक्खा। जयपाल और अनंगपाल की पराजय के उपरान्त, खोखरों की संगठित शक्ति के बट जाने के कारण उत्तरी सीमाप्रान्त मुसलमानों का उपनिवेश बन गया तथा लाहौर तक आने की प्राकृतिक असुविधा दूर हो गई। इस प्रकार स्वयं राज्य स्थापित न करके भी, केवल लूट मार का

मुसलमानों की विजय के पूर्व दक्षिण भारत

नर्मदा नदी
ताप्ति नदी
गोदावरी नदी
कृष्णा नदी
वारंगल
राजमहेन्द्री
कालीनगरम
पुरी
नीलौर
कांजीवरम
तिनेवली
ममल्लपुरम
मदुरा
रामेश्वर
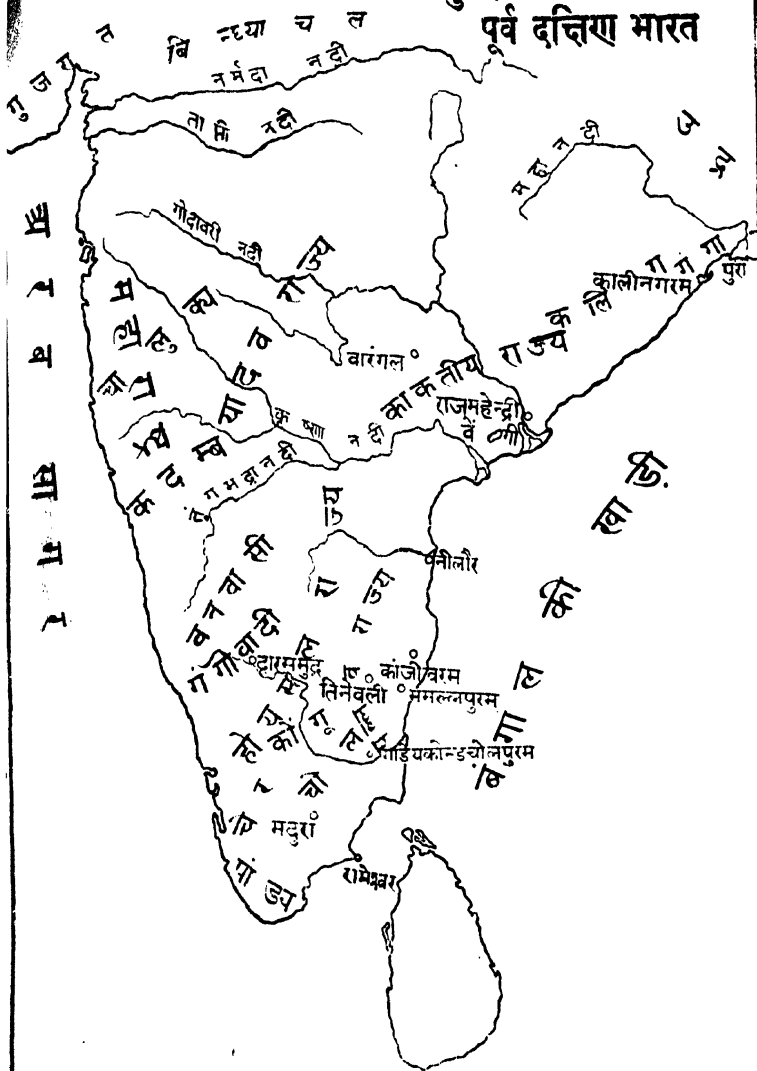
उद्देश्य लेकर आया हुआ महमूद जो कुछ कर गया उससे अधिक की आशा उससे नहीं थी।

हम महमूद को तीन दृष्टिकोणों से देख सकते हैं। पहला वह उस समुदाय का था जिसने अपनी घुट्टी में अत्याचार किया था। हूण जाति जब इस्लाम में परिवर्तित हो गई तो युद्ध का उपदेश देने वाले धर्म के सहारे इन मुसलमानों में तथा इट्टाइट तुर्कों में जो भाव साधारण युद्धों में अत्याचार का जन्म से था उसे अब धार्मिक संगठन की शक्ति और प्राप्त हो गई अतएव उसने यदि सैनिक विजय प्राप्त करके बेचारे निरीह निवासियों का वध और निरर्थक नरसंहार किया तो उसे ही दोष नहीं दिया जा सकता यह बात तो उसको वंश परम्परा से ही प्राप्त थी। इसी प्रकार उसके स्त्रियों पर अत्याचार और उन्हें दास बनाने की अनुचित चेष्टा को भी देखा जा सकता है।

महमूद का व्यक्तित्व

दूसरा दृष्टिकोण इस्लाम धर्म का है। हज़रत मुहम्मद का इस्लाम जब ज़ियाद की अध्यक्षता में अली (चौथे खलीफा) के पुत्रों को बलि दे सकने वाले तथा उसे धर्म के नाम पर क्षमा कर देना वाले के रूप में बदल सकता है तो महमूद गजनवी ने तो हिन्दुओं पर ही अधिकतर अत्याचार किया था। उसकी स्तुति में उस काल का इस्लाम मुहम्मद साहब का नहीं) कैसे न गीत गाता फिर जब इन धर्म के ठेकेदारों को सोने के ढेर में इन स्तुतियों का पारितोषिक मिलता हो। अल्बेरूनी यदि उसके दरबार का लेखक न होता फिरदौसी की भांति अपमानित हुआ होता तो कदाचित् फिरदौसी से अधिक उसके अत्याचारों के गीत गाता। क्योंकि फिरदौसी ने महमूद

ग़ज़नवी के मुसलमानों पर भी किये गये अत्याचारों का वर्णन किया है।

अब तीसरे दृष्टिकोण से विचार कीजिये। हिन्दू तो यदि उसे अत्याचारी कहें तो उनका पक्षपात होगा। मनुष्य के सामान्य धर्म का विचार करके भी इस प्रकार अत्याचार की प्रवृत्ति की चाहे वह मुसलमानों पर किया जाय, चाहे हिन्दुओं पर, चाहे किसी जाति पर बड़ाई नहीं की जा सकती। अतएव सामान्य मनुष्य की दृष्टि से महमूद ग़ज़नवी के अत्याचारों के कारण अथवा किसी भी ऐसे राष्ट्र को जो निरीह प्रजा पर अत्याचार करता है उचित नहीं कहा जा सकता। परन्तु उस समय तक काबुल के मुसलमानों में इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होना सम्भव ही नहीं था। मुसलमान संस्कृति के केन्द्र से दूर, नवीन धर्म के उन्माद रखने वाले वंश परम्परा से अत्याचार की वासना लिये हुये महमूद से अत्याचार के अतिरिक्त हम और किस बात की आशा कर सकते थे?

इस एक बात के अतिरिक्त उसमें एक दोष और भी था। वह बड़ा लोभी था। फ़िरदौसी को शाहनामे के पारितोषिक में जब ६०,००० अशर्फियां देने का अवसर आया तो वह अपने प्रण से मुकर गया। उस जैसे धन के लुटेरे के लिये ६०,००० अशर्फियां बहुत न थी। उसका यह लोभ उसे मृत्यु काल तक न छोड़ सका। कहते हैं कि मरते समय उसने अपना सारा धन अपने सामने रखवा दिया तथा उसे देख देख कर रोता कलपता मरा। उसे क्या पता था कि उसकी न्याय अन्याय की सारी कमाई एक दिन इस प्रकार छोड़नी पड़ेगी। कदाचित् "सिकन्दर जब चला दुनिया से दोनों हाथ खाली थे"

कहने अथवा सुनने का उसे जीवन भर अपनी हाय-हाय के कारण अवसर ही नहीं मिला।

उसका तीसरा दोष उसकी प्रबन्ध शक्ति की कमी था। एक विशाल साम्राज्य जीतकर वह उसका ऐसा प्रबन्ध न कर सका जिससे राज्य भर में शांति स्थापित हो जाती। वह गां। उजाड़ कर उल्लू की लड़की के दहेज में देने योग्य तो बना सकता था परन्तु बुढ़िया की शिकायत ठीक करने की शक्ति उन नहीं थी।

अब महमूद के उन गुणों पर ध्यान दीजिये जिन्हों ने उसे एक महान् विजेता बना दिया। संक्षेप में वह एक चतुर सेनापति था। चतुर सेनापति के सब गुण उसमें उपस्थित थे।

अपने सिपाहियों के स्वभाव से लेकर वह विरोधी परिस्थितियों तक से भली भांति परिचित था। वह जानता था कि तुर्क सैनिक उसी के जैसे भयंकर और युद्ध प्रेमी हैं। यदि उन्हें बाहर युद्ध न मिला तो वे घर में युद्ध आरम्भ करदेंगे अतएव उसने तुर्कों को घर की बात सोचने का अवसर भी नहीं दिया उन्हें सदैव युद्ध में उलझाये रक्खा।

रूमानी साम्राज्य की निर्बलता, खलीफा की अपने से दूरी तथा भारतवर्ष की राजनैतिक अव्यवस्था को वह भली भांति समझता था। आप उसके आक्रमणों पर ध्यान पूर्वक विचार करके देखें कि किस प्रकार उसने अपना पांव एक के बाद दूसरा बढ़ाया। उसने न तो सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक हल्ले में रौंदना चाहा न भारतीय राजाओं को शक्ति संग्रह करने का अवसर दिया। उसने भारतवर्ष में बल पूर्वक इस्लाम के प्रचार

का भी यत्न नहीं किया वरन् केवल लोभ का, रक्षा का आश्रय देकर कुछ ऐसे मुसलमान बना लिये जो उसके सहायक हो गये।

उसने अपनी सेना को स्वतंत्र लूट का अवसर देकर तुर्क मनोवृत्ति को पहचानने का बड़ा काम किया। यदि वह केवल इसी एक बात में चूक जाता तो उसके सारे किये धरे पर पानी फिर जाता।

युद्धों में उसका धैर्य्य, उसकी कष्ट सहिष्णुता और उद्देश्य के लिये असाध्य साधन करना उसे सफल सेनापति सिद्ध करते हैं। सिन्ध के मरुस्थल को पार करके सोमनाथ पर आक्रमण उसके इसी गुण के परिचायक हैं। कठिन अवसर पर भी वह धैर्य्य से काम लेकर ही सफल हुआ।

महमूद के गुणों में उसकी न्याय प्रियता की एक कहानी भी अमर है। उसके भतीजे ने एक अबला का सतीत्व नष्ट किया। महमूद के पास उसकी शिकायत पहुँची। महमूद ने उस अबला के घर में छिपकर आँखों में पट्टी बांध ली। जब उसका दुराचरी भतीजा वहां आया तो उसने तलवार से उसकी गर्दन उड़ा दी। आंख बांधने का कारण केवल ममत्व उत्पन्न न होने देना था। उसका यह गुण भी उसकी धमनियों के रक्त में था जो उसे अपने पूर्वजों से मिला था।

विद्वानों का आदर करना तथा विद्या प्रेम भी उसके विशेष गुण थे। फिरदौसी और अल्बेरूनी का ऊपर वर्णन आ चुका है। इनके अतिरिक्त प्रसिद्ध इतिहासकार उतबी, तथा कवि उजैरी उसके दरबारी थे। ग़जनी का विश्व विद्यालय तथा पुस्तकालय उसके विद्या प्रेम को प्रकट करते थे।

संक्षेप में यदि उसमें धार्मिक कट्टरता और (अत्याचार

का प्राबल्य न होता तो वह संसार के महान सम्राटों में स्थान पाने का अधिकारी था।

महमूद के उत्तराधिकारी

१०३१ ई० में महमूद का छोटा भाई मसऊद महमूद के लड़के मोहम्मद को मारकर गज़नी के सिंहासन पर बैठा। इसके शासन काल में लाहौर के सूबेदार नियातगीन ने बनारस को १०३३ ई० में पराजित करके लूट लिया परन्तु उसे जाटों ने मार डाला। मसऊद ने सोनीपत के राजा को पराजित किया परन्तु ऊपर गजनी में सलजूक तूर्कों ने गजनी को लूट लिया। मसऊद ने राज्य संभालने की चेष्टा की परन्तु गोरी वंश के कारण मसऊद को भारतवर्ष भागना पड़ा। अन्ततः गजनी साम्राज्य नष्ट हो गया और उस पर गोरवंश का अधिकार हो गया।

सतारहवाँ अध्याय

परिच्छेद २

गोर वंश

गोर काबुल के उत्तर पश्चिम में एक स्थान है। गजनी के पतन के बाद गयासुद्दीन बिन साम गोर का सुल्तान था। उसने अपने भाई मुइजुद्दीन को ग़जनी का शासक बना दिया। गोरी ने पहले सीमावर्त्ती मुसलमान राज्यों को पराजित किया फिर उच्छ रियासत पर अधिकार करके उसने ११७४ ई० में अन्हलबोड़ पर आक्रमण किया। जहां उसे सफलता न मिली और परास्त हो कर भागना पड़ा। फिर सिन्ध और पेशावर पर अधिकार करके महमूद गजनवी वंशीय लाहौर के हाकिम खुसरो को ११८६ ई० में चालकी से पराजित कर दिया। इस प्रकार लाहौर तक उसका राज्य फैल गया।

इस समय भारतवर्ष में भी पांच हिन्दू राज्य मुख्य थे। दिल्ली और अजमेर में चौहान पृथ्वीराज था। कन्नौज और अवध में जयचन्द्र राठौर। बिहार तथा बंगालमें पल सेन वंश, बुन्देलखण्ड में चन्देलों तथा गुजरात में वघेलवंश का राज्य था।

लाहौर की पराजय के उपरान्त गोरी को दिल्ली से मोर्चा लेना था अतएव ११९१ ई० में उसकी अन्हल बाड के

उपरान्त दूसरी राजपूत शक्ति से टक्कर हुई। तराइन के मैदान में यदि खिलजी सरदार घायल महोम्मद गोरी को भगा न ले गया होता तो पृथ्वीराज के भाई गोविन्दसहाय की तलवार ने गोरी साम्राज्य का आधार काट ही दिया होता।

परन्तु परस्पर के विरोध का फल, संयुक्ता हरण के कारण जयचन्द से पृथ्वीराज की शत्रुता के परिणाम स्वरूप कुछ होना था। राठौरों और बनाफरों के युद्ध में अपने समस्त वीर सामन्तों का नाश करा कर चामुण्डराय, कन्ह जैसे रण स्तम्भों के गले कटा कर पाई हुई गोरी (संयुक्ता) के रंग में रंगे पृथ्वीराज बूढ़े कैमास पर राज्य का भार धर कर राग रंग में मस्त हो गये। उन्हें तब होश आया जब गोरी फिर तराइन के मैदान में आकर उसका घर ताकने लगा।

चन्द कवि की तीखी वाणी से घायल पृथ्वीराज जब घर से निकले तो उनकी आंख खुली, देखा आल्हा ऊदल जैसे वीरों का गर्व नाश करने वाले वीर नहीं हैं और न हैं पृथ्वीराज के दहिने हाथ गोविन्द सहाय। अब केवल कैमास है जो अपने सौन्दर्य्य सन्देह के कारण आठ वर्ष जेल में भुगत चुका है। उसे पृथ्वीराज से प्रेम नहीं, श्रद्धा नहीं, केवल वीर क्षत्रिय है और स्वामि भक्ति है। उसकी तलवार में धार तो है परन्तु आग नहीं। फिर सेना एकत्र की गई। बहनोई समरसिंह की चित्तौड़ से सेना आई, छोटे मोटे सरदारों ने भी सेना भेजी युद्ध आरम्भ हुआ, सन्ध्या तक राजपूत विजयी हुये, मुसलमान हार कर भागे। हिन्दू सेना भी विश्राम पर चली गई परन्तु मोहम्मद गोरी ने अपनी रक्षित १२०० सेना से दिन भर के

थक असावधान विश्राम में लगे हुये हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया। खुले हुये शस्त्र और घोड़े जब तक फिर तैयार होते तब तक पांसा पलट गया। पृथ्वीराज ने मोहम्मद को मारने के लिये कमान पर तीर चढ़ाया, खींचना चहा कि कमान टूट गई। पृथ्वीराज बन्दी हुये। कैमास पृथ्वीराज की रक्षा करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ। भारतवर्ष का जगमगता तारा टूट गया और उसके भाग्य में ६०० वर्ष की दासता लिख दी गई।

दिल्ली और अजमेर गोर साम्राज्य के अंग बन गये। परन्तु जयचन्द भी सुखी न रह सका उसके राज्य स्तम्भ आल्हा और ऊदल पृथ्वीराज के युद्ध में मारे जा चुके थे पृथ्वीराज से द्वन्द युद्ध में टक्कर लेने वाला। उसका भान्जा लाखन भी परस्पर द्वेष की आग में जल चुका था अतएव ११६४ ई० में जयचन्द की भी वही गती हुई जो पृथ्वीराज की हुई थी।

कन्नौज विजय के उपरान्त सुलतान ने बनारस पर आक्रमण करके उसे भी अपने अधिकार में कर लिया। तथा भारतवर्ष का शासक कुतुबुद्दीन को बना कर ग़ज़नी लौट गया।

कुतुबुद्दीन ने अजमेर के विद्रोह को शान्त किया तथा अन्हल बाड़ा के राजा भीमदेव को जिसने गोरी को पराजित किया था पराजित किया। उसके काल में मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने बिहार के पाल वंशीय राजाओं को थोड़ी से सेना लेकर ही पराजित कर दिया तथा केवल २० सिपाहियों द्वारा सेन वंशीय बंगाल के राजा को पराजित करके जो कलंक कालिमा बंगाल के सिर पर लगा दी वह कदाचित बंगाल के सपूत सुभाष ही धो सके।

हिन्दू शक्ति की पराज्य के कारण

अब तक हम कहते आये थे कि राजपूतों की पराजय का कारण यह कि भारतवर्ष में रहने के कारण उष्ण जल वायु के प्रभाव से राजपूत निर्बल थे तथा शीत प्रधान जलवायु के निवासी होने के कारण उत्तर पश्चिम में से आक्रमण करने वाले मुसलमान शक्ति शाली थे अतएव हिन्दुओं की पराजय हुई। अथवा हिन्दुओं के जाति भेद ने उन्हें संगठित न होने दिया अतएव वे पराजित हुये। वास्तव में ये दोनों पाठ केवल हम पराधीनता के कारण पढ़ते रहे। अब समय आ गया है कि इन दोनों तर्कों पर विचार किया जाय तथा पराजित तो हम हुये भी तब उसके मौलिक कारणों पर भी विचार किया जाय।

उष्ण प्रधान देश होने के कारण हिन्दू निर्बल थे इस तर्क की असत्यता प्रमाणित करने के लिये आगे का इतिहास (मानसिंह, जसवन्तसिंह और हरि सिंह नलवा द्वारा काबुल और कन्धार की विजय) की साक्षी प्रप्राप्त हैं। साथ ही साथ राजपूत शक्ति ने ही इस निरन्तर पराजय के काल में भी एक नहीं अनेक बार उन बलवान मुसलमानों को पराजित किया है। मुसलमान इतिहास लेखकों की साक्षी देकर यह कहना कि हिन्दुओं की जन शक्ति से मुसलमान पराजित हुये थे असत्य पर विश्वास करना है। अपने सह धर्मों की बड़ाई के लिये यदि हिन्दुओं की संख्या अधिक न बताकर मुसलमानशक्ति की पराजय अलबेरूनिया या फिरिशता लिखते तो सच्चे अर्थों में मुसलमानियत का झंडा कैसे झुकता होता।

जाति पांति का भेदभाव भी इसी प्रकार की उक्ति है। गजनी के मुसलमान राजा गोर वंश से क्यों पराजित हुये? गोर वंश के उपरान्त आगे आने वाले मुगलों के आक्रमण से काबुल और कन्धार के मुसलमान क्यों पराजित हुये? उनमें तो जाति भेद और ऊंच नीच का भाव न था। भारतीय मुसलमान शासक मुग़लों के आक्रमण से क्यों पराजित हुये? इन सब बातों का उत्तर स्पष्ट है कि जाति भेद इस पराजय का कारण न था। यदि यह कारण रहा होता ऊपर वर्णित राजपूत विजयों की अमर गाथायें न हुई होतीं। सम्भव है कि हिन्दुओं के इस भेद भाव का कुछ प्रभाव पड़ा हो परन्तु यदि पड़ा भी होगा तो बहुत कम यदि जाति भेद परस्पर संगठन में बाधक रहा होता तो पृथ्वी राज और परमाल की सेना में ब्राह्मण से लेकर तेली और धानुक तक न पाये जाते जिनका स्पष्ट उल्लेख हमें पृथ्वीराज के वर्णनों में जगनिक द्वारा लिखा हुए मिलता है।

तो फिर वस्तुतः कारण क्या कि आत्म बलिदान करने वाले, हथेली पर प्राण रखकर युद्ध को खेल समझने वाले राजपूत पराजित हुये? इस बात का उत्तर राजपूत की प्रकृति में ही उपस्थित है।

स्वभाव से ही वीर राजपूत ने युद्ध के व्यवसाय को इस अति तक पहुंचा दिया था कि साधारण जनता को युद्ध से कोई रुचि नहीं रह गई थी। जन साधारण जनता जानती थी कि उसे चेरी छोड़ रानी होने का अवसर नहीं है कोय नृप होइ हमैय का हानि का भाव का भाव उसके हृदय में बैठ गया था। अतएव न तो प्रजा की इन युगों में कोई सहानुभूति

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व उत्तर भारत
काबुल
गज़नी
पेशावर
काश्मीर
लाहौर
कांगड़ा
मुलतान
उच्छ
भटिंडा
हांसी
तोमर
दिल्ली
मेरठ
बरन
जैसलमेर
नागरकोट
मथुरा
कन्नौज
शाकम्भरी
बियाना
ग्वालियर
जालोर
कालिंजर
बनारस
धार
उज्जैन
द्वारका
सोमनाथ
परमार
पाल
चालुक्य राज्य
मलखेद
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
काञ्ची
काडुर

थी न सहयोग फिर केवल शस्त्र बल के सहारे एक राज्य के कुछ क्षत्रिय युद्ध भूमि में यदि विजयी न॰हो सके तो आश्चर्य नहीं क्योंकि वे प्रजा का युद्ध नहीं लड़ते थे केवल अपनी वीरता प्रदर्शन करने के लिये लड़ते थे। हम उनके इस निस्स्वार्थ भाव से उस साधारण क्षत्रिय के निस्वार्थ भाव की प्रशंसा करेंगे परन्तु अपनी इस प्रवृत्ति के कारण प्रजा की सहानुभूति खोदने का उसे अपराधी भी समझेंगे।

इसके विपरीत मुसलमानों की सेना का युद्ध सेना का नहीं था काबुल कन्धार से तुर्किस्तान तक की प्रजा का युद्ध था। सैनिक मुहम्मद गोरी या गजनवी की भारत विजय के लिये लड़ने नहीं आया था वरन् अपने लिये, धन लूट कर धनवान बनने के लिये। विजेताओं की प्रजा से न केवल सहानुभूति प्राप्त थी वरन् सक्रिय सहयोग भी एक सिपाही की जगह के लिये सौ उपस्थित थे। इस प्रकार इन मुसलमान आक्रामकों की सेना एक बहती हुई नदी के समान थी जिसमें बराबर पानी आता रहता है तथा हिन्दुओं की सेना एक बंधे हुये तालाब के समान जिसमें पानी सूखता रहता है। जिस समय मुसलमानों में इस प्रकार सैनिक शक्ति की कमी हुई वे पराजित हुए इस नियम में न तो हिन्दू जाति ही अपवाद थी, न मुसलमान। कोई भी जाति जब इस प्रकार अपने सैनिक उद्गम क्षेत्र से वञ्चित हो जाती है पराजित होती है।

हिन्दुओं की पराजय का दूसरा कारण राजनैतिक संगठन का अभाव था। राजपूतों के इतिहास में हम कह आये हैं कि किस प्रकार राजपूत स्वभाव में ही दूसरे की बढ़ाई न सहना समा गया था। उनकी इस अहम्मन्यता ने भाई को भाई से

फोड़ दिया। युद्धों में जिनका कारण बहुधा राज्य वृद्धि की इच्छा न रह कर दूसरे क्षत्रिय को नीचा दिखाने की भावना रहती थी। राजपूत जाति को इस प्रकार एक दूसरे से अलग कर दिया था कि उसे तोड़ डालना किसी के लिये सम्भव था। इसके विपरीत मुसलमानों में संगठन था। उनका एक उद्देश्य था हिन्दुस्तान को लूटना। केवल इसी उद्देश्य के लिए वे संगठित थे। यह कहना भी भूल है कि धार्मिक भावना ने उन्हें गसंठित कर रक्खा था। यह बात वे ही कहते हैं जो इस घटना को एक ही पहलू से देखते हैं और केवल भारतवर्ष के इतिहास पर दृष्टि रखते हैं। धार्मिक भावना का संगठन उनके आपसी युद्धों को खलीफाओं के काल के उपरान्त कभी रोकने वाला नहीं हुआ। यह संगठन केवल आर्थिक आधार पर था। जहाँ यह आधार नहीं था वहां मुसलमान मुसलमान का शत्रु बना रहा है। आज भ्रातृत्व का ढिंढोरा पीटने वाला ईसाई सम्प्रदाय इसीलिये आपस में मर कट रहा है कि वह आर्थिक परिस्थितियों में उलझा हुआ है। परन्तु उस समय यही आर्थिक लोभ मुसलमानों को संगठित करने वाला था।

इस पराजय का तीसरा कारण राजपूतों की युद्ध शैली है। अपनी आन पर जान देने वाला राजपूत सम्मुख और धर्म युद्ध करना जानता था। धर्म युद्ध में शत्रु के छक्के उसने सदैव छुड़ा दिये परन्तु युद्ध समय के पीछे जब वह विश्राम करने लगता था तब उस पर छापे मार कर उसे असावधान पा कर उसे पराजित करके मुसलमानों ने एक नहीं अनेक बार विजय पाई है।

अपने पुराने ढंग के शस्त्रों को लेकर हाथी पर सवार वह

इधर उधर दौड़ कर पीछे से वार करने का स्वभाव नहीं रखता। वह क्या जानता था कि मुसलमानों के घोड़े झपट कर उसके पीछे से भी धावा करेंगे। कदाचित इसी लिए अपनी पीठ को अरक्षित छोड़ दिया था।

उसके सैनिक नियमित सैमिक नहीं थे। युद्ध समाप्त होने पर अपने अपने घर गए हुए राजपूत अपनी वीरता की कहानी कहते थे और अवसर पड़ने पर ढाल तलवार लेकर युद्ध में आजाते थे। उन्हें संगठित मोर्चेबन्दी की लड़ाई का पता नहीं थी। परन्तु मुसलमान सैनिक वास्तविक सैनिक था। काबुल से चल कर परेड में मार्च करता हुआ आया था। उसे पता है कि किस प्रकार मोर्चाबन्दी होगी, कौन प्रधान सेनापति है, किस की आशा पर, कब और कहाँ उसे लड़ना होगा। इस प्रकार की सेना के सामने यदि राजपूत पराजित हो गया तो उसकी वीरता का अथवा जाति पाँति का दोष उसकी सैनिक प्रणाली में है।

उस राजपूत की सेना में व्यवस्था का तो नाम भी नहीं था उसके पास कोई ऐसा विभाग न था जिससे राजपूत अपनी पूरी शक्ति को जान सकता। उसे केवल एक भीड़ दिखाई देती थी। इस भीड़ की संख्या जब राजपूत स्वयं नहीं जानता था तब आश्चर्य होता है कि मुसलमान इतिहास लेखक उसे कैसे जान गए। कदाचित मसलमान इतिहास लेखक की यह गणना का ढंग ऐसा था कि उसे हिन्दु जानते ही न थे परन्तु वह जान लेता था। इससे हिन्दुओं को असुविधा हुई है और वे युद्ध को उस ढंग से नहीं चला सके जिस प्रकार मसलमानों ने चलाया।

राजपूत राजाओं ने वीरता और विलासिता दोनों को एक साथ ब्याह लिया था। उनकी वीरता उनके राज्य की रक्षा के लिए नहीं रह गई थी वरन् उनकी विलासिता की सहायता करने के लिए थी।

अणहिल्लपुर का विनाश करके प्राप्त सूहव देवी के विलास में मग्न महाराज जयचन्द्र ने अपनी वीरता मुहम्मद गोरी की सेना के समुद्र में डुबा दी। उसी प्रकार पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की राज-कन्या संयुक्ता का हरण करके वैर मोल लिया सामन्त खोये और उसी के विलास में फंस कर देश को मुसलमानों के हाथ सौंप दिया। भारतवर्ष का ही नहीं संसार का इतिहास साक्षी है कि वीर से वीर जाति का पतन यदि हुआ है तो विलासिता के कारण। भारतवर्ष उसका अपवाद नहीं था।

इस प्रकार राजपूतों के पराजय पर विचार करके अब हम इन दोनों मुसलमान विजेताओं की विजयों के अभाव पर विचार करेंगे।

इन दोनों ने आक्रमण करके हिन्दुओं का संहार किया, मन्दिर तोड़े, हिन्दुओं की सम्पत्ति लूटी। परन्तु एक बात के लिए हम प्रशंसा करेंगे वह यह कि इन्हों ने तलवार के डर से हिन्दुओं को मुसलमान होंने के लिए वाध्य नहीं किया। सम्भवत: इस समय तक मुसलमान मुहम्मद साहब के उपदेशों को पूर्णतया नहीं भूले थे। हिन्दुओं को अपने धर्म का आचरण करने की कुछ न कुछ सुविधा दोनों से प्राप्त रही। परन्तु हिन्दुओं में स्वयं इसकी प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। उन्होंने अपनी रक्षा के

धार्मिक प्रभाव

लिए अपने सामाजिक बन्धन और कड़े कर दिए। अभी तक शुद्धि का मार्ग खुला था जैसा कि महमूद ग़ज़नवी द्वारा बनाया गया उत्तरी पश्चिमी पञ्जाब का राजा जयपाल का नाती सेवकपाल फिर हिन्दू हो गया था जिसके कारण फिर महमूद ग़ज़नवी ने आक्रमण किया था परन्तु यह मार्ग अब पूर्णतया बन्द हो गया। मुसलमानों की बढ़ती हुई शक्ति और लूट-पाट के कारण मन्दिरों में धन के स्थान पर जागीरें लगाई जाने लगीं। इसी काल में उठी हुई क्षत्रिय मर्यादा को भी ठेस लगी और साधारण जनता ब्राह्मणों के उपदेश पर राजाओं की शक्ति से अधिक भरोसा रखने लगी। इसी लिये ब्राह्मण का महत्त्व बढ़ने लगा। तथा जयचन्द्र का राज मन्त्री विद्याधर अपने बलिदान से दिखा गया था कि क्षत्रिय राजा की अपेक्षा ब्राह्मण मंत्री को देश की अधिक चिन्ता है।

महमूद ग़ज़नवी का उद्देश्य भारतवर्ष में राज्य स्थापन का नहीं था अतएव उसके लगातार १७ आक्रमणों के होते हुये भी राजपूत शक्ति पूर्णतया नष्ट नहीं हुई।

राजनैतिक प्रभाव परन्तु मुहम्मद गोरी ने पहले आक्रमण से ही इस बात का परिचय दे दिया था कि वह भारतवर्ष का राज्य चाहता था। अतएव उसने देश जीत कर उनके शासन का प्रबन्ध भी आरम्भ कर दिया। इस प्रकार भारतवर्ष में स्थिर हो कर मुसलमान बसने लगे और उनका राज्य देश में फूलने फलने लगा।

राजपूतों की असली शक्ति पतली और कन्नौज की पराजय के उपरान्त टूट गई। परन्तु दक्षिण पर इन आक्रमणों का अभी प्रभाव नहीं पड़ा।

इस काल में भारतीय स्थापत्य कला का उत्तर में ह्रास आरम्भ हुआ और उसमें कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। साथ ही मुसलमान कला को भारतवर्ष में आने का मार्ग खुल गया।

भारतीय कला पर

इन आक्रमणों का सब से बड़ा प्रभाव भारतीय भाषा पर पड़ा। इस काल में व्याकरण के बन्धनों से जकड़ी हुई संस्कृत का लग-भग जनता ने त्याग कर दिया। अब वह केवल कुछ विद्वानों के लिए रह गई। साथ ही प्राकृत भी व्याकरण के बन्धनों में बंध गई और अपभ्रंश बोलियों में साहित्य उत्पन्न होने लगा। वर्त्तमान हिन्दी भाषा का जन्म इसी समय हुआ इसका प्रथम कवि पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्द वरदई पृथ्वीराज का दरबारी कवि था। संस्कृत साहित्य का अन्तिम सर्व श्रेष्ठ कवि श्री हर्ष इसी काल में जयचन्द की राजसभा में था।

साहित्य प्रभाव

प्रश्न

महमूद गजनवा

(१) महमूद गजनवी के आक्रमणों का संक्षिप्त विवेचन करके उसके प्रभावों को समझाओ।

(२) महमूद गजनवी शासक और सेनापति के रूप में चरित्र का विश्लेषण करो

३–महमूद लोभी तथा मुर्तिभञ्जक था अतएव उसने भारतवर्ष में जो कुछ किया उचित था सिद्ध करो।

प्रश्न

मुहम्मद गोरी

(१) राजपूत शक्ति के पराजय के मुख्य कारणों पर विचार करो।

(२) मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के उद्देश्य परिणाम तथा प्रभाव को ध्यान में रखते हुए परस्पर तुलना करो।

(३) मुहम्द गोरी के आक्रमणों का संक्षिप्त विचार करो।

(४) राजपूतों की पराजय के कारणों पर विचार करो।

अठारहवाँ अध्याय

परिच्छेद ३

भारतवर्ष में गुलाम वंश

(१२०६-१२९० ई०)

मुसलमान धनिक अपने घर की साधारण सेवाओं के लिए कुछ सुन्दर बालक मोल ले लिया करते थे। ये बालक तुर्कवंश के होने के कारण बहुधा सुन्दर और गठीले होते थे। अपने स्वामी के हर प्रकार की सेवा करने के कारण इन पर इनके स्वामियों का बड़ा विश्वास रहता था। बहुधा ये अपने स्वामी के प्रेम पात्र होते थे। बचपन से ही स्वामी की सेवा में रहने के कारण स्वामि भक्ति इनका स्वभाव बन जाती थी और ये अपने स्वामी के कुटुम्बी की भाँति बन जाते थे। यद्यपि आरम्भ में ये केवल विलासिता के साधन थे परन्तु बड़े होने पर जो उन में से योग्य निकलते थे वे उन्हें उन को स्वामी सम्मान देते थे। कुतुबुद्दीन एबक भी इसी प्रकार मुहम्मद गोरी के १००० गुलामों में से था।

गुलाम

१२०६-१२१० तक मुहम्मद गोरी के निस्सन्तान मर जाने के कारण कुतुबुद्दीन भारतवर्ष का स्वतंत्र शासक होगया।
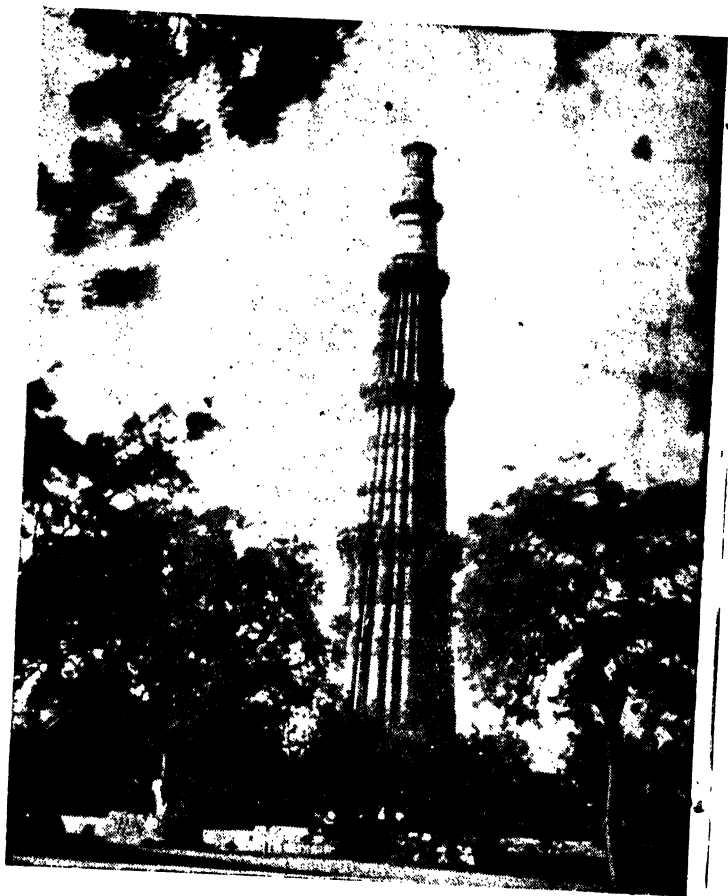
कुतुब मीनार (देहली)

कुतुबुद्दीन एबक

उसने अपनी शक्ति को स्थिर करने के लिए खूब दान दिए यहाँ तक कि वह 'लख बख्श' लाखों रुपये दान करने वाला प्रसिद्ध होगया। इसके अतिरिक्त गोरी के अन्य सरदारों के कुवैचा, अल्तुतमिश (अल्तमश) और ताजुद्दीन यलदोज़ से वैवाहिक सम्बन्ध करके अपनी स्थिति और भी दृढ़ कर ली।

अब उस का काम केवल हिन्दुओं को संभालना था। उसने हिन्दुओं के साथ दया और न्याय का व्यवहार करके उन्हें सुखी रक्खा। और इस प्रकार चार वर्ष तक लगभग शान्ति से राज्य करके चौगान खेलते समय घोड़े से गिर कर वह संसार से चल बसा।

कुतुबुद्दीन का व्यक्तित्व

दास पद से सुल्तान पदवी तक पहुँचना उसके व्यक्तित्व की योग्यता की गवाही है। तथा मुहम्मद गोरी के अन्य सरदारों से विवाह सम्बन्ध करके उन्हें वश में कर लेना उसकी राजनीतिक कुशलता प्रकट करता है। साथ ही हिन्दुओं के साथ दया का व्यवहार भी उस सङ्कीर्णता के युग में उसका शासक कुशल होना बताते हैं जिसके कारण मुसलमान साम्राज्य भारतवर्ष में जम सका। सम्भव था कि उसकी इस एक ही भूल से भारतवर्ष में विप्लव फैल जाता और संभालना कठिन हो जाता।

उसे इमारतें बनवाने की रुची भी थी। कुतुब मीनार इस बात की साची है। कहा जाता है कि इस स्तम्भ को पृथ्वीराज ने बनबाना आरम्भ किया था परन्तु अपूर्ण रह जाने के कारण उसे कुतुबुद्दीन ने पूरा करना चाहा परन्तु अन्त में अल्तमश के

काल में पूरा हुआ। यह मीनार सात खण्ड की थी अब भी यह २५० फीट के लग-भग ऊंची है। इसी के काल में भारतवर्ष में मन्दिरों के मल्वे से मस्जिदें बनना आरम्भ हुई।

अल्तुतमिश (अल्तमश) (१२१०-१२३६)

कुतुबुद्दीन एबक की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र आराम शाह लाहौर में उत्तराधिकारी हुआ। परन्तु अल्तुतमिश ने उसे पराजित करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया।

अल्तमश ने सबसे पहले अपने मार्ग के कांटे कुतुबुद्दीन के वंशजों के पक्षपाती सरदारों का दमन किया जिनमें कुछ तो दिल्ली के समीपवर्त्ती देश में ही थे। उसने इनको दबा कर पंजाब प्रदेश के शासक यल्दौज पर आक्रमण किया और १२१५ ई० में तराइन के मैदान में उसे पराजित करके उसका नाश कर दिया। उससे निपट कर उसने सिन्ध के शासक कुवैचा को पराजित करने के लिये उस पर आक्रमण किया।

अभी अल्तमश कुवैचा के झगड़े में ही फंसा था कि ख्वारिज्म के बादशाह जलालुद्दीन ने चंगेज खां से डर कर १२२१ ई० में अल्तमश से शरण चाही। अल्तमश ने बुद्धिमानी से उसे शरण न देकर आये हुये भय को दूर करने का उपाय किया। फलतः जलालुद्दीन ने सिन्ध की ओर बढ़ कर कुवैचा पर आक्रमण किया इससे कुवैचा की शक्ति निर्बल हो गई। और जलालुद्दीन भी चंगेज खां से पराजित होकर ईराक भाग गया। इस प्रकार भारत पर आई हुई विपत्ति टल गई और योरोप तक हिला देने वाले चंगेज खाँ के भयंकर नर संहार से भारतवर्ष बच गया।

कुवैचा को जलालुद्दीन से निपटने का अवसर देकर

इल्तुतमिश के समय में
दिल्ली साम्राज्य
गज़नी
पेशावर
कांगड़ा
लाहौर
मुलतान
दिल्ली
उच्छ
बरन
बदायूँ
कन्नौज
अयोध्या
ग्वालियर
प्रयाग
बनारस
लखनौती
गौड़
ब्रह्मपुत्र
सिंध
अन्हिलवाड़
उज्जैन
भिलसा
गुजरात
नर्मदा न०
ताप्ती न०
यादव
एलिचपुर
देवगिरि
वारंगल
काकतीय
रायचूर
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी

अल्तमश ने बंगाल के खिलजी शासकों को १२२५ ई०में पराजित किया और अन्त में १२२८ ई० तक कुवैचा को भी पूर्णतया पराजित करके सिन्ध को अपने राज्य में मिला लिया। राजपूतों से भी उसने रणथम्भौर, माण्डू, ग्वालियर, मालबा और उज्जैन के राज्य छीन लिये। इस प्रकार लग-भग समस्त उत्तरी भारतवर्ष पर एक साम्राज्य स्थापित कर दिया।

मुसलमान शासन प्रथा के अनुसार जब तक किसी शासक को खलीफा स्वीकार न करे तब तक वह सु वास्तविक सुल्तान नहीं हो सकता अतएव अल्तमश ने इसके लिये बग़दाद के अब्बासी खलीफा के पास १२२६ ई० में प्रार्थना पत्र और भेंट भेजी। खलीफा ने भी अल्तमश की शक्ति का विचार करके उसे 'खिलअत' और नासिर अमीरुल्मोमनीन (धर्म पालक शासक और प्रबन्धक) की उपाधि प्रदान की।

गुलाम सुन्दर तो होते ही थे। उनकी सुन्दरता ही उन्हें अपने स्वामी का प्रियपात्र बनाती थी अतएव अल्तमश भी बड़ा

अल्तमश का व्यक्तित्व

रूपवान था। उसकी बुद्धिमत्ता ने ही मुगलों के मरण से उसे बचा लिया। परन्तु अपने युग की धार्मिक असहिष्णुता उसमें अवश्य थी। गुप्त काल में निर्मित उज्जैन के महाकाल मन्दिर की सुन्दर कला का उसे विचार नहीं हुआ। उसने मन्दिर नष्ट कर दिया और उसकी मूर्तियां दिल्ली उठा लाया। परन्तु अपनी दान शीलता के लिये भी वह प्रसिद्ध था। उसने इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करने में भी बड़ी योग्यता का परिचय दिया अन्यथा उस गड़बड़ी के काल में यदि कोई भी निर्बल शासक होता तो मुसलमान ही उसे टिकने न देते। परन्तु २६ वर्ष तक उसने जिस सफलता के साथ शासन किया

इससे प्रकट होता है कि गुलाम होते हुये भी वह सुल्तान होने के योग्य था। कुतुब मीनार के निर्माण का कार्य्य भी उसी के समय में पूर्ण हुआ। चांदी के सिक्के पर अरबी अक्षरों में अपनी उपाधि भी उसी ने पहले लिखाई। इससे उसका कलाप्रेम भी प्रकट होता है।

रज़िया बेगम (१२३६–४०)

अल्तमश कहा करता था कि "मेरी 'रज़िया' बेटी नहीं है वरन् बेटा है।" वस्तुत: उसके अयोग्य लड़कों में कोई ऐसा नहीं था जो उसके उपरान्त शासन का भार सम्हाल सकता। अतएव वह रजिया को ही सुल्ताना बनाना चाहता था। परन्तु उसके दरबारी सरदार उसकी मृत्यु के उपरान्त विरोधी हो गये। उन्होंने उसके पुत्र रुकुनुद्दीन को सुल्तान बनाया। परन्तु रुकुनुद्दीन की विलासिता और दुराचार देख कर सरदारों की आंखें खुलीं। उन्होंने उसे उतार कर रज़िया को सुल्ताना स्वीकार किया।

मनुष्य में निर्बलतायें होती हैं। रज़िया की निर्बलता थीउसका एक गुलाम जमालुद्दीन याकूत था जिससे उसे प्यार था तुर्क सरदारइसे न सहन कर सके। उन्होंने विद्रोह आरम्भ किया।जिन विद्रोहियों को उसने पहले पराजित कर दिया था। अब उनके संगठित विद्रोह का दमन करना उसकी शक्ति के बाहर था। अतएव उसे राजनीतिं के टेढ़े मार्ग पर प्रेम का बलिदान करना पड़ा। उसने सबसे अधिक शक्ति शाली लाहौर के सूबेदार अल्तूनियां से विवाह कर लिया। परन्तु परिस्थितियां इतनी बिगड़ चुकी थीं कि अल्तूनियां और रज़िया मिलकर भी उसे संभाल न सके। फलत: अल्तूनियां के साथियों ने उसे छोड़ दिया। दोनों

पराजित हुये और अन्त में मार डाले गये। इस प्रकार रजिया केवल ४ वर्ष तक शासन करके अपनी योग्यता का परिचय देकर अपनी समस्त सुन्दरता और बुद्धिमता लेकर चली गई।

रज़िया के उत्तराधिकारी

रजिया की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई बहरामशाह १२४० ई० में गद्दी पर बैठा परन्तु चालीस गुलाम सरदारों के षड्यंत्र से वह १२४१ ई०में गद्दी से उतार दिया गया। इसके उपरान्त राज्य का अधिकारी उसके दूसरे भाई अलाउद्दीन को बनाया गया परन्तु वह भी अयोग्य शासक था अतएव १२४६ ई० में उसका तीसरा भाई नासिरुद्दीन (धार्मिक) अधिकारी हुआ। उसने कुरान शरीफ़ लिख कर अपनी जीविका कमाई। राज्य के धन का उपयोग नहीं किया। उसकी स्त्री ही भोजन बनाती थी उसको दास दासियां रखने के लिये भी राज्य कोष से धन लेना अनुचित जान पड़ता था। परन्तु उसके राज्य शासन के २० वर्ष उसके योग्य मंत्री बलवन की योग्यता के वर्ष हैं।

बलवन ने इस समय मेवाड़, चन्देरी, मारवाड़ आदि अनेक राजाओं को दिल्ली साम्राज्य में सम्मिलित किया, दोआब के सदा विद्रोही जमींदारों का दमन किया, विद्रोही मुसलमान अमीरों का सिर कुचल दिया, १२४० ई० में मंगोलों ने लाहौर जीत लिया था परन्तु बलवन ने अपनी युद्ध कुशलता से उनकी चाल रोक दी।

यद्यपि नासिरुद्दीन ने अपने खुशामदी दरबारियों के भड़काने से बलवन को मन्त्री पद से हटा दिया। परन्तु उसके न होने पर मुहम्मदजुन्नेदी के मन्त्रित्व काल में राज्य में

अव्यवस्था फैल गई फलतः बलवन को फिर बुलाया गया। इस बार उसने विद्रोही मेवातियों को दबाया तथा अवध के जागीरदार कुतलगखां को परास्त किया। इसी के मन्त्रित्त्व का फल था कि हलाकूँ खाँ मुग़ल का राजदूत नासिरुद्दीन जैसे फकीर बादशाह के दरबार के ठाट बाट देख कर चकित रह गया और मुग़लों को दिल्ली पर आक्रमण का फिर साहस न हुआ।

नासिरुद्दीन ने अपनी मृत्यु पर बलवन को ही राज्य का भार सौंपा। इस प्रकार बलवन की रक्षा में नासिरुद्दीन जैसे निर्बल बादशाह ने १२४६ से १२६६ ई० तक २० वर्ष शान्ति से राज्य का भार वहन किया उसकी फकीरी में कोई बाधा न पड़ी।

बलवन

(१२६६-१२८६)

बलवन वस्तुत: राज्य तो पहले से ही कर रहा था। परन्तु उस समय उसको पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी। इस लिये बलवन की कठोरता में कुछ नियंत्रण रहता था। परन्तु वह समय ऐसा नहीं था कि कोई निर्बल शासक राज कार्य में सफल हो सकता। अतएव सुल्तान बनते ही बलवन ने अपने समक्ष तीन कठिनाइयां देखीं १—विद्रोहियों का दमन, २—मुग़लों के आक्रमण से देश की रक्षा, ३—राज्य व्यवस्था ठीक करना।

वह तीनों में कठोरता से सफल हुआ। मेवातियों और रुहेलखण्ड के विद्रोहियों का दमन उसने इस निर्दयता से किया कि यह लोग इतने भयभीत हो गये कि फिर विद्रोह का साहस ही नहीं कर सके। कटहर के जिले में रक्त की धारा

जब गंगा से जा मिली तो कत्ल से बचे हुये विद्रोहियों का खून सूख गया। इसी प्रकार बंगाल के सूबेदार तुगरिलबेग के समर्थकों का संहार लखनौती के जिस बाजार में हुआ उस बाजार की दीवारें भी भय से काँप गईं।

उसके साथी चालीस दासों की शक्ति तोड़ने के लिये उसने अल्तमश द्वारा प्रचलित जागीरदारी की प्रथा को ही तोड़ दिया। फल यह हुआ कि न रहा बाँस न बजी बाँसुरी। जब जागीर नहीं रही तो शक्ति कहां से इकट्ठा होती। बहुत रोने धोने पर उनमें से कुछ को उसने नये सिरे से जागीर देकर अपने वश में कर लिया और कुछ को मरवा डाला। मंगोलों को रोकने के लिये उसने उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश की स्थिति ठीक करनी चाही। अतएव किले और चौकियां बनवाईं और वहां अपने पुत्र बुगराखां के नेतृत्व में एक विशाल सेना स्थापित कर दी। अतएव मंगोल आक्रमण का भय बहुत कुछ कम हो गया।

राज्य व्यवस्था ठीक करने के लिये उसने पटियाला, भोजपुर और दोआब के डाकुओं के अड्डे सम्पूर्णतया नष्ट कर दिये। इन स्थानों पर उसने सशस्त्र सेना लगा दी। जंगल कटवा कर साफ करा दिये। सड़कें ठीक कराईं तथा गुप्तचर विभाग का संगठन किया। उसका न्याय बड़ा कठोर था। उसमें जागीरदार अथवा साधारण अपराधी में कोई अन्तर नहीं था।

यद्यपि राज्य में सूबेदारी प्रथा थी परन्तु सभी मुख्य बातों पर वह स्वयं ध्यान देता था। कोई भी सूबेदार फिर चाहे उसका पुत्र ही क्यों न हो मनमानी नहीं कर सकता था। इस प्रकार

उसने शासन प्रबन्ध भी सुधार कर अपनी समस्त कठिनाइयों को दूर कर दिया।

परन्तु अपने अन्तिम जीवन में उसे अपने प्रिय, योग्य, शिक्षित और बुद्धिमान पुत्र महमूद की मृत्यु का भयंकर दुख हुआ। मंगोल युद्ध में उसका यह पितृ भक्त और विश्वासपात्र पुत्र काम आया। इससे सुल्तान इतना दुखी हुआ कि उसने अपने जीवन में ही दूसरे पुत्र बंगाल के सूबेदार बुगराखां को राज्य सौंप देना चाहा। परन्तु विलासी बुगराखां शिकार का बहाना करके फिर लखनौती भाग गया और बलबन ने मृत्यु के उपरान्त महमूद के पुत्र खुसरो दिल्ली की गद्दी पर बैठने के लिये निर्वाचित किया।

बलबन की सफलताओं के कारण यदि देखना हो तो उसके चरित्र पर विचार करना चाहिये क्योंकि उस काल में मनुष्य का व्यक्तत्व ही उसकी सफलता की कुञ्जी था। उसकी वीरता, उसका साहस, उसका धैर्य और सबसे बड़ी वस्तु उसकी गम्भीरता ने उसके साथियों पर उसका आतंक्क बिठा दिया था। चालीस दासों में से वह भी एक था जिनमें आपस में सदैव एक दूसरे की रक्षा और सहायता करने का प्रण था। बात तो यह है कि वे सब परस्पर समान थे। परन्तु बलबन ने नासीरूद्दीन के काल में देख लिया था कि अब मित्रता के हंसी मजाक से काम नहीं चलेगा। दरबार अब विनोद का स्थान नहीं रह सकता अतएव उसने स्वयं मदिरा-पान त्याग दिया तथा दरबार की शान बढ़ाते हुए उसने भड़ैती का तत्त्व ही दरबार से निकाल दिया। बेअदबी का दण्ड नियत था। दरबारी पोशाक निश्चित थी, सुल्तान स्वयं इन नियमों का पालन करता था तथा बल-

पूर्वक इनका पालन करवाता था। अब उसके प्रिय विनोद दो ही थे। या तो वह शिकार खेलना पसन्द करता था या साधु सन्त और विद्वानों की संगति। विधर्मियों से कठोर व्यवहार करते हुये भी वह अपने धर्म का दृढ़ और पक्का था। नमाज़ में वह सम्मिलित होता था। दासों की शक्ति तोड़ने के लिये उसने राज्य शासन के लिये उच्च वंशज लोगों को ही नियत किया। इस प्रकार उसका व्यक्तित्त्व ही उस की सफलता का कारण था।

बलबन के उपरान्त दिल्ली के कोतवाल फखरुद्दीन ने बलबन की इच्छा के विरुद्ध बुगराखां के लड़के कैकबाद को दिल्ली का सम्राट बनाया। परन्तु बचपन में अत्यन्त दबाये जाने के कारण उसके मन में विद्रोह की भावना भर गई थी। अतएव राज्य पाते ही दबी हुई वासनायें उभर कर खुल खेलने लगी। शराब के साथ ऐयाशी की रंगरेलियां होने लगीं। पुराने शुभचिन्तक अमीरों और सरदारों का अपमान हुआ, निरर्थक गरीब जनता का कत्लेआम होने लगा। भाई महमूद को धोखे से मार डाला गया। अतएव कुछ सरदार उससे असन्तुष्ट हो गये। फल यह हुआ कि जलालुद्दीन फीरोज खिजली के नेतृत्व में खिजली अमीरों ने विद्रोह किया और तुर्कवंश के अमीरों को परास्त कर दिया। बिलासिता में फंसे फालिज के बीमार कैखुसरो को महल में ही मार डाला गया और उसका शव यमुना में फेंक दिया गया। इस प्रकार गुलाम वंश १२६० ई० में अपने जीवन के ८४ वर्ष पूरे करके समाप्त हो गया।

गुलाम वंश पर सिंहावलोकन

इस काल को हम तीन गुलामों का काल कह सकते हैं, पहला कुतुबुद्दीन एबक वंश १२०६ से १२१० तक, दूसरा इल्तुतमिश वंश १२१० से १२६६ तक, तीसरा बलबन वंश १२६६ से १२९० तक। इन तीन सुल्तानो में तीनों गुलाम थे तथा तीनों वास्तव में सुल्तान हुये। परन्तु इनकी सन्तान में कोई योग्य न निकला। इल्तुतमिश का वंश अवश्य ५६ वर्ष तक रहा शेष वंशों में से यदि इन तीनों का राज्य काल निकाल दिया जाय तो बहुत थोड़ा समय बचता है।

इस काल में भारतीयों की उत्तराधिकार पद्धति को सुल्तान पदवी के लिये ग्रहण करने की प्रवृत्ति मुसलमानों में भी अपने धर्म के विरुद्ध दिखाई पड़ती है। साथ ही यह भी दिखाई पड़ता है कि राजवंश से स्वामि भक्ति का भाव भी मुसलमानों में उत्पन्न हो रहा था। परन्तु हम यह भी देखते हैं कि जाति भेद न मानने वाली मुसलमान जाति में भी परस्पर विरोध, विद्रोह और परस्पर एक दूसरे का खून करने की भावना उपस्थित है। कैखुसरो द्वारा मुग़ल मुसलमानों का निरर्थक वध इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

साथ ही बादशाहों में भारतीय भाषा और संस्कृति के प्रति भी आदर भाव पैदा हो चला था। बलबन का दरबारी कवि खुसरो जहां फारसी का कवि था वहाँ उसने फारसी में हिन्दी का जोड़ भी लगा दिया है। उसकी 'खालिक बारी, सिरजन हार नामक रचना हिन्दी फारसी का प्रारम्भिक शब्द-कोष तथा उस के दो सखुने उस काल की हिन्दी के उदाहरण हैं।

प्रश्न

(१) इस वंश को गुलाम वंश क्यों कहते हैं। इस वंश का सर्व श्रेष्ठ सुल्तान तुम किसको कहोगे तथा क्यों ?

(२) रजिया का पतन केवल स्त्री होने के कारण हुआ उक्त उदाहरण की विवेचना करो।

(३) बलबन को रक्त पिपासु कहा जाता है, प्रमाण सहित उक्त कथन पर अपना मत प्रकट करो।

उन्नीसवाँ अध्याय

परिच्छेद ४

खिलजी वंश

(१२६०-१३२०)

जलालुद्दीन फीरोज़ खिलजी १२६०-६६ ई०

साम्राज्य प्राप्त करते समय जलालुद्दीन के सामने केवल कठिनाई अपने विरोधी बलवनी तुर्क अमीरों को सन्तुष्ट करने की थी अतएव उसने उनके साथ बड़ी उदारता का व्यवहार किया। यहाँ तक कि बलबन के भतीजे मलिक छज्जू को विद्रोह करने पर भी क्षमा कर दिया। परन्तु उसकी उदारता का लाभ जब डाकुओं को भी मिलने लगा तो अमीर अप्रसन्न होने लगे तथा राज्य में अव्यवस्था फैलने लगी। परन्तु जलालुद्दीन की यह उदारता उसकी निर्बलता के कारण न थी। १२९२ ई० में मुग़लों को पराजित करके उसने अपनी शक्ति का परिचय दे दिया। साथ ही मुसलमान रक्त व्यर्थ न बहाने के लिए उसने रणथम्भोर का घेरा उठा लिया।

१२९४ ई० में उसके भतीजे अलाउद्दीन ने घोड़ों के सौदागर के रूप में छल करके देवगिरि पर आक्रमण कर दिया तथा

अलाउद्दीन का साम्राज्य
काबुल
पंजाब
लाहौर
मुलतान
दिपालपुर
उच्छ
दिल्ली
बरन
अवध
मेवात
जैसलमेर
अजमेर
रणथम्भोर
सिन्ध
ठट्टा
चित्तौड़
चन्देरी
प्रयाग
नागौर
मालवा
अन्हलवाड़
गुजरात
धार
उज्जैन
नर्मदा
भिलसा
कड़ा
लखनौती
गौड़
बंगाल
देवगिरि
वारंगल
तेलंगाना
द्वारसमुद्र
मदुरा
रामेश्वर
उय
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
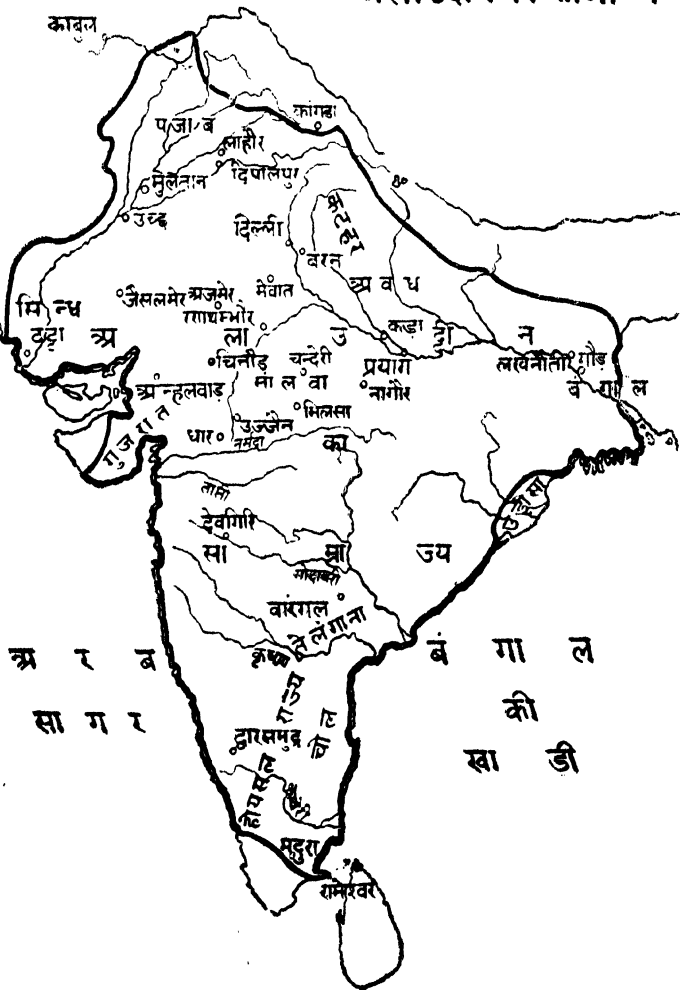
देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव को पराजित करके एलिचपुर को दिल्ली राज्य में मिला दिया और बहुत सा लूट का माल लेकर दिल्ली की ओर चला।

दक्षिण विजय का समाचार सुन कर सुल्तान जलालुद्दीन अपने भतीजे तथा दामाद अलाउद्दीन का स्वागत करने जब कड़ा में आया तो अलाउद्दीन ने उसका सिर कटवा कर भाले पर रख कर सेना में घुमाया और इस प्रकार अपने सम्बन्ध को निबाह दिया।

अलाउद्दीन खिलजी (१२९६-१३१६)

इस के राज्य काल को हम वस्तुतः आतङ्क राज्यकाल कह सकते हैं। परन्तु जलालुद्दीन की हत्या के समय यदि अलाउद्दीन के लुटाए हुए धन से उस समय के सरदार धोखा खा गए और उसे जलालुद्दीन से अधिक अच्छा समझकर उसके वंश में आगए और जलाली सरदार यदि जलालुद्दीन के बेटे रुकुनुद्दीन का साथ छोड़ कर अलाउद्दीन के साथी बन गए तो उन्हें अधिक दोष नहीं दिया जा सकता। पैसे के बल से किसे मोल नहीं लिया जा सकता।

इस प्रकार रुकुनुद्दीन को दिल्ली से भाग जाने के कारण अलाउद्दीन को गद्दी खाली मिल गई। परन्तु अलाउद्दीन बड़ा बुद्धिमान था वह जानता था कि यह सरदार पैसे से खरीदे हुये हैं। यदि उन्हें काम में उलझा न दिया जायगा तो पुरानी स्वामि भक्ति जाग सकती है। अतएव उसने पहले जलालुद्दीन के पुत्रों को नष्ट करने के लिये अलफखां और जफरखां को मुलतान भेजा। दोनों राजकुमार अरक अलीखां और कद्रखां दोनों पकड़े गये और मार डाले गये।

इस प्रकार अपने मार्ग को निष्कण्टक करके उसने सरदारों को बैठ कर सोचने का अवसर नहीं दिया तुरन्त उलगखां और नसरतखां को गुजरात की चढ़ाई पर भेजा अन्हल वाड़ा का राजा कर्ण पराजित हुआ। अत्यधिक लूट के माल के साथ; नसरखां, राजा कर्ण की रानी कमलावती को भी पकड़ लाया और १००० दीनार में काफूर नामक एक ऐसा दास भी लाया जिसने दक्षिण विजय में अलाउद्दीन की सबसे बड़ी महत्वकांक्षा को पूरा कर दिया।

परन्तु इधर दूसरी विपत्ति आ गई १५९८ ई० में अमीर दाऊद के नेतृत्त्व में मुगलों ने भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया। परन्तु उगलखां ने उन्हें मार भगाया। परन्तु १२९९ में कुतलग ख्वाजा के नेतृत्त्व में मुगलों ने फिर भयङ्कर आक्रमण किया। दिल्ली तक भगदड़ मच गई। जफरखां और उलगखां ने मुगलों को पराजित किया। मुगलों का भयङ्कर संहार किया गया और भारतवर्ष से भगा दिये गये।

यहां मुगलों से निपट कर अलाउद्दीन ने अपनी सेना का ध्यान रणथम्भौर नामक दुर्ग की ओर फेर दिया। १२९९ ई० में उलगखां और नसरतखां के आधीन सेना भेज दी गई। परन्तु वीर रातपूतों ने मुगलों को मार भगाया। इस पर अलाउद्दीन स्वयं असंख्य सेना लेकर चढ़ दौड़ा। विजय की आशा न देख कर राजपूतों ने जौहर किया। तथा स्त्रियां चिता में जल मरी।

इसी बीच में होने वाले राजधानी के विद्रोह का निर्दयता पूर्वक दमन करके चित्तौड़ की रानी पद्मिनी के लोभ से उसने १३०१ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण किया परन्तु इस बार

उसे अपमान की पराजय हाथ लगी अतएव उसने फिर १३०३ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण किया। किले को अजेय समझ कर उसने छल से काम लिया। मित्रता के बहाने वह किले में गया। दर्पण में पद्मिनी का रूप देखा तथा विश्वास में फंसे हुआ रत्नसेन जब उसे किले के बाहर पहुंचाने आया तो उसे बन्दी कर लिया। गोरा और बादल नामक वीरों ने छल का बदला छल से लिया। पद्मिनी देने के बहाने ४००० राजपूत कहार और स्त्री के वेष में पहुंचे और राजा छुड़ा लिया गया। भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ और विजय की आशा न रहने पर राजपूतों ने जौहर व्रत किया। स्त्रियां आग में जल मरीं और अलाउद्दीन को उस रूप राशि के स्थान पर राख का ढेर मिला।

इधर मुगलों ने फिर भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया १३०४ ई० में अलीबेग और ख्वाजा ताश के नेतृत्व में मंगोल सेना अमरोहा तक पहुंच गई। परन्तु दियालपुर के हाकिम गाजीतुगलक ने उन्हें पराजित करके भगा दिया। परन्तु मंगोलों के आक्रमण बन्द नहीं हुये। अतएव अलाउद्दीन ने सीमान्त प्रदेश की चौकियां को सुदृढ़ बनवाया, बलवन की भांति उसने भी किले ठीक कराये और एक विशाल सेना गाजीतुगलक के आधीन रख कर सीमान्त प्रदेश की रक्षा का पूर्ण प्रबन्ध कर दिया। फलतः १३०७ ई० में इकबाल मन्द मंगोल का आक्रमण भी बेकार हो गया।

इस प्रकार एक प्रकार से निश्चिन्त होकर अलाउद्दीन ने संसार विजय का स्वप्न देखा। वह धर्म प्रचार की नीयत भी रखता था परन्तु उसके काजी ने उसे संसार की अपेक्षा सम्पूर्ण

भारतवर्ष की विजय के लिये प्रेरित किया। फलतः अलाउद्दीन के रूप में दक्षिण के शांतिमय प्रदेश पर भी विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा।

सन् १३०७ ई० में अन्हलवाड़ा के राजा कर्णदेव को शरण देने के कारण मलिक काफूर ने देवगिरि के यादव राजा रामचन्द्र देव पर आक्रमण किया। रामचन्द्र देव पराजित हुआ। तथा कर्ण की पुत्री देवलदेवी जिसका सम्बन्ध देवगिरि के राजकुमार शंकर रावदेव से होने वाला था पकड़ ली गई और अलाउद्दीन के पास भेज दी गई। उसने उसका विवाह अपने पुत्र खिज़्रखां से कर दिया। रामचन्द्र देव को भी पकड़ कर दिल्ली लाया गया। परन्तु अलाउद्दीन ने उसे रामराव की उपाधि देकर नव सारी की जागीर दे दी और अपना भक्त बना लिया।

अब मलिक काफूर ने दक्षिण के पांचों शक्तिशाली हिन्दू राज्यों पर विजय प्राप्त करने का विचार किया अतएव १३०६ ई० में उसने वारंगल के काकतीय वंश के राजा प्रताप रुद्रदेव पर आक्रमण किया। १३१० ई० में उसका कोष लेकर उसने १३११ ई० में होयसल वंशी वीर वल्लाल की राजधानी द्वारा समुद्र पर आक्रमण किया। यादवों तथा वारंगल की सेनाओं की सहायता से उसे भी पराजित करके असंख्य धन, स्वर्ण तथा हाथी लूट कर दिल्ली लौट आया।

इसी बीच में देवगिरि के यादव राजा शंकर रावदेव ने राज कर देना बन्द कर दिया अतएव १३१२ ई० में मलिक काफूर फिर दक्षिण पर चढ़ दौड़ा। शंकरराव देव पराजित हुआ

और काफूर ने इस बार पाड्य और चेर राज्यों को पराजित करके रामेश्वर मन्दिर तक लूट लिया और अलाउद्दीन का साम्राज्य दूर दक्षिण तक पहुंचा दिया।

अब अलाउद्दीन के लिये केवल राज्य व्यवस्था ठीक करने का काम शेष रह गया था तथा बढ़ते हुये अमीरों की शक्ति को विद्रोह करने के योग्य शक्ति संचय न करने देनें का था। अतएव उसने सबसे पहले मंगोल नौ मुस्लिमों को जिनके सरदार उलगखां की सेवायें अमूल्य थीं, दबाना था उसने मंगोलों के वजीफे बन्द कर दिये तथा विद्रोह करने पर सबको तलवार के घाट उतार दिया। अमीरों की शक्ति तोड़ने के लिये उसने प्रत्येक दावत, विवाह सम्बन्ध आदि पर कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये। मदिरा पान को सम्पूर्णतया बन्द कर दिया और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि अमीरों के पास धन अधिक एकत्र न हो सके। इस प्रकार विद्रोह करने वाले कारणों के तत्वों की उसने जड़ काट दी।

अलाउद्दीन जानता था कि विना विशाल और सन्तुष्ट सेना के इतने बड़े राज्य का प्रबन्ध सम्भव नहीं है। तथा उसके वेतनों पर राज्य कोष का धन अत्यधिक व्यय होगा। अतएव उसने वस्तुओं के मूल्य इतने कम दिये कि थोड़ा वेतन पाने वाले सैनिक सुख पूर्वक अपनी जीविका चला सकें। फलतः मूल्य नियंत्रण व्यवस्था को प्रचलित किया। कुछ मूल्य उसके समकालीन बर्नी के वर्णनों के अनुसार इस प्रकार हैं।

गेहूँ	१ पैसे में	लगभग १$\frac{1}{4}$ सेर
चावल	१ ,,	,, २ ,,
चना	१ ,,	,, २ ,,

शक्कर	१ पैसे	लगभग	$\frac{1}{2}$ सेर
घी	१ ,,	,,	३ ,,
नमक	१ ,,	,,	$\frac{1}{3}$,,

पशुओं और गुलामों तक का मूल्य निश्चित था। २ या ३ रुपयों में गाय तथा ३०, ३५ रुपये में एक गुलाम मिल सकता था। सुलतान अपने गुप्तचरों द्वारा बाजार के भावों पर दृष्टि रखता था। यदि कोई व्यापारी अधिक दाम लेता था तो उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। साथ ही व्यापार के परवाने प्रत्येक व्यापारी को चाहे हिन्दु हो या मुसलमान लेने पड़ते थे।

इस प्रकार अपनी विशाल ५० लाख घुड़ सवार सेना को उसने बहुत थोड़े वेतन से सन्तुष्ट कर दिया। राज्य में गुप्तचरों का एक जाल सा बिछा कर विद्रोह की, और अव्यवस्था की उसने सम्भावना ही मिटा दी। हिन्दुओं के पास उसने रोटी खाने से अधिक सम्पत्ति छोड़ी ही नहीं और अपनी कर व्यवस्था से उन्हें असमर्थ बना दिया।

परन्तु नियंत्रण न तो स्वाभाविक है न मनुष्य के लिये रुचि कर बन्धन। अतएव अलाउद्दीन जिसे अपनी सबसे बड़ी सफलता समझता था उसी ने उसकी जड़ खोद दी। जब तक शक्ति रहती है तभी तक नियंत्रण चलाये जा सकते हैं परन्तु शक्ति की एक सीमा होती है। अलाउद्दीन के साथ भी वही हुआ। उसके अन्तिम काल में ही उसे विदित हो गया कि राज्य की नींव पोली हो चुकी है। वह स्वयं शराब पीकर तथा ऐयाशी का जीवन विता कर असमर्थ हो गया था अतएव उसकी इस मनो दशा ने उसे मृत्यु की गोद में ढकेल दिया तथा १३१६ ई० में उसका शरीर पात हो गया।

अलाउद्दीन के व्यक्तित्व पर विचार करते समय हमें उसके जीवन का फिर से सिंहावलोकन करना होगा। उसकी स्त्री तथा सास उसके दुराचार पूर्ण आचरण से सन्तुष्ट न रहे अतएव उसकी स्त्री उसका त्याग करके अपने पिता गयासुद्दीन तुग़लक के पास रहती थी। अन्हलवाला की रानी का हरण तथा पद्मिनी का लोभ भी उसकी दुराचार वृत्ति का परिचायक हैं। मलिक काफूर के नेतृत्त्व में देश विजय का भार सौंप कर अपने धन के सहारे वह विलासिता में मग्न हो गया और अपने बाद ही अपने साम्राज्य के विनाश का कारण उसने उत्पन्न कर दिया।

अलाउद्दीन का व्यक्तित्व

धन का वह लोभी था ही। उसकी आर्थिक व्यवस्था राज्य की व्यवस्था न थी वरन् राजकोष से धन के कम निकलने के कारण थी। यद्यपि वह विद्वानों का सत्कार करता था वजीफे भी देता था परन्तु अपनी सेना को घोड़े देने की उदारता उसने कभी नहीं की। अतएव उसकी घुड़ सवार सेना जो उस समय का सब से बड़ा युद्ध का साधन थी निर्बल हो चली थी।

अपनी महत्त्वाकांक्षा के लोभ में पड़ कर उसने निर्भय हत्या काण्ड किये, इससे उसके स्वभाव की कठोरता का परिचय मिलता है। उसके अत्याचार केवल विधर्मी हिन्दुओं तक ही सीमित न थे वरन् मुसलमान भी उसके कोप के शिकार होते थे। रणथम्भौर के घेरे में आहत मुहम्मदशाह जैसे वीर को हाथी के पैरों से कुचलवा देना (केवल इस अपराध के लिये कि वह अपने मित्र रणथम्भौर के राजा

का सच्चा मित्र था) तथा नौ मुस्लिम मंगोलों का खून उसके हृदय की हीनता का परिचय देता है।

परन्तु उसके धैर्य, वीरता तथा राजनीति कुशलता का जो परिचय अपने नये साम्राज्य के विरोधी अमीरों को निरन्तर युद्ध में लगाये रख कर तथा धीरे धीरे एक एक का विनाश करके दिया वह उसको अपने समय का महान नीतिज्ञ बताते हैं। साथ ही समय के अनुकूल उसकी कठोरता के अपराध को भी कम कर देते हैं।

कुछ भी हो उसने भारतवर्ष के इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य के उपरान्त पहली बार एक छत्र साम्राज्य स्थापित किया और अपने काल में उसे सुदृढ़ बनाये रक्खा। इससे उसके चरित्र की दृढ़ता का अवश्य पता चलता है। संक्षेप में न तो वह मुसलमान शरीयत का पाबन्द था न किसी अन्य नियम का। वह पूर्णतया निरंकुश और स्वेच्छाचारी सम्राट था।

अलाउद्दीन के उपरान्त

(१३१६-१३२० तक)

जो जितना शीघ्र बढ़ता है उतना ही शीघ्र उसका पतन होता है। इसका उदाहरण खिलजी वंश की उन्नति है। गुलाम वंश ८४ वर्ष चल गया तथा आगे आने वाला तुगलक वंश ९२ वर्ष चला, लोदियों ने ७५ वर्ष तक दिल्ली पर अधिकार रक्खा और सैयद वंश भी ३७ वर्ष तक राज्य करता रहा। परन्तु खिलजी वंश २४ वर्ष की आयु में ही फूस की आग की भांति भभक कर बुझ गया। इस काल में से यदि अलाउद्दीन के बीस वर्ष निकाल दिये जांय तो शेष चार वर्ष का इतिहास केवल परिवर्त्तन काल का इतिहास रह जायगा।

अलाउद्दीन के मरते ही गांव के पटवारी से लेकर उच्चाधिकारी पर छाया हुआ आंतक कुहरे की भांति उड़ गया।

खिज्रखां और शहाबुद्दीन उमर १३१६–१७

राज्य भर में अव्यवस्था छागई। सबसे बड़े सेनापति ने पहले विद्रोह किया और अलाउद्दीन के पुत्र खिज्रखां को गद्दी से हटा कर उसके ५ वर्ष के भाई शहाबुद्दीन उमर को गद्दी पर बैठाया और समस्त राज्य प्रबन्ध पर अधिकार कर लिया परन्तु काफूर के इस व्यवहार से अन्य सरदार असन्तुष्ट हो गये।

उन्होंने १ मास ५ दिन के उपरान्त काफूर का वध कर डाला तथा उसके दूसरे बड़े भाई मुबारक खां को सुल्तान बनाया।

मुबारकखां १३१६–१६

मुबारक ने राज्य प्रबन्ध हाथ में लेकर तो दृढ़ता और बुद्धिमत्ता का परिचय दिया। सरदारों की छीनी हुई जागीरें उन्हें लौटा दीं। अलाउद्दीन की कठोर कर और व्यापार व्यवस्था को बदल दिया और साधारण जन के जीवन को सुखद बनाने की चेष्टा की। परन्तु एक दो वर्ष में ही वह विलासी बन गया। १३१६ ई० में हरपाल देव गुजरात वाले के विद्रोह को शांत करने के कारण उसका विश्वास गुजरात निवासी हसन खुसरो नामक नीच जातीय नौ मुस्लिम पर अधिक बढ़ गया था। जब खुसरो ने तिलङ्गाना जीत कर बहुत अधिक लूट का धन मुबारक को दिखाया तब तो वह उसी के वश में हो गया और अधिक विलास में फंस गया। स्त्रियों का वेश धारण करके अमीरों के घर जाकर उनकी स्त्रियों से दुराचार करना, तथा इसी प्रकार के दूसरे व्यवहारों से सरदार

उस से चिढ़ गये। अन्त में खुसरो ने ही उसका वध कर दिया और स्वयं नासुरुद्दीन के नाम से सुल्तान बन गया।

नीच वंश का हिंदु था। यद्यपि उसने मुसलमान धर्म स्वीकार कर लिया था परन्तु उसका हृदय पूर्णतया मुसलमान न हो सका अतएव उसने हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों का अन्त करने के लिये गोवध बन्द कर दिया। मुसलमान सरदारों की शक्ति तोड़ने के लिये उसने अपने वंशजों को उच्च पद दिये और धर्म के नाम पर किये जाने वाले अनाचारों का दमन किया। फल यह हुआ कि पुराने मुसलमान सरदार असन्तुष्ट हो गये। और फखरुद्दीन जूना का व्यवहार तो अपमान जनक होने लगा। इस पर खुसरो असुन्तुष्ट हो गया। सम्भव था कि फखरुद्दीन को दण्ड दिया जाता। परन्तु वह भाग कर अपने पिता गाज़ी तुग़लक दियालपुर के सूबेदार के पास पहुंचा।

नासिरुद्दीन खुसरो

अब ग़ाजी तुग़लक ने मुसलमान सरदारों का संगठन करके दिल्ली पर आक्रमण किया। इस युद्ध में खुसरो अपने कुटुम्बियों के साथ मारा गया और दिल्ली का सिंहासन ग़ाजी तुग़लक के हाथ आ गया।

खिलजी काल पर सिंहावलोकन

अलाउद्दीन के वर्णन में हम बहुत कुछ खिलजी राज्य व्यवस्था पर विचार कर चुके हैं। यहां केवल एक बात और ध्यान देने को है। दिल्ली राज्य सदैव शक्ति के बल पर ठहर सका जब तक सुल्तान शक्तिशाली रहा दिल्ली राज्य सुदृढ़ बना रहा। परन्तु शक्ति के घटते ही साम्राज्य बालू की भीत की

भांति धराशायी हो गया। परन्तु हिन्दु शक्ति मानो सो सा गई थी। काफूर के धक्के को संभालने के लिये दक्षिण के राष्ट्र भी संगठित न हो सके और न खुसरो की मुसलमान विरोधिनी शक्ति ही उन्हें संगठन को प्रेरणा दे सकी। यदि उस समय हिन्दू संगठित होकर दिल्ली पर आक्रमण करते तो सम्भवतः पांसा पलट सकता था।

मुसलमानों में भी संगठन का अभाव था। राजदरबार षडयन्त्रों का अड्डा था। शासक की शक्ति टूटते ही राज्य को अपने हाथ में करने के षड्यंत्र चलने लगते थे तथा जिसके हाथ में सैनिक बल होता था वही सुल्तान अथवा सुलतान बनाने वाला बन जाता था। काफूर और खुसरो इसके उदाहरण है। साथ ही ग़ाजी की विजय भी सैनिक शक्ति की विजय की परिचायक है। संक्षेप में सुदृढ़ राज्य का अर्थ था सुदृढ़ सेना।

प्रश्न

(१) जलालुद्दीन मानवीय निर्बलताओं के कारण मार डाला गया। क्या यह ठीक है। पक्ष विपक्ष में अपनी युक्तियां दो।

(२) अलाउद्दीन खिलजी ने किस प्रकार धीरे धीरे अपना मार्ग प्रशस्त करके सिंहासन प्राप्त किया, विस्तृत विवरण दो।

(३) मालिक काफूर नाम का दास खिलजी साम्राज्य बढ़ाने में अलाउद्दीन का बड़ा सहायक हुआ सिद्ध करो।

(४) अलाउद्दीन के साम्राज्य का मुख्य साधन कठोरता थी उक्त सम्मिति पर कारण देते हुये विचार करो।

(५) अलाउद्दीन ने अपनी कठोर व्यवस्थाओं से अपने साम्राज्य के विनाश के साधन उपस्थित कर दिये। वे कठोरतायें कौन कौन थीं।

(६) देवगिरि की पराजय, गुजरात की विजय और चितौर आक्रमण पर संक्षिप्त नोट लिखो।

(७) खिलजी वंश के पतन के कारणों पर विचार करो।
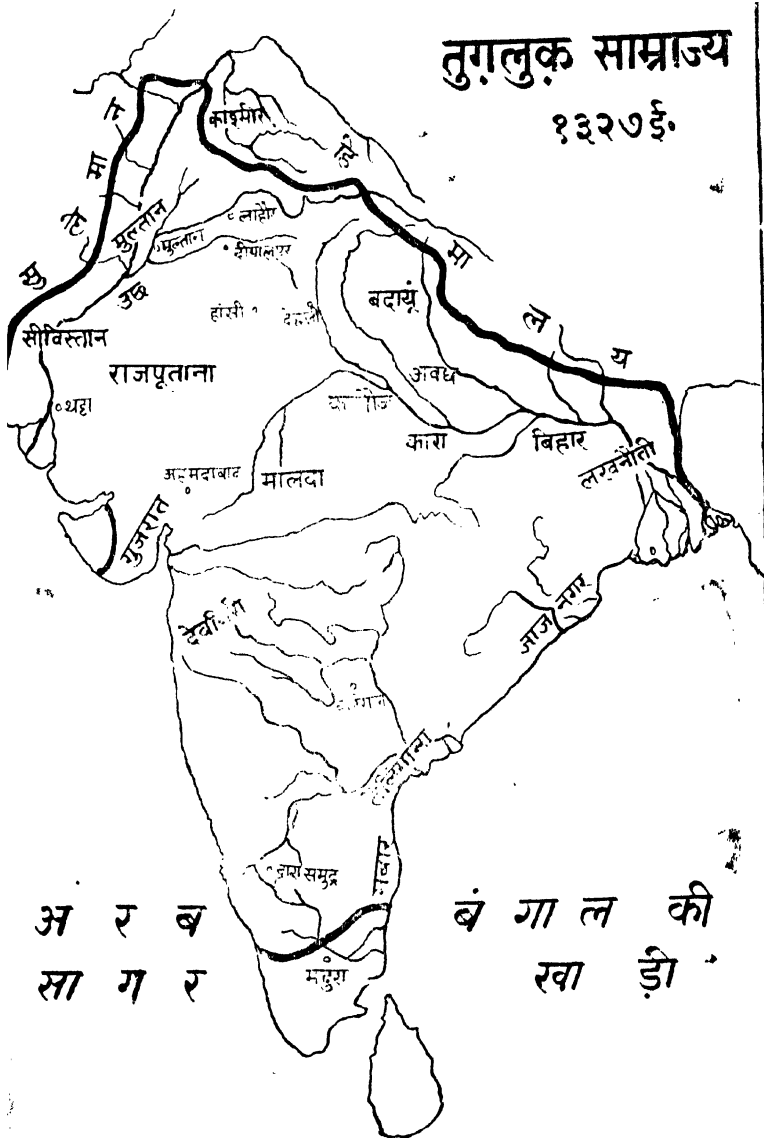
बीसवाँ अध्याय

परिच्छेद ५

तुग़लक वंश

(ग़ाज़ीग़यासुद्दीन तुग़लक १३२० से २५ तक)

गुलामी में पालित तुर्क और जाट माता की सन्तान ग़ाज़ी तुग़लक में हिन्दू और तुर्क दोनों वंशों के गुण उपस्थित थे। अतएव जब ग़ाज़ी तुग़लक (कुतलग, पहाड़ी प्रदेश का रहने वाला) गयासुद्दीन तुग़लक के नाम से गद्दी पर बैठा तो उसने अपने दोनों गुण कठोरता और उदारता का परिचय दिया। अमीरों की प्रार्थना से दिल्ली का शासन अपने हाथ में लिया तो सब से पहले उसने प्रजा का कष्ट दूर करने की चेष्टा की। बढ़ा हुआ कर कम कर दिया गया। भूमि की ठेकेदारी प्रथा और सालाना बन्दोबस्त में सुधार किया गया। हिन्दुओं से उपज का आधा भाग राजकर निश्चित किया गया, मुसलमानों से $\frac{1}{10}$ भाग तथा प्रजा के जीवन को सुख शान्ति की ओर बढ़ाने की चेष्टा की। इसलिये उसने तुर्की अमीरों को जागीरें आदि देकर सन्तुष्ट किया और उनसे राज्य में शान्ति स्थापना में सहायता ली। कहा जा सकता है कि हिन्दुओं के साथ उसने अवश्य राज्य कर में कठोरता से काम लिया।

इन कामों से निपट कर उसने सेना की ओर ध्यान दिया। घोड़ों को दागने की प्रथा चालू की जिससे धोखे के सवारों की संख्या नष्ट हो गई। अब उसने वारंगल के काकतीय वंश के राजा रुद्रदेव को राज्य कर न देने के अपराध में दण्ड देने के लिये अपने पुत्र फखरुद्दीन को भेजा। १३२२ ई० में फखरुद्दीन ने वारंगल का किला घेर लिया परन्तु इसी बीच में सूचना मिली की सुल्तान का शरीर छूट गया। उतावला राज कुमार विजय को अधूरी छोड़ कर दिल्ली लौटा परन्तु सुल्तान को जीवित देखकर फिर १३२३ में वारङ्गल पर चढ़ाई की। राजा हार गया तथा पकड़ कर सुल्तान के पास लाया गया। सुल्तान ने पिछला राज कर वसूल करके उसे छोड़ दिया और वारङ्गल राज्य में मिला कर मुसलमानों के हाथ में दे दिया गया।

इसी बीच में बंगाल के सूबेदार नासिरुद्दीन को उसके भाई बहादुर शाह ने निकाल दिया। नासिरुद्दीन सुलतान की शरण आया। सुलतान ने बहादुर शाह पर १३२४ ई० में आक्रमण किया और उसे पराजित करके जब लौटा तो जूनाखां ने उसके स्वागत के लिये दिल्ली से ६ मील दूर अफगानपुर में लकड़ी का महल बनवाया। कहते हैं कि हाथियों के उस महल के चबूतरे पर चढ़ने से पूरा महल गिर पड़ा और सुल्तान तथा उसका दूसरा पुत्र दब कर मर गया। सम्भव है कि इसमें फखरुद्दीन जूना का षडयन्त्र हो।

गयासुद्दीन हृदय का भला, धार्मिक और उदार था। उसे कला कौशल से भी प्रेम था। उसने पुराने भवनों का सुधार कर

गयासउद्दीन तुग़लक का मकबरा (देहली)

गयासुद्दीन का व्यक्तित्व

वाया तथा अनेक सुन्दर भवन बनवाये। दिल्ली के पास एक नया किला उसने बनवाया। वह विद्वानों और वीरों का सम्मान करता था अपने सैनिकों की मर्यादा पर जान देता था। धार्मिक पुस्तकों के आधार पर उसने राज्य नियमों में परिवर्तन किया। अमीर खुसरो कहता है कि गयासुद्दीन राज मुकुट के नीचे धर्म का मुकुट भी पहने हुये था।

उसकी धार्मिक अनुदारता केवल निजामुद्दीन औलिया के सम्बन्ध में देखी जाती है। कहा जाता है कि निजामुद्दीन औलिया को खिलजी खुसरो ने कुछ धन दे दिया था। सुल्तान नें अन्य लोगों की भांति उससे भी लौटाने को कहा। परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। इस पर वह अप्रसन्न हो गया और उसने सूफी धर्म के विरुद्ध धार्मिक गाने न गाने की आज्ञा प्रचारित की और विद्वानों की सभा करके उसे अनुचित ठहराना चाहा। परन्तु विद्वानों के अनुचित न कहने पर वह चुप हो रहा। परन्तु उसके हृदय का मैल दूर नहीं गया। बंगाल से उसने कहला भेजा था कि वह निजामुद्दीन को दिल्ली आकर दण्ड देगा। सम्भव है कि उसकी मृत्यु के साथ निजामुद्दीन औलिया का भी कुछ सम्बन्ध हो।

बर्नी और फरिश्ता लकड़ी के महल के गिरने का दोष बिजली गिरने को देते हैं परन्तु इब्नबतूता इसमें जूना खां के षड़यन्त्र का सङ्केत करता है। कम से कम इतना तो स्पष्ट ही है कि जूना खां राज्य प्राप्ति का उत्सुक था जैसा उसने वारंगल की विजय को अधूरा छोड़ कर प्रकट कर दिया था। अतएव यदि इब्नबतूता का कथन ठीक हो तो कोई आश्चर्य नहीं। फिर

मुसलमान राज्य काल में इस प्रकार की घटना कुछ अस्वाभाविक भी नहीं लगती ।

फखरुद्दीन जूनाखां मुहम्मद तुग़लक १३२५ से १३५० ई०

फखरुद्दीन जूना खां मुहम्मद तुग़लक के नाम से राज्य की गद्दी पर बैठा । इसके सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों ने उलटे सीधे मत दिये हैं । उन पर विचार करने से पहले उसके जीवन की घटनायें जिनके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है निष्पक्ष दृष्टि से देख लेना आवश्यक है ।

अलाउद्दीन के काल से लग-भग समस्त उत्तरी-दक्षिणी भारतवर्ष पर मुसलमान साम्राज्य फैल चुका था । समस्त राज्य २३ सूबों में बंटा हुआ था जिनमें बंगाल, तिरहुत, कन्नौज, दिल्ली लाहौर उत्तर भारतवर्ष में तथा गुजरात देवगिरि तिलङ्गाना तथा भावर दक्षिण भारतवर्ष में थे ।

राज्य प्राप्ति के दूसरे वर्ष ही सागर के ज़मीदार बहाउद्दीन गस्ताश्प ने विद्रोह किया । परन्तु सुल्तान के सेनापति ख्वाजा जहां ने उसे पराजित किया । परन्तु इस घटना ने सुल्तान को प्रेरणा दी कि उत्तर और दक्षिण दोनों ओर के राज्यों की देख भाल के लिये राजधानी यदि मध्यवर्ती भाग में बनाई जाय तो अधिक सुविधा होगी । क्योंकि सीमान्त प्रदेश का अलाउद्दीन के काल से ही उत्तम प्रबन्ध हो चुका था अतएव उस ओर से मंगोलों के नवीन आक्रमण का भय नहीं था ।

सम्राट के स्वतंत्र स्वभाव में उतावलापन तो था ही । उसने तुरन्त दिल्ली के समस्त निवासियों को दक्षिण देवगिरि जाने की आज्ञा दी । उचित प्रबन्ध किया गया परन्तु साधारण

जनता का घर छोड़ कर जाना कितना हास्य कर है। मार्ग के कष्ट और दूरी के कारण लोगों को बड़ा कष्ट हुआ तब सुलतान को अपनी भूल का पता चला। उसने लोगों को लौट जाने की स्वतन्त्रता दे दी।

इसी समय १३३२ ई. में मंगोलों ने तरानाशीरीन खां के नेतृत्त्व में उत्तर भारत पर चढ़ाई कर दी। सुल्तान की सेना का अधिकांश भाग दक्षिण देवगिरि में था अतएव युद्ध का अर्थ था पराजय। सुल्तान ने बहुत बड़ी भेंटे देकर इस विपत्ति को टाल दिया। भले ही इसे आत्म सम्मान की दृष्टि से अच्छा न समझा जाय परन्तु राजनीति में इस प्रकार के आत्म सम्मान का मूल्य केवल राजपूतों के इतिहास में है अन्य कहीं नहीं।

परन्तु मरे पर सौ दुर्रे इसी समय दोआबे में दुर्भिक्ष पड़ गया। राज्य कोष खाली हो चुका था अतएव सुल्तान ने दोआबे पर राज्य कर बढ़ा दिया था। इस दुर्भिक्ष के कारण किसानों के पास देने को कुछ था ही नहीं परन्तु जमींदारों ने सुल्तान को दुर्भिक्ष की उचित सूचना न देकर किसानों के विद्रोह का रूप दे दिया। फलतः सुल्तान क्रुद्ध हो गया अतएव उसने बलपूर्वक राज कर लेने की आज्ञा निकाल दी। समस्त दोआबे में हाहाकार मच गया। सुल्तान को जब शुद्ध घटना का पता लगा तब दुर्दशा अपनी अन्तिम सीमा पर पहुँच चुकी थी।

अब सुल्तान ने अपने अर्थ-शास्त्र ज्ञान का परिचय दिया। उसने सोने चांदी के सिक्के के स्थान पर तांबे का सिक्का चलाया। आज हम उसके प्रयोग का मूल्य समझ सकते हैं जब कौड़ी मूल्य के कागज को रुपये के रूप में लेते देते हैं परन्तु

उस समय जनता को यह एक खिलवाड़ जान पड़ी । टकसाल पर सरकार का एकाधिकार न होने के कारण पैसा रुपये में बदलने लगा और सारा बाजार तांबें के रुपयों से पट गया सोना चांदी एक दम लुप्त हो गये । तथा राज्य कोष में से सोना निकल कर फिर लौटने का नाम न लेने लगा । मुहम्मद ने अनुभव किया कि उसका प्रयोग सफल नहीं हुआ । उसने तांबे के सिक्के को चांदी के सिक्के से बदल कर परिवर्त्तन की आज्ञा जारी की फल और भी उलटा हुआ । सरकारी खजाने की बची हुई चांदी भी जाली तांबे के रुपयों के बदले निकल गई ।

इधर सन् १३३४ ई० में भाव्रर विद्रोह आरम्भ हुआ । सैयद जलालुद्दीन अहसान शाह ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया। सम्राट एक बड़ी सेना लेकर चला परन्तु सेना में महामारी फैल गई और भावर प्रदेश स्वतन्त्र हो गया ।

इसी प्रकार सम्राट को भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति ने खुरासान पर आक्रमण करने से रोक दिया । यद्यपि उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह खुरासान प्रदेश को जीत ले।

१३३६ ई० में सुल्तान ने नगरकोट का अजय दुर्ग भी अपने अधिकार में कर लिया तथा १३३७ ई० में पहाड़ी प्रदेश में स्थित कमायूं नरेश को भी अपनी शक्ति से पराजित कर दिया।

यद्यपि सुल्तान को नगरकोट में सफलता मिली परन्तु उस के साम्राज्य के टुकड़े होना १३३५ ई० से प्रारम्भ हो गये। दक्षिण प्रदेश में हरिहर बुक्काराय ने विजय नगर प्रदेश में स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया तथा १३३८ ई० में मलिक फखरु-

होन और १३४७ ई० में बहमनी सरदार हसन गंगू ने दक्षिण के हैदराबाद प्रदेश पर अधिकार कर लिया।

इसी काल में १३४०-४१ के समय रौतउल्मुल्क अवध के सूबेदार ने विद्रोह कर दिया परन्तु सुल्तान ने उसका दमन किया। फिर दक्षिण के अमीरों का विद्रोह शान्त करने के लिये सेना लेकर दक्षिण की ओर बढ़ा। सम्भव था कि इन विदेशी अमीरों को हसन गंगू के नेतृत्व में भी पराजय ही प्राप्त होती परन्तु इसी समय सुल्तान ने भूल की। दबते हुये दक्षिणी अमीरों को पूर्णतया कुचले बिना ही वह गुजरात के विद्रोही तागी की ओर घूम पड़ा परन्तु बीमार हो गया और अपनी समस्त सदिच्छायें लिये हुये सन् १३५१ ई० में संसार से चला गया।

मुहम्मद विद्वान था। फारसी और अरबी भाषा में वह सहज ही बात कर सकता था तथा लिख पढ़ सकता था। उसने

मुहम्मद का व्यक्तित्व

अपनी वीरता का परिचय भी वारंगल और नगरकोट की विजयों से दे दिया था। साथ ही उसकी उदारता में भी सन्देह नहीं किया जा सकता।

इब्न बतूता कहता है कि वह भारत के समस्त मुसलमानों से योग्य और विद्वान शासक था। वह इतिहास, गणित, ज्योतिष विज्ञान और दर्शन-शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित था। यूनानी दर्शन शास्त्र पर भी उसका अधिकार था। लोग उसकी विद्वत्ता देखकर चकित रह जाते थे। अपने समय की कलाओं का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। अपने धर्म का पक्का और धर्मानुसार आचरण करने वाला था परन्तु दूसरे के धर्म पर अत्याचार करना उसकी प्रकृति में नहीं था। वह राज्य शासन में मुल्ला और मौलवियों

की चिन्ता न करता था। वह अन्ध परिपाटियों का दास नहीं था। प्रत्येक कार्य अपनी बुद्धि के विवेक के सहारे करता था। वह स्वयं मांस नहीं खाता था न मदिरा पीता था। उसने न्याय का आदर्श दिया। फरिश्ता लिखता है कि एक बालक को निरपराध दण्ड दे दिया गया। सुल्तान की आत्मा विकल हो उठी उसने उसके बदले में स्वयं उस बालक के हाथ से कोड़े खाये।

प्रजा के सुख के लिये दुर्भिक्ष के समय उसने सैकड़ों कुएं खुदवाये, तकावी बंटवाई, यदि यह तकावी उसके कारिन्दों ने प्रजा को देने के स्थान पर स्वयं हजम कर ली तो इसमें उसका दोष नहीं। उसने औषधालय, अनाथालय तथा विधवाश्रम खोले, सती प्रथा रोकने का प्रबन्ध किया।

विदेशियों और विद्वानों का वह सत्कार करता था। इब्न बतूता को उसने दिल्ली का काजी और चीन के लिए राजदूत बनाकर उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

उसके उक्त गुणों पर विचार करके अब हम उसके सम्बन्ध में पश्चिम के विद्वानों की सम्मति पर विचार करेंगे। पश्चिम के विद्वानों ने उसे पागल कहा है और उसके ५ कारण बताये हैं १-उसका अविवेक। वे कहते हैं कि अविवेक के काम ये किये। दौलताबाद को राजधानी बनाया, तांबे का सिक्का चलाया, दुआबे पर कर बढ़ा दिया, चीन पर चढ़ाई की और खुरासान जीतने का विचार किया।

उन पश्चिम के विद्वानों से यह पूछना आवश्यक है कि तुम्हारा राज सात समुद्र पार रहता था। तुम्हारी समस्त शक्ति नौ-शक्ति पर निर्भर थी तो तुमने नौ-शक्ति की समस्त सुविधायें छोड़ कर दिल्ली को क्यों राजधानी बनाया ? अपने समस्त

दफ्तर दिल्ली क्यों उठा लाये ? प्रश्न टेढ़ा नहीं है। राजधानी बदलना पागलपन का काम नहीं वरन् बुद्धिमानी का काम था। इसका हम पहले विवेचन कर चुके हैं। रही सब नगर निवासियों को दौलताबाद जाने की बात। बुद्धि रखने वाला आदमी उस समय की दिल्ली की कल्पना कर सकता है। दिल्ली की आबादी का अधिकांश भाग अमीरों, राज कर्मचारियों तथा उनसे सम्बन्ध रखने वाले व्यापारियों और उनके सम्बन्धियों से था। यदि सम्राट ने मार्ग की सब सुविधायें प्रस्तुत करके उनको दौलताबाद जाने की आज्ञा दी हो तो उसे पागलपन नहीं कहा जा सकता। आज रेल के यातायात के कारण दफ्तर बदलने से ही काम चल सकता है परन्तु १६ वीं शताब्दी की तुलना आज से करके जो महमूद को पागल की उपाधि देता है उसकी आंखों पर अवश्य पक्षपात की ईंट का चश्मा है। इब्नबतूता की यह कहानी कि "कुत्ता भी दिल्ली में नहीं छोड़ा गया" उसकी अनेक गप्पों में से एक गप्प है। वही प्रमाण के लिये इब्नबतूता यह भी तो कहता है कि एक आदमी पालथी मारे बैठा था। वह तड़का और ताड़ के चार छः फल तोड़ लाया। अब यदि उसकी यह गप्प ठीक नहीं है तो पहली भी नहीं हो सकती। मुहम्मद को पागल तो हम तब कहते जब उसने बिना पूर्ण प्रबन्ध के ही राजधानी बदलने का आदेश दे दिया होता। फिर यदि नगर निवासियों ने देहली के ऐश दौलताबाद में नहीं पाये और वहां से लौट आना चाहा तो इसे भी सुल्तान ने नहीं रोका। हम तो यह कहेंगे कि सुल्तान बुद्धिमान के साथ ही उदार भी था। यदि वह पागल ही होता तो लोगों के मर जाने पर भी अपनी हठ न छोड़ता।

तांबे के सिक्के चलाने पर भी हम थोड़ा विचार कर चुके हैं। उसी काल में तांबे के सिक्के तो क्या कागज के सिक्के चीन और फारस में चल रहे थे। आज तो कागज ही कागज है। हमारी आज की निर्धता इन कागजी सिक्कों के ही कारण है जिससे हमारे नेता देश की दशा सुधार नहीं पाते। मुहम्मद और आज के शासन में इतना ही अन्तर है कि मुहम्मद ने तांबे के सिक्के को बदलने में अपनी उदारता से राज्य कोष को दिवालिया बना दिया तथा आज के दो वर्ष के पहले के राजा ने कागज का सिक्का दे कर अरबों पौण्ड सोना अपने खाते में चढ़ा लिया। अब यदि मुहम्मद पागल था तो आज के दो वर्ष के पहले के राजा पागल और बेइमान दोनों हैं।

दोआब पर कर बढ़ाने का काम उसने राज्य की आवश्यकताओं को देख कर किया था आज हम सब से 'अधिक लाभ कर' नहीं लिया जाता। यह कर केवल उन धन कुबेरों से लिया जाता है जिन्होंने व्यापार के नाम पर प्रजा का शोषण किया है। उस समय देश का सब से सम्पन्न और भरापूरा भाग दोआब ही था। इस धन के ही कारण दोआब में बहुधा विद्रोह होते थे। अतएव यदि मुहम्मद ने पांच या १० प्रतिशत कर बढ़ा दिया और मकान और पशुओं पर कुछ राज-कर लगा दिया तो हम उसे पागल ठहरा दें यह कहां की बुद्धिमत्ता है। अंग्रेजों ने तो साधारण काल में नमक जैसे पदार्थ पर कर लगा रक्खा था। युद्ध काल में तो अप्रत्यक्ष रूप में हमने ६३ प्रतिशत तक केवल राज कर दिया है। फिर उसकी उदारता पर विचार कीजिये। जब उसे दोआब की वास्तविक स्थिति दुर्भिक्ष का पता चला। वह स्वयं राजधानी स्वर्गद्वारी (दोआब) में उठा

लाया। अवध में अन्न और भूसा मंगा कर बंटवाया। कुयें खुदवाये और तकावी बंटवाई। क्या इसे हम पागल का कार्य्य कहेंगे।

चीन पर चढ़ाई करने की घटना भी उसे पागल बनाने के लिये गढ़ी हुई कहानी है। यह ठीक है कि उसने पर्वतीय राजा पर हिमाचल प्रदेश में चढ़ाई की, विजय भी प्राप्त की। यद्यपि इसमें उसके सिपाहियों को बड़ा कष्ट हुआ। परन्तु क्या यह पागल का काम था। परन्तु यदि उसने चीन पर भी चढ़ाई की होती और पराजित भी हुआ होता तो भी हम उसके साहस की प्रशंसा करते। जब अफ्रीका, अमेरिका, मैक्सीको, पीरु के आदि निवासियों पर होने वाले योरोप वासियों के अत्याचारों का इतिहास पढ़ते हैं तो लज्जा से मनुष्यता का शिर नीचा हो जाता है। क्या आज योरोप निवासी इसे अपना घृणित कार्य्य स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं। अथवा जब जापान से ईष्ट इण्डिया कम्पनी का पहला ही जहाज़ भगा दिया गया था तो कम्पनी के डायरेक्टरों ने पागल पन किया था।

मैं समझता हूँ कि खुरासान पर आक्रमण करने की कहानी को भी यदि खुरासानी अमीरों द्वारा आक्रमण के लिये उकसाये जाने की बात पर ध्यान रख कर देखा जाय तो उससे सुल्तान के पागलपन का प्रमाण नहीं मिलता, वरन् उसकी बुद्धिमत्ता का ही पता चलता है। विदेश में युद्ध साधनों की कठिनाई का विचार करके ही उसने बड़ी बुद्धिमानी से आक्रमण नहीं किया। उसके पागलपन का दूसरा कारण उसका क्रूर उतावला और रक्त पिपासु होना बताया जाता है। इस बात पर भी हमें थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। यह ठीक है कि उसे

क्रोध शीघ्र आता था तथा यह भी ठीक है कि वह प्रत्येक कार्य्य में उतावलेपन से काम लेता था तथा अपनी आज्ञा न पालन किये जाने पर कठोर दण्ड देता था। परन्तु उसके सामने जो परिस्थितियां थीं उन पर विचार करके क्रोध की ओर देखिये और विचार कीजिये।

सुल्तान ने आज्ञा दी है कि तांबे के सिक्के के बदले लोग चांदी के सिक्के राज्य कोष से ले लें। अब उस तांबे के पहाड़ की कल्पना कीजिये जो बदले जाने के लिये दौलताबाद के मैदान में इक्ट्ठा हैं। जितना तांबा राज्य भर में था वह सब सिक्के के रूप में बदल कर इक्ट्ठा हो गया है। धन की कमी से संसार व्यापी चांदी की कमी से चिन्तित सुल्तान ने तांबे का सिक्का चलाया था। परन्तु देश के बेइमानों ने जनता के हित चिन्तक सुल्तान को धोखा दिया। अब उस धोखे की गुरुता पर विचार कीजिये। सुल्तान की उदारता पूर्ण आज्ञा के बदले में यदि इस प्रकार धोखा देने के फल स्वरूप उसे क्रोध आ गया और धोखा देने वालों को उसने कठोर दण्ड दिया तो आप उसे क्रूर कहने से पहले एक बार अपने को उस परिस्थिति में देख कर तो सोचें।

दोआब उसकी आय का साधन है। दोआब में ही विद्रोह होते हैं। राजनैतिक आवश्यकता के लिये सुल्तान कर बढ़ाता है। परन्तु प्रजा नहीं देती, कारण उसे उलटा समझाया जाता है अतएव वह रक्तपात की आज्ञा दे देता है। क्या इससे हम उसको रक्त पिपासु कहने में उसके साथ न्याय करते हैं?

अब इन रक्त पिपासु कहने वालों का थोड़ा सुयश भी सुन लीजिये। भीरतीय राज्य क्रान्ति हुई। दासता की

बेड़ियां तोड़ने के लिये झांसी ने तलवार उठाई। दुर्भाग्य से सिक्ख सेना की सहायता से झांसी पराजित हुई। अब झांसी के चौराहे पर सूली गड़ी है तथा नाकों पर हथियार बन्द गोरे। नगर को श्मशान बना ही दिया गया है यदि कोई भूला भटका इधर से निकल जाता है तो उसको मारने की होड़ लग जाती है। कहा जाता है कि पूरे रिसाले में ऐसे व्यक्ति थोड़े ही थे जिन्हों ने ५० से कम भारतीयों के प्राण लिये हों। और यह काम हो रहा है सभ्यता के ठेकेदारों द्वारा। परेड़ के मैदान में भीड़ इक्ट्ठी है। कानपुर में पहरा लगा है। बीच में लकड़ियों की एक चिता है जिस पर नाना साहब की पालिता कन्या मैना को केवल इसीलिये जीवित जलाया जायगा कि वह नाना साहब से सम्बन्ध रखती है। इसका विचार नहीं है कि यदि उस कन्या ने कुछ अंग्रेज रमणियों की रक्षा करने के यत्न में ही अपने को फंसा दिया था। संसार किसे रक्त पिपासु कहेगा। मुहम्मद को या उन गोरों को, जिन्होंने उपकार करने वाली राज-कन्या को जलती आग में झोंक दिया।

जाने दीजिये वह युग दूसरा था। भावनायें उत्तेजित थीं हम उन्हें क्षमा कर देंगे। परन्तु सभ्यता के उच्च शिखर पर चढ़ने वाली जाति जिन भारतीयों के रक्तदान से प्रथम योरोपीय महायुद्ध में अपने प्राण रक्षा कर सकी थी। उसी का एक अधिनायक जनरल डायर अपनी सेना सहित प्रस्तुत है। केवल इसलिये निःशस्त्र और शान्त जनता रौटल बिल जैसे नारकीय नियम का शांत विरोध करने के लिये सभा करना चाहती है। जलियान वाला बाग यदि आज उठकर गवाही दे सकता तो सम्भवतः मुहम्मद को रक्त पिपासु कहने वालों के

इन सभ्य वंश धरों को रक्त पिपासु कहता अथवा ' हिरोशीमा ' नगर के खण्डहर भविष्य में रक्त पिपासु का नाम पुकारेंगे।

जाने दीजिये। परिस्थियों में पड़कर जब देश के देश भूल कर जाते हैं, समाज भूल जाते हैं तब व्यक्ति की भूल का क्या कहना। यदि मुहम्मद ने भी अत्याचार किये तो उसने भी भूल की परन्तु हम मुहम्मद की बड़ाई इसलिये करेंगे कि उसने अपनी भूल की सदैव समझने की चेष्टा की और उसे सुधारने का भी यत्न किया। सच तो यह है कि मुहम्मद का निर्माण ही दो विरोधी तत्वों से हुआ था अतएव उसकी प्रकृति में ही उदारता और कठोरता दोनों उपस्थित थीं।

मुहम्मद की असफलता के कारण

अब संक्षेप में मुहम्मद की असफलताओं के कारणों पर भी फिर से विचार कर लेना चाहिये उसकी असफलता का पहला कारण तो उसकी प्रकृति में ही उपस्थित था जिसका ऊपर वर्णन आ चुका है। दूसरा कारण दैवी विपत्तियां हैं। उसी के काल में उसकी आय के क्षेत्र दोआबे में दुभिक्ष फैल गया। उसकी सेना पर महामारी का कोप पड़ गया तथा संसार व्यापी चांदी की कमी पड़ गई जिसके कारण उसकी प्रजा में तथा सेवा में असन्तोष फैल गया।

तीसरा कारण उसके समय विदेशी अमीरों की शक्ति का बढ़ जाना था उसके काल तक उसके पूर्ववर्त्ती सुल्तानों ने तुर्क अमीरों की अयोग्यता तथा षड़यंत्रों को बचाने के लिये फारस और खुरासान से अमीर बुलाकर उनके हाथ में सैनिक और प्रबन्ध के कार्य्य)दे दिये थे। परन्तु इन अमीरों ने उसके विरुद्ध बगावत की। ईरानी अमीर हसन गंगू ने दौलताबाद में

विद्रोह किया उसी समय सिन्ध में तागी ने विद्रोह कर दिया। फल यह हुआ कि सुल्तान इन विदेशियों के विद्रोहों को दबाने में असमर्थ हो गया। जिससे दूसरों को विद्रोह की उत्तेजना मिली।

तीसरा कारण हिन्दू राज्य शक्ति थी। हिन्दू मुसलमानों के अधिकार में तभी तक रहे जब तक उन्हें तलवार का भय रहा। वे लगातार विद्रोह करते रहे। सुल्तान को उसके मुसलमान अमीरों ने धोखा दे दिया तब उसे उनको दबाने में भी उचित सफलता प्राप्त न हुई।

चौथा कारण उसे योग्य सेनापति का न मिलना था। ख्वाजा जहां की मृत्यु के उपरान्त उसे स्वयं ही सेनाओं का नेतृत्व करना पड़ता था। अतएव जब वह राजधानी से बाहर जाता तभी राजधानी षड़यंत्रों का केन्द्र बनने लगती। यद्यपि उसके काल में राजधानी में विद्रोह नहीं हुये किन्तु अपने विश्वासी अमीरों पर भी सन्देह हो गया। यदि कोई योग्य सेनापति उसका हाथ बटा सकता तो वह राज्य प्रबन्ध की देख भाल का काम कर पाता।

इन सब कारणों पर विचार करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यद्यपि वह न्याय परायण था, हिन्दू-मुसलमानों के साथ समान व्यवहार करता था, वह राजनीति पटु और बुद्धिमान था। परन्तु अपने उचित समय से ६०० वर्ष पहले हुआ यही उसका दुर्भाग्य था।

फिरोज़ तुग़लक

(१३५१–१६८८ ई०)

मुहम्मद की मृत्यु के उपरांत उसका चचेरा भाई फीरोज़ तुग़लक ४२ वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठा। कहा जाता है कि महम्मद के कोई पुत्र न होने के कारण उसने बसीयत की थी कि मेरे उपरांत फीरोज सुल्तान बनाया जाय। परन्तु धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण उसने बड़ी अनुनय विनय के उपरान्त राज्यासन ग्रहण किया।

सुल्तान फीरोज न तो वीर योद्धा था न उसमें कोई महत्वकांक्षा। अतएव उसका राज्य सफलताओं की घटना से शून्य सा रहा। उसने १३५३–५४ में बंगाल के बादशाह इलियास पर आक्रमण किया। इलियास ने इकडला दुर्ग की शरण ली। थोड़ा युद्ध भी हुआ परन्तु सुल्तान स्त्रियों के रोने चिल्लाने से दुखी होकर घेरा उठा कर चला आया। इस प्रकार स्वतंत्रता की घोषणा करने वाला इलियास स्वतंत्र हो ही गया।

परन्तु दूसरी बार १३५६–६० ई० में जफर खां की इस प्रार्थना पर कि इलियास मुसलमानों पर अत्याचार करता है। सुल्तान का मुसलमान हृदय व्याकुल हो उठा। उसने चढ़ाई की परन्तु इसी बीच में इलियास की मृत्यु हो गई उसके पुत्र सिकन्दर ने सन्धि करली परन्तु अधीनता स्वीकार न की। इस प्रकार बंगाल स्वतन्त्र हो गया।

फीरोज ने धोबी से न जीत कर गधे के कान अवश्य उमेठ दिये। इकडला दुर्ग को विजय न करने की लज्जा उसने जाज नगर

फीरोज़शाह तुग़लक का मकबरा (देहली)

के ब्राह्मण राजा को पराजित करके धो डाली। जगन्नाथ का मन्दिर लूट लिया। मूर्त्तियों का अपमान करके समुद्र में फिकवा दिया तथा बहुत सा धन लेकर दिल्ली आया।

१३६०-६१ ई० में फिरोज ने फिर हिन्दू राजा पर ही आक्रमण किया। उसका यह आक्रमण नगरकोट के राय पर हुआ। राजा ने ६ महीने तक किले में शरण ली तथा अन्त में रसद चुक जाने के कारण क्षमा याचना की और आधीनता स्वीकार करली।

१३६६-६७ ई० में फीरोज ने ठट्ठा पर आक्रमण किया। परन्तु सेना में महामारी फैल गई अतएव उसने गुजरात से नई भरती करने के लिये लौटना चाहा। परन्तु पथ प्रदर्शकों की भूल के कारण सुल्तान मरुस्थल में फंस गया। लगभग ६ महीने तक इधर उधर भटक कर गुजरात पहुंचा। सेना भरती की गई। राज्य कोष से रुपये पेशगी देकर घोड़े लिये गये और फिर ठट्ठा पर चढ़ाई की गई। राजधानी जौनपुर आदि से सेना पहुँचने के कारण सुल्तान को विजय प्राप्त हुई। जाम वार्बिया ने आत्म समर्पण कर दिया तथा उसे पैंशन दे दी गई।

उसके सरदार दक्षिण पर भी आक्रमण करके बहमनी वंश की शक्ति भी तोड़ देना चाहते थे परन्तु मुसलमानों का खून बहना सुल्तान कैसे पसन्द करता। आंखों में आंसू भर कर उसने इसे अस्वीकार किया और राज्य की सुव्यवस्था में लग गया।

इस दृष्टि से फीरोज एक सुयोग्य सुल्तान था। उसने नहरें बनवाईं। यह नहरें सतलज और यमुना नदी से दोआबा तक

फीरोज का राज्य प्रबन्ध

दिल्ली के आस पास का प्रदेश सींचने के लिये बनाई गई थीं। उसने सिचाई करके अतिरिक्त जो कुल उपज का $\frac{1}{10}$ भाग होता था निम्नलिखित ४ कर जो मुसलमान शरअ(धर्म)के अनुकूल थे खिराज (राजकर) जक़ात (धर्म कर) जज़िया (मुसलमान धर्म के अतिरिक्त लोगों से लिया जाने वाला कर)खाम (कच्चा साधारण भूमि कर इसके अतिरिक्त उसने अन्य सब कर उठा दिये। इससे किसानों पर भार कम हो गया और अन्न आदि सस्ते हो गये अतएव सरकारी कर्मचारियों के वेतन की कमी भी हो गई। इससे राज कोष की दशा सुधर गई। उसने समस्त भूमि का निरीक्षण करवा कर उचित भूमि कर लागू किया तथा खिराज देने वाले जागीरदारों को उससे अधिक कर लेने के लिये रोक दिया।

फीरोज ने सैनिक प्रबन्ध में भी सुधार करना चाहा। उसने अच्छे घोड़े लेने को सैनिकों की पेशगी रुपया दिया। स्थायी सैनकों को जागीरें तथा अस्थायी सैनिकों को पैंशन या वेतन देने का नियम चालू किया। परन्तु उसने सैनिक को अपने स्थान पर दूसरे को भेज देने की सुविधा देकर सेना की दृष्टि से भूल की। फल यह हुआ कि सेना में अनुभव हीन युवकों की संख्या बढ़ गई।

अलाउद्दीन और जलालुद्दीन के समय में नष्ट हुई जागीर प्रथा को उसने फिर से चालू करके सरदारों को सन्तुष्ट कर लिया। तथा न्याय विधान में भी कठोरता कम कर दी परन्तु यह कमी केवल मुसलमानों के ही लिये थी। एक मुसलमान

का पुनः शुद्ध करने के अपराध में एक ब्राह्मण उसके महल के सामने जीवित आग में फेंक दिया गया। उसका न्याय विधान इतना पक्षपात पूर्ण था कि सुन्नी मुसलमानों के अतिरिक्त उसमें किसी अन्य मुसलमान के लिये भी कोमलता न थी। शियों के नेता रुकुनुद्दीन को प्राण दण्ड देने में उसने गौरव का अनुभव किया और स्वयं फतूहात् फीरोजी में उसका वर्णन किया।

उसने निकम्मे तथा बेकारों, जागीरदारों से प्राप्त गुलामों जिनकी संख्या १२० हज़ार थी, तथा मुसलमान विधवाओं और उनकी कन्याओं के विवाह के प्रबन्ध के लिये एक अलग विभाग स्थापित किया। दिल्ली में औषधालय खुलवाया जिसमें दरिद्रों को बिना मूल्य औषधियां मिलती थीं। मुसलमान फकीरों को ठहरने के लिये ख़ानकाहें तथा साधारण यात्रियों को ठहर के लिये सड़क के किनारे सरायें बनवाईं जिनका प्रबन्ध मुसलमानों के हाथ में था। फलतः मुसलमानों को सुविधा अधिक मिलती थी।

फीरोज को भवन निर्माण की रुचि थी उसने जो नगर (फतहाबाद, फीरोज़ाबाद तथा मुहम्मद की स्मृति में जौनपुर बसाया उसमें उसने बड़ी बड़ी मस्जिदें और सरायें बनवाईं। अल्तमश के उपरान्त यही पठानों में था जिसने इस ओर रुचि दिखाई। इसके अतिरिक्त दिल्ली के आस पास उसने १२०० बाग़ भी लगवाये।

उसे विद्या से भी बड़ा प्रेम था। नगर कोट की लूट में उसे ज्योतिष का एक अपूर्व ग्रंथ प्राप्त हुआ था उसने इस ग्रंथ का

फारसी में अनुवाद कराया। अनेक मदरसे खोले तथा विदेशों से अनेक विद्वान बुलाकर शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उसका काल सुव्यवस्था का काल था। अब थोड़ा उन कारणों पर विचार कर लेना आवश्यक है जिनके कारण तुग़लक वंश बालू की दीवाल फिरोज़ तुग़लक के काल में बन गया।

सब से पहला कारण उसकी धार्मिक कट्टरता थी। इतनी कट्टरता केवल मुसलमान शासन काल में औरंगजेब में ही पाई गई थी। इस कारण उसके शासन सुधार से समस्त सुविधायें पाते हुये भी हिन्दू उससे सन्तुष्ट न थे। ब्राह्मणों पर भी जज़िया लगा दिया था अतएव ब्राह्मणों में असन्तोष फैल गया। जज़िया की दरें भी कठोर थी। उच्च वर्ग से ४० तनका (रुपये से कुछ अधिक=१ तनका) मध्य वर्ग से २० तनका तथा निम्न वर्ग से १० तनका वार्षिक जज़िया पड़ता था। उस काल के मुद्रा प्रसार को देखते हुये रुपये के रूप में यह राज कर अधिक था। यद्यपि अंग्रेजी राज्य के करों से कम था। उसने बल पूर्वक धर्म प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। इससे हिन्दू और असन्तुष्ट हो गये। उसकी मुल्ला भक्ति ने हिन्दुओं के हृदय में प्रेम के स्थान पर घृणा उत्पन्न कर दी।

उसकी सैनिकनीति ने सेना को निर्बल कर दिया तथा उसके दुर्बल स्वभाव ने मुसलमान रक्त के गिरने के भय ने उसके सरदारों के हृदय से भय मिटा दिया। उसके जीवन के अन्तिम काल में ही षड्यंत्र प्रारम्भ हो गये। खानजहाँ मकबूल (जो तिलंगाना का हिन्दू था मुसलमान हो गया था) प्रधान मंत्री था। उसने राज्य अपने हाथ में करने के लिये उसके पुत्र मोहम्मद

को ही बन्दी बनाने की आज्ञा प्राप्त कर ली । मोहम्मद ने जब क्षमा प्राप्त करली तो खानजहाँ विरोधी हो गया। मोहम्मद की विलासिता से चिढ़ कर सरदार बिगड़ खड़े हुए किसी प्रकार सुलतान ने स्थिति को सँभाला और अपने पौत्र तुगलक शाह को उत्ताधिकारी बनाया । परन्तु एक बार का भड़काया हुआ असन्तोष जब तक पूर्णतया दबा न दिया जाय भीतर ही भीतर सुलगता रहता है।

फ़िरोज़ के उत्तराधिकारी

फ़िरोज़ के अन्तिम दिनों में उसे उक्त कारणों से शान्ति नहीं मिली। उसके मंत्री खानजहाँ मकबूल ने उसके पुत्र मोहम्मद के प्राण लेने चाहे थे परन्तु उसी मंत्री के मेवात भाग जाने पर कोई दूसरा ऐसा सहायक नहीं रह गया था जो उसके उत्ताधिकारी तुग़लक शाह की शक्ति का आधार रहा होता फल यह हुआ कि सरदारों में फूट पड़ गई फलतः बन्दी अबूबकर को छुड़ाकर- उन्होंने विद्रोह किया। तुग़लकशाह मारा गया । परन्तु अबूबकर भी फ़िरोज़ के पुत्र मोहम्मद ने अबूबकर को परास्त करके दिल्ली की गद्दी पर अधिकार प्राप्त किया और १३६० ई० में वह नासो- रुद्दीन मोहम्मद के नाम से दिल्ली सिंहासन पर बैठा। १३६४ में उसका देहान्त हो गया। यह काल विद्रोहों का काल था, बंगाल जौनपुर, गुजरात, खानदेश, मालवा स्वतंत्र हो गये । पञ्जाब में खोखरों ने विद्रोह किया तथा दोआब के अमीर भी विद्रोह करने लगे। फ़ीरोज़ तुग़लक के दूसरे पौत्र नसरत शाह को लोगों ने सुल्तान बनाया। दिल्ली में भी दो सुल्तान कर दिये। ऐसी अव्य- वस्था के समय भारतवर्ष पर एक विपत्ती आई । वह विपत्ती तैमूर लंग का आक्रमण थी।

वरलास वंशीय तुरकम वर्ग के सरदार अमीर तरगाई का पुत्र तैमूर १३३६ ई० में अपने पिता का उत्तराधिकारी होने के लिये उत्पन्न हुआ। ३३ वर्ष की आयु में १३६६ ई० में सरदार बन कर उसने समस्त मध्य ऐशिया, को धीरे धीरे अपने आधीन कर लिया। फारस के गृह युद्ध से लाभ उठा कर उसने फारस पर भी अधिकार कर लिया। अब उसने भारतवर्ष की ओर प्रस्थान किया। एक आंधी की भांति खैबर के दर्रें को पार करके उसने मुल्तान पर आक्रमण किया। ६ महीने के घेरे में मुल्तान जीत कर वह दियालपुर पहुँचा। गवर्नर का वध करके उसने भटनेर पर आक्रमण किया। राय दुनीचन्द ने अपनी प्रजा की रक्षा के लिये अपने प्राण दे दिये। नगर निवासी भी इतनी वीरता से लड़े कि तैमूर चकित हो गया परन्तु जिस आंधी में फारस उड़ गया उसके समक्ष एक कस्बे की क्या शक्ति थी। नगर उजाड़ दिया गया।

तैमूर

यहां से तैमूर समाना पहुंचा। उसे लूट कर कैथल होता हुआ दिल्ली से ६ मील दूर फीरोज़ तुग़लक के बनवाये जहां-नुमा महल में ठहरा। यहां उसने एक लाख हिन्दू बन्दियों का वध करा दिया। दिल्ली के सुल्तान महमूद ने एक विशाल सेना के साथ उसका सामना किया किन्तु पराजित हुआ। महमूद गुजरात की ओर भाग गया और तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया। नगर निवासियों ने भी वीरता पूर्वक युद्ध करके अपने प्राण दिये और दिल्ली की मनमानी लूट आरम्भ हुई। जितनी नर हत्या तैमूर ने की इतिहास में इतनी नर हत्या कभी नहीं हुई।

दिल्ली में १५ दिन आमोद प्रमोद और लूट मार में बिता कर तैमूर फीरोजा बाद, हरद्वार, जम्मू को लूटता और उजाड़ता हुआ झेलम के किनारे किनारे चलकर पहले मार्ग के पास आ गया और सिन्ध को पार करके समरकन्द लौट गया।

इस आक्रमण के तीन उद्देश्य थे। पहला लूटना दूसरा, विधर्मियों का नाश करना तथा तीसरा एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करना। उसने इन तीनों उद्देश्यों को पूर्ण कर लिया नर संहार और लूट का वर्णन हम कर चुके हैं। और इतिहासकारों ने भी इसी उद्देश्य की ओर सङ्केत किया है। परन्तु उसने अपनी ओर से खिज्र खां सैयद को लाहौर, मुल्तान और दियालपुर का शासक नियत किया था। इससे विदित होता है कि उसकी इच्छा साम्राज्य स्थापना करना भी थी।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव

१--दिल्ली साम्राज्य छिन्न भिन्न हो गया। दिल्ली का राज्य खेल हो गया। नसरत शाह, इकबाल और महमूद एक के बाद दूसरे गद्दी पर बैठते और षड्यंत्रों के शिकार होते रहे। अन्त में महमूद की मृत्यु के उपरान्त तैमूर का सरदार खिज्र खां सैयद दिल्ली का अधिकारी हुआ।

२--इसी समय भयङ्कर नर संहार से जनता त्रस्त हो उठी और हिन्दुओं को पश्चिमी भागों में अपना जीवन सङ्कटमय दिखाई दिया। अतएव पश्चिमी भागों में मुसलमान धर्म का प्रभाव अधिक पड़ा। जम्मू का हिन्दू राजा मुसलमान हो गया।

३--इसी समय दिल्ली और उसके समीपवर्त्ती भागों में दुर्भिक्ष के कारण जनता और अधिक कष्ट में फँस गई। सम्भ-

वत: इसी समय "दैव तुक दोनों लगे हैं" की लोकोक्ति का जन्म हुआ।

तुगलक काल पर सिंहावलोकन

तुग़लक काल को गयासुद्दीन से लेकर अन्त तक विचार करके देखिये। आपको अलाउद्दीन के विष के वृक्ष का फलना फूलना सर्वत्र दिखाई देगा। अलाउद्दीन की कठोर नीति ने सरदारों, अमीरों और हिन्दुओं को उत्तेजित कर रक्खा था तथा उनकी मनो भावना में विद्रोह समा गया था। इतिहास के ऐसे ही उदाहरण हमें राष्ट्रों की मनोवृत्ति के बनने बिगड़ने की दशा का पता देते हैं। अब इस बिगड़ी हुई मनो वृत्ति का फल यह हुआ कि जैसे ही केन्द्रीय शक्ति में दुर्बलता दिखाई पड़ी कि विद्रोह प्रारम्भ हो गये।

मुहम्मद तुगलक की असफलताओं का वर्णन करते समय हम देख सकते हैं कि उसकी समस्त सद्भानायें भी राष्ट्र की मनोवृत्ति सुधारने का काम न कर सकी वरन् वह और भी बिगड़ती ही रही। उस समय दिल्ली के केन्द्र में अलाउद्दीन जैसे ही एक सुदृढ़ किन्तु मुहम्मद जैसे विवेकी सुल्तान की आवश्यकता थी जिसने तुग़लक वंश पूर्ण न कर सका।

फीरोज तुगलक की निर्बलता तथा हिन्दुओं के प्रति उसकी कठोर भावनाओं ने जहां मुसलमान सरदारों की शक्ति बढ़ा दी वहां हिन्दुओं का असन्तोष चौगुना कर दिया। अतएव महम्मद तुग़लक तो फीरोज के लिये कुछ साम्राज्य छोड़ भी गया परन्तु फिरोज अपने उत्तराधिकारियों के

तैमूर के आक्रमण के समय का भारत
काबुल
पेशावर
जम्मू
लाहौर
तुलम्बा
मुलतान
दिपालपुर
भटनेर
समाना
दिल्ली
हरद्वार
बदायूँ
कन्नौज
अयोध्या
जौनपुर
आगरा
कालपी
प्रयाग
गौड़
मालवा
अन्हलवाड़
माडू
बंगाल
गिरनार
खानदेश
गोंडवाना
असीरगढ़
दौलताबाद
चौल
बहमनी राज्य
वारंगल
बीदर
गोलकुंडा
गुलबर्गा
रायचूर
बिजयनगर
विजयनगर राज्य
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
तैमूर के आक्रमण का मार्ग
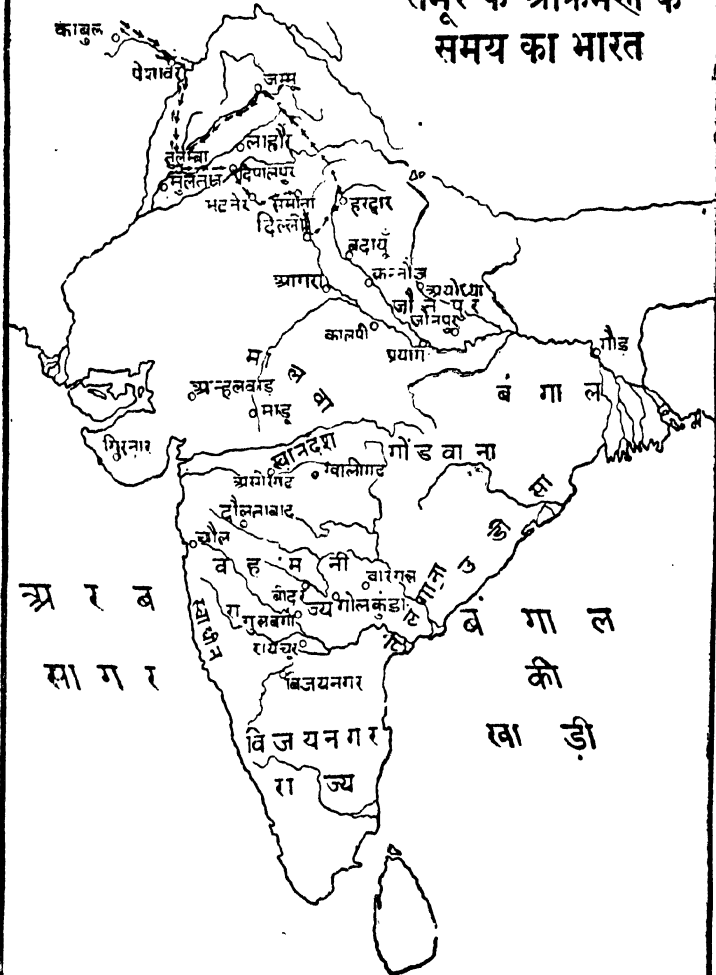
लिये केवल गृहयुद्ध ही छोड़ गया। जिसका फल तुगलक वंश के अन्त के साथ ही पूरा हुआ।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव वर्णन करनें का समय हम कह चुके हैं कि इससे केन्द्र की शक्ति कम हो गई। परन्तु इसका एक फल और हुआ। पठान वंश भी अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाने के कारण उन में भी केंद्रों की शक्ति बनाने की समर्थ नहीं रही। हिन्दुओं की भांति राजनैतिक शक्ति की एकता नष्ट हो जाने के कारण पठान साम्राज्य भी विनाश की कगार की तक पहुंचने के निकट हो चुका था। सैयद वंश का उदय उसके इसी परिणाम की ओर संकेत करता है।

हिन्दुओं में इसकी प्रतिक्रिया दो प्रकार हुई। सैनिक शक्ति विरत हिन्दू के हृदय में मुसलमान आतताइयों का भय बैठ गया और उसने मुसलमान से घृणा की सी भावना अपने हृदय में बनाली तथा अपने देवता से सहारा मांगने की ओर झुकने लगा। इसका परिणाम हम आगे वर्णन करेंगे।

इक्कीसवाँ अध्याय

सैयद वंश

(१४१८-१४५१)

तैमूर के द्वार मुल्तान के गर्वनर खिज्रखां का बाल्य जीवन नसीरुल्मुल्क मरदात दौलत तत्कालीन मुलतान के गर्वनर की देख रेख में बीता था। १३९२ ई० में वह तैमुर से मिल गया और उसने इसे दक्षिणी पंजाब का गवर्नर बना दिया था १४१४ ई० में उसने दौलतखां को पराजित करके दिल्ली पर अधिकार कर लिया परन्तु उसने स्वतंत्र मुल्तान की भांति कभी अचरण नहीं किया वरन् सदैव अपने को तैमूर के आधीन मानता रहा।

खिज्रखां
१४१८-२१

दोआब में उसने विद्रोही राजाओं को पराजित किया तथा दिल्ली के निकटवर्त्ती ग्वालियर आदि छोटे-छोटे राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया परन्तु उसका जीवन दोआब और मेवातियों का विद्रोह शान्त करने में ही बीता।

राज्य-व्यवस्था

खिज्रखां वास्तविक सैयद था। उसमें दयालुता और उदारता दोनों थी। वीरता में भी उसका कमी न थी। परन्तु

जो साम्राज्य उसे प्राप्त हुआ था उसी सुधारने के लिये अधिक शक्ति और समय की आवश्यकता थी जो उसे नहीं मिले। १४२१ ई० में वह बीमार हो कर मर गया।

मुबारक खां (१४२१-६४ ई०) में इसका काल विद्रोहों का काल था। सीमाप्रान्त से ले कर दोआब तक के हिन्दू विद्रोही हो गये थे। सीमा प्रान्त पर खुसरों ने जसरथ के नेतृत्त्व में विद्रोह किया और सुल्तान को बहुत तंग किया। यद्यपि सुल्तान ने उन्हें पराजित किया किन्तु वे अन्त तक पूर्णतया शान्त नहीं हुये। इसी प्रकार दोआबे में भी विद्रोह होते ही रहे और सुल्तान उन्हें पूर्णतया शान्त न कर सका।

मुबारिक ने देखा कि उसके सरदार इन विद्रोहों में उसका दिल से साथ नहीं देते अतएव उसने उनके अधिकारों में काट छांट आरम्भ की। जिससे अमीर असन्तुष्ट हो गये और अतएव उन्होंने १४३४ ई० में उसका वध कर दिया।

मुबारिक के उपरान्त उसका पुत्र शाहजादा मुहम्मद को गद्दी पर बिठा दिया गया। यह अमीरों के हाथ की कठ-पुतिली था। अतएव इसकी मृत्यु पर जब अलाउद्दीन आलम शाह गद्दी पर बैठा तो दिल्ली के अमीरों के पञ्जे से निकलने तथा दोआब के विद्रोहियों पर कड़ी निगाह रखने के लिये उसने बदायूं को राजधानी बनाया। परन्तु दिल्ली पर वह अधिकार न रख सका। अतएव १८५१ ई० में पंजाब के सूबेदार बहलोल लोधी न दिल्ली जीत कर उस पर अधिकार कर लिया।

सैयद वंश पर विचार

इस वंश के सुल्तानों की विशेषता उनका उदार और दयालु होना है। उन्होंने निरर्थक रक्त पात से सदैव बचने की चेष्टा की तथा उनका व्यवहार अत्याचार की ओर कभी नहीं झुका। परन्तु सैनिक शक्ति की निर्बलता के कारण वे अपना राज्य विद्रोहों के कारण स्थिर न रख सके।

बाईसवाँ अध्याय

लोदी वंश

(१४५१-१५२६)

(बहलोल लोदी १४५१-१४८८ तक)

बहलोल को राज्य प्राप्ति अलाउद्दीन के मन्त्री हामिद की सहायता से हुई थी। अतएव सब से पहले उसने हामिद खां को ही छल से बन्दी कर लिया। फिर उसने अपने साम्रज्य की स्थिरता और विस्तार की ओर ध्यान दिया। सबसे पहले उसने सिंहासन पर बैठते ही जौनपुर के बादशाह महमूद शर्की के आक्रमण को विफल करके उसे पराजित किया फिर दोआवा के सरदारों, अमीरों और राजाओं को दबा कर उन्हें दिल्ली के आधीन किया।

साम्राज्य विस्तार

अब जौनपुर की बारी आई। इस राज्य ने पूर्व में अच्छी शक्ति एकत्र करली थी। अतएव १४७७ ई० में उसने जौनपुर पर आक्रमण किया तथा तत्कालिक शासक हुसैन शाह शर्की को पराजित करके जौनपुर राज्य छीन लिया। तथा अपने बड़े पुत्र बारबक शाह को उसका अधिकार दे कर दिल्ली लौट आया।

फिर उसने कालपी, धौलपुर, ग्वालियर, वाड़ी आदि के हिन्दू राजों को पराजित करके बंगाल को छोड़ कर लगभग समस्त उत्तरी भारतवर्ष लोदी साम्राज्य में मिला लिया।

बहलोल की सफलता का कारण केवल एक था। उसने समझ लिया था कि अफगानों का विद्रोह केवल एक कारण से होता है। स्वतंत्र प्रकृति का अभिमानी अफगान दबाव में उसी समय तक बना रहता है जब तक उसके सिर पर तलवार खुली रक्खी रहे परन्तु उसका मन तब भी विद्रोह ही करने के लिये प्रस्तुत रहता है। वह अफगान यदि मीठे बोल कर प्रेम से अपना मित्र हो जाय तो प्राण निछावर करने के लिये प्रस्तुत रहता है। इस लिये उसने यही नीति स्वीकार की। वह अफगानों को अपना मित्र और साथी समझता रहा। उनके सुख दुःख में सम्मिलित हो कर सहानुभूति दिखलाता था। इसी लिये उसके काल में दिल्ली विद्रोहों से मुक्त रही।

बहलोल की सफलता का कारण

इसी प्रकार अपने व्यवहार की उदारता और नीति कुशलता और न्याय प्रियता के कारण उसने छोटे-छोटे जागीरदारों को भी अपने वश में कर लिया। और विद्रोहों की जड़ पर आघात किया। उसमें शक्ति की कमी भी नहीं थी। अतएव जितना राज्य उसने जीता उसे उसने सुदृढ़ बना दिया। उसने अलाउद्दीन की नीति से उत्पन्न सरदारों अमीरों के हृदय में हुये लम्बे घाव पर ठण्डा फाहा सा रक्खा। यदि उसके उत्तराधिकारी उसी की नीति

से काम लेते तो निश्चय ही अफ़गान राज्य का विनाश इतनी शीघ्रता से न हो जाता।

सिकन्दर शाह (१४८० से १५५७) बहलोल लोदी की सुनारिन स्त्री की सन्तान निजाम शाह जब बहलोल के उपरान्त गद्दी पर बैठा तो अमीरों और जौनपुर के शासक बारबक शाह ने विद्रोह किया। परन्तु सिकन्दर ने उन्हें दबा दिया। परन्तु हुसैन शाह शरकी जब बारबक शाह अपनी असावधानी के कारण पराजित हो गया तो सिकन्दर ने क्रुद्ध हो कर उसे बन्दी बना लिया तथा हुसैन शाह पर आक्रमण करके उसे पराजित किया तथा फिर बंगाल की ओर भगा दिया। इस विजय में उसके सेनापति 'खान खाना' का मुख्य हाथ था अतएव जौनपुर और बिहार की सूबेदारी उसे ही दे दी गई।

इस आक्रमण से लौटते समय सिकन्दर ने अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय मथुरा के मन्दिरों का विनाश करके दिया और हिन्दुओं के हृदय में फिर विद्रोह की आग सुलगा दी। फल यह हुआ कि १५०६ ई० नरवर में राजपूतों से भयंकर युद्ध करना पड़ा। १५१० ई० में चन्देरी के राजा से भी उसका घोर युद्ध हुआ। यद्यपि इस में दोनों हिन्दु राजा पराजित हुए परन्तु सुल्तान की सैनिक शक्ति को बड़ा धक्का लगा। १५१७ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

सिकन्दर को अपने जीवन भर युद्ध में लगा रहना पड़ा। अतएव वह शासन प्रबन्ध में विशेष कार्य्य नहीं कर सका। उसने अपने पिता की नीति के विरुद्ध अफगान अमीरों को अपनी जागीरदारी की जाँच से फिर असन्तुष्ट कर दिया। यद्यपि उसकी कठोरता के कारण वे दबे रहे परन्तु उन में

असन्तोष बढ़ने लगा। हिन्दू उससे असन्तुष्ट हो ही चुके थे। और अनेक वीर ब्राह्मणों ने जीवित जलकर अपने धर्म की रक्षा की थी। अतएव उसने फिर अफगान राज्य को विनाश की ओर ढकेल दिया।

शराब के नशे में चूर अपने पद के अभिमान में मस्त, केवल अपनी सैनिक शक्ति पर भरोसा रखने वाला इब्राहीम की राज्य व्यवस्था भी उसी प्रकार उलटी सीधी चाल पर चल रही थी। राज्य में विद्रोह आरम्भ हो गया। उसके भाइयों ने ही पहले विद्रोह किया परन्तु जौनपुर के सूबेदार खानजहाँ ने समझा बुझा कर विद्रोह शान्त करना चाहा। परन्तु उसके भाइयों ने न माना। इब्राहीम ने धोखा देकर अपने भाइयों का वध करा दिया।

इब्राहीम (१५१८ से १५२६)

राणा संग्रामसिहं से भी युद्ध में एक बार उसकी मुठभेड़ हुई परन्तु राणा को धोखा दिया गया। अतएव राणा बच कर निकल गया। इधर बिहार के नव मुस्लिम वीर हुसैनखाँ (काला पहाड़) का भी सुल्तान ने धोखा देकर वध कर दिया। अतएव मुसलमान सरदार असन्तुष्ट हो गए। पञ्जाब के सूबेदार दौलतखाँ ने बाबर को दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए लिखा। बाबर इस घात में ही था। उसने अपने चुने हुए वीरों के साथ आक्रमण किया और १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में इब्राहीम अपनी विशाल सेना के साथ पराजित हो कर अफगान साम्राज्य को मुगलों के हाथ दे कर दूसरे संसार को चला गया।

लोदी काल का सिंहावलोकन

हमने देखा कि अलाउद्दीन का लगाया हुआ विष वृक्ष बराबर फलता फूलता रहा। परस्पर अविश्वास ने मुसलमानों की शक्ति में घुन लगा दिया था। बहलोल लोदी ने उसे सुधारने का जो कुछ यत्न किया उसी का फल था कि साम्राज्य का जीवन बढ़ गया। परन्तु सिकन्दर शाह ने अपनी नीति से सब किए धरे पर पानी फेर दिया। सच तो यह है कि बीच बीच में कुछ शक्ति शाली सुल्तान यदि न होते रहे होते और अफगान साम्राज्य के मुर्दे में जान न डालते रहे होते तो अफगाने साम्राज्य अलाउद्दीन के काल में ही खोखला हो चुका था।

आज जब हम जमीन्दारी विनाश का उपाय कर रहे हैं तब जानते हैं कि जमीन्दारी ही अनेक अनाचारों की जड़ है। राजा और प्रजा में इस प्रथा द्वारा सीधा सम्बन्ध कभी स्थापित ही नहीं हो सकता। परन्तु अफग़ान राज्य की यही आधार भूमि थी। अहएव अफ़ग़ान साम्राज्य सदैव बालू पर ही बनता रहा इसी से उसके बिगड़ने में भी देरी नहीं लगती रही। इस प्रथा का मुख्य दोष यह है कि जब तक शासक इन जमीन्दारों को बनाये रखता है तब तक सब ठीक चलता जाता है जैसा अंग्रेजों के काल में होता रहा। परन्तु इस ठीक चलने के भीतर प्रजा का असन्तोष और विद्रोह सदैव छिपा रहता है और छिपी रहती है जमीन्दारों की शोषण की भावना। उस समय शस्त्रों पर रोक न रहने के कारण जमीन्दारों या जागीरदारों को विद्रोह करते भी देर नहीं लगती थी। यही कारण था कि

सिकन्दर और इब्राहीम दोनों को सदैव विद्रोह दबाने में लगा रहना पड़ा। और अन्त में यही प्रथा बाबर के बुलाने और इब्राहीम के पतन का कारण बनी।

प्रश्न

तुगलक वंश

(१) खिलजी वंश तथा तुगलक वंश दोनों ने राज्य सत्ता जिस प्रकार पाई उसमें क्या अन्तर है?

(२) गयासुद्दीन तुगलक का शासन काल किस लिए प्रसिद्ध है।

(३) इब्नबतूता कौन था किस समय भारतवर्ष में आया उसके वर्णन से हमें क्या विदित होता है तथा उस पर कितना विश्वास किया जा सकता है?

(४) मुहम्मद तुग़लक के सुधारों का तथा अन्य ऐसे कार्यों का वर्णन करो जो उसके समय के आगे कार्य थे तथा कारण बताओ कि उन्हें क्यों समय से आगे के कार्य समझना चाहिए।

(५) मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारणों पर विचार करो।

(६) फीरोज तुग़लक के सुधारों का वर्णन करो।

(७) फीरोज के चरित्र की मुख्य निर्बलता क्या थी तथा उसका साम्राज्य पर क्या प्रभाव पड़ा।

(८) तैमूर के आक्रमण काल की भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डालो।

(९) तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली साम्राज्य का विनाश कर दिया, किस प्रकार।

(१०) सैयद वंश को दिल्ली के सुल्तानों में जगह न देनी चाहिए, क्यों ?

लोदी वंश

(१) बहलोल लोदी ने किस प्रकार राज्य पाया।

(२) इब्राहीम लोदी से अफगान राज्य का अन्त होगया कारणों सहित विचार करो।

———

तईसवाँ अध्याय

अफगान काल के अन्य राज्य

इस समय भारतवर्ष में निम्नलिखित राज्यों की स्थापना हुई।

मुसलमान राज्य—बंगाल, जौनपुर, कश्मीर, सिन्ध, गुजरात, मालवा, हैदराबाद।

हिन्दू राज्य—राजपूताना में अनेक छोटे-छोटे राज्य, बुन्देलखण्ड में गोंडवाना, उड़ीसा का हिन्दू राज्य थे। अब हम इनका संक्षेप में परिचय देंगे।

कुतुबुद्दीन एबक के काल में १२०५ ई० में मुहम्मद बख्तियार खिलजी ने बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन को पराजित करके बंगाल में मुसलमानी सूबेदारी स्थापित की थी। उसने पुरानी हिन्दू राजधानी लखनौती को राजधानी बनाये रक्खा।

जब-जब दिल्ली की शक्ति निर्बल हुई बंगाल के सूबेदार स्वतन्त्र हो गये। परन्तु दिल्ली के शक्तिमान होते ही वे फिर दिल्ली के आधीन हो गये। एक विशेषता यह है कि बंगाल के हिन्दुओं ने एक बार पराधीन होकर फिर स्वतन्त्रता के लिए कभी प्रयत्न नहीं किया। दिल्ली से दूर होने के कारण यदि वे प्रयत्न करते तो उनकी सफलता की अधिक आशा थी। साथ ही बंगाल के सूबेदारों ने भी दिल्ली या भारतवर्ष की राजनीति में भाग नहीं लिया। अपने पाये हुये राज्य में ही जल वायु का सुख भोगते हुये यहाँ के मुसलमान शासक सन्तुष्ट रहे।

जौनपुर राज्य की स्थापना फीरोज तुग़लक के सेनापति ख्वाजा जहाँ ने की थी। फीरोज की मृत्यु के उपरान्त जौनपुर स्वतन्त्र हो गया। ये लोग शर्क़ी (पूर्वीय) शाह कहलाते थे

सन्त तुका राम

चैतन्य महाप्रभु

कबीर
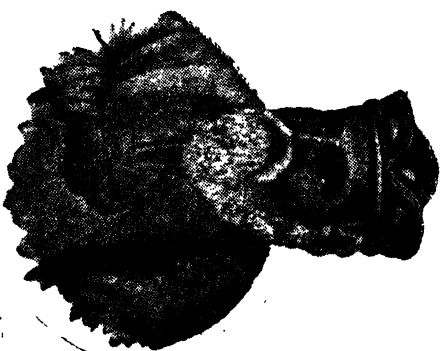
गुरुनानक

इनमें इब्राहीमशाह प्रसिद्ध हुआ है। उसने दिल्ली तक आक्रमण किया। परन्तु १४७७ ई० में बहलोल लोदी ने इस राज्य को दिल्ली में मिला लिया।

काश्मीर—अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण कश्मीर के हिन्दू राज्य १४ वीं शताब्दी के मध्य तक स्वतन्त्र बने रहे। परन्तु १३३७ ई० में फारसी सरदार कन्धार के शासक शाहपीर ने हिन्दू राजाओं को पराजित करके मुसलमान राज्य स्थापित किया। उनमें बुतशिकन सिकन्दर (१३८६-१४१०) ने हिन्दुओं पर अत्याचार किया। परन्तु उसके उत्तराधिकारी जैनुल आबदीन ने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देकर हिन्दुओं के साथ उदार व्यवहार किया। उसके समय में काश्मीर में कला-कौशल और साहित्य की बड़ी उन्नति हुई।

सिन्ध—इस प्रान्त पर दाहिर के उपरान्त महमूद ग़ज़नवी ने १०१० ई० में आक्रमण किया था। उसके उपरान्त यहां अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बने हुये राजाओं ने ही शासन किया। पहले सुमरावों ने फिर सम्मारों ने फिर चंगेजखां के वंशजों ने। यद्यपि फीरोज़ तुगलक ने ठट्ठा के जाम साहब को पराजित कर दिया परन्तु वे फिर स्वतन्त्र हो गये। इस प्रकार यह भाग लगभग सदैव स्वतन्त्र रहा।

गुजरात—देवगिरि के राजाओं के पतन के उपरान्त गुजरात में अलाउद्दीन के काल में मुसलमान शक्ति की स्थापना हुई। इस वंश को सदैव भीलों, राजपूतों और दक्षिण के राज्यों से युद्ध करना पड़ा। इस वंश की विशेषता इस देश की नौ-शक्ति तथा विदेशी व्यापार है। इन्होंने पुर्त्तगालियों को जिनकी नौ-शक्ति उस समय संसार में सर्वश्रेष्ठ थी अरब सागर के खुले

समुद्र में पराजित किया था।

इस विजय का श्रेय मोहम्मदशाह बोगारा को था जिसकी मूछें इतनी बड़ी थीं कि वह उन्हें अपने शिर में लपेट लेता था। यद्यपि वह कट्टर मुसलमान और अपने धर्म का प्रचारक था। परन्तु उसने अपनी न्यायप्रियता और बुद्धिमत्ता से देश की बड़ी उन्नति की।

उसके पौत्र बहादुरशाह का हुमायूँ से युद्ध हुआ और अन्त में अकबर के काल में इस राज्य का अन्त हुआ।

मालवा—परमार राजपूतों को पराजित करके अलाउद्दीन ने मालवा दिल्ली राज्य में मिला लिया था। परन्तु तैमूर के आक्रमण के उपरान्त मालवा स्वतन्त्र हो गया। इस देश में खिलजी वंश के महमूद ने सब से अधिक प्रसिद्धि पाई। परन्तु अन्त में गुजरात के बहादुरशाह ने उसे पराजित करके मालवा गुजरात राज्य में मिला लिया।

हैदराबाद—जैसा ऊपर कहा गया है हसन गंगू ने १३४७ ई० में बहमनी राज्य की स्थापना की थी। बहमनी वंश—बहमनी तथा गंगू शब्दों से यह प्रमाणित होता है और फरिश्ता की गवाही यह सिद्ध करती है कि बहमनी वंश का प्रवर्त्तक हसन ब्राह्मण की कृपा से उन्नति कर सका। विद्वानों का इस विषय पर बड़ा मतभेद है। कुछ लोग बहमनी शब्द को फारस के बहमन वंश से जोड़ते हैं। कुछ लोग उसे ब्राह्मण से। गंगू शब्द को भी कोई कायको शब्द से तथा कोई गंगू नामक ब्राह्मण से। हम इस पर संक्षेप में विचार करेंगे।

मुहम्मद तुग़लक स्वयं ज्योतिष का विद्वान् और पण्डित था। उसके दरबार में यदि किसी गंगू नाम के ब्राह्मण ज्योतिषी का

आदर हो और उसकी सिफारिश से एक ईमानदार योग्य मुसलमान सेना के अच्छे पद पर नियुक्त किया गया हो तो असंगत नहीं कहा जा सकता आगे उसकी योग्यता ने उसे एक राज्य का स्थापक भी बना दिया तो अनुचित नहीं है। एक बात अवश्य इस विषय में और सहायक है कि बहमनी बादशाहों के दरबार में बहुधा मन्त्रिपद ब्राह्मणों को दिया गया।

साथ ही उसके खुतबे और सिक्कों से प्रतीत होता है तथा उसके वंशजों की कट्टरता से अनुमान होता है कि इस वंश का हिन्दुओं के प्रति आदर भाव नहीं था तथा उसका सम्बन्ध फारस के बहमन शाह के वंश से था। मेरी समझ में दोनों बातें ठीक हैं। सम्भव है कि उसके वंश का सम्बन्ध पारसी बहमन वंश से रहा हो। अथवा यह भी सम्भव है कि अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये हसन ने अपने नाम के साथ उसे जोड़ लिया हो। उनके दरबार के आठ वजीरों में पेशवा सदैव हिन्दू मंत्री ही होते रहे। तथा मन्त्रियों की आठ संख्या और उनका कार्य विभाग भी हिन्दू शास्त्रों की अष्ट प्रधान व्यवस्था से मिलता जुलता है। उनके हिन्दुओं पर अत्याचार प्रजा पर होने वाले अत्याचार नहीं थे। वरन् विजय नगर राज्य तथा उसके सेना पर हुये। अतएव विरोधी राज्य की सेना और प्रजा का विचार करके हम उसका अर्थ हिन्दुओं पर अत्याचार करना नहीं कह सकते।

इस वंश में पहले अलाउद्दीन हसन गंगू से ले कर कलीमुल्लाह शाह तक सोलह राजाओं ने शासन किया। रायचूर का कृष्णा और तुंगभद्रा का मध्यवर्त्ती दोआबा विजय नगर और बहमनी राज्य के लिये झगड़े की जड़ रहा। अनेक बार हिन्दू राजाओं ने दोआबे को अपने अधिकार में कर लिया फिर बह-

मनी वंश के सुलतानों ने छीन लिया और हिन्दु राजाओं को पराजित करके उनकी असंख्य सेना का वध किया। परन्तु पन्द्रवीं सदी के अन्त में बहमनी राज्य की शक्ति टूट गई। उसके स्थान पर निम्न लिखित ५ राज्य बन गये।

इमाद शाही राज्य १४८४ ई० में बरार में स्थापित हुई।

आदिल शाही १४८६ ई० में बीजापुर में।

निजाम शाही १४६० ई० में अहमद नगर में

बीदर शाही १४६२ ई० में बीदर में

कुतुब शाही १५१२ ई० में गोल कुण्डा में

ये राज्य आपस में भी लड़ते रहते थे तथा संघ बना कर हिन्दु राजाओं से युद्ध भी करते थे। इनके विजय नगर युद्ध का वर्णन हम हिन्दु राज्यों के साथ करेंगे।

चौबीसवाँ अध्याय

हिन्दू राज्य

राजपूताना में सबसे शक्तिमान राज्य मेवाड़ के शीसौदिया वंश का था। इसकी स्थापना बाप्पा रावल ने की थी। मारवाड़, जोधपुर, बुन्देल खण्ड, गोंडवाना और उड़ीसा तथा वारंगल तक हिन्दू राजपूतों के छोटे-छोटे राज्य फैले थे। इस प्रकार भारतवर्ष की मेखला में हिन्दू राज्य कायम था।

विजय नगर राज्य

इस काल का सबसे समृद्ध हिन्दू राज विजय नगर दक्षिण का था। इसकी स्थापना १३३६ ई० में हरिहर और बुक्काराय ने की थी। इस वंश में क्रमशः एक से एक शक्तिशाली और विद्वान् राजा होते गये। जहाँ बहमनी राज्य में प्रजा अत्यन्त दुःखी थी वहाँ विजय नगर राज्य में कञ्चन बरसता था। विदेशों पर व्यापार और कलाकौशल के साथ ही विद्या का प्रचार बढ़ रहा था।

विदेशी यात्री

इस वंश के राजा देवराज द्वितीय के समय इटली से एक यात्री यहाँ आया उसका नाम निकोलो कौण्टी था। उसने विजयनगर नगर को ६० मील परिधि का, बहु विवाह, सती प्रथा दास प्रथा आदि का उल्लेख किया है।

इसी के काल में हिरात से अब्दुर्रज्जाक नामक विदेशी दूत आया उसने भी नगर और सम्पत्ति का बड़ा बखान किया है।

एक के पश्चात् दूसरे वंश में होते हुये यह राज्य ४ वंशों के अधिकार में आया परन्तु तीसरे वंश के अन्तिम राजा राम राय

के समय तालीकोट का भयंकर युद्ध हुआ।

रामराय ने अली आदिलशाह की सहायता से निजामशाही राज्य अहमद नगर को नष्ट कर दिया।

तालीकोट का युद्ध

तथा मुसलमानों पर वैसा ही अत्याचार किया जैसा के हिन्दुओं पर करते थे। अतएव पाचों मुसलमान शासकों ने संगठन करके सन् १८६५ ई० में विजय नगर पर आक्रमण किया। घोर युद्ध हुआ जिसमें राम राय मारा गया तथा मुसलमानों ने अपने अपमान का पूरा बदला चुकाया। निरीह जनता का वध किया गया तथा समस्त विजय नगर खँडहर बना दिया गया।

इसके उपरान्त विजय नगर राज्य के अवशेष केवल धुर दक्षिण में रह गये जिसमें एक चौथा राज वंश १८ वीं शताब्दी तक राज करता रहा।

पच्चीसवाँ अध्याय

इस काल की राजनीतिक स्थिति

(१२०० से १५२६ ई० तक)

आर्य्य-शक्ति साम्राज्य का सुख तथा छोटे-छोटे राज्यों का सुख लगभग ३००० वर्ष तक भोग चुकी थी और परिवर्त्तनशील संसार में उसे भी अब सुख का भाग दूसरों को देना ही था। इच्छा से या अनइच्छा से उसमें कुछ राजनैतिक निर्बलता आ चुकी थी। असंयत-शक्ति बिना बुद्धि के केवल पशु बल ही है। यही दशा उस समय के क्षत्रियों की थी। उनमें त्याग था, उदारता थी, वीरता थी और प्राण होम देने की भावना भी थी। अपनी मर्यादा की रक्षा के लिये वह मर-मिटने को प्रस्तुत था परन्तु अपने ही पड़ोसी की मर्यादा लुटते देखकर उसके हृदय में प्रसन्नता की अनुभूति होती थी ऐसे व्यक्ति का नाश आवश्यक था।

मुसलमान लूट के लिये धर्मोन्माद की एकता लेकर गये थे। उनमें मर जाने से स्वर्ग पाने तथा विजयी होने से असंख्य सम्पत्ति पाने की भावना थी। अतएव जान पर खेलकर वे लड़ते थे। इसके स्थान पर हिन्दू सिपाही केवल अपने राजा के लिये लड़ते थे। स्वदेश की रक्षा के लिये नहीं क्योंकि राष्ट्र नाम की भावना उनमें थी ही नहीं। जनता युद्धों से उदास थी। उसे केवल कर देना था। कर लेने वाला कोई हो चाहे हिन्दू या मुसलमान।

परन्तु जिस समय भारतवर्ष में एक के उपरान्त दूसरे हिन्दू राज्य मुसलमानों के पेट में चले गये उस समय अधिकारी

क्षत्रियों को अपनी शक्ति के विनाश का दुःख होने लगा अतएव जहाँ-तहाँ हिन्दू विद्रोह करते रहे। जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे-वैसे इन विद्रोहों में भी कमी आती गई। अफ़गान वंश में भी शक्तिशाली राजाओं का क्रम सर्वथा नहीं टूटने पाया तथा न शक्तिशाली सेना का। अफ़गान अपनी सैनिक शक्ति की पूर्त्ति सदैव विदेशी सिपाही भर्ती करके करते रहे। इसके प्रतिकूल हिन्दू शक्ति दिनों दिन क्षीण होती गई। अब सेना का अर्थ कुछ व्यवसायी क्षत्रियों के अतिरिक्त नहीं रहा। इस प्रकार हिन्दूशक्ति निरन्तर ह्रास की ओर जाती ही रही।

मुसलमान राजा भी भारतवर्ष में आकर अपनी जातीय राज्य व्यवस्था की रक्षा न कर सके विस्तृत भू-भाग पर प्रजा के प्रतिनिधि राजा का निर्वाचन तो असम्भव ही था। अतएव वंश परम्परा से राज्याधिकार की हिन्दू नीति को उन्होंने अपना लिया। इसी प्रकार राज्य-प्रबन्ध भी अनेक हिन्दू-परम्पराओं का सफल प्रयोग इन मुसलमान सुल्तानों द्वारा किया गया। अब हम इनकी राज्य व्यवस्था की कुछ बातों पर विचार करेंगे।

राज्य-शासन

सुल्तान स्वेच्छारी होते थे। प्रधान मंत्री का पद सबसे ऊँचा होता था। उसी के अधिकार में समस्त सेना रहती थी। अतएव राज्य की व्यवस्था सेना पर निर्भर थी जैसे-जैसे साम्राज्य का विस्तार होता तथा आवश्यकता बढ़ती गई अनेक मन्त्रियों के पद निश्चित होते गये। जिनमें माल, खज़ाना, महल, धर्मगुरु, सेना आदि के लिये मंत्री बनाये गये। ये मंत्री वर्ग हिन्दू-धर्म के अष्ट प्रधान मंत्रि-मण्डल के ही अनुसार

थे। अफ़गानों में गुलामी की प्रथा सदैव रही। फीरोज़ के काल में लगभग २० लाख गुलाम थे। अतएव उनके लिए एक अलग विभाग बनाया गया था।

राज्य की मुख्य आमदनी भूमि से होती थी अतएव भूमि का ही विशेष प्रबन्ध था। समस्त राज्य सूबों में अथवा जागीरों में बंटा रहता था। ये सूबे भी एकप्रकार की जागीर थे। जागीर की भूमि को इक्ता कहते थे। जागीरदार मन चाहा लगान लेते थे और बंधा हुआ लगान सुल्तान को देते थे। कुछ भूमि पर सुल्तान स्वयं जागीर रखता था। ऐसी भूमि को खालसा कहते थे। कुछ भूमि आधीन राजाओं या सरदारों के हाथ में थी जो वार्षिक खिराज या लगान देते थे। कुछ भूमि वक्फ़ या मिलक में बड़ी सेवा करने वालों या मुल्लाओं को दी जाती थी जिस पर सरकार कोई लगान नहीं लेती थी।

आय के साधन-भूमि प्रबन्ध

अन्य साधन—आय के साधन जज़िया (जो वर्ष में एक बार लिया जाता था) ज़कात (जो केवल मुसलमानों से धर्मादा के रूप में लिया जाता था) ग़नीमत (विदेशी राज्यों की लूट का माल जो प्रत्येक लूटने वाले सैनिक से $\frac{1}{5}$ अंश के रूप में लिया जाता था) तथा चराई आदि के कर भी थे। बड़े व्यापारी से चुंगी भी ली जाती थी। सिंचाई कर भी लगता था।

सेना—हिन्दू-काल में जहाँ हाथियों का महत्व था वहां अब घोड़ों का महत्व बढ़ गया था। घोड़े सैनिक शक्ति का विशेष अङ्ग बन गये थे। सैनिकों को वार्षिक वेतन मिलता था। हाथी और पैदल भी सेना के अङ्ग थे। शस्त्रास्त्रों का विकास और तोपों का प्रयोग भी होने लगा था। किलों को रक्षा का प्रधान

साधन समझा जाता था।

कलाओं का विकास—इस काल में भवन-निर्माण कला पर विशेष ध्यान दिया गया था। तथा मुसलमान-कला हिन्दू-कला से प्रभावित हुई। हिन्दुओं की भाँति नुकीली चोटी का प्रयोग बढ़ने लगा परन्तु हिन्दू-कला में भी सीधी छत का प्रयोग कम होने लगा। उसमें भी गुम्बद और डाट का आरम्भ हो गया। इस प्रकार हिन्दू यवन-कला के योग से एक नवीन स्थापत्य-कला का विकास हुआ। हिन्दू-स्थापत्य-कला की उत्तमता को देखकर ही तैमूर अपने साथ कुछ भारतीय कलाकार मिस्त्री ले गया जिन्होंने समरकन्द के भवनों का सुधार किया। पच्चीकारी का काम भी मुसलमानों ने हिन्दू कलाकारों से ही सीखा। हिन्दू-भवन निर्माण कला का सर्वोत्तम विकास इस समय दक्षिण के विजय नगर राज्य में हुआ। हजार खम्भों पर टिका हुआ मदुरा का मन्दिर इसी काल की कला के नमूने हैं जो मुसलमानों द्वारा तोड़े जाने पर भी अपनी भव्यता में अपूर्व है। चित्रों में इस काल के कुछ मन्दिरों को देखकर उसकी भव्यता की कल्पना कीजिये। जौनपुर का किला, कुतुब मीनार, अजमेर की मस्जिद मुसलमानों की सुन्दर रचनायें हैं।

व्यापार और कला कौशल

इस समय में भारतवर्ष का स्थलमार्ग से विदेश व्यापार जो काबुल, हिरात, फारस, ऐशिया माइनर द्वारा होता था बन्द हो चुका था। परन्तु समुद्री व्यापार अब भी उन्नति पर था। भारतवर्ष की मलमल का इटली और मिश्र में बड़ा आदर था। इसके अतिरिक्त पालिश किये हुये मिट्टी के बर्त्तन, मोती, हीरे, लाल, मसाले और चटाइयों की विदेशों में

बड़ी माँग थी। यद्यपि अरब समुद्री डाकुओं के द्वारा यह माग भी दुर्गम बन रहा था फिर भी उसकी उन्नति में विशेष कमी नहीं हुई थी। विदेशों में भारतीय व्यापारियों का बड़ा सम्मान और विश्वास था।

साहित्य और ललित कलायें

इस काल में उत्तर और दक्षिण में दोनों स्थानों पर साहित्य रचना का कार्य हो रहा था। प्रारम्भिक युद्धों में लगे हुये राजपूत राजाओं की यशोगाथा को चारण गाया करते थे। नवीन हिन्दी भाषा का विकास हो चुका था। खुसरो ने हिन्दी भाषा का सुन्दरतम प्रयोग किया है। उसके दो सखुनों, और पहेलियाँ हिन्दी भाषा की अमूल्य निधि हैं। इनके अतिरिक्त खुमानरासो और वीसलदेव रासो नामक हिन्दी काव्यों का निर्माण इसी काल में हुआ। दक्षिण में भी साहित्य और कला का प्रचार बढ़ रहा था। महाकवि नन्दी ने इसी समय पारि-जात हरण लिया।

संस्कृत भाषा का सर्वश्रेष्ठ काव्य श्री हर्ष का नैषधीय चरितम् १२ वीं शताब्दी की रचना है। परन्तु आगे चलकर संस्कृत भाषा में रीति ग्रंथ और रीति-शास्त्र भी इसी काल में पल्लवित हुआ। मम्मट का काव्य प्रकाश और उसकी व्याख्या इसी काल की रचनायें हैं।

धर्म

हिन्दू और मुसलमान साधारण जनता अब पास-पास बसने लगी थी। उसमें आए दिन के युद्ध न तो स्वाभाविक थे और न सम्भव ही। परन्तु राजनैतिक शक्ति मुस-लमानों के हाथ में होने पर भी हिन्दू जहाँ थे। वहाँ ही अपनी मर्य्यादा बनाये हुये थे।

मुसलमानों को या तो जागीर मिली और वे जागीरदार बन कर रहे अथवा नीच व्यवसाय ही उनके हाथ लगे। अच्छे व्यापार अच्छे व्यवसाय सब हिन्दुओं के हाथ में ही रहे। कुछ जातियां जो बौद्ध-प्रभाव में होने के कारण नीच समझी जाने लगी थीं अब अपने विश्वास की अस्थिरता के कारण मुसलमान हो गईं तो उन्हें अच्छे व्यवसाय मिल ही नहीं सके। अतएव हिन्दू जहाँ एक ओर अपने शासक मुसलमानों से दबता था वहाँ क्या शासक क्या सामान्य मुसलमान अपनी आर्थिक आवश्यकताओं के लिये हिन्दू से दबता रहा। दोनों पास पास रहते थे अतएव सामान्य मानवता की सम्प्रदाय से ऊपर की भावना जागने लगी थी। फलतः कबीर और गुरु नानक ने दोनों धर्मों की उपयोगी बातें लेकर एक-एक नवीन धर्म की नीव डाली। उन्होंने दोनों धर्म के अन्धविश्वासी और असहनशील व्यक्तियों को खरी खोटी सुनाईं।

परन्तु सामान्य हिन्दू का दार्शनिक जीवन साधारण मुसलमान के जीवन से सदैव ऊँचा रहा। उसकेकेवल गुरूप देश और अन्ध विश्वास के बल पर करामातें दिखाकर वश में नहीं किया जा सकता। उसका धर्म करामातों का पिटारा है। उसे विश्वास होता है अपने शास्त्रों के आधार पर चलने वाले दार्शनिक धर्म पर। अतएव श्री रामानुजाचार्य, चैतन्य महाप्रभु और श्रीरामानन्द और वल्लभाचार्य्य द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म पर ही यह अपनी आस्था रख सका। तथा उन्हीं के पवित्र उपदेशों को भाषा में संस्कृत में गाकर अपनी गिरती हुई राजनैतिक स्थिति में विधर्मियों को भी प्रभावित कर सका।

मुसलमान धर्म भी कोरे रूखे एकेश्वरवाद से उकता चुका था। उस पर खलीफा हारूं रशीद के काल से ही हिन्द वेदान्त

और उद्वैतदर्शन का प्रभाव पड़ रहा था। अतएव उसमें भी प्रेम-प्रधान सूफी धर्म का प्रचार हो रहा था जो मुसलमानों की कट्टरता मिटाने में बड़ा सहायक हुआ। परन्तु अभी तक राजनैतिक अव्यवस्था के कारण मुसलमान धर्म धार्मिक रूप में भारतवर्ष में स्थिर होकर सामान्य जनता का धर्म नहीं बन सका था इसका कारण हिन्दू धर्म की जाति-व्यवस्था का दृढ़ संगठन ही था।

कृषक निर्धन हो रहे थे। जमींदार और जागीरदार विलासी हो रहे थे। मांस,मदिरा, वेश्यागमन का प्रचार बढ़ रहा था। बहु-विवाह और मुसलमानों के भय से बाल-विवाह का प्रचार बढ़ रहा था। मुसलमानों की पर्दा प्रथा के कारण तथा उनके स्त्री-हरण के कारण स्त्रियों का घर से निकलना अनुचित समझा जाने लगा था। इस प्रकार स्त्री की स्वतन्त्रता नष्ट हो रही थी। इसीलिये सम्भवतः सती प्रथा का बल बढ़ रहा था। समाज के बन्धन और अधिक कड़े होने लगे थे। हिन्दुओं ने अपनी रक्षा का पूरा प्रबन्ध करने के लिये तथा राजकोप के भय से शुद्ध करने का काम बन्द कर दिया था। धोखे से भी जो मुसलमान हो जाता था उसके शुद्ध होने का मार्ग बन्द हो चुका था। इसके विपरीत मुसलमान डरा धमका कर लालच देकर और फुसलाकर मुसलमानों की संख्या बढ़ा रहे थे। हुसैन खां फारमूली उर्फ काला पहाड़ इसका उदाहरण है। इसी प्रकार खुसरो भी मुसलमान बनाया गया था।

सामाजिक दशा

संक्षेप में यह काल हिन्दुओं के लिये अत्यन्त भयंकर और अफगानों की अव्यवस्था का धार्मिक संघर्ष का काल था।

प्रश्न

(१) क्या कारण है कि हम इस काल को धार्मिक असहिष्णुता

या संघष काल कह सकते हैं।

(२) सिद्ध करो "विजय नगर राज्य हिन्दू संस्कृति के पुनरुद्धार का प्रयत्न था।"

(३) दक्षिण की मुसलमान रियासतों की सुरक्षा का कारण विजय नगर का हिन्दू राज्य था ? प्रमाण देकर समझाओ ?

(४) इस काल का हिन्दू और मुसलमान संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(५) इस काल की आर्थिक अवस्था पर विचार करो।

बाबर के आक्रमण
के पूर्व
भारतीय राज्य १५२५ ई.
काश्मीर
पेशावर
लाहौर
सरहिन्द
मुल्तान
पानीपत
दिल्ली
सम्भल
राजपूत राज्य
सिंध
कन्नौज
ग्वालियर
बनारस
मालवा
बंगाल
गुजरात
खानदेश
अहमद नगर
बरार
गोंडवाना
बीदर
बीजापुर
गोलकुण्डा
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
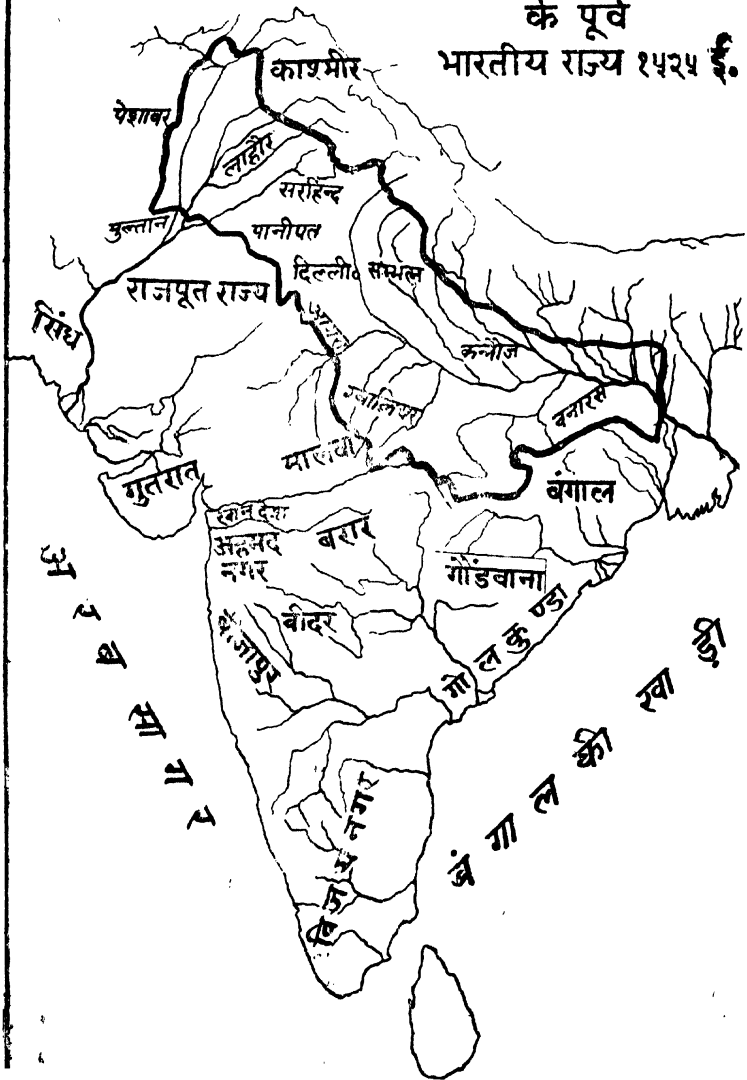
छब्बीसवाँ अध्याय

हिन्दू मुसलमानों का सहयोग काल

(१५२५ से १७०० तक)

'मुगल शक्ति'

बाबर (१५२६-३०) इब्राहीम लोदी के वर्णन में हम कह चुके हैं कि पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ ने बाबर को भारतवर्ष पर आक्रमण का निमंत्रण दिया था। अतएव बाबर अपने तोपखाने के साथ चढ़ दौड़ा। पानीपत के युद्धस्थल में इब्राहीम की असंख्य सेना बाबर से १५२६ ई० में पराजित हुई और दिल्ली तथा आगरा बाबर के अधिकार में आ गया।

बाबर का उद्देश्य भारतवर्ष में साम्राज्य स्थापित करना था। अतएव केवल अफगान शक्ति के टूट जाने से भारतवर्ष पर बाबर का साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता था। जब तक राजपूतों को पराजित न किया जाय तब तक भारतवर्ष पर अधिकार सम्भव न था। उधर उसके सरदार लौटना चाहते थे। अतएव उसने दण्ड का भय देकर उन्हें रोका। और राजपूतों से युद्ध की तैयारी में लग गया।

राणा साँगा (संग्रामसिंह) भी बाबर की गति-विधि ध्यान से देख रहा था। उसका उद्देश्य भारतवर्ष में पुनः हिन्दू राज्य की प्रतिष्ठा करना था। जब बाबर ने भारत में ही ठहरने का निश्चय कर लिया तो राणा साँगा के लिये केवल बाबर से युद्ध का मार्ग ही रह गया। १५२७ ई० में सीकरी से थोड़ी दूर पर कनवाह स्थान पर दोनों सेनाओं की टक्कर हुई। जाति-भेद के

मानने वाले राजपूतों ने अपने संगठन से बाबर को पराजय की ओर ढकेल दिया। परन्तु तोमर सलहदी के विश्वासघात तथा बाबर की घोषणा और व्याख्यान से उत्साहित यवन सेना को विजय प्राप्त हुई। राणा घायल हो गया तथा उसके सरदार उसे युद्ध से हटा ले गये। बाबर की इस वक्तृता को इस युद्ध में बड़ा महत्त्व दिया जाता है और समस्त विजय का श्रेय इसी वक्तृता को दिया जाता है। परन्तु वास्तविकता यह नहीं है। तोमर सलहदी ने ऐसे समय पर विश्वासघात किया। २० हजार सेना जो दबाव के समय प्रत्याक्रमण करने के लिए रक्षित रक्खी गई थी। उसके अधिकार में थी और दबाव पड़ने पर वह अपनी सेना लेकर अलग चला गया। फलतः राणा के पास कुमक नहीं रह गई। तब वह स्वयं अपने थोड़े से अंग-रक्षकों के साथ युद्ध में कूद पड़ा और घायल हो गया। हम देखते हैं कि ऐसे नाजुक समय में, इस पराजय में, भी राजपूत जाति की फूट ने ही राणा साँगा की सारी हिन्दूराष्ट्र कल्पना को मिट्टी में मिला दिया। कुछ लोग इसका कारण राणा साँगा की महत्त्वाकांक्षा बताते हैं। अतएव हम संक्षेप में राणा के चरित्र पर विचार करेंगे।

राणा साँगा चित्तौण के महाराणा रायमल के तीन पुत्रों में राणासाँगा सबसे बड़ा था परन्तु महाराज रायमल अपने दूसरे पुत्र को राज्य देना चाहते थे। अतएव साँगा ने चित्तौड़ का त्याग कर दिया था। परन्तु टोंक के युद्ध में जब दुराचार की प्रवृत्ति के कारण ताराबाई ने जयमल्ल को मार डाला तथा उसके भाई पृथ्वीराज को उसके बहनोई ने विष दे दिया तो राणासाँगा को चित्तौड़ का राज्य मिला। हम देखते हैं कि यदि वह केवल महत्त्वाकांक्षी होता तो इतनी सरलता से अपना अधिकार न

फ़तहपुर सीकरी बुलन्द दरवाज़ा (आन्तरिक दृश्य)

छोड़ देता।

उसके हृदय में हिन्दुत्त्व की भावना अवश्य थी। अपने समस्त राजत्त्व काल में वह युद्धों में लगा रहा। कभी गुजरात के बहादुरशाह को नीचा दिखाया, कभी राजपूत राजाओं को संघ में सम्मिलित होने के लिये बाध्य किया। यदि साम्राज्य स्थापना ही उसका उद्देश्य होता तो उसने अनेक राज्यों को चित्तौड़ के आधीन कर लिया होता। परन्तु वह राजपूतों की निर्बलता तथा उनके स्वाभिमान से परिचित था अतएव उनकी स्वतंत्रता का उसने कभी अपहरण नहीं किया। उसका शरीर ८० घावों के चिन्हों से सजा हुआ था। युद्ध में उसे अपने एक हाथ की बलि देनी पड़ी थी। परन्तु अदम्य, साहसी और वीर राणासाँगा ने अपना उद्देश्य लगभग पूर्ण कर लिया था।

सेना के नेतृत्त्व में राणासाँगा अपने समय का अद्वितीय पण्डित था। कनवाह के युद्ध की अन्तिम घड़ी में यदि तोमर सेना लेकर न चल देता तो विजय निश्चित उसी की थी। बाबर की समस्त वक्तृता और शराब न पीने की प्रतिज्ञा धरी रह जाती और भारत में हिन्दू राज्य पुनः स्थापित हो जाता। परन्तु भाग्य का विधान ऐसा ही था। राणा क्या करता! राणा ने प्रतिज्ञा की थी वह इस पराजय को विजय से ही बदल कर मेवाड़ लौटेगा परन्तु दुर्भाग्य से उसकी मृत्यु हो गई।

अब बाबर ने चँदेरी पर आक्रमण किया, वहाँ के राजा मेदिनीराय ने जौहर करके मुसलमानों को एक बार फिर अपनी शक्ति का परिचय दे दिया।

मेदिनीराय से निपट कर बाबर ने अफगानों के सरदार इब्राहीम लोदी के भाई मोहम्मद लोदी कन्नौज के निकट गंगा

तट पर फिर घाघरा के समीप पराजित करके फिर से अफगान साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न नष्ट कर दिया।

परन्तु इन कठिन युद्धों में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया। अतएव उसने काबुल विद्रोह को दबाने का काम रोक दिया। और हुमायूँ की प्राण रक्षा के लिये प्रार्थना करके अपने प्राण देने को प्रस्तुत हो गया। इतिहास की इस घटना पर अधिक लिखना आवश्यक नहीं है। मरते समय उसने हुमायूं को अपने भाइयों की रक्षा की आज्ञा देकर १५३० में दिल्ली की गद्दी हुमायूँ के लिये रिक्त कर दी।

बाबर का व्यक्तित्व परिचय

पिता की ओर से तैमूरलंग की पाँचवीं पीढी में तथा माता की ओर से चंगेज खाँ से जुड़ा हुआ बाबर दो वीर और लड़ाकू जातियों के मिश्रित रक्त का फल था। उसके पिता का नाम मिर्जा उमर शेख था। जो उसे ११ वर्ष का बालक छोड़ कर मर गया। फरगना की पैत्रिक सम्पत्ति भी उसके चाचा ने छीन ली अतएव बाबर का बाल्य जीवन विपत्तियों से लड़ते ही बीता। युद्ध की शिक्षा उसे प्रारम्भ से ही वास्तविक रूप में मिलने लगी। अतएव उसमें नेतृत्त्व और रण-कौशल की बुद्धि अत्यन्त प्रखर हो गई।

मध्य एशिया में सफलता की आशा न देख कर जब उसने काबुल पर अधिकार कर लिया तब उसके व्यक्तित्त्व का पूर्ण विकास हो चुका था। वह सदैव महत्त्वाकांक्षी रहा। राजपूतों के समस्त गुण वीरता, उदारता, निर्भीकता और धैर्य उसमें कूट-कूट कर भरे थे। साथ ही उसमें असीम साहस और चतुरता थी। उसने काबुल से एक साथ ही दिल्ली पर आक्रमण
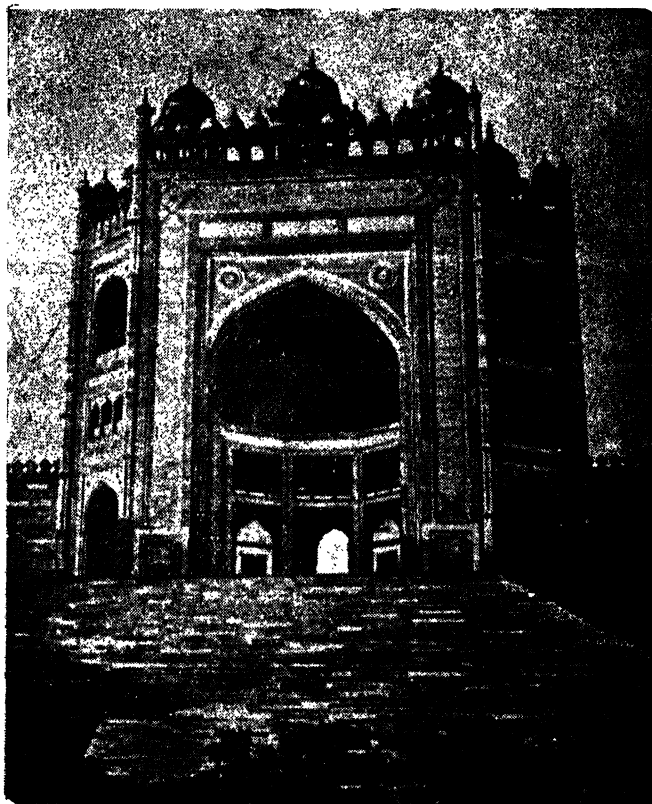
बुलन्द दरवाज़ा (फ़तहपुर सीकरी)

नहीं किया वरन् अपने पहले के चार आक्रमणों द्वारा सरहद्दी प्रदेश और सिन्धु नदी तक पहले ही अधिकार कर लिया। इस प्रकार भूमि बनाकर ही उसने दिल्ली पर आक्रमण किया।

वह जानता था कि काबुली सरदारों को यदि अवकाश मिल गया तो वे काबुल लौटने का विचार करने लगेंगे अतएव उसने दण्ड और धन दोनों नीतियों की सहायता लेकर उन्हें भारतीय युद्धों में उलझाये रक्खा। तथा अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति में सफल हुआ।

भारतीय युद्ध नीति से भी वह परिचित हो गया था। इसीलिये उसने अपनी सेना में तोपखाने पर विशेष ध्यान दिया। यदि राजपूतों के पास भी शक्तिशाली तोपखाना होता तो इतनी शीघ्र पराजय न होती।

नीति कुशलता

अपने सैनिक उद्गम क्षेत्र को भी वह जानता था। अतएव उसने सदैव उस उद्गम को बनाये रखने की चेष्टा की। पठान भूखा था उसे यदि खाने के लिये तथा लूट के लिये उत्तेजित बनाये रक्खा जा सके तो सेना में कमी नहीं हो सकती। अतएव उसने सदैव इस नीति का प्रयोग किया।

लेखक

बाबर स्वयं विद्वान् कवि और अच्छा वक्ता था। तुर्की भाषा का बाबरनामा उसकी न केवल ऐतिहासिक वरन् साहित्यक कृति है। परन्तु उसके भारतवर्ष के सम्बन्ध में विचार यहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज और वेश-भूषा के सम्बन्ध में वर्णन सम्पूर्णतया अशुद्ध है सम्भवतः उसका कारण यही था कि उसे भारतवर्ष की वास्तविक स्थिति समझने का पर्याप्त अवसर नहीं

मिला। अथवा अपनी जाति की श्रेष्ठता दिखाने के लिये उसने जानबूझ कर हिन्दुओं का रहन-सहन गिरा हुआ लिखा हो।

साम्राज्य स्थापक

कुछ भी हो बाबर ने भारतवर्ष में मुगल साम्राज्य स्थापित कर दिया। कुछ लोग सम्राट् बाबर की तुलना एक साधारण क्लर्क क्लाइव से करते हैं। केवल इसीलिये कि क्लाइव ने भी भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली। परन्तु इतने से ही क्लाइव जैसे नीच प्रकृति के मनुष्य को बाबर, महमूद गजनवी, गोरी अथवा हसन की श्रेणी में बिठाया नहीं जा सकता। इसका विवेचन क्लाइव के वर्णन में करेंगे।

कला-प्रेम

बाबर को भवन निर्माण-कला से भी प्रेम था, सीकरी, धौलपुर तथा आगरे में उसने अनेक सुन्दर भवनों का निर्माण कराया जिनमें पानीपत और सम्भल की मस्जिदें अब भी उसके उत्कृष्ट कला प्रेम का परिचय देने के लिये उपस्थित हैं। उसका चित्रकला प्रेम भी इतिहास की वस्तु है।

काव्य और संगीत

उसके जीवन के मधुर साथी थे। वह कवि सम्मेलनों में स्वयं भाग लेता था तथा गान शास्त्र पर उसकी अपनी पुस्तक उपस्थित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अकबर के जिन गुणों के कारण वह महान कहा जाता था वे सब उसके दादा बाबर में उपस्थित थे। सम्भव था कि यदि बाबर अधिक काल तक जीवित रहता तो हिन्दू राजपूतों के साथ उसकी नीति भी स्पष्ट हो जाती।

सताईसवाँ अध्याय

हुमायूँ

(१५३०-४०, १५५५-५६)

हुमायूँ ने आज्ञाकारी पुत्र की भांति अपने भाइयों का उचित सत्कार किया। उसने सबसे बड़े होने के कारण राज्य तो पाया था परन्तु कामराँ को उसने काबुल और कन्धार दे दिया। अस्करी को अलवर और मेवात प्रदेश का शासक तथा हिन्दाल को सम्भल का अधिकार दे दिया। यही नहीं उसने अपने चचेरे भाई सुलेमान को बदख्शा का अधिकार देकर उसका भी पालन किया।

परन्तु दिल्ली का राज्य उस समय अफीम खाने वाले के लिये काँटों का ताज था। अफ़गान अपनी पराजय को बदलना चाहते थे। राजपूतों की शक्ति सम्पूर्णतया नहीं टूटी थी। हुमायूँ के सैनिकों में भिन्न जातियों के लोग होने के कारण प्रत्येक समय सैनिक विद्रोह की आशंका थी। गुजरात का शाह सबसे बड़ा कांटा था। बाबर अपना साम्राज्य स्थिर न करके ही चल बसा था। इस समय जैसे व्यक्ति की आवश्यकता थी वेसा हुमायूँ नहीं था।

सबसे पहले उसके भाई कामराँ ने ही धोखा दिया और पंजाब प्रान्त तक अपने अधिकार में कर लिया। हुमायूँ ने पिता के वचन का ही स्मरण करके अथवा अपनी सैनिक शक्ति की ओर ध्यान देकर उसको दण्ड देने की चेष्टा नहीं की।

अपने विरोधियों से चारों ओर से घिरे होने के कारण उसको अवकाश न मिला कि वह राज्य प्रबन्ध की ओर ध्यान देता।

उसे राज्य पाते ही अफ़गानों का विरोध दबाना था। अतएव उसने कामराँ के अन्याय को भाई जानकर नहीं सोचा तो अधिक अनुचित नहीं था। परन्तु डोरा की लड़ाई में पूर्वी अफ़गानों की शक्ति टूट जाने पर भी जब उसने चुनार के घेरे में शेरखाँ को फाँसकर भी सन्धि कर ली तो उसने बड़ी भारी राजनीतिक भूल की। इससे बड़ी भूल उसने घेरे से लौटकर आगरा में विलासमय जीवन व्यतीत करने में की। यदि उस समय वह अपनी शक्ति के संगठन में लग गया होता तो कदाचित् उसे भारतवर्ष न छोड़ना पड़ता।

१५३४ ई० में गुजरात के बहादुरशाह ने दिल्ली पर अधिकार करने के विचार से अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहा। अतएव राणा साँगा के पौत्र विक्रमादित्य पर आक्रमण किया। कहा जाता है कि विक्रमादित्य की माता ने हुमायूँ को राखी भेजकर सहायता के लिये बुलाया। हुँमायू सेना लेकर तो गया ग्वालियर और मालवा होते हुये वह रायसीन तक पहुँच गया। परन्तु उसने चित्तौड़ की सहायता न की। सम्भवतः उसने राजनीति कुशलता से ही ऐसा किया। क्योंकि चित्तौड़ की सहायता मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दुओं की सहायता थी। तथा बहादुरशाह की शक्ति भी चित्तौड़ के आक्रमण में नष्ट हो रही थी। अतएव जब बहादुरशाह चित्तौड़ जीतकर आगे बढ़ा तो उसके पास रसद की सामग्री कम हो गई थी। अतएव हुमायूँ ने मन्दसोर के निकट उसे पराजित कर दिया। बहादुरशाह दक्षिण की ओर भाग गया और पुर्तगालियों से मिलकर फिर सैन्य संगठन में लग गया। हुमायूँ ने गुजरात आस्करी के हाथ में दे दिया और फिर दिल्ली लौटकर भोग-विलास में मग्न हो गया।
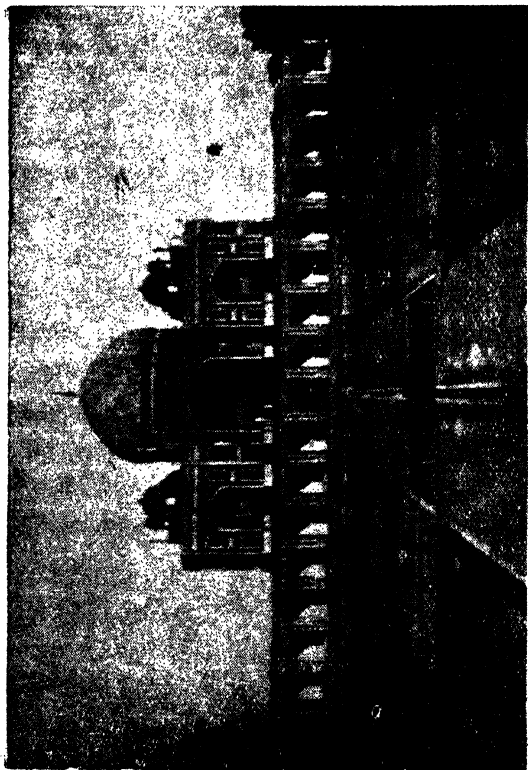
हुमायूँ का मकबरा (देहली)

परन्तु उसकी अधूरी विजयों ने उसे शान्ति मे बैठने न दिया। १५३६ ई० में महमूद खाँ ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया तथा शेरखाँ ने चुनार और रोहतास के किलों पर भी अधिकार कर लिया। यद्यपि उसके भाई हिन्दाल ने महमूद को पराजित किया परन्तु शेर खाँ को दबाने के लिये हुमायूँ को बंगाल की ओर बढ़ना पड़ा। शेरखाँ ने बंगाल तक अपनी धाक बैठा ली थी। अतएव उसने हुमायूँ को बंगाल तक बढ़ने में रोक टोक न की। जब हुमायूँ गौड़ तक पहुँच गया तो शेरखाँ ने मध्यवर्त्ती प्रदेश पर आक्रमण करके रसद का मार्ग बन्द कर दिया। हुमायूँ की सेना में मलेरिया फैल गया। यद्यपि गौड़ देश तक पहुँचने में उसने चुनार और रोहतास गढ़ों को अधिकार में कर लिया था। अतएव यदि हिन्दाल चाहता तो हुमायूँ को सहायता पहुँचा सकता था। परन्तु हिन्दाल स्वयं आगरे में बादशाह बन बैठा। और अपने दयालु भाई को भाग्य के भरोसे छोड़ दिया। फलतः १५३६ ई० में जब हुमायूँ गौड़ देश से लौट रहा था अफगान फौजों से उसे युद्ध के लिये विवश होना पड़ा। शेर खाँ ने सन्धि वार्त्ता का धोखा देकर सरल हृदय हुमायूँ को फुसला लिया और एक दिन उसे सम्पूर्णतया असावधान और कूच की तैयारी करते देखकर आक्रमण कर दिया। बक्सर के निकट चौसा के स्थान पर हुमायूँ पराजित हुआ। शेर खाँ के इस रात्री-आक्रमण में मुग़ल सेना का बहुत-सा भाग नष्ट हो गया। बची हुई सेना इधर उधर भाग गई। हुमायूँ स्वयं निज़ाम नामक भिश्ती की मश्क पर चढ़कर गंगा पार करके भागा। आगरा पहुँच कर उसने हिन्दाल को निकाल कर फिर सैन्य संगठन का कार्य्य आरम्भ किया। इसी समय निज़ाम भिश्ती को दो दिन के लिये बादशाह बना कर उसने अपने उदार हृदय कृतज्ञता का जो परिचय दिया उस से हुमायूँ का चरित्र बहुत ऊँचा उठता है।

परन्तु हुमायूँ के दुर्भाग्य से उसके भाइयों ने सैन्य संगठन में उसकी सहायता नहीं की। कामरान बीमारी का बहाना करके सेना सहित काबुल चला गया। फलतः १५४० ई० की कन्नौज की लड़ाई ने हुमायूँ के भाग्य का निश्चय कर दिया। शेरखाँ विजयी हुआ और हुमायूँ को भारत छोड़ कर भागना पड़ा।

हुमायूँ के पलायन

हुमायूँ के पलायन की कहानी बड़ी दुःखद है। भाइयों के विश्वास घात का शिकार अपनी समस्त वीरता और सद्गुणों के होते हुये भी जब कन्नौज के युद्ध में पराजित होकर भागा तो उसने आगरे से दिल्ली की ओर अपने कुटुम्ब के साथ प्रस्थान किया। दिल्ली से सर हिन्द और सक्खर की असफलताओं के उपरान्त उसने जोधपुर नरेश मालदेव से सहायता माँगी जब उसने सहायता न दी नगर कोट पहुँचा। यहाँ के राजा ने उसका सम्मान किया और सहायता भी दी। यहीं १५४२ ई० में अकबर का जन्म हुआ। जब यह शुभ समाचार हुमायूँ को सुनाया गया तो उसने अपने सरदारों को तुर्करीति के अनुसार देने योग्य कुछ न देख कर कस्तूरी की नाभि ही काट-काट कर बाँट दी तथा परमात्मा से प्रार्थना की उसके पुत्र का यश कस्तूरी की सुगन्ध के समान फैले। नगर कोट के राजा की सहायता से हुमायूँ ने फिर सक्खर पर आक्रमण किया तथा वहाँ उसे कुछ सफलता मिली। परन्तु हुमायूं ने समझ लिया था कि अब भारत वर्ष में उसके लिए स्थान नहीं रहा। अतएव वह काबुल की ओर बढ़ा। परन्तु उस के भाई कामराँ ने सेना के साथ उसका सामना करके स्वागत करना चाहा। अपनी शक्ति की ओर देखकर हुमायूं को युद्ध करना उचित प्रतीत न हुआ। अतएव अपने कुटुम्ब को कामराँ के पास छोड़ कर हुमायूँ फारस चला गया। हुमायूँ के शेष जीवन की

घटना का १५५५ ई० तक भारतवर्ष से सम्बन्ध नहीं है। अतएव उसका वर्णन पूरा करने से पहले हमें १५४० ई० से १५५५ ई० तक के भारतवर्ष के इतिहास को देखना चाहिये। यह काल सूर वंश का काल है जिसका प्रवर्त्तक शेर खाँ था अतएव हम शेर खाँ से ही प्रारम्भ करेंगे।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शेरशाह सूरी

(१५४०-४५ ई० तक)

शेरशाह का परिचय

बिहार के सहसराम परगने के जागीरदार हसन खाँ के घर जिस पुत्र रत्न ने १४८६ ई० में जन्म लिया था। उसका बचपन का नाम फरीद था। अपनी सौतेली माता के दुर्व्यहार के कारण वह पन्द्रह वर्ष की आयु में ही जौनपुर चला आया। यहाँ उसने विद्याध्ययन में बड़ी रुचि दिखलाई और फारसी भाषा का अच्छा अध्ययन कर लिया। १० वर्ष जौनपुर के प्रवास से उसे अफगानों की कमजोरियों का पता चल गया। अतएव जब उसके पिता ने उसे सहसराम की जागीर का प्रबंध सोंपा तो उसने बड़ी योग्यता दिखलाई। परन्तु फिर सौतेली माता के दुर्व्यवहार के कारण उसे जागीर छोड़कर बिहार के सूबेदार बहार खाँ के यहाँ नौकरी करनी पड़ी।

यहीं उसने तलवार बल पर सन्मुख शेर का शिकार करके शेर खां की उपाधि पाई। कहा जाता है कि बाबर ने जौनपुर विजय के उपरान्त पठानों की दावत की। उसमें शेर खां भी उपस्थित था। और जब वह तलवार से काटकर भुना हुआ मांस खाने लगा तो मुग़ल सरदार उसकी असभ्यता पर हँसने लगे। बाबर ने उन्हें टोककर कहा कि "आज जिस पर तुम लोग हँसते हो उसमें सम्राट होने के सब लक्षण उपस्थित हैं।"

शेर खां ने बाबर की भविष्यवाणी सच्ची कर दिखलाई।

शेरशाह सूरी
का
साम्राज्य
काबुल
पेशावर
कंधार
मुल्तान
दिल्ली
बीकानेर
जोधपुर
कन्नौज
ग्वालियर
समरकोट
रणथम्भोर
इलाहाबाद
आबू
चित्तौड़
कालिञ्जर
पाटन
चम्पानेर
माण्डू
खम्भात
सूरत
राजमहल

राणा साँगा

बाबर

हुमायुं

शेरशाह सूरी

कन्नौज के युद्ध में हुमायूँ को पराजित करके उसने दिल्ली और आगरे पर तो अधिकार कर ही लिया था। परन्तु उसने तुरन्त बंगाल पर आक्रमण करके उसे भी दिल्ली राज्य में मिला लिया।

अब उसने अपने पश्चिमी प्रदेश पर ध्यान दिया। पंजाब उसने कामरां से छीन कर सिन्धु और झेलम के उत्तरी भागों में स्थित गक्खर प्रदेश पर आक्रमण करके उसने उसकी शक्ति का १५४१ ई० के अन्त तक विनाश कर दिया।

१५४३ ई० में उसने मालवा, सारंगपुर, उज्जैन और रणथम्भौर को जीत लिया। १५४३ ई० में रायसीन, अजमेर, चित्तौड़ और सिन्ध पर भी अधिकार कर लिया। तथा जोधपुर के राजा मालदेव को भी परास्त किया।

१५४५ ई० में कालिंजर के किले पर आक्रमण करते समय बारूदघर में आग लग गई और तड़ातड़ गोले फटने लगे। शेरशाह इसमें घायल हो गया और उसका प्राणान्त हो गया।

शेरशाह ने अफगान-शासन व्यवस्था को जागीरदारी प्रथा के दोषों को भली भांति देख लिया था। तथा देश की स्थिति की गम्भीरता का भी उसे पूर्ण ज्ञान था। अतएव वह जानता था कि कोई भी राज्य जिन बातों से स्थिर शक्ति प्राप्त कर सकता है वे निम्नलिखित ४ बातों पर निर्भर हैं।

शेरशाह का शासन प्रबन्ध

१—शक्ति का सम्पूर्णतया केन्द्र के आधीन रहना, २—राजकोष की आय का निश्चित और सुदृढ़ होना, तीसरे अधिकारियों की शक्ति पर नियन्त्रण और चौथा समस्त हिन्दू और

मुसलमान प्रजा के साथ समता का व्यवहार, पांचवां सुदृढ़ और स्थिर सैनिक शक्ति।

अतएव उसने राज्य-प्रबन्ध की ऐसी व्यवस्था की जिसमें सम्पूर्ण शक्ति उसके हाथ में आ गई। राज्य की इकाई जागीर के स्थान पर उसने ग्राम बना दिये। ग्रामों का प्रबन्ध चौधरियों और पटवारियों के हाथ में दे दिया तथा उनकी सहायता के लिये पंचायतों का संगठन किया। ग्रामों का समूह परगनों में सम्मिलित था। परगने के अधिकारी को शिकदार कहते थे। उसकी सहायता के लिये दो कारिन्दे एक आय कर का अधिकारी तथा एक आमिल या अमलदार नियत कर दिया। इन अधिकारियों को राजकोष के एकत्र करने के अतिरिक्त केवल शासन की देख-रेख का कार्य ही था। क्योंकि साधारण मामले मुकद्दमें, पंचायतें और मुखिया ही निपटा लेते थे।

परगने सरकारों का अंग थे जो आजकल जिलों के समान हैं। सरकारों का अधिकारी शिकदारें शिकदारान्। शिकदारों का शिकदारा कहलाता था। उसके सहायक मुंसिफ होते थे जो बड़े झगड़ों का निर्णय भी करते थे तथा राजकोष का काम भी देखते थे।

सरकारें सूबों के आधीन थीं। सूबेदारों की शक्ति अत्यन्त नियन्त्रित थी। स्वतन्त्र सेना रखने का उन्हें बहुत कम अधिकार था। प्रजा से निश्चित लगान से अधिक लेकर अपने पास रखने की उन्हें कदापि आज्ञा न थी।

इस प्रकार शेरशाह ने जागीरदारी प्रथा की जड़ पर कुठार मार दिया और समस्त अधिकार अपने हाथ में ले लिये। इसी एक प्रबन्ध से उसका राजकोष भी स्थिर और सुदृढ़ हो गया तथा अमीरों और सरदारों की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई।
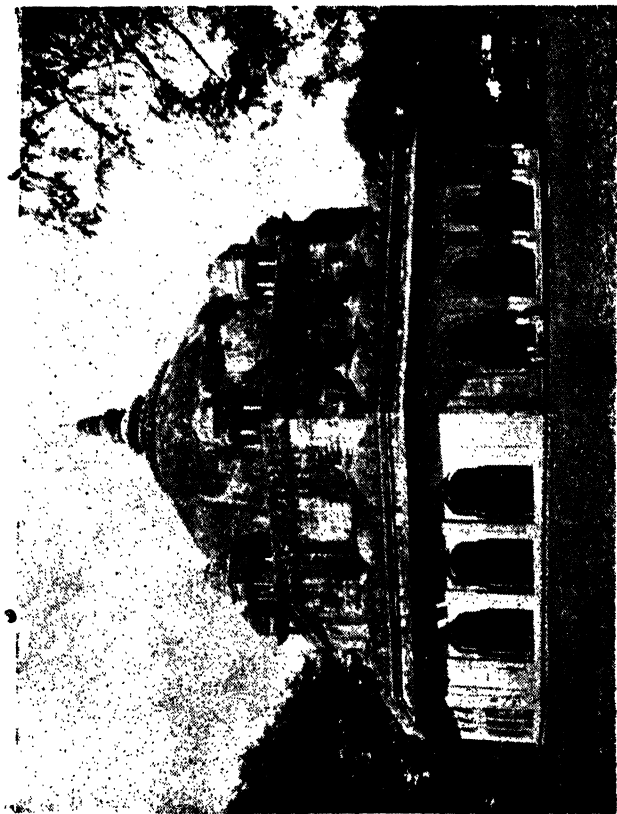
हसन खाँ सूर का मक़बरा (सहसराम)

अब केवल प्रजा की सुख-शांति व्यवस्था का कार्य और आवश्यक था। अतएव उसने इस ओर तीन मार्गों से पग बढ़ाया। पहला करों का भार कम करना, दूसरा पुलिस और रक्षा व्यवस्था ठीक करना। तीसरा हिन्दुओं के साथ समानता का व्यवहार करना।

उसने मालगुजारी की दरें निश्चित कीं। किसी भी दशा में कर की मात्रा कुल आय के १/४ भाग से अधिक नहीं रक्खी।

कर

उसने जो सिक्के चलाये शुद्ध सोने-चांदी या तांबे के चलाये। अतएव सिक्कों के जाली बनाने की प्रवृत्ति को नष्ट कर दिया। अन्तर्देशीय व्यापार में चांदी की रुपये के भाव की समता के कारण व्यापार चमक उठा। तथा कर सिक्कों के रूप में भी जनता को देने में कठिनाई नहीं हुई। कृषकों से उक्त १/४ माल-गुजारी के अतिरिक्त समस्त कर उसने समाप्त कर दिये। और व्यापार की चुंगी भी केवल बाहर भेजने और बिक्री कर के अतिरिक्त सर्वत्र बन्द कर दी। व्यापार की इस प्रकार वृद्धि हुई और राज्यकोष भी स्थिर आय होने लगा।

सबसे पहले उसने ग्रामों की रक्षा तथा सुव्यवस्था के लिये मुखियाओं और चौधरियों को उत्तरदायी ठहराया। यदि गांव

पुलिस और रक्षा प्रबन्ध

में कोई दुर्घटना हो गई तो इनका यह कर्त्तव्य था कि वे अपराधी का पता लगा कर उसे दण्ड दिलायें परन्तु यदि वे इस कार्य्य में ढील-ढाल करते थे तो उन्हें ही दण्ड भुगतना पड़ता था। एक छोटे से गाँव में अपराधियों का पता लगा लेना कठिन न था अतएव अपराधों की संख्या स्वयं कम हो गई। इसके अतिरिक्त शिकदारों, उनके कारकुनों पर अपने परगने की

सम्पूर्ण जिम्मेदारी थी जिसका पालन न करना कठोर दण्ड का भागी होना था। अतएव चोर-डाकुओं का भय उठने लगा। और सड़कें सुरक्षित होने लगी। यह सब कुछ केवल इसीलिये सम्भव हुआ कि उसने सबसे पहले ग्राम की इकाई बनाकर उसमें सुधार कर दिया। इस मौलिक सुधार से ही समस्त राज्य में सुव्यवस्था स्थापित हो गई।

शेरशाह अपराधियों को कठोरतम दण्ड देता था। इस विषय में न्याय के अतिरिक्त उसके समक्ष कोई दूसरा विचार नहीं था। हिन्दू-मुसलमान अपने पराये का अन्तर उसके निकट कुछ भी नहीं था। उसके इसी व्यवहार से हिन्दू जनता का उसे सहयोग प्राप्त हो गया और विद्रोह दब गये। यद्यपि इस काल के कट्टर मुल्लाओं ने उसका विरोध किया परन्तु दृढ़चित्त शेर-शाह ने इसकी चिन्ता न करके साम्राज्य के हित को दृष्टि में रक्खा। और हिन्दुओं को राजकार्य्य में स्थान देने लगा। सम्भवतः शेरशाह को राज्य व्यवस्था में उसके मंत्री टोडरमल का ही पहला हाथ था जिसका शेरशाह के उत्तराधिकारियों ने पालन नहीं किया और अपने लिये खाई खोद डाली।

सेना के संगठन के लिये भी शेरशाह ने सराहनीय प्रयत्न किया। उसने सैनिकों को तथा सेनापतियों को लूटमार की आज्ञा कभी नहीं दी। सैनिकों को राजकोष से इतना वेतन मिलता था जिसमें वे सुखपूर्वक आजीविका चला सकें। उसने घोड़े पर नम्बर डालकर उनकी संख्या के साथ ही धोखे का मार्ग बन्द कर दिया। अपने तोपखाने का उसने बड़ा सुन्दर संगठन किया। वह जानता था कि हिन्दू सैनिक मृत्यु से नहीं डरता। अतएव तोपखाने का समस्त कार्य्य उसने हिन्दू बन्दूकचियों और तोप-चियों के हाथ में ही रहने दिया। तथा उसका तोपखाना ही था

जिसने उसको प्रत्येक युद्ध में विजय दिलाई। उसने सेना के प्रत्येक सैनिक से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने की प्रेरणा से ही राज-कोष से वेतन देना प्रारम्भ किया था। वह स्वयं प्रधान सेना-पति था अतएव मध्यवर्त्ती सैनिक-सरदारों की अपेक्षा सैनिक शेरशाह से अधिक प्रेम करते और डरते थे इस प्रकार उसने सरदारों की सैनिक शक्ति को भी तोड़कर अपने हाथ में कर लिया। यही कारण था कि उसकी सेना युद्ध स्थल में उसके लिये प्राण अर्पण करने को प्रस्तुत रहती थी।

शेरशाह का व्यक्तित्व

बदायूनी लिखता है "हुमायूँ का राजदूत चौसा युद्ध के समय सन्धि का प्रस्ताव लेकर शेरशाह के पास पहुँचा। उसने देखा कि अफ़ग़ान सरदार शेरखाँ फावड़ा लिये साधारण मजदूर की भाँति मोर्चा बनाने में लगा है। भारत के भावी सम्राट् में यदि यह शक्ति न होती, हृदय में इस विशालता का स्थान न होता, परिश्रम की इतनी शक्ति न होती तथा सेना को कार्य्य सिखाने की इतनी क्षमता न होती तो सफलता अनिश्चत थी। आज तक दिल्ली पर अफ़गान राज्य कर चुके थे परन्तु तलवार से गोश्त काटकर खाने वाला सुल्तान शेरशाह था मानो वह अपने सरल जीवन को विलास शक्ति को ही तलवार से काटकर खा रहा था।

चुनारका दुर्ग घिरा हुआ है। हिन्दू मंत्री को फोड़कर मिला लिया गया है। अफ़गान हरम को दुर्ग की रक्षा में रख लिया जाय तो शेरखाँ हुमायूं से रक्षा पाने के लिये चला जायगा। भोला मंत्री स्वीकार कर लेता है। परन्तु फाटक खुलने पर पालकियों में स्वयं शेरशाह और उसके सिपाही किले में घुस पड़ते हैं और चुनार का दृढ़ दुर्ग उसके हाथ सहज में ही आ जाता है। लोमड़ी

की सी इस चतुरता की ओर देखिये तथा सिंह की उस वीरता की ओर ध्यान दीजिये। कालिञ्जर का किला घेर कर शेरशाह की जान पर आन बनी है। बारूद-घर उड़ जाने से शेरशाह घायल हो चुका है परन्तु आक्रमण में बाधा नहीं मृत्यु सन्मुख है परन्तु मृत्यु से खेल कर ही सिंह प्राण देता है। दुम-दबाकर भागने से नहीं। उसके हिन्दुओं के प्रति व्यवहार ने उसकी विशाल हृदयता का जो उदाहरण दिया उसने उसे समस्त अफ़गान सुल्तानों में सर्वश्रेष्ठ पद पर बिठा दिया। मुल्लाओं के हाथ की कठपुतली अलाउद्दीन भी नहीं था और मुहम्मद तुग़लक भी धर्म को राज-नीति से अलग रखता था परन्तु टोडरमल जैसे हिन्दू को समस्त साम्राज्य की सुव्यवस्था का काम सौंप देना न केवल उसकी उदारता और विशाल हृदयता का परिचय देता है वरन् उसकी मनुष्यता और योग्यता की परख का भी प्रमाण है।

न्याय में कठोर, प्रजा की पिता के समान पालन करनेवाला, दीन-दुखियों का सहायक किन्तु अत्याचारियों का कठोर शत्रु शेरशाह यह कब सहन कर सकता था कि उसकी सेना के सिपाही प्रजा की लूट करें। युद्ध हो चुका है शत्रु, परास्त हो चुके हैं परन्तु सेना का काम भी शेष हो चुका है। अब यदि कोई सैनिक किसी प्रजा पर अत्याचार करता है तो उसकी व्यवस्था शेरशाह के न्याय में केवल प्राण-दण्ड है। यदि प्रजा का खेत घोड़ों से चरा दिया गया है तो सैनिक के गले में घास की माला है तथा उसे समस्त सेना में घुमाकर अपमानित किया जाने के साथ ही समस्त सेना को पाठ दिया जा रहा है। उसे भवन-निर्माण कला से भी बड़ी रुचि थी। उसकी कला की विशेषता यह है कि भवनों का बाहरी भाग यवन-शैली पर तथा भीतरी भाग हिन्दू शैली पर बना है। इसके अतिरिक्त ग्राण्ड ट्रंक रोड

शेरशाह का मक़बरा (सहसराम)

का सुधार उसने कराया। सड़कें आगरा से बुरहान पुर तक, आगरा से जोधपुर चित्तौड़ तक, पेशावर से मुल्तान तक तथा सड़क के दोनों किनारे वृक्ष लगवाये, कुएं, सरायें और धर्मशाला बनवाई। यात्रियों की सुख-सुविधा का समस्त प्रबन्ध राजकोष से किया। सूरवंश का यह दुर्भाग्य था कि शेरशाह की असमय में ही मृत्यु हो गई।

जलाल खां या सलीमशाह

(१५४५-१५५३ ई० तक)

शेरशाह के उत्तराधिकारी जलाल खां ने अपनी अदूरदर्शी नीति से अफ़गान सरदारों को असन्तुष्ट कर दिया। अतएव विद्रोह की भावना जाग उठी। सैनिक शक्ति के सहारे उसने विद्रोह दबा तो दिया परन्तु उसमें वह उदारता तथा हृदय की विशालता नहीं थी जिससे वह अमीरों के हृदय पर अधिकार कर सकता। फलतः राज्य व्यवस्था ढीली पड़ गई। १५५३ ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

आदिलशाह (१५५३ से १५५५ ई०)

जलाल खां की मृत्यु के समय उसका पुत्र फीरोज केवल १२ वर्ष का बालक था। अतएव उसके मामा मुबारक खां ने उसकी हत्या कर डाली तथा स्वयं आदिलशाह के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। आदिलशाह स्वयं बड़ा दुराचारी तथा विलासी था। वह अपने मंत्री हेमचन्द्र (हेमू) वैश्य पर राज-कार्य का भार सौंपकर भोग-विलास में मग्न हो गया। अफ़गान सरदारों को हिन्दू की आधीनता अखरने लगी अतएव विद्रोह आरम्भ हो गये। इब्राहीम ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया तथा सिकन्दर सूर ने पंजाब पर अपना अधिकार

जमाया। हेमू विवश होकर आदिलशाह के साथ चुनार चला गया। इसी समय १५५५ ई० में हुमायूं ने फिर भारतवर्ष पर आक्रमण किया।

उनतीसवाँ अध्याय

हुमायूँ का पुनः भारत-प्रवेश

पिछले १५ वर्ष कामरान के हाथों विवशता से अपना कुटुम्ब बन्दी के रूप में देकर हुमायूं फारस भाग गया था। फारस के बादशाह तहमास्प ने उसका बड़ा सत्कार किया तथा उसे शिया धर्म की दीक्षा देनी चाही। कहा जाता है कि कुछ दिनों के उपरान्त तहमास्प उससे अप्रसन्न भी हो गया था तथा उसका वध करा देना चाहता था। परन्तु अपने मंत्री तथा बहिन के कहने से उसने अपना विचार बदल दिया तथा सेना देकर उसे काबुल पर आक्रमण करने के लिये भेजा। कामरान से बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। कामरान ने हुमायूं के आक्रमण से बचने के लिये २½ वर्ष के अकबर को किले की दीवार पर बिठा दिया। हुमायूं ने देखा परन्तु उसने आक्रमण चालू रक्खा। परन्तु जाको रक्खे साइयां, मारि न सकिहै कोय। अकबर को एक दिन महान सम्राट बनना था। वह बच गया और किला जीत लिया गया। हिन्दाल युद्ध में ही मारा गया। कामरान की निर्दयता के कारण हुमायूं ने उसकी आंखें निकलवा लीं तथा अस्करी मक्का के मार्ग में मार डाला गया। इस प्रकार हुमायूं को अपने विश्वासघाती भाइयों से छुट्टी मिली। इस प्रकार १५४६ ई० में काबुल पर अधिकार करके वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगा जब भारतवर्ष पर फिर आक्रमण करे।

१५५५ ई० में स्थिति अनुकूल थी। अफ़गान साम्राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो चुके थे अतएव उसने खैबर दर्रे के मार्ग से भारतवर्ष पर आक्रमण किया। सिन्धु नदी पार करके उसने सतलुज

नदी के समीप मच्छीवाड़ा में अफगान शक्ति को पहली ठोकर मार दी फिर सरहिन्द पर आक्रमण करके सिकन्दरशाह सूर की शक्ति तोड़ दी और उसे हिमालय की ओर भागने पर विवश कर दिया। सिकन्दर की पराजय से पंजाब, दिल्ली और आगरा उसके अधिकार में आ गये। अब केवल आदिलशाह सूर और उसके मंत्री से निपटना रह गया था। परन्तु इसी समय लाहौर में सीढ़ी से फिसलकर गिर पड़ने के कारण हुमायूं की मृत्यु हो गई।

हुमायूँ का व्यक्तित्त्व, इतिहासकारों ने हुमायूँ पर विलासिता, निर्बल उद्देश्य वाला और अविचारशील होने का दोष लगाया है। कुछ अंशों में उसकी असफलताओं की ओर देख कर हम उन दोषों को स्वीकार कर सकते हैं। परन्तु हुमायूँ का यही सब कुछ नहीं था। उसमें उच्च मानव के अनेक गुण थे। उन पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

शेरशाह की सफलता का कारण इसकी लोमड़ी जैसी युद्ध-चातुरी और तीव्रगति थी। परन्तु हुमायूँ में इसके विपरीत सिंह का सा साहस परन्तु भोलापन था। अपने भोलेपन से ही उसने अपने साम्राज्य का सर्वश्रेष्ठ भाग काबुल अपने भाई कामरान को दे दिया जिसके कारण उसका सैनिक उद्गम-स्रोत सूख गया। उसने युद्धों में छल प्रपञ्च को कभी स्थान नहीं दिया। उसकी चरित्र की यह उज्ज्वलता क्या आदर की वस्तु नहीं है?

उसके साथ उसके भाइयों ने एक नहीं अनेक बार विश्वासघात किया परन्तु अपने पिता के बचनों का स्मरण करके वह उन्हें क्षमा करता रहा। मुसलमान इतिहास में ऐसे उदार मानव

को आप न पायेंगे।

भिश्ती के सम्बन्ध में उसकी उदारता स्वयं एक कहानी बन गई है जो भारतवर्ष के इतिहास के पवित्र हिन्दूकाल का स्मरण दिलाती है।

उसमें साहस और विपत्ति-सहन की शक्ति की कमी नहीं थी। कठोर विपत्ति में भी उसने अपना साहस नहीं छोड़ा। भारतवर्ष छोड़ने के उपरान्त उसने कामरान की दासता स्वीकार करने की अपेक्षा फारस के सुल्तान की शरण ली। उसकी राजनीति यद्यपि छल को नहीं जानती थी परन्तु सम्पूर्णतया मूर्ख नहीं थी यह घटना उक्त बात का प्रमाण है।

उसके सैनिकों को उससे सहानुभूति थी और उसका व्यवहार अपने सरदारों से सदैव प्रेम का रहा। यही कारण है कि मिर्जा और खानखाना बैरम अनेक बार उससे वियुक्त होकर भी सदैव उसके साथ रहे और फिर उसे भारतवर्ष का साम्राज्य दिलाने में सहायक हुए।

यह ठीक है कि हुमायूँ कोई ऐसा कार्य नहीं छोड़ गया जिसके कारण भारतवर्ष में उसका नाम महान् सम्राटों में होता परन्तु वह छोड़ गया अपने पीछे अकबर को जिसमें वस्तुतः एक महान सम्राट के सब गुण थे। वह छोड़ गया बैरम जैसे स्वामिभक्त और वीर सेनापति जिन्होंने भारतवर्ष के मुग़ल साम्राज्य को स्थायी बना दिया।

तीसवाँ अध्याय

अकबर

(१५५६-१६०५)

बाल्यावस्था में विपत्तियों की आँच में तपा कर पाला गया अकबर जब ६ वर्ष की ही आयु में ग़जनी का सूबेदार बना दिया गया तो उसे शासन व्यवस्था की शिक्षा मिलने लगी। उसके गुरु और रक्षक बैरमखाँ ने युद्धोपयोगी समस्त शिक्षा देकर उसे शासन के सर्वथा योग्य बना दिया। अतएव जब १३ वर्ष की अवस्था में ही पिता की छत्रछाया उठ गई तो बालक अकबर न तो घबराया न व्याकुल हुआ वरन् अपने गुरु बैरमखाँ के भरोसे आगे बढ़ने की चेष्टा करने लगा।

पानीपत का युद्ध

इसी बीच में समाचार मिला कि आदिलशाह के मंत्री हेमचन्द्र (हेमू) ने दिल्ली और आगरे पर अधिकार कर लिया। तब बैरम ने युद्ध में शीघ्रता की। पानीपत के युद्ध-स्थल में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। निकट था कि मुग़ल सेना पराजित होती कि हेमू की आँख में एक तीर लग गया जिसकी पीड़ा से वह मूर्छित होकर हाथी से गिर पड़ा। उसके गिरते ही नेता के अभाव में सेना के पैर उखड़ गये और बाज़ी पलट गई। हेमू पकड़ा गया। बैरम ने अकबर से प्रार्थना की कि हेमू का बध करके ग़ाजी का पद प्राप्त करले। परन्तु अकबर को बन्दी की हत्या कायरता प्रतीत हुई उसने अस्वीकार कर दिया तब बैरमखाँ ने उसका शिर उतार लिया। इस प्रकार

अकबर का साम्राज्य
सन् १६०५ ई०
श्रीनगर
स्यालकोट
लाहौर
जालंधर
गजनी
कन्धार
सिबी
मुलतान
पानीपत
दिल्ली
आगरा
अयोध्या
अ व ध
पटना
बि हा र
टाँडा
बं गा ल
सेहवान
अजमेर
चित्तौड़
ग्वालियर
इलाहाबाद
पाटन
मा ल वा
अहमदाबाद
उज्जैन
खम्भात
खानदेश
सूरत
असीरगढ़
बालापुर
ड्यू
दामन
बसीन
अहमदनगर
गों ड वा ना
पुरी
वरंगल
बीदर
गोलकुण्डा
गोआ
मंगलोर
कालीकट
कोचीन
त्रिचनापल्ली
मदुरा
१५ सूबे
१ काबुल
२ लाहौर
३ मुलतान
४ दिल्ली
५ आगरा
६ अवध(अयोध्या)
७ इलाहाबाद
८ अजमेर
९ गुजरात
१० मालवा
११ बिहार
१२ बंगाल
१३ खानदेश
१४ बरार
१५ अहमदनगर
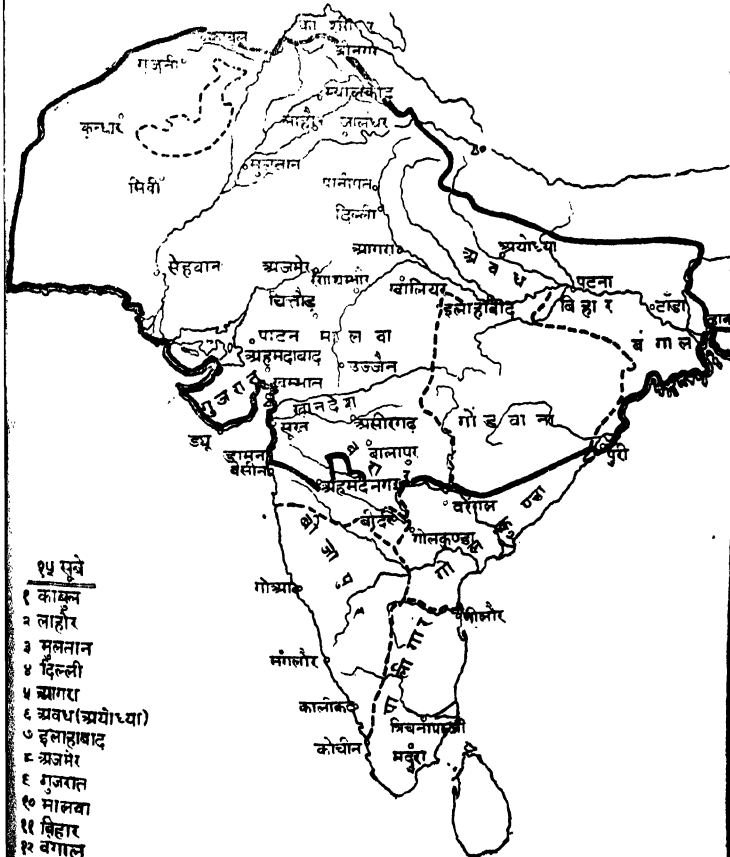
दिल्ली और आगरा पर मुग़ल सेना को अधिकार मिल गया।

दिल्ली और आगरा का राज्य मिल जाने से ही शान्ति का अवसर न था। दिल्ली की गद्दी के तीन अधिकारियों में तीनों अभी जीवित थे। सिकन्दरशाह काश्मीर में अपनी शक्ति एकत्र कर रहा था, चुनार में आदिलशाह। इब्राहीम भी इधर-उधर ताक में था। अतएव बैरमख़ाँ ने पहले सिकन्दरशाह पर काश्मीर प्रदेश में आक्रमण किया। मनकोट स्थान पर युद्ध हुआ, सिकन्दर पराजित होकर शरण में आया। तथा उसे पूर्व की ओर जागीर दे दी गई। आदिलशाह स्वयं मर गया तथा सिकन्दर की पराजय से भयभीत होकर इब्राहीम जंगलों की ओर भाग गया। अब दिल्ली के राज्य के अधिकारियों का अन्त हो गया।

बैरमख़ाँ का पतन

इधर बैरमख़ाँ की शक्ति इतनी प्रबल हो गई थी। उसके समस्त साथी उससे ईर्ष्या करने लगे। इस ईर्ष्या के कारण थे, बैरखाँ शीया था। राज्य के उच्चपद वह शीयों को देता था। उसके स्वभाव में हठ और क्रोध भी था। परन्तु उसकी सेवाएँ अमूल्य थीं। अकबर को ऐसे विश्वासपात्र-साथी की प्राप्ति बड़े भाग्य से हुई थी जो उसका सेवक, संरक्षक और गुरु सब कुछ था। चन्द्रगुप्त के गुरु चाणिक्य की भांति अकबर के बनने में बैरमख़ाँ का बड़ा हाथ था। परन्तु अपने नीच दरबारियों, अपनी धाय माहम अनग्रा तथा उसके पुत्र अहमदख़ाँ के भड़काने से अकबर उसके विरुद्ध हो गया। अकबर चाल चलकर दिल्ली पहुंचा और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा के साथ बैरमख़ाँ को मक्का जाने की आज्ञा दे दी। तथा एक तुच्छ सेवक पीर मुहम्मद को उसे भारतवर्ष से बाहर कर देने के लिये भेज दिया। अकबर का यह व्यवहार असभ्यता का था

अतएव स्वाभिमानी बैरमखाँ ने विद्रोह कर दिया और अकबर की आज्ञा मानने की अपेक्षा पीर मुहम्मद का वध कर दिया। फलतः बैरम से असन्तुष्ट सरदारों की सेना उसके विरोध में भेजी गई। बैरम पराजित हुआ और बन्दी करके अकबर के समक्ष लाहौर में लाया गया। अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और उससे उसकी इच्छा पूछी। आहत स्वाभिमान ने फिर से दासता का कार्य अस्वीकार कर दिया और मक्का जाने की आज्ञा माँगी। जो उसे मिल गई, परन्तु १५६० ई० में पाटन नामक स्थान पर एक पठान ने उसका वध कर दिया क्योंकि बैरमखाँ ने उसके पिता को फाँसी दे दी थी।

स्त्रियों की दासता से मुक्ति

अब अकबर की अवस्था १७ वर्ष की हो चुकी थी फिर भी वह नवयुवक ही था अतएव उसकी धाय माहम अनगा का उस पर विशेष अधिकार था। इसी बीच अकबर को बालक समझकर उसके उजबेग सरदार खानजमाँ ने (जिसने बंगाल के पठानों और आदिलशाह सूर को पराजित किया था तथा जो जौनपुर का सूबेदार था समस्त विजय का धन अपने अधिकार में करके १५६० ई० में स्वतन्त्र होने की घोषणा की। अकबर सेना लेकर उसको दबाने पहुँचा तो उसने क्षमा माँग ली और समस्त धन दे दिया। अकबर ने उसे क्षमा करके जौनपुर की सूबेदारी उसी के पास रहने दी।

अब १५६१ ई० में अकबर ने मालवा के सूबेदार ख्वाज बहादुर को पराजित करने के लिये अदहम खाँ को भेजा। अदहम विजयी हुआ परन्तु उसने भी खानजहाँ की भाँति लूट का माल मारकर स्वतन्त्र होना चाहा। अकबर जब सेना लेकर पहुँचा तो उसने भी क्षमा मांग ली। उसे क्षमा करके दरबार में रहने की

आज्ञा दी गई। परन्तु पीर मोहम्मद ने एक दिन अकबर के प्रिय सरदार सामसुद्दीन का बध कर डाला जिस पर अकबर ने क्रोधित होकर उसे दुर्ग की दीवार से गिरा कर मरवा डाला। अपने पुत्र की मृत्यु से दुखी होकर माहम अनगा भी थोड़े दिनों में ही मर गई। और अकबर स्त्री-दासता से मुक्त होकर स्वतन्त्र सम्राट हो गया। इस प्रकार अकबर स्वतन्त्र शासक १५६२ ई० में हुआ। अदहम खाँ के उपरान्त पीर मुहम्मद को मालवा का शासक बनाया गया था। परन्तु विद्वान होना और बात है तथा उत्तम शासक होना और। बाजबहादुर ने विद्रोह किया जिसमें पीर मुहम्मद पराजित हुआ और नर्मदा पार करते समय नदी में डूब कर मर गया।

अब अकबर ने अब्दुल्ला उजबेग को मालवा की ओर भेजा। अब्दुल्ला ने बाज बहादुर को तो पराजित कर दिया, परन्तु उसने भी अदहमखाँ, और खांनजहाँ का अनुकरण करके स्वतन्त्र होना चाहा। अकबर ने जब आक्रमण किया तो अब्दुल्ला पराजित होकर भागा। पहले वह गुजरात की ओर गया, फिर जौनपुर में खानजमाँ से जा मिला। अब एक से दो हो गये। उन्होंने अकबर की सेना को पराजित कर दिया। इस पराजय के कारण समस्त भारतवर्ष में विद्रोह की लहर दौड़ गई। बंगाल के अफगान स्वतन्त्र होने लगे, काबुल से अकबर के सौतेले भाई मिर्जाहकीम ने पञ्जाब पर आक्रमण कर दिया। १५६५ ई० में इन विकट परिस्थितियों में अकबर फंस गया। और कोई होता तो धैर्य्य खोकर निराश हो जाता। परन्तु अकबर साहस का पुतला था। उसने पहले हकीम को पराजित करके काबुल की ओर भगा दिया। फिर आँधी की भाँति उजबेगों पर आक्रमण करके उन्हें इलाहाबाद के निकट पराजित किया। खानजमाँ मारा गया तथा

अन्य लोगों को कठोर दण्ड दिया गया।

अब अकबर की स्थिति सब प्रकार से सुदृढ़ थी। मुग़ल साम्राज्य के मुसलमान विरोधियों का अन्त हो चुका था दरबारी अमीरों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। अब उसे केवल राजपूतों से निपटना शेष रह गया था।

परन्तु इस बीच में अकबर ने अपनी राजनीति निश्चित्त करली थी। भारत को एक सूत्र में बाँधना चाहता था। अतएव उसके दो ही मार्ग थे। पहला युद्ध और दूसरा मित्रता। वह जानता था कि उसके जाति-भाई मुसलमान मित्र नहीं हो सकते अतएव पहले उसने इन मुसलमानों से ही निपटना आवश्यक समझा। इस बीच में १५६२ ई० में उसने गोंडवाना के हिन्दू-राज्य पर भी आसफ खाँ के बहकावे से आक्रमण किया। एक बार आसफखाँ पराजित हुआ परन्तु इसी बार असंख्य सेना के संमुख वीर नारायणसिंह की रानी दुर्गावती वीरता के साथ लड़कर अपने पुत्र के साथ मारी गई थी। इस युद्ध में उसे राजपूतों की वीरता का सम्मुख परिचय मिल चुका था।

अतएव उसने समझ लिया था कि राजपूतों से युद्ध का अर्थ जीवन भर युद्ध है। अतः उसने उन्हें मित्र की इच्छा से सबके पास सन्देश भेजे। तथा इच्छा प्रकट की कि यदि कोई राजपूत उसे कुमारी देने को प्रस्तुत हो तो उसके साथ विवाह करके भी उसे स्वधर्म पालन की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी। सबसे पहले आमेर के राजा भारमल ने अपनी कन्या योद्धा बाई का विवाह अकबर से कर दिया। शेख मुईउद्दीन चिश्ती के दर्शन को जाते समय उसे योधाबाई के विवाह का अवसर मिला और साथ ही मिली उसे भारत में साम्राज्य स्थापन की कुंजी, राजपूतों की मित्रता। तथा मानसिंह जैसा वीर, राजनीति कुशल

और स्वामिभक्त सहायक।

राजपूत राजाओं में उस समय चित्तौड़ का बड़ा मान था। राणा संग्रामसिंह की स्थापित की हुई प्रतिष्ठा उसके पुत्र उदय सिंह ने भी बनाये रक्खी थी। अतएव जब तक चित्तौड़ की विजय के बिना अथवा चित्तौड़ की सन्धि के बिना राजपूतों पर अधिकार पाना पूर्ण था। इसीलिये अकबर ने १५६७ ई० में चित्तौड़ पर आक्रमण किया।

इस आक्रमण का कारण यह बताया गया कि उदयसिंह ने मालवा के बाजबहादुर को शरण दी थी। अकबर ने चित्तौड़ के आक्रमण के बहाने शिवपुर, कोटा और मण्डलगढ़ पर भी अधिकार कर लिया और चित्तौड़ का घेरा डाल दिया। उदयसिंह चित्तौड़ से निकल कर उदयपुर के पहाड़ी दुर्ग पर जा चुका था तथा गढ़ की रक्षा का भार जयमल और पुत्ता पर छोड़ गया था। वीर जयमल ने अकबर के छक्के छुड़ा दिये और ऐसा प्रतीत हुआ कि दुर्ग विजय असम्भव है। परन्तु सौभाग्य से एक दिन रात्री में मशाल के प्रकाश में क़िले की मरम्मत कराते हुये जयमल अबकर को दिखाई पड़ गया। अकबर ने बन्दूक का निशाना लगा कर गोली दाग दी। निशाना अचूक पड़ा और जयमल के पाँव में गोली लगी और वह घायल होकर गिर पड़ा।

रसद कम हो चुकी थी वीर राजपूतों को विजय की आशा न थी। आये दिन बारूद से क़िले की दीवारें उड़ाई जा रही थीं। अतएव राजपूतों ने वीरधर्म के पालन का निश्चय किया। स्त्रियाँ आग में जल कर स्वर्ग चली गईं और पुरुष केसरिया बाना पहन कर निकल पड़े। भयंकर युद्ध के उपरान्त असंख्य यवन-सेना का संहार करके वीर जयमल और पुत्ता समेत समस्त राजपूत तलवार के घाट उतर कर स्वर्ग पथ के पथिक बने। वीरों ने

अपने प्राण देकर राजपूती आन निबाह दी तथा अपने शत्रु अकबर के हृदय में भी अपनी वीरता का सिक्का बिठा दिया। अकबर ने उन वीरों की प्रस्तर मूर्त्ति हाथी पर चढ़ी हुई बनवाई। आगरे के फाटक पर वीरता के इस आदर्श की प्रतिष्ठा कर दी। फ्रांसीसी यात्री बर्नियर ने उन मूर्तियों का वर्णन किया है। आज पता नहीं कि वे मूर्तियाँ क्या हुईं। सम्भवतः औरंगजेब की धर्मान्धता की भेंट हो गईं।

१५६६ ई० में सीकरी स्थान पर योधाईबाई के गर्भ से सलीम का जन्म हुआ और इसी वर्ष उसने रणथम्भोर, कालिञ्जर, जोधपुर, बीकानेर आदि हिन्दू राजाओं को अधीन कर लिया। अतएव सीकरी का नाम उसने फ़तहपुर सीकरी कर दिया। यही नगर १५६६ ई० से १५८५ ई० तक मुग़ल साम्राज्य की राजधानी भी रहा अतएव यहाँ अनेक मकबरा तथा भवन बने।

राजपूतों से लगभग निपट कर अकबर ने गुजरात के मुसलमान बादशाह की ओर ध्यान दिया। और १५७२ ई० में उस पर चढ़ाई की। मुजफ्फर (गुजरात का बादशाह) हार कर भाग गया तथा गुजरात सहज में ही अकबर के हाथ लगा। इसी समय उसने भारत पर भी अधिकार कर लिया और विदेशों के उस व्यापार पर जो इस बन्दरगाह से होता था नियंत्रण स्थापित करके राज्य की आय बढ़ा दी।

१५७५ ई० में बंगाल के बादशाह दाऊद खाँ को पराजित करके बंगाल भी अपने राज्य में मिला लिया। परन्तु इसी बीच में दक्षिण विजय के उपरान्त लौटते हुये मानसिंह उदयपुर के महाराज प्रतापसिंह के अतिथि हुये। महाराज ने उनके आतिथ्य में कोई कमी नहीं रक्खी। परन्तु भोजन के समय अनुपस्थित हो

गये । मानसिंह ने उनके पुत्र से महाराना के अनुपस्थित होने का कारण पूछा तो अमरसिंहने उत्तर दिया, उन के सिर में पीड़ा हो रही है । मानसिंह भी अन्ततः क्षत्रिय बालक था अपने पिता के अपराध का वह उत्तरदायी नहीं था अतएव उसका आहत स्वाभिमान सर्प की भाँति फुँकार उठा । उसने चावल के दाने मस्तक पर चढ़ा कर कहा ! अन्न का अपमान नहीं करता हूँ परन्तु अपने इस अपमान का बदला अवश्य दूँगा ।

प्रतापसिंह सुन रहे थे उन्होंने आगे बढ़कर उत्तेजना-पूर्वक कहा—भाई मुगलों को बुआ व्याहते समय तुम्हारा यह अपमान विचार कहाँ था ? सम्भव है कि प्रताप का उद्देश्य उसे चिढ़ाने का न रहा हो परन्तु इतने में ही किसी ने व्यङ्ग कर दिया कि बदला चुकाने के लिये अपने फूफा को भी लेते आना । फलतः १५७६ ई० में शाहजादा सलीम के साथ असंख्य सेना ने उदयपुर पर आक्रमण कर दिया । हल्दी घाटी का यह युद्ध संसार के इतिहास की एक सम्पत्ति है । इस का हम विशेष वर्णन प्रताप सिंह के जीवन के साथ करेंगे । प्रताप पराजित हुये और लगभग समस्त मेवाड़ पर अकबर का राज्य स्थापित हो गया ।

१५६४ ई० में बंगाल के सरदार ने अकबर की आधीनता स्वीकार करली थी । परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त दाऊदखाँ ने १५७२ ई० में विद्रोह किया तथा पटना और राजोपुर तथा उड़ीसा में उसे पराजित करके मुनइम खाँ को उसका सूबेदार बना दिया था । १५७५ ई० में दाऊद ने फिर विद्रोह किया अतएव अकबर को फिर आक्रमण करना पड़ा । १५७६ ई० में ताजमहल स्थान पर दाऊद पूर्णतया पराजित हुआ और बंगाल में खानजहाँ गवर्नर नियुक्त किया गया । इसी समय अकबर ने दीन इलाही की घोषणा की थी अतएव मुल्लाहों की बन आई । उन्होंने अकबर

के काफिर होने का फतवा दे दिया। और फिर विद्रोह प्रारम्भ हुआ। अजीज कोका और राजा टोडरमल ने विद्रोह शान्त किया और इस प्रकार १५८० तक बंगाल का विद्रोह शान्त हो सका।

१५८१ ई० में काबुल के मिर्जा हकीम ने विद्रोह किया। राजा मानसिंह उन्हें पराजित करने के लिये भेजे गये। १५८५ ई० में मिर्जा हकीम का देहान्त हो गया और काबुल में मानसिंह सूबेदार बनाये गये। थोड़े समय के उपरान्त मानसिंह भारतवर्ष में आये तो युसुफजई सरदारों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह को को दबाने के लिये राजा वीरबल भेजे गये। परन्तु चारों ओर से विद्रोहियों में घिर जाने के कारण अपने ८००० सिपाहियों के साथ वीरबल मारे गये। इस पर अकबर स्वयं पहुँचा और युसुफजई और रोशनाई कबीलों का विद्रोह पूर्णतया शान्त कर के काबुल में मुग़ल राज्य दृढ़ कर दिया। इस प्रकार लगभग १३ वर्ष युद्ध के पश्चात् यह विरोध शान्त हुआ और २३ लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी।

१५८६-८७ ई० में काश्मीर के कुप्रबन्ध और हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचार का समाचार सुनकर राजा भगवान दास काश्मीर नरेश युसुफशाह के विरुद्ध भेजे गये। युसुफशाह पराजित हुआ और काश्मीर राज्य में मिल गया।

अब अकबर ने सिन्ध की ओर दृष्टि की। १५९१ में अब्दुर्रहीमखान खाना ने सिन्ध के शासक जानीवेग पर आक्रमण करके १५९२ में इसे पराजित किया और १५९५ तक बिलोचिस्तान प्रदेश भी राज्य में मिल गया।

१५९५ ई० में कन्धार के बादशाह मिर्जा मुजफ्फर की शक्ति भी तुर्क-संघर्ष में क्षीण हो गई थी अतएव अकबर को कन्धार जीतकर राज्य में मिला लेने में भी कोई कठिनाई नहीं हुई।

इस प्रकार समस्त उत्तर भारतवर्ष पर अधिकार स्थापित करके अकबर ने दक्षिण की ओर दृष्टि डाली। दक्षिण ५ मुसलमान रियासतों में सबसे पहले उसने अहमद नगर पर ध्यान दिया। १५६५ में अब्दुर्रहीमखान खाना ने अहमद नगर पर आक्रमण किया। परन्तु चाँद बीबी के युद्ध कौशल और नीति चतुरता से सफल नहीं हुआ। परन्तु चाँद बीबी की अहमद नगर के सरदारों ने हत्या कर डाली अतएव १५६६ ई० में अहमद नगर पराजित हुआ और मुग़ल राज्य में मिला लिया गया।

१६०० ई० में खानदेश के बादशाह बहादुरशाह ने विद्रोह करना चाहा परन्तु असीर गढ़ के घेरे में अकबर ने किलेदार पर रुपये का जादू डाल कर उसे पराजित किया और खान देश राज्य में मिल गया।

इस प्रकार अकबर का साम्राज्य पूर्व में बंगाल से पश्चिम में कन्धार तक तथा उत्तर में काश्मीर से दक्षिण में खानदेश तक सर्वत्र फैल गया।

परन्तु अकबर को अपने अन्तिम दिनों में शान्ति नहीं मिली। १५६६ में मुराद की मृत्यु हो गई और १६०४ ई० में उसके दूसरे पुत्र दानियाल की भी उसी प्रकार अति मदिरापान से मृत्यु हो गई। सलीम प्रतीक्षा करते-करते ऊब गया था। वह भी राज्य सुख चाहता था अतएव १६०० ई० में उसने इलाहाबाद में स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी। और १६०२ में ई० वीरसिंह बुन्देला द्वारा अकबर के मंत्री और मित्र अबुलफ़जल को मरवा डाला। इससे अकबर को बड़ा दुःख हुआ। परन्तु १६०५ ई० में जब उसे संग्रहणी का रोग हो गया तो उसने सलीम को क्षमा कर दिया और उसे उत्तराधिकारी घोषित करके स्वर्ग का प्रस्थान किया।

अकबर का राज्य प्रबन्ध

इसे समझने के लिये शेरशाह के राज्य प्रबन्ध को ध्यान से फिर देखिये। क्योंकि राज्य व्यवस्था का आधार भूमि व्यवस्था है और भूमि व्यवस्था का कार्य्य शेरशाह के काल में करने वाला टोडरमल अपने परिपक्क अनुभव का लाभ अकबर को देने के लिये जीवित था।

समस्त साम्राज्य १५ सूबों (अहमद नगर, बरार, खान देश, मालवा, अजमेर, गुजरात, काबुल, लाहौर, मुल्तान, दिल्ली, आगरा, अवध, इलाहाबाद, बिहार और बंगाल) में बँटा था। प्रत्येक सूबा सरकारों में, सरकार परगनों में और परगने ग्रामों में बँटे थे। उनके अधिकारी भी लगभग वही थे जो शेरशाह के काल में थे। परन्तु राज्य प्रबन्ध को भागों में बाँट दिया गया था। उनमें एक भाग केन्द्र के हाथ में था दूसरा प्रान्तीय सूबेदारों के अधिकार में।

केन्द्र के आधीन, सन्धि और युद्ध, धार्मिक मामले, प्राण दण्ड, माल तथा आय विभाग, सूचना विभाग और माल-मन्त्री तथा सूबेदार के मतभेद के विषय थे। शेष समस्त बातों में प्रत्येक प्रान्त स्वतन्त्र और सूबेदार की सम्पूर्ण इच्छा पर निर्भर थे। सूदबेरों से ही नहीं वरन् सरकारों और परगनों तक का उक्त विषयों का सम्बन्ध सीधा केन्द्र से था। यद्यपि इन सब कार्य्यों के सञ्चालन में सूबेदार का पूर्ण हाथ रहता था परन्तु केन्द्र की आज्ञानुसार ही वह ये सब कार्य्य करता था।

केन्द्रीय शासन में अकबर की इच्छा ही सर्व-प्रधान थी। परन्तु राज्य-कार्य में सहायता देने के लिये वकील (प्रधान-मन्त्री) दीवान (मालमन्त्री) बख्शी (राज्य सेना का धनमंत्री) खाने सामान (राज्यान्न सम्पद का मन्त्री) काज़ी उल्कज्जात (प्रधान न्याया धीश) मोहतसिब (कार्य्य वाहक मन्त्री जनता

का नियम-पालन देखने वाला) मुंशरिफ़ (कोषाध्यक्ष) मुस्तौफी (हिसाब-किताब जाँचने वाला) मीर बहर (जल-सेनाध्यक्ष) सदरुस्सदर (धार्मिक दानादि प्रबन्धक) तोपखाने का दारोगा, डाक का दारोगा और टकसाल का दारोगा थे।

सेना संगठन

४ प्रकार की सेना थी। अहदी (बादशाह की अंग रक्षक सेना) सबसे अधिक वेतन राजकोष से पाती थी। स्थायी सेना-बादशाह की निजी सेना थी, जिस पर सम्राट् का सम्पूर्ण नियन्त्रण था और उन्हें वेतन सीधा राजकोष से मिलता था। मनसबदारों की सेना जिसमें कुल ३३ दर्जे थे जो १० से लेकर १० हज़ार घुड़सवार तक रखते थे। इन्हें वेतन मनसबदारों द्वारा राजकोष से मिलता था। आधीन राज्यों की सेना जो अपनी सेना का व्यय स्वयं देते थे। और आवश्यकता पर अपनी सेना सम्राट् की सेवा को भेजते थे।

मनसबदार दो प्रकार के थे। पहले मनसबदार जाति और दूसरे मनसबदार ख़ास। मनसबदार जाति वे लोग थे जो अपनी स्वतन्त्र सेना भी रख सकते थे, जिसकी संख्या मनसबदार ख़ास के समान ही होती थी अतएव उनको जितनी सेना उनके मनसब के अनुसार निश्चित थी उससे दुगुना वेतन राजकोष से दिया जाता था। दूसरे मनसबदार ख़ास जो सम्पूर्ण तथा सम्राट की सेवा में ही रहते थे। यद्यपि मनसबदार ज़ात को सूबेदारी अथवा अन्य अधिकार प्राप्त रहते थे परन्तु उन पर ज़िम्मेदारियाँ अधिक रहती थीं।

समस्त [illegible]ा में पैदल, घुड़सवार, तोपखाना और जलसेना [illegible] थी, हाथियों की सेना भी थी जिसके दस-दस या बीस-बीस के रिसाले थे। काश्मीर, लाहौर, इलाहाबाद और बंगाल

में नव-निर्माण कार्य्य होता था और यही नौ सेना के केन्द्र थे।

समस्त भूमि की नाप बाँस की जरीबों से की गई तथा उसके ४ विभाग कर दिये गये। पोलज—सदा जोती-बोई जाने वाली, परती—एक फ़सल या एक साल ख़ाली छोड़कर बोई जाने वाली, छोछर एक बार बोई जाकर चार वर्ष तक न बोने के योग्य और बंजर ऊसर जिसमें अन्न की उपज अत्यन्त कठिन थी।

भूमि प्रबन्ध

टोडरमल ने इस प्रकार भूमि पर नियंत्रण कर सालाना बन्दोबस्त की बुराइयों को दूर करने के लिये दो-तीन वर्षों की उपज का औसत निकाल कर कुल औसत का ⅓ भाग लगान निश्चित कर दिया और दस-साला बन्दोबस्त की प्रथा चालू कर दी। इससे किसानों को अपने लगान का हर समय पता रहने के कारण अधिकारियों के अधिक लेने की सम्भावना दूर हो गई। ऐसा प्रबन्ध किया गया कि यदि किसी आकस्मिक दुर्घटना से अन्न की उपज न हो तो न केवल लगान में छूट दी जाय वरन् तकावी बीज आदि बाँटकर किसानों की सहायता की जाय। लगान भी नकद रुपयों में देने की प्रथा पर बल दिया गया। यद्यपि अन्न के रूप में भी लगा दिया जा सकता था।

अकबर स्वयं सर्वोपरि न्यायाधीश था। परन्तु काजी उल्कज्जात दूसरा न्याय का अधिकारी था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक स्थान पर काज़ी नियत थे जो हिन्दुओं के झगड़े उनकी रीति-रिवाज़ का ध्यान रखकर तथा मुसलमानों के झगड़े कुरान के नियमों के अनुसार करते थे। मुक़द्दमों का समस्त कार्य मौखिक लेता था। आजकल का-सा वकील मुहर्रिरों के द्वारा न्याय को बेचने का प्रबन्ध नहीं था। न्याय में देर नहीं लगती

न्याय-विभाग

अकबर की सभा के नव रत्न।

अकबर हिन्दू भेष में

अब्बुल फ़ज़ल

थी। परन्तु दण्ड व्यवस्था कठोर थी। कोड़ों, हवालात के दण्ड छोटे-छोटे अपराधों पर दिये जाते थे। विद्रोह अथवा हत्या का दण्ड प्राण-दण्ड ही था। अपने प्रान्त की न्याय व्यवस्था का उत्तरदायित्व सूबेदार पर था तथा उसकी अपील अकबर तक हो सकती थी।

शेरशाह की भाँति गुप्तचर विभाग का केन्द्रीय संगठन था। जिसका समस्त राज्य में जाल फैला हुआ था।

गुप्तचर विभाग

इनका मुख्य काम सरकारी अफसरों के भ्रष्टाचार की सूचना सम्राट् तक पहुँचाना था। अतएव डाक व्यवस्था का भी उत्तम प्रबन्ध था।

घोड़ों और पैदल डाकियों द्वारा समस्त साम्राज्य से नित्य डाक आया करती थी। प्रत्येक ६ मील पर घोड़े बदलने की

डाक व्यवस्था

व्यवस्था थी। परन्तु डाक व्यवस्था में डाकियों पर अधिक विश्वास किया जाता था, प्रत्येक सरकार में वाकया नवीस समस्त सरकार की सूचनायें भेजा करते थे।

अकबर को यातायात के साधन में शेरशाह की बनवाई हुई सड़कें मिल गईं। उसने उन्हीं का सुधार कराया। वृक्ष, सरायें

यातायात

और धर्मशालायें बनवाईं। अकबर को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उसने इन सरायों में निर्धन हिन्दू-मुसलमान यात्रियों के भोजन का भी प्रबन्ध किया।

अकबर की धार्मिक नीति

शेरशाह के वर्णन में हम जिस स्थिति का वर्णन कर आये हैं वे स्थितियाँ जैसे-जैसे दिन बीतते जाते थे आगे ही बढ़ती जाती

थी। भारतीय मुसलमानों ने यह समझ लिया था कि भारतवर्ष में हिन्दू जाति का विरोध करके जीवित रहना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। तथा हिन्दू भी अपनी रक्षा के लिये सम्पूर्ण तथा सजग थे। जाति बन्धन में ही उन्हें एक ऐसी अभेद्य प्राचार में बन्द कर दिया था जिस पर निरन्तर आघातों से भी मुसलमान कुछ वास्तविक लाभ नहीं पा रहे थे। कहीं दो-चार व्यक्ति तलवार की नोक पर, पैसे के लोभ से या प्रपञ्च से मुसलमान बनायें जा सके तो बस इतनी ही सफलता वे प्राप्त कर सके। हिन्दू स्त्रियों का बलपूर्वक हरण ही एक मार्ग था जिससे वे अपनी संख्या-वृद्धि कर सकते थे परन्तु हिन्दुओं ने बाल-विवाह के नियम बना दिये जिससे हिन्दू बालिकायें मुसलमान धर्म के अनुसार मनसूहा (विवाहिता) होने के कारण अग्राह्य हो गईं। फिर सधवा या विधवा हिन्दू स्त्री का चरित्र इतना उज्ज्वल और शक्ति-सम्पन्न था कि उसके लिये पतिव्रत धर्म का त्याग सहज सम्भव न था। मृत्यु उसकी सहेली थी उसके साथ खेल करना उसके लिये मुसलमान की अर्धांगिनी होने की अपेक्षा सरल था। अतएव सब उपाय करके भी मुसलमानों को अपने धर्म प्रचार में सफलता नहीं मिल रही थी। ऐसी दशा में अकबर का जीवनकाल देश के लिये अमूल्य देन थी। उसने अपने काल की इस प्रवृत्ति को अपने राज्य के आरम्भिक बीस वर्षों में खूब पहिचान लिया था। अतएव उसमें परिवर्त्तन प्रारम्भ हो गया।

अकबर के इस परिवर्त्तन के कई कारण थे। राजा भारमल की कन्या जोधाबाई अकबर के अन्तःपुर की महारानी होते हुये भी हिन्दू आचार का पालन करती थी। अकबर की धर्म सभा में हिन्दू विद्वानों की उदार भावना तथा मुसलमानों की संकीर्ण

बीर पत्ता

जयमल

राणा प्रताप

फलौदी
नागौर
जोधपुर
अजमेर
आमेर
मेवात
दिल्ली
मथुरा
आगरा
बियाना
धौलपुर
ग्वालियर
सिरोही
गोगूंदा
हल्दीघाटी
चित्तौरगढ़
उदयपुर
बूंदी
डूंगरपुर

हल्दीघाटी की लड़ाई
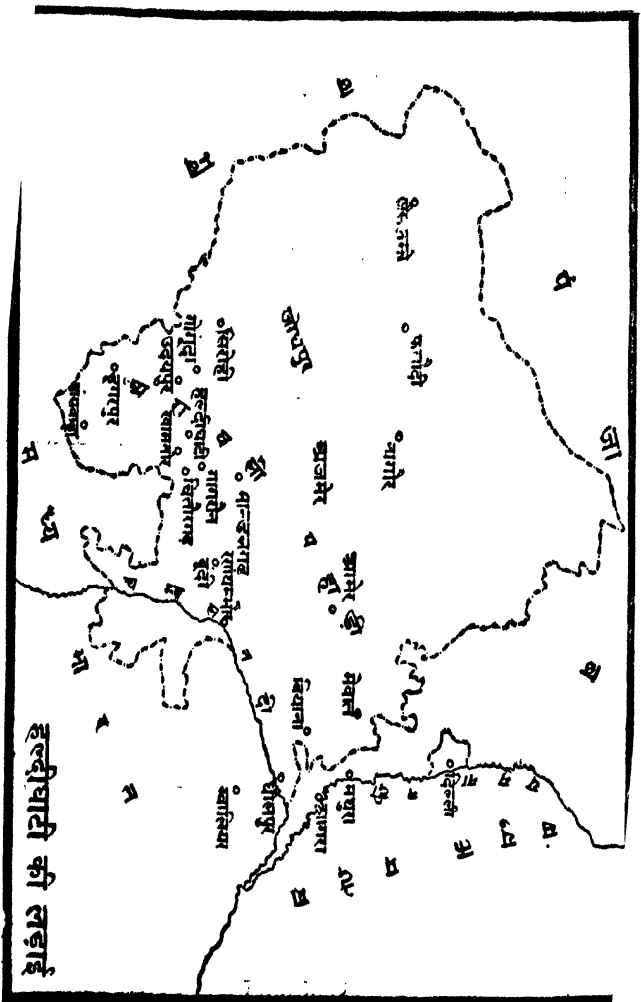
हृदयता का उसे प्रति बृहस्पतिवार को मिलता था। उसके मित्र और मंत्री शेख़ मुबारक के सुपुत्र अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी सूफ़ी थे। हम पहले कह आये हैं कि सूफ़ी धर्म भारतीय वेदान्त का मुसलमानी रूप है। इन मित्रों ने उसे सत्य का प्रेम बराबर सुझाया। तथा उसका परम सुहृद बीरबल, और रहीम ख़ानख़ाना (बैरमख़ाँ) के पुत्र दोनों कवि और प्रेमी थे। रहीम की उदार प्रवृत्ति हिन्दू धर्म की ओर स्पष्ट थी। अतएव अकबर की कट्टरता दूर हो गई। उसका हिन्दू धर्म के प्रति अनुराग हो गया।

दुर्भाग्य से हिन्दू जाति शुद्धि के कार्य को छोड़ चुकी थी। सम्भव था कि यदि भारतीय विद्वान् शुद्धि का कार्य करते तो सूर्य और अग्नि का उपासक अकबर हिन्दू हो जाता। परन्तु अपने लिये उक्त मार्ग बन्द पाकर उसने सब धर्मों के योग से एक नवीन धर्म की स्थापना "दीन इलाही" के नाम से की। दीन इलाही में उसने ख़लीफ़ाई सिद्धान्त का अनुसरण करके राजा को सब सत्ता सौंपी गई थी। उसने खुतबा में अल्लाहो अकबर शब्द जोड़ दिया जिससे परमात्मा महान् है के साथ परमात्मा का रूप और अकबर की एकता की ध्वनि भी निकलने लगी।

दीन इलाही की विशेषता यह थी कि उसमें सब धर्मों के श्रेष्ठ सिद्धान्तों का संग्रह था जो उस काल की प्रवृत्ति का परिचायक था। सम्राट् की यह उदारता थी। उसने इस धर्म के प्रचार के लिये किसी अनुचित साधन का प्रयोग नहीं किला, आज छल और प्रपञ्च से, प्रलोभन और हत्या के द्वारा संसार में ईसाई धर्म के प्रचार के ठेकेदार यदि पक्षपात छोड़कर अकबर के दीन इलाही की भीतरी भावना तथा उस काल की स्थिति की ओर ध्यान देकर विचार करें तो उन्हें इसमें अकबर की मूर्खता के

स्थान पर विशुद्ध सुधार के साथ राष्ट्रीयता की भावना दिखाई दे सकती है। आज यदि आलोचक की दृष्टि से ईसाई धर्म के प्रचार को देखा जा सके तो लज्जा से मनुष्य का सिर नीचा हो जायगा।

अब्दुलकादिर बदायूनी ने अकबर को सिजदा करवा ने गौबध रोकने, और सुअर का पालन करने की आज्ञा देने के कारण काफिर कहा है। इसमें केवल सिजदा करना ऐसी बात है जिसके समर्थन के लिये हमें मुसलमान इतिहास के खलीफाओं के सिजदे कराने की प्रथा का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। शेष बातें उसके विचार और बुद्धिमत्ता की द्योतक हैं जिनके लिये मुसलमान धर्म के अनुसार भी उसे अपराधी नहीं ठहराया जा सकता। क्योंकि गोबध मुसलमान धर्म में भी आवश्यक कर्त्तव्य नहीं है। तथा सुअर पालना मुसलमानों के लिये उसने आवश्यक नहीं बताया था। अकबर मुसलमान था परन्तु आज के जैसे कठमुल्लों का भक्त नहीं था। मृत्यु के समय उसने कलमा पढ़कर रसूल को परमात्मा का दूत स्वीकार किया। इससे बढ़कर उसके मुसलमान होने का क्या प्रमाण होगा।

इस प्रकार हम उसके जीवन को ३ भागों में धार्मिक दृष्टि से बाँट सकते हैं—

१-१५५५-१५७५ तक—इस्लाम का कट्टर भक्त, नमाज और रोजे का पावन्द, मसजिदें बनवानेवाला और मुल्लाओं और फकीरों की जियारत करने वाला। २-१५७६-८१ तक—उसकी बुद्धि का पूर्वोक्त कारणों से विकास, सत्य की खोज की प्रवृत्ति, फतहपुर सीकरी के इबादतखाने में सब धर्मों के सिद्धान्त सुनना, मांस, लहशुन, प्याज का त्याग, नया खुतवा पढ़वाया जिसे अबुलफजल ने लिखा था तथा शेख मुबारिक की घोषणा

पढ़वाना जिसमें समस्त धार्मिक अधिकार सुल्तान को दे दिये गये थे।

३-१५८१-१६०५ तक—नवीन धर्म की भावना (दीन इलाही) ईश्वर एक है, देवी-देवता और पीर-पैगम्बर केवल पारस्परिक कलह के कारण हैं। इसका सबसे बड़ा पुजारी स्वयं बादशाह है। सबको अपना सर्वस्व उसी की भेंट करना चाहिये। किन्तु इस धर्म को केवल १८ मनुष्यों ने माना जिनमें हिन्दुओं में अकेले वीरबल थे।

अकबर का साहित्य और कला प्रेम

अकबर स्वयं कवि था उसकी रचनायें ब्रजभाषा में उपलब्ध हैं जिनमें शृंगार-रस की सुन्दर कविता है। अशिक्षित अकबर का ब्रजभाषा पद-विन्यास मधुर और कोमल है इसके अतिरिक्त वह कविता प्रेमी था। वीरबल ब्रजभाषा का अच्छा कवि था। अब्दुर्रहीम खानखाना के बरवै और दोहे हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

गंग कवि के एक छप्पय छन्द का उसके हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा उसने अपने राज्य-भर में गोबध एक दिन के लिये बन्द करा दिया। अबुलफजल की आईन अकबरी के ही आधार पर समस्त अकबर का इतिहास लिखा गया है। इसके अतिरिक्त उसने इस्लाम धर्म का आदि से अपने काल तक का इतिहास लिखवाकर मुसलमान जाति का परम उपकार किया। फैजी संस्कृत का भी विद्वान् था। उसने अपने निरीक्षण में रामायण, महाभारत, गीता, लीलावती के नलदमयन्ती, हितोपदेश और पंचतंत्र के फारसी अनुवाद कराये। तथा अनेक अरबी पुस्तकों का सुन्दर फारसी में अनुवाद किया गया। इस प्रकार अकबर का काल उसकी साहित्यिक रुचि का परिचायक है। इसी काल

में महात्मा तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, रसखान जैसे भक्त कवि हुये। इनमें से कुछ-कुछ का परिचय हम अलग देंगे।

गानविद्या

गान विद्या से भी उसे अपार प्रेम था। उसके तानसेन का नाम तो बहुतों ने सुना होगा परन्तु बैजूबावरा और हरिदास जैसे सन्त गायकों का जन्म भी उसी के काल में हुआ।

भवन-निर्माण

भवन-निर्माण से भी उसे प्रेम था। इलाहाबाद का क़िला, दिल्ली में हुमायूं का मक़बरा, फतहपुर सीकरी के भव्य-भवन उसकी कलाप्रियता के उदाहरण हैं जिनमें कुछ विशुद्ध मुसलमानी ढंग पर कुछ विशुद्ध हिन्दू-शैली पर (जोधाबाई का भवन) कुछ मिश्रित शैली पर (बुलन्द दरवाज़ा) है। भारतवर्ष में इस बुलन्द दरवाजे से जो १७६ फीट ऊंचा है अन्य कोई फाटक नहीं है।

चित्रकला

चित्रकला से भी उसे प्रेम था। उसके काल के कलाकार अब्दुस्मद वसवन्त और वसावन के चित्र आज भी लन्दन अजायब घर की शोभा बने हुये हैं इस कालके चित्रों में चटकीले रंगों की योजना और हाशिये पर बहुत ध्यान दिया जाता था। चित्र में तैलों का उपयोग कम होता था तथा सजावट का अधिक ध्यान रक्खा जाता था। उसने रामायण आदि पुस्तकें भावों के अनुसार चित्रित भी करवाईं।

सुलेख

सुलेख से भी अकबर को विशेष प्रेम था लिपियों को विभिन्न आकार और सौष्ठव के विचार से आठ क्रमों में बाँट दिया गया। तथा प्रत्येक प्रकार के लिपि लेखकों का सम्राट

सम्मान करता था।

अकबर के नवरत्नों में भारमल मानसिंह, वीरबल हिन्दू थे। तानसेन नौमुस्लिम, अबुलफ़ज़ल, फैज़ी, अब्दुर्रहीम खान-खाना, हकीम हम्माम और मुल्ला दो पियाज़ा मुसलमान थे। हकीम हम्माम उसके बावर्ची-खाने का दारोगा था। मुल्ला दो पियाज़ा अरब से पधारे थे। विद्वान् और सरल-स्वभाव के थे अतएव बहुधा वीरबल के लिये विनोद की वस्तु (मजाक के तख्तए मश्क़) बन जाते थे।

अकबर का चरित्र उसके सम्बन्ध में हम बहुत-कुछ कह चुके हैं यहाँ उन बातों को संक्षेप में ही कहना उचित जान पड़ता है। आप कल्पना करें—

५ फ़ीट ७ इंच लम्बा गेहूँआ शरीर तेजस्वी मुखमण्डल, चौड़ा मत्था, बड़ी और तेजपूर्ण आंखें, लम्बी भुजाओं वाला एक बलिष्ठ पुरुष आपके समक्ष है। जब बोलता तो गम्भीर और स्पष्ट, मुख पर विनोद और प्रसन्नता की छाया है, ढाढ़ी साफ़ है मूंछी नुकीली हैं, अभिमान के स्थान पर आप एक नम्र और शान्त-शिष्ट व्यवहार पायेंगे। उसमें अपने शत्रुओं को स्नेह से जीत लेने की शक्ति है। रणथम्भौर के किले में मानसिंह का सेवक होकर चला जाता है और राजा को मित्रता के बन्धन में बाँध लेता है। वीरों का आदर करने के लिये ही। जयमल और पुत्ता की प्रस्तर मूर्त्तियाँ आपको फतहपुर सीकरी के फाटक पर मिलेंगी। रघुनाथ उसका शत्रु है प्रताप का मित्र। उसका बच्चा मृत्युशय्या पर पड़ा है उसके घर के चारों ओर पहरा है। रघुनाथ पकड़ लिया गया है क्योंकि पुत्र को देखने आया था। सेनापति उसे मृत्यु-दण्ड दे चुका है परन्तु अकबर को कुछ और करना था। उसने पूछा, यदि तुम्हें छोड़ दूं तो तुम क्या करोगे ?

रघुनाथ का उत्तर है कि प्रताप से मिलकर तुम्हारे विनाश का उपाय। परन्तु अकबर वीर का उपासक है रघुनाथ को मृत्यु-दण्ड कैसे दिया जाय।

दिल्ली की सड़कों पर एक हाथी बिगड़कर उपद्रव मचा रहा है। एक राजपूत सैनिक सामने खड़ा है। संयोग से एक बालक सड़क पर आ गया। राजपूत उसे पकड़ने के लिये झपटा परन्तु हाथी निकट आ चुका है। बालक की मृत्यु निश्चित है। कहीं से सहसा एक व्यक्ति तीर की भांति झपटकर बालक को उठा लेता है और हाथी के मस्तक पर भाले की चोट देता है। राजपूत उसका परिचय चाहता है परन्तु वह आश्चर्य से चकित हो जाता है जब उसे विदित होता है कि यही सम्राट् अकबर है जिसके मारने की प्रतिज्ञा लेकर राजपूत घर से चला था। ऐसे पराये दुःख में अपने को संकट में डाल देनेवाले का प्राण राजपूत जाति की धरोहर है। उसके इन्हीं गुणों ने उसे सर्वप्रिय बना दिया।

उसकी तीन रानियाँ हिन्दू हैं। अतएव अकबर सम्पूर्ण मुसलमान नहीं रह सकता। उसे कभी-कभी तिलक लगाकर बैठने और पूजन करने का भी प्रेम है। कदाचित उस समय शुद्धि का प्रचार होता ?

वह स्वयं मांस नहीं खाता। लशुन, प्याज को भी घृणा की दृष्टि से देखता है सब से स्नेह-पूर्ण व्यवहार करता है।

तुलसीदास के शब्दों में 'सुर नर मुनि देखे बहुतेरे, एक-एक अवगुण सबके रे' के अनुसार उसमें एक अवगुण भी है। वह विलासी है मीना बाजार उसके अपयश का तथा उदयपुर की राजकुमारी जोधपुर के राजवंशज पृथ्वीराज की धर्मसङ्गिनी को कटार की धार पर दिया हुआ उपदेश उसके कलङ्क हैं। परन्तु

उसने बलपूर्वक पर-स्त्री-हरण करने की प्रवृत्ति कहीं नहीं दिखाई। हम उसकी दुर्बलता को जानकर भी उसे केवल इसलिये क्षमा कर सकते हैं कि अलाउद्दीन आदि मुसलमान राजाओं ने जहाँ पर-स्त्री छीनकर अपनी राक्षसता का परिचय दिया था वहाँ केवल एक दुर्बल मनुष्य था।

अक़बर के काल को हम भारत में मुसलमानों के काल का सर्वश्रेष्ठ भाग कह सकते हैं इसका कारण केवल उसका राज्य-प्रबन्ध ही नहीं वरन् भारतवर्ष का सर्वतोमुखी विकास है। वस्त्र-कला इस समय भारतवर्ष की इतनी उन्नत थी कि सारे संसार में श्रेष्ठतम वस्त्र भारतीय वस्त्र था। इसके अतिरिक्त उस काल में भारतवर्ष में कुछ ऐसी विभूतियाँ उत्पन्न हुईं जिनका चरित्र भारतवर्ष के लिये सदैव आदर्श रहेगा। बिना उनके चरित्र पर विचार किये अकबर के काल का विवरण सम्पूर्ण नहीं हो सकता। उनमें राजनीतिक-क्षेत्र में सर्वप्रथम स्थान राणा प्रताप-सिंह का है। हम पहले उन्हीं का वर्णन करेंगे।

इकत्तीसवां अध्याय

राणा प्रतापसिंह

महाराजा साँगा की मृत्यु के उपरान्त उनके उत्तराधिकारी विक्रमादित्य हुये। वे उस समय अप्राप्त वय थे अतएव राज्य का प्रबन्ध बनवीर करता था। उसने विक्रमादित्य की हत्या कर डाली तथा उदयसिंह उस समय ढाई वर्ष के थे। पन्ना धाय ने अपने पुत्र का बलिदान करके किस प्रकार रक्षा की वह इतिहास का अमर आदर्श है। उदयसिंह का पालन-पोषण कुम्भलमेर में हुआ। जब वे वयस्क हुये तो उन्होंने अपना राज्य पाया।

अकबर ने जब चित्तौर पर आक्रमण किया उस समय उदयसिंह ने आधीनता स्वीकार नहीं की किन्तु पराधीनता स्वीकार न करके उदयपुर चले गये। जयमल और पुत्ता की वीरगति की कहानी हम कह चुके हैं।

१५७२ ई० में उदयसिंह का शरीर-पात हो गया तो राज्याधिकार उनके दूसरे पुत्र जयमल को प्राप्त हुआ। परन्तु उदयपुर के सरदार प्रतापसिंह को चाहते थे। अतएव उन्होंने जयमल को गद्दी से उतारकर प्रताप से प्रार्थना की वे राज्य कार्य सँभाले।

प्रताप ने राज्य-कार्य सँभालना तो स्वीकार किया परन्तु सरदारों के साथ प्रतिज्ञा की—जब तक चित्तौड़ का अधिकार न छीन लेंगे पलंग पर न सोयेंगे राजसी पात्रों में भोजन न करके पत्तों पर भोजन करेंगे। प्रतिज्ञा करना सरल है परन्तु उसका निर्वाह करना कठिन है।

चित्तौड़ पर अधिकार किसी सामान्य व्यक्ति का नहीं था भारतेश्वर अकबर के सूर्य को ढक देना प्रतापसिंह के लिये

असम्भव था। परन्तु प्रतिज्ञा तो असम्भव को सम्भव बनाने के लिये होती है सुख की नींद सोने के लिये नहीं।

हल्दी-घाटी के युद्ध का वर्णन हम पहले कर चुके हैं २२००० सैनिकों में चौदह हजार मारे जा चुके थे। परन्तु प्रतापसिंह का मानसिक शत्रु मानसिंह कहाँ है। उसे युद्ध की चुनौती दी गई थी। उसका सामना किये बिना प्रताप युद्ध-भूमि कैसे छोड़े। शत्रु-सेना में चेतक घोड़ा घूम रहा है मानसिंह की तलाश में। रत्न-जटित हौदा दिखाई दिया। चेतक को एड़ लगी घोड़े ने हाथी के मस्तक पर पाँव टेक दिये और प्रतापसिंह के भाले ने सलीम को छेदने के लिये चोट क । हौदा चुम्बक का बना था आकर्षण से निशाना चूक गया। महावत घायल होकर गिर पड़ा हाथी भाग खड़ा हुआ। भारत के भावी सम्राट राजकुमार के शिर से मृत्यु का वार उचट गया परन्तु प्रताप!

चारों ओर से शत्रु-सेना ने घेर लिया है। दाँतों में घोड़े की लगाम दबाये दोनों हाथों से भाला और तलवार का काम हो रहा है अकेला प्रताप है चारों ओर शत्रु सेना। अनेकों घावों से शरीर क्षत-विक्षत हो चुका है। घोड़ा भी घायल है। परन्तु युद्ध से भागना राजपूत-धर्म के विरुद्ध है।

पीछे से किसी ने राजमुकुट उतार लिया। प्रताप चौंक पड़े परन्तु देखा कि यवन अब उसे घेरने के स्थान पर एक अन्य राज-छत्रधारी की ओर बढ़ रहे हैं। झाला सरदार माना ने कहा, क्षमा कीजिए आज के युद्ध का राजा मैं हूँ, मैं आज्ञा देता हूँ आप युद्ध-भूमि का त्याग करें। अपने प्रिय सेवक की स्वामिभक्ति देखकर प्रताप की आँखों में आँसू आ गये। प्रताप ने युद्ध-भूमि छोड़ दी।

चेतक आहत हो चुका था। एक नाला पार करने की उछाल ने

उसकी बची-खुची शक्ति लगा दी। स्वामी को पीछा करनेवाले दो यवन सैनिकों से बचाकर उसने प्राण त्याग दिये। आज भी चेतक का चबूतरा अपने स्वामी की मूक-पशु-सेवा का उत्तम आदर्श बनकर उपस्थित है।

सहसा दो बार गोली की आवाज हुई और नीले घोड़े के सवार को किसी ने पुकारा। प्रताप ने स्वर पहचान लिया। उसी का भाई, मुगलों का सहायक शक्तसिंह नाले को पार करके आ रहा है। प्रताप ठहर गये, सीना खोलकर खड़े हो गये। बोले, आओ भाई! सूअर के शिकार के समय तुम्हारे हठ और मेरे अज्ञान से जिस ब्राह्मण पुरोहित ने रक्त दान करके हम लोगों को एक दूसरे का वध करने से रोक दिया था। जिसके कारण तुम देश से चले गये तथा मुगलों के सहायक बन गये उस ब्राह्मण का रक्त प्रायश्चित्त आज हो जाय। तुम्हारी कटार से छिद्र कर यह छाती अपना रक्त देने को प्रस्तुत है।

शक्तसिंह पैरों पर गिर पड़े। क्षमा माँगी, दोनों भाई आसुओं की धारा में पुराना विरोध बहाकर भाई बने। परन्तु प्रताप का बन्धुत्त्व सुख का बन्धुत्त्व नहीं था। वन-वन फिरना था, भूखे रहना था और निरन्तर युद्ध कराना था।

प्रताप ने निबाह दिये एक दो नहीं पूरे २२ वर्ष। पर्वत की कन्दराओं में रहना, सूखी रोटी खाना और शत्रु की आशंका से जागते हुये सोना। एक दिन वन के अन्न की सूखी रोटी उनकी कन्या के हाथ से वनविलाव छीन ले गया। मानव हृदय कहाँ तक सहन कर सकता है। प्रताप लड़की का रोना सुनकर विह्वल हो उठे। अकबर को सन्धिपत्र भेजा गया। परन्तु पृथ्वीराज के पत्र ने उस सन्धि पत्र को रद्दी कागज बना दिया। फिर युद्ध और फिर कष्ट।

विवश होकर प्रताप ने मेवाड़ छोड़ने का निश्चय किया परन्तु उनके मंत्री भामाशा के उदार दान ने उन्हें शक्ति दी। कहते हैं भामाशा ने प्रताप को इतना धन दिया था जिससे २५००० सेना १२ वर्ष तक रक्खी जा सकती थी। फिर सैन्य संगठन किया गया। अब की बार विजय प्रताप के हाथ रही। अजमेर गढ़मण्डल, चित्तौड़ आदि को एक किले छोड़कर समस्त मेवाड़ पर फिर राजपूत-पता का फहराने लगी। परन्तु चित्तौड़ जिसके लिये प्रतिज्ञा थी हाथ न आया।

अकबर ने भी सम्भवतः प्रताप को इस समय नहीं सताया। अन्ततः वह दिन आ गया जो सबके लिये निश्चित है। प्रताप मृत्यु शय्या पर थे, विकल और अधीर। सरदारों ने पूछा आपको क्या कष्ट है उत्तर मिला "कष्ट कुछ नहीं केवल दुःख है कि जो बालक छप्पर में पगड़ी उलझ जाने के कारण छप्पर के स्थान पर राजमहल चाहता है उसके नेतृत्त्व में बाप्पारावल का यश किस प्रकार बच सकेगा।"

सरदारों ने प्रतिज्ञा की, बाप्पा रावल की दुहाई देकर शपथ-ली कि मेवाड़ का गौरव बचाया जायगा, अमरसिंह को आधी-नता स्वीकार न करने दी जायगी। इस प्रकार अन्त तक वंश-मर्यादा का ध्यान रखने वाला सेनानी प्रताप संसार छोड़कर चला गया। आज की दशा का मिलान कीजिये चार चाँदी के टुकड़ों पर ईमान बेचने वाले हमारे समुदाय के लोग कहाँ हैं राजा होकर स्वदेश मर्यादा के लिये मरने वाला प्रताप !

प्रताप तुम धन्य हो तुमसे प्रेरणा लेकर भारतवष फिर जागेगा और उसकी कीर्त्ति पता का फिर संसार में फहरायेगी। अवसर आ गया है अब देर थोड़ी ही है।

प्रताप का व्यक्तित्त्व-अकबर का जैसा ही ऊँचा और विशाल शरीर, गोराई की ओर झुका हुआ गेहुआँ रंग और बलिष्ठ आकार प्रकार। बचपन से स्वाभिमानी परन्तु तपस्वी प्रताप

के जीवन को हम दो शब्दों में देश के लिये बलि होने वाला कह सकते हैं ।

तत्तीसवां अध्याव

तुलसीदास

अकबर के काल का दूसरा महापुरुष तुलसीदास था । इनका जन्म १४६८ ई० में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की मृत्यु के कारण साधु नरहरिदास ने उनका पालन किया । सम्पूर्ण शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके विवाह हुआ और स्त्री की शिक्षा से संयासी हो गये । अकबर और तुलसी दोनों महान् थे उसका हम दोनों की तुलनात्मक ढंग से व्याख्या करेंगे ।

तुलसी	अकबर
विद्वान् शिक्षित और सूक्ष्मदर्शी थे ।	बिना पढ़ा लिखा परन्तु सूक्ष्मदर्शी था ।
तुलसी हिन्दू जनता के हृदय सम्राट् थे मीराबाई ने उनकी महत्ता स्वीकार की ।	अकबर का विरोध मुसलमान और हिन्दू दोनों ने किया यद्यपि वह भारतवर्ष का सम्राट था ।
तुलसी ने हिन्दू जनता के मत मतान्तर को मिटाकर सबको एक स्तर पर लाने की चेष्टा की ।	अकबर ने विभिन्न धर्मों के पारस्परिक विरोध को मिटा कर सबको .एकस्तर पर लाने की चेष्टा की ।
तुलसी ने दशरथ पुत्र राम को परब्रह्म परमात्मा का प्रतीक माना और उन्हीं की उपासना को सर्वश्रेष्ठ बताया ।	अकबर ने स्वयं को परमात्मा का भेजा हुआ दूत घोषित किया तथा अपने सामने आत्म समर्पण चाहा ।
तुलसी ने किसी धर्म या	अकबर ने भी सभी को

सूरदास
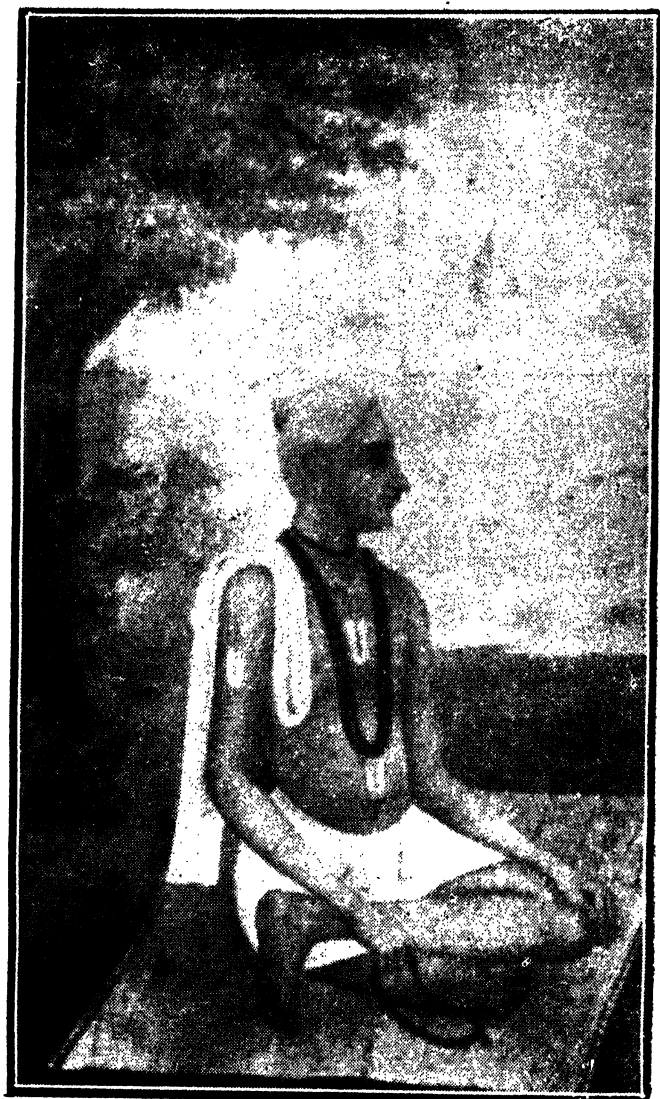
तुलसीदास

सम्प्रदाय की निन्दा नहीं की। तुलसी ने अपने धर्म पर चलते हुये भी सबको उत्तम आचारण और बाह्याडम्बर से मुक्त करने की प्रवृत्ति दिखलाई।	स्वधर्म पालन की स्वतन्त्रता दी परन्तु उनके दोषों को वह समझता था।
तुलसी स्वयं स्मार्त्त वैष्णव थे, वे आचार-विचार के आश्रम धर्म के सदैव पक्षपाती रहे। परन्तु विरोध किसी से नहीं किया।	अकबर स्वयं मुसलमान रहा उसने भी अपने आचार को जिसे उसने उचित समझा पालन किया और व्यर्थ आडम्बर को छोड़ दिया।
तुलसी स्वयं कला प्रिय और विद्वान् थे। बनारस में राम मन्दिर का निर्माण कराया तथा चोरों को भी दण्ड नहीं दिया।	कला प्रिय था, सीकरी के भवन बनवाये अपने प्राण घाती को दण्ड नहीं दिया।
तुलसी कवि थे अपने काल की समस्त शैलियों पर उनका अधिकार था। उनके गीत गाने की वस्तु थे।	स्वयं कवि था अपने काल की समस्त शैलियों का उसने आदर किया उसे गान विद्या से प्रेम था।
तुलसी सदाचार की साक्षात् मूर्त्ति थे।	अकबर सदाचार में उनकी समता का न था।
प्रभु भक्तों के सेवक और सहायक थे।	प्रभु-भक्तों के प्रति (सलीम चिश्ती हरिदास) के प्रति आदर का भाव रखता था उन्हें सहायता देता था।
तुलसी अपने युग में एक	अपने युग में अकबर भी

प्रवृत्ति के निर्माता थे यदि तुलसी के आदर्शों पर आगे आनेवाला कवि समाज चलता तो भारतवर्ष की ऐसी दुर्दशा न होती।

एक प्रवृत्ति का निर्माता था। यदि उसके आदर्शों पर आगे आने वाला बादशाहों का समाज चलता रहता तो भारतवर्ष की ऐसी दुर्दशा न होती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों अपने काल के सर्वश्रेष्ठ न केवल भारतवर्ष में वरन् संसार में अद्वितीय महापुरुष थे। दोनों की गौरवगाथा आईन अकबरी, रामचरित मानस अमर हैं जो आगे-आगे वाली पीढ़ियों को उदारता, कर्त्तव्य परायणता का देश देती रहेंगी।

जोधाबाई

नूरजहाँ

जहाँगार

तेतीसवां अध्याय

जहाँगीर

(१६०५-१६२७)

१६०५ ई० में पिता के द्वारा दिये हुये राज्य पर जहाँगीर को अधिकार तो मिल गया। परन्तु तुरन्त ही उसे अपने पुत्र खुशरो के विद्रोह का सामना करना पड़ा।

खुसरो सुन्दर था, सर्वप्रिय था, विद्वान् और गुनी था उसमें अपने बाबा के सब गुण थे। अतएव राजपूत उसके सहायक थे। एक दिन रात्रि को अपने ३५० साथियों के साथ वह आगरे से निकल गया और दिल्ली होता हुआ पंजाब की ओर बढ़ा। मार्ग में तरन-तारन कस्बे में उसकी भेंट सिख गुरु अर्जुनसिंह से हुई। उन्होंने खुसरो की विनयशीलता देखकर उसे आशीर्वाद दिया तथा कुछ आर्थिक सहायता भी दी। अब खुसरो ने लाहौर पर अधिकार करना चाहा परन्तु सूबेदार ने किले के फाटक बन्द कर लिये। खुसरो ने घेरा डाल दिया। परन्तु दसवें दिन जहाँगीर सेना लेकर पहुंच गया। भैरोबेल स्थान पर युद्ध हुआ। खुसरो पराजित होकर काबुल की ओर भागा। परन्तु चिनाव के पास नदी पार करते समय पकड़ा गया। जहाँगीर क्रुद्ध था ही। उसकी आँखें फोड़वा दीं तथा बन्दी बनाकर इलाहाबाद भेज दिया। उसके साथियों को कठोर दण्ड दिया गया। जीवित पशुओं की खाल में बन्द करके उन्हें नगर भर में घुमाकर छोड़ दिया गया।

खुसरो का विद्रोह

गुरु अर्जुन की सहानुभूति के कारण उसने सिख गुरु को भी पकड़ मँगवाया उन्हें जुरमाने की आज्ञा दी गई परन्तु

निर्भीक सिख गुरु ने जुर्माने का अपमान सहने की अपेक्षा मृत्यु को अच्छा समझा। फलतः उनका शिर उतार लिया गया। तथा उनके बलिदान से सिक्खों में मुग़ल राज्य के प्रति घृणा का बीज बो गया।

इससे निपट कर जहाँगीर ने अपनी घोषणा (दस्तूरुलअमल) के नाम से प्रकाशित की जिसमें बारह नियम सबके लिये मान्य ठहराये। जिनका उद्देश्य अनियमित राज-करों का बन्द करना, प्रजा की भूमि का अधिकारियों द्वारा अपहरण रोकना, व्यापारियों के चुंगी घरों में बण्डल खोलकर तलासी लेने की प्रथा रोकना, मृत व्यक्ति की सम्पत्ति उसको उचित उत्तराधिकारी के ही मिलना। राजकोष में न जाना, प्रजा की सुविधा के लिये सरायें, मस्जिदें, कुंओं और औषधालयों की व्यवस्था करना, मादक द्रव्यों का निषेध, अंग-भंग के दण्ड का निषेध, वर्ष के कुछ दिनों में कुछ विशेष पशुओं के बध का निषेध ऐसे नियम थे जो सबके लिये लाभप्रद और उपयोगी थे। इसी बीच उसने बंगाल के सूबेदार शेर अफज़ल का बध करवाकर उसकी स्त्री मेहरुन्निसा को पकड़ मँगवाया और उसके साथ १६११ ई० में विवाह कर लिया।

अहमदनगर

१६११ ई० में ही अहमदनगर में विद्रोह हुआ। अबीसीनिया निवासी मलिक अम्बर के नेतृत्व में निज़ामशाही सेना अजेय हो उठी थी। १६१० ई० में मलिक अम्बर ने अहमदनगर के कई किले अधिकार में कर लिये। अतएव जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खानखाना को उनका दमन करने भेजा। परन्तु खानखाना पराजित हुआ। इस पर गुजरात के गवर्नर अब्दुल्ला खाँ और राजकुमार परवेज भेजे गये। एक साथ आक्रमण न करने के कारण दोनों अलग-अलग पराजित हुये।

तब १६१७ ई० में खुर्रम गया। उसने मलिक अम्बर को पराजित करके सन्धि करने पर बाध्य किया। इसी प्रकार १६१२ ई० में बंगाल में विद्रोह हुआ परन्तु मुग़ल गवर्नर इस्लाम खाँ ने अफ़गान नेता उस्मान को पराजित करके उनकी स्वतन्त्र होने की भावना मिटा दी।

१६१५ ई० में अकबर की अधूरी मेवाड़ विजय को पूरा करने के लिये खुर्रम की अध्यक्षता में सेना भेजी गई। खुर्रम ने रसद बन्द करके अमरसिंह को पराजित करके सन्धि करने पर बाध्य किया। जहाँगीर ने बड़ी उदारता से अमरसिंह की सब शर्तें मानकर केवल उसे आधीन करके तथा उसके पुत्र कर्ण को ५ हजारी मनसबदारी देकर सन्धि कर ली।

मेवाड़ विजय

काँगड़ा विजय इसी की युद्ध शैली से खुर्रम ने १६२० ई० में काँगड़ा के राजपूत राजा को पराजित करके उसे दिल्ली के आधीन कर दिया।

इन विजयों में यद्यपि जहाँगीर अकबर से बढ़ गया परन्तु उसकी पराजय भी ऐसी भोंड़ी है जिसने उसका महत्त्व नीचे गिरा दिया। १६२२ ई० में फ़ारस के शाह अब्बास ने कन्धार पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया और अकबर के बताये हुए राज्य में से एक महत्त्वपूर्ण भाग हाथ से निकल गया। जहाँगीर उसे पुनः प्राप्त न कर सका।

कन्धार

जहाँगीर के काल की सबसे विशेष घटना १६१६ ई० की महामारी (प्लेग) और दुर्भिक्ष है जिसमें बड़ी जन हानि हुई विशेषतया आगरा, लाहौर और काश्मीर में जहाँगीर का अन्तिम समय अपने पुत्रों के विद्रोह दमन में ही वीरता और उसके पुत्रों के दुर्व्यवहार के कारण उसे बड़ा कष्ट हुआ।

इस समय नूरजहाँ अपने सम्पूर्ण गौरव पर थी वह जहाँ-गीर को शराब के प्याले में अपनी रूपमदिरा पिला कर बेहोश किये रहती थी। अतएव जब उसने देखा कि जहाँगीर का प्रेम फिर खुसरो की ओर बढ़ रहा है और हकीम की दवा से उसकी आँखें भी अच्छी हो रही हैं तो उसने फिर बादशाह से खुसरो की शिकायत आरम्भ की तथा उसकी दृष्टि से गिरा दिया। फलतः खुसरो आसफ़खाँ और खुर्रम के सिपुर्द कर दिया गया। इन दोनों ने १६२२ ई० में बुरहानपुर में उसका बध कर दिया। जहाँगीर को जब इसकी सूचना मिली तो वह बड़ा दुःखी हुआ और उसका शव बुरहानपुर से मँगवा कर इलाहाबाद में दफ़न करा दिया।

खुसरो का अन्त

अब नूरजहाँ की दृष्टि खुर्रम पर पड़ी। अपने दामाद शहर-यार को वह बादशाह बनाना चाहती थी क्योंकि वह भी निकम्मा था अतएव उसके राज्य में भी नूरजहाँ ही शक्तिशालिनी रहती। अतएव खुर्रम और परवेज़ को रास्ते से हटाना ही था। १६२२ ई० में जब कन्धार को फारस के बादशाह ने जीत लिया तो उसने जहाँगीर को खुर्रम के भेजने के लिये राजी कर लिया। परन्तु खुर्रम मूर्ख नहीं था वह इस दो रुखीचाल को ताड़ गया और राजधानी से टलना अस्वीकार कर दिया। अत-एव नूरजहाँ ने खुर्रम का पद और जागीर छीन लेने की आज्ञा निकलवा दी। फलतः १६२३ ई० में खुर्रम अपनी सेना सहित आगरे पर चढ़ आया। परन्तु महावत खाँ ने परवेज़ का साथ दिया और खुर्रम पराजित होकर भागा। दक्षिण में मलिक अम्बर और गोल कुण्डा के बादशाहों से निराश होकर वह बंगाल पहुँचा। बंगाल के गवर्नर ने उसे सहायता दी और वह

खुर्रम का विद्रोह

सेना संगठित करके इलाहाबाद तक आ पहुँचा। परन्तु महावत खाँ ने उसे फिर पराजित किया और वह फिर दक्षिण की ओर भागा। इस बार मलिक अम्बर ने उसकी सहायता की, दोनों ने बुरहानपुर पर आक्रमण किया परन्तु फिर पराजित हुए। अन्त में उसने जहाँगीर से क्षमा प्रार्थना की।

महावत खाँ का विद्रोह

नूरजहाँ ने फिर चाल खेली। महावत खाँ की शक्ति देखकर वह भयभीत हो गई थी, अतएव उसने खुर्रमको मिला लेने में ही भलाई समझी और महावत खाँ तथा परवेज़ की शक्ति तोड़ने के लिये जहाँगीर से आज्ञा निकलवा कर सेनापति के स्थान पर उसे बंगाल का गवर्नर बनवा दिया। फलत: महावत खाँ को बंगाल जाना पड़ा और परवेज़ अकेला पड़ गया। अपनी राजपूत सेना के साथ उसने आक्रमण करके शाही सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया और जहाँगीर को लाहौर में बन्दी बना लिया। नूरजहाँ और शहरयार भाग तो गये परन्तु नूरजहाँ ने समझ लिया कि इस राजपूत के सामने साधारण नीति से काम न चलेगा। अतएव उसने आत्म समर्पण करके जहाँगीर के साथ रहने की आज्ञा चाही। भोला महावत इस चाल को न परख सका। नूरजहाँ ने फिर जहाँगीर को वश में करके महावत खाँ को बन्दी करने की आज्ञा निकलवा दी। अतएव महावत खाँ को भागना पड़ा। इसी समय १५२६ ई० में परवेज़ का भी देहान्त हो गया। अतएव महावत खाँ को खुर्रम का ही साथ देना पड़ा। वह खुर्रम को बादशाह बनाने का यत्न करने लगा।

उत्तराधिकार युद्ध

इसी समय १६२७ ई० में काश्मीर जाते हुए जहाँगीर की मृत्यु हो गई। अतएव नूरजहाँ ने शहरयार को लाहौर में बादशाह घोषित कर दिया।

इधर दिल्ली में नूरजहाँ के भाई आसफ़ खाँ ने खुसरो के बालक-पुत्र दावरबख्श को नाम मात्र के लिये सम्राट् घोषित करके शहरयार पर आक्रमण कर दिया। शहरयार पराजित हुआ उसकी आँखें निकलवा ली गई और नूरजहाँ बन्दी बना ली गई। खुर्रम भी शीघ्रतापूर्वक दक्षिण से आ गया और दावरबख्श को गद्दी से उतार कर बादशाह बन गया।

नूरजहाँ

जिस नूरजहाँ का इतना अधिकार था कि उसके कारण जहाँगीर विवेक शून्य होकर अपने प्रियपुत्र खुसरो की मृत्यु का कारण बना, स्वामिभक्त महाबतखाँ को विद्रोही बना दिया। उस नूरजहाँ के जीवन की आश्चर्य-जनक घटना इतिहास की वस्तु है।

मिर्जा गयास तेहरान के निवासी थे। दुःखी और उदास, स्वदेश में अपना निर्वाह न होते देख भारतवर्ष की यात्रा की। सीमान्त प्रदेश में मार्ग में उनके एक कन्या उत्पन्न हुई। काफिले को विराम नहीं और काफिला छोड़ कर कन्या के पालन-पोषण के लिये रुक जाना सम्भव नहीं। अतएव पत्तों से ढक कर बालिका सड़क के एक किनारे डाल दी गई। गयास और उनकी पत्नी आगे बढ़े। परन्तु माता की ममता! गायस को लौट कर पुत्री को उठाना पड़ा। काफिले का नेता मलिक मसऊद उदार व्यक्ति था उसने सहायता का वचन दिया।

दिल्ली पहुँचे। शरीफ घराने के थे अकबर शरीफ़ों का सम्मान करता था। उसे राजदर्बार में ही नौकरी मिल गई। बालिका महरुन्निसा महल में आने-जाने लगी। यौवन का विकास होने लगा, गुलाब में फूल खिलने लगे। सलीम की आँख गड़ गई। परन्तु अकबर के पुत्र का विवाह एक साधारण दबारी की कन्या से सम्भव नहीं था। अकबर की प्रेरणा से महरुन्निसा का विवाह वीर शेर अफ़गन से हो गया। मेहर

बंगाल अपने सूबेदार पति के पास भेज दी गई। जहाँगीर की वासना कुचल दी गई।

१६०६ ई० में जहाँगीर सम्राट् हुआ। अब उसे अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने की सुविधा मिली। शेर अफ़गन को दिल्ली सकुटुम्ब बुलाया गया। वीर अफ़गन नौकर था परन्तु आबरू बेचनेवाला नहीं था। विद्रोह हुआ और प्राण देकर शेर अफ़गन ने अपनी मर्यादा की रक्षा करनी चाही। नूरजहाँ शाही महल में पहुँच गई।

चतुरा नूरजहाँ जानती थी आत्मसमर्पण करना ही होगा। परन्तु बादशाह की वासना को तीखा किये बिना आत्मसमर्पण का कोई मूल्य नहीं था। अतएव ५ वर्ष तक वह आग भड़काती रही जब उसने जान लिया कि बादशाह अब उसका गुलाम बन चुका है उसने आत्मसमर्पण कर दिया। अथवा यों कहो कि दिल्ली की बादशाहत अपने रूप से मोल ले ली। उसकी बुद्धि-मत्ता का परिचय गुलाब का इत्र देता है जिसका इसने आविष्कार किया। वह बड़ी सुन्दर कविता भी करती थी।

उसके राज-कार्य में अधिकार का हम वर्णन कर चुके हैं अब उसके केवल अन्तिम काल का वर्णन शेष है। १६२७ ई० में बन्दिनी होकर नूरजहाँ ने राज का कार्य छोड़ दिया और २ लाख रुपये की पेन्शन लेकर अलग हो गई। १६४४ ई० में अपने समस्त गुण-दोष लेकर संसार से चली गई।

जैसा हम देख चुके हैं नूरजहाँ अत्यन्त बुद्धिमत्ती, दूरदर्शिनी और राजनीतिपटु स्त्री थी। उसने वस्तुतः राज्य किया। जहाँगीर केवल नाम-मात्र का बादशाह था। इसे जहाँगीर ने स्वयं स्वीकार किया है। परन्तु उसकी स्वार्थपरता और टेढ़ी राजनीति ही उसके पतन का कारण बनी। तथा मुग़ल साम्राज्य में भी उसने एक ऐसा विरोध का तत्त्व उत्पन्न कर दिया। आगे आनेवाले सभी मुग़ल बादशाहों को अन्तिम समय में उसीसे अनेक कष्ट उठाने

पड़े। सैनिक चतुरता और मक्कारी से अपनी शक्ति बढ़ाने-वाले ही उत्तराधिकारी बन सके, योग्य और उदार व्यक्ति शासन की सीढ़ी पर चढ़ सकने में असमर्थ हो गये। खुसरो, दारा और अकबर द्वितीय इसके उदाहरण हैं। इनका हम उपयुक्त स्थानों पर वर्णन करेंगे।

जहांगीर के काल के तीन और व्यक्ति अथवा भारतवर्ष में अवाञ्छनीय तत्त्व का प्रवेश १४९८ ई० में विदेशी वास्कोडी गामा ने अफ्रीका के दक्षिण से भारतवर्ष का मार्ग ढूँढ़ लिया था अतएव अरबों के कारण लाल सागार मार्ग से रुका हुआ भारतीय व्यापार योरोप से फिर चल पड़ा था। पुर्तगाली लोगों ने दक्षिण में अनेक व्यापारिक कोठियाँ बनाली थीं। अकबर ने उनके साथ भी उदारता का व्यवहार करके उन्हें व्यापार करने दिया था। परन्तु जहाँगोर के दरबार में ईसाई पादरियों को धर्म-प्रचार और चर्च बनाने की भी आज्ञा मिल गई थी। इससे उनका साहस बढ़ गया था। १६१३ ई० में पुर्तगालियों ने चार शाही जहाज़ लूट लिये अतएव बादशाह रुष्ट हो गया। डामन नामक बस्ती लूट ली गई और ईसाई धर्म-प्रचार पर रोक लगादी गई।

अंग्रेज़ों ने भी १६०० ई० में महाराजा एलिजबेथ की स्वीकृति से ईस्ट इण्डिया कम्पनी बनाकर सूरत से अपना व्यापार प्रारम्भ किया और मुग़ल दरबार से व्यापारिक सन्धि की प्रार्थना की। परन्तु पुर्तगाली प्रभाव के कारण विशेष सफलता न मिली। १६१३ ई० में पुर्तगालियों का दमन होने की सूचना जब अंग्रेज़ों को मिली तो उन्होंने १६१५ ई० में सर टामसरो को राजदूत बना कर भेजा।

सर टामसरो

अपने अनुभव से जान चुका था कि राज-दरबार में उसके पूर्ववर्त्ती कप्तान हांकिन्स और विलियम एडवर्डस को मिली हुई राजाज्ञा इसीलिए लौटा ली गई थी कि वह उन्हें केवल सम्राट ने दी थी उसके दरबारी जिन्हें

धन देकर मिलाये रहते थे उसके विरोधी थे। उसने नीचे से लेकर ऊपर तक अपनी ओर तया। आसफ़खाँ और नूरजहाँ को भी बड़ी-बड़ी भेंट तुष्ट कर दिया तथा शाहजहाँ को भी राज-भेंट उपस्थित प्रकार उसने आज्ञा-पत्र १६१५ ई० में प्राप्त कर लिया। ज्ञा-पत्र के आधार पर बिना चुंगी दिये सूरत बन्दरगाह उतारने, कोठी और फैक्टरी बनाने की सुविधा अंग्रेज़ों त गई। और इस प्रकार भारतवर्ष का द्वार अंग्रेज़ों के ल गया। बेचारे मुग़ल दरबारी और जहाँगीर क्या जानते जो विष का बीज आज वे पैसे के लालच से बो रहे हैं एक दिन यह फल होगा कि उनका वंशधर बहादुरशाह में बन्दी-जीवन वितायेगा।

ने भवन-निर्माण-कला से प्रेम था। आगरे के जहाँगीरी सिकन्दरा का अकबर का मक़बरा सतमादुद्दौला का रौज़ा निर्माण-कला के जीवित उदाहरण हैं।

ख़ुसरो बाग़ (इलाहाबाद) शाही बाग़ (उदयपुर) दिलकुशा (लाहौर) और निशातबाग़ उसकी प्रकृति प्रियता के उदाहरण इन अन्तिम बागों की सीढ़ीदार क्यारियाँ और फ़व्वारे हाँ और जहाँगीर की अतृप्त वासनाओं की प्यास बुझाते थे। इन गुणों के साथ ही उसमें मदिरा-पान और उसके सहचरी सिता के दुर्गुण भी थे। इस मदिरा-पान ही ने उसे अन्तिम में विवेक-शून्य और नूरजहाँ की पुतली बना दिया। वह चिड़ा और क्रोधी था। यदि कोई मंत्री उसकी सम्मति के द्ध बात कहता तो वह क्रोध से अपनापन भूल जाता था विलासी था।

विचारे कठोर दण्ड देता था। उसका तीसरा अपराध यह उसने समस्त राज-कार्य दूसरों के हाथ में सौंपकर स्वयं तास मन्दिर की शरण ले ली थी।

चौंतीसवाँ अध्याय

शाहजहाँ

(१६२७-१६५६)

गद्दी पर बैठते ही उसने पहला काम पुर्तगीज़ व्यापारियों के अत्याचारों का अन्त करने का विचार किया। कारण यह था कि उन्होंने हुगली की अपनी व्यापारिक कोठी को किले का रूप देना चाहा। उसे शस्त्रास्त्र से सज्जित किया।

पुर्तगीज़ों का दमन

ठेके पर पाये हुये ग्रामों में मनमानी लूट प्रारम्भ की तथा हिन्दू-मुसलमान बच्चों को उठा ले जाकर गुलामों की भांति बेचने लगे। और बलपूर्वक ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। फलतः बंगाल के गवर्नर क़ासिम खाँ को आज्ञा मिली कि पुर्तगालियों को नष्ट कर दिया जाय। फिर क्या था। आक्रमण प्रारम्भ हुआ अनेक छल-प्रपंच और रिश्वत देकर भी पुर्तगाली अपनी सत्ता न बचा सके। उनकी शक्ति और स्थिति जड़ से नष्ट कर दी गई।

बुन्देलों का विद्रोह-दमन १६२८ ई० में वीरसिंह बुन्देला तथा उसके पुत्र जौहरसिंह बुन्देला ने विद्रोह किया परन्तु महाबत खाँ ने ओरछा घेर लिया। विद्रोही परास्त हुये और अधीनता स्वीकार करली।

खानजहाँ लोदी ने १६३१ ई० में विद्रोह किया। खानजहाँ दक्षिण का सूबेदार था। जब उत्तराधिकार का प्रश्न उठा था तो उसने शाहजहाँ का विरोध किया था। अतएव शाहजहाँ उसका विश्वास नहीं करता था। उसने उसे आगरे बुला लिया।

खानजहाँ लोदी

दिवाने-आम (लाल किला, देहली)

परन्तु अविश्वास में घिरे हुये खानजहाँ को आगरे में विपत्ति दिखाई देती थी। अतएव वह आगरे से निकल भागा। सम्राट ने उसका पीछा किया और अनेक युद्धों में उसे पूर्णतया परास्त किया। अन्ततः युद्ध में ही वह मारा गया।

दुर्भिक्ष—१६३० से १६३२ ई० तक गुजरात, खानदेश और दक्षिण में भयंकर दुर्भिक्ष की सूचना शाहजहाँ को मिली। दुर्भिक्ष का सब से भयंकर रूप अहमदाबाद में दिखाई दिया। इस स्थान पर गाँव के गाँव अकाल और महामारी के ग्रास हो गये। शाहजहाँ ने सूचना मिलते ही अपनी शक्ति भर प्रबन्ध किया। खैरातखाने खोल दिये गये जहाँ भोजन की हर समय व्यवस्था थी। प्रत्येक भूखे को भोजन देने का प्रबन्ध किया गया। १००० रुपया प्रति सप्ताह दान में बाँटा जाने लगा। उपजाऊ भूमि पर कर माफ कर दिया गया। परन्तु यातायात की असुविधा के कारण लाखों आदमी मर गये। पीटर मण्डी और अकुल लाहौरी ने दुर्भिक्ष का आंखों देखा बड़ा हृदय-द्रावक वर्णन किया है।

अहमद नगर

इसी दुर्भिक्ष के अन्त में शाहजहाँ ने १६३३ ई० में अहमद [illegible]र को जो मलिक अम्बर के नेतृत्व में स्वतन्त्र हो गया था। परन्तु उसकी मृत्यु के उपरान्त मुर्तजा खाँ ने उसके पुत्र फतेह खाँ को बन्दी कर लिया। इस पर फतेह खाँ रुष्ट होकर शाहजहाँ से मिल गया। फतेह खाँ के साथ महाबत खाँ भेजा गया। भयंकर युद्ध के उपरान्त सुल्तान हुसैन शाह पराजित हुआ और अहमद नगर राज्य मुगल-साम्राज्य में मिला लिया गया।

अब दक्षिण में केवल दो मुसलमान राज्य और शक्तिशाली

रह गये थे। अतएव शाहजहाँ ने उन्हें भी आधीन करना चाहा। उसने एक-एक पत्र दोनों राज्यों को आधीनता स्वीकार करने के लिये भेजा। गोलकुण्डा ने सन्धि की शर्तें स्वीकार कर लीं और १६३६ ई० में मुगलों के आधीन हो गया। परन्तु बीजापुर ने १६३३ ई० से ही युद्ध की ठान ली। अतएव युद्ध प्रारम्भ हुआ। असीम क्षति उठाकर बीजापुर ने भी आधीनता स्वीकार कर ली।

गोलकुण्डा और बीजापुर

हम जहाँगीर के वर्णन में लिख चुके हैं कि कन्धार को फारस के बादशाह ने जीत लिया था। परन्तु कन्धार के ईरानी सूबेदार ने अपने असन्तोष के कारण फिर मुगलों को दे दिया। इस पर फारस के बादशाह ने १६४६ ई० में फिर कन्धार जीत लिया। शाहजहाँ के चारों पुत्र यत्न करके हार गये परन्तु कन्धार फिर हाथ में न आया। इसी प्रकार बलख और बदख्शा भी मुगल-साम्राज्य से १६४६ ई० में निकल गये।

कन्धार

शाहजहाँ का अन्तिम समय शाहजहाँ के चारों पुत्रों में दारा अत्यन्त योग्य विद्वान्, उदार और सर्वजन-प्रिय था। दारा की योग्यता पर सब मुग्ध थे और उसे ही शाहजहाँ भी उत्तराधिकार देना चाहता था। परन्तु उसका सब से छोटा पुत्र औरंगजेब बड़ा वीर और चतुर था। कट्टर सुन्नी मुसलमान होने के कारण मुसलमानों का प्रिय था। शेष शुजा और मुराद इन्द्रियों के दास और निकम्मे थे।

अतएव जब शाहजहाँ १६५७ ई० में बीमार पड़ा तो चारों राजकुमारों ने राजगद्दी हथियाने की चेष्टा प्रारम्भ कर दी। औरंगजेब उस समय दक्षिण में था। शाहजहाँ की पुत्री रोशनआरा ने गुप्त रूप से उसे तुरन्त आगरा आने को लिखा।

वह गोलकुण्डा और बीजापुर के युद्ध छोड़कर उत्तर की ओर चल पड़ा। मुराद गुजरात और पश्चिमी दक्षिणी भाग का सूबेदार था। औरंगज़ेब ने नीति पटुता से काम लिया। मुराद को विश्वास दिला दिया कि वह तो काफ़िर दारा के स्थान पर मुराद को सम्राट बनाना चाहता है स्वयं फकीर होकर मक्का चला जाना चाहता है। शुजा बंगाल का सूबेदार था उसने भी राज्य पर अधिकार करने के लिये अपनी सेना लेकर चढ़ाई कर दी। दारा पंजाब और पश्चिमी सूबे का सरदार होते हुये भी शाहजहाँ के पास ही रहता था। अपना सब से अधिक प्रिय तथा ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण शाहजहाँ ने अपनी वसीयत भी दारा के नाम ही की थी। अतएव दारा ही वास्तविक उत्तराधिकारी था।

शुजा की सेना शीघ्र बनारस तक आ गई। अतएव उसका आक्रमण रोकने के लिये मिर्जा राजा जयसिंह भेजे गये। उन्होंने बनारस के निकट उसे पराजित किया और उसे फिर बंगाल की ओर भागते बना।

औरंगजेब और मुराद की सेना की गति रोकने के लिये महाराज जसवन्त सिंह उज्जेन के निकट उपस्थित थे। परन्तु मुराद और औरंगजेब की सम्मिलित सेना के समक्ष वे पराजित हुये। धारमठ स्थान पर उनके पराजित होने के कारण दारा ने स्वयं सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। चम्बल नदी के निकट सामूगढ़ स्थान पर दोनों सेनायें डट गईं। भयंकर युद्ध हुआ। ऐसा जान पड़ा कि औरंगजेब पराजित हो जायगा। परन्तु इसी समय दारा हाथी से उतर पड़ा। उसे न देखकर सेना ने समझा कि दारा की मृत्यु हो गई। अब युद्ध व्यर्थ जानकर सेना भाग खड़ी हुई। दारा पराजित होकर भाग खड़ा हुआ। दारा की एक

साधारण भूल का परिणाम क्या हुआ। आज हम तीन-सौ वर्ष के उपरान्त उसका अनुमान कर सकते हैं।

औरंगजेब आगरा पहुँच गया और १६५८ ई० में आलमगीर नामधारण करके मुग़ल साम्राज्य की अन्तिम शिखा चमकाने और फिर बुझा देने के लिये आगरे की गद्दी पर बैठा।

दारा ने अजमेर में फिर सेना एकत्रित की परन्तु फिर पराजित हुआ। वहाँ से भागता हुआ दारा सिन्ध की ओर चल पड़ा। और सिन्ध के मलिक जीवन सरदार की शरण ली। मलिक जीवन ने विश्वासघात किया और उसे बन्दी करके औरंगजेब की सेवा में भेज दिया। राज्य के उत्तराधिकारी, हिन्दुओं के प्रिय, प्रजा के आदरभाजन दारा का जीवन औरंगजेब के लिये काँटा हो सकता था। अतएव इस काँटे को निकाल देना ही राजनीति थी। उसने दारा को मैले कपड़े पहना कर समस्त दिल्ली में हाथी पर बैठ कर घुमाया। तथा प्रजा के रोने कलपने की चिन्ता न करके १६५६ ई० में उसका बध करा दिया। परन्तु दारा का कुफ्र केवल उसी के शिर से मिट जाता औरङ्गजेब की राजनीति में यह बात न थी। अतएव उसके दो पुत्रों को भी उसी के मार्ग से जाना था। कारण यही था कि वे काफिर दारा के पुत्र थे।

अब बंगाल के सूबेदार सगे भाई शुजा से और निपटना था। सेना भेजी गई मद्यप शुजा क्या ठहर सकता था। बंगाल छोड़कर अराकान की ओर भाग गया। फिर इतिहास उसके सम्बन्ध में मौन हो गया।

अब केवल कुरान बीच में रखकर शपथ खाकर राज्य देने की प्रतिज्ञा से बंधा मुराद बच रहा था। अतएव उससे और निपटना था। मुराद शराबी तो था ही। इसे अत्यधिक शराब
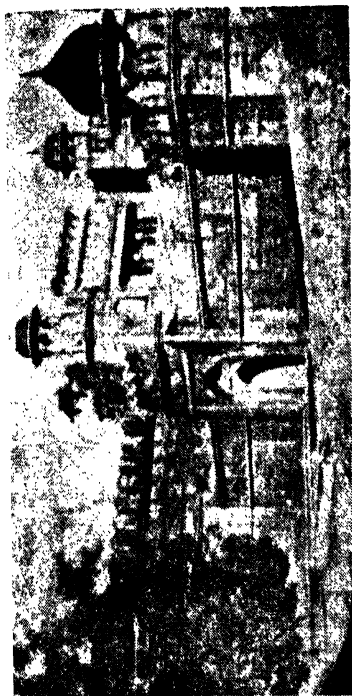
दिल्ली का किला
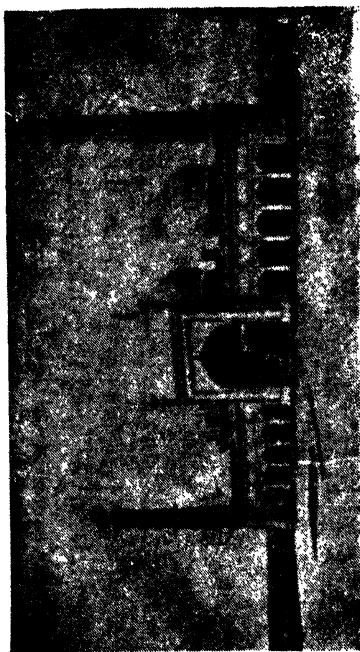
जुमा मसजिद दिल्ली

मुमताज़ महल

वल्ताऊस
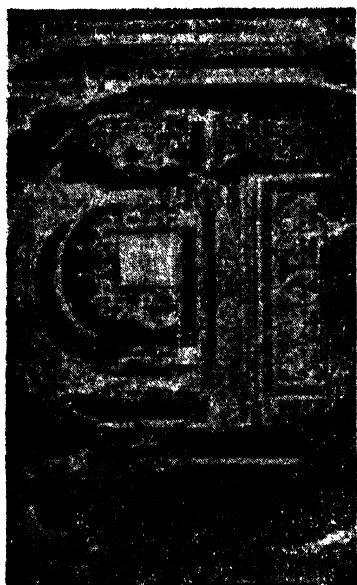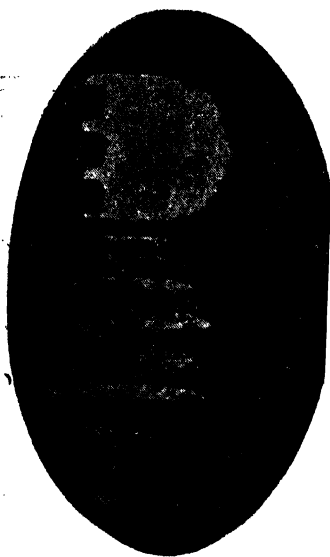
ताजमहल की जाली

शाहजहाँ

पिला दी गई और सरदारों पर उसका धर्म-विरुद्ध होना प्रकट कर दिया गया। इस्लाम में शराब पीना गुनाह है। ऐसे गुनाहगार के लिये कसम तोड़ देना कदाचित उचित हो। औरंगजेब राजपूत तो नहीं था कि प्रतिज्ञा का निर्वाह करता, अतएव बेचारा मुराद बन्दी बनाकर १६६१ ई० में मार डाला गया। इस प्रकार अपने भाइयों से निपट कर अपने पिता को जीवन में ही बन्दी बनाकर औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य की जड़ विष से सींच दी। इसका फल क्या हुआ। उसे हम अगले काल में कहेंगे, देखेंगे।

शाहजहाँ का चरित्र और व्यक्तित्व

मुगल बादशाहों में शाहजहाँ का स्थान ऊंचा है। न केवल उसकी कला-प्रियता के कारण वरन् उसके व्यक्तित्व के कारण भी। वह अत्यन्त चरित्रवान् था। शराब जो उस समय के राजाओं का नित्य पेय था वह छूता भी नहीं था। न किसी अन्य दुराचार की ही ओर उसमें झुकाव था। उसकी नसों में मुगल और राजपूत दोनों रक्त थे। उसकी माता जोधपुर नरेश की कन्या जगत गुसाईं थी। अतएव उसमें वीरता और सहनशक्ति के साथ ही कुशल सेनानायक के समस्त गुण उपस्थित थे। उसे अपनी प्रजा के सुख की भी सदैव चिन्ता रहती थी। दुर्भिक्ष के काल में जिस प्रकार उसने धन बाँटा उसका उदाहरण केवल महमूद तुग़लक ही है।

परन्तु उसके काल में हिन्दुओं को वह व्यवहार प्राप्त नहीं हुआ जो अकबर और जहाँगीर के समय उन्हें प्राप्त था। पुर्तगालियों को उसने उनके अन्याय के कारण दण्ड दिया ही था परन्तु बनारस, प्रयाग और मथुरा में उसने अनेक मन्दिर नष्ट करा दिये। इस प्रकार साधारण हिन्दू जनता के हृदय में जो प्रेम-भावना उत्पन्न हो गई थी उस पर शाहजहाँ ने चोट पहुँचा दी। आगे चलकर औरंगजेब ने उसे हिन्दुओं का हृदय सम्पू-

सर्वथा तोड़ दिया और मुग़ल साम्राज्य के विनाश का साधन प्रस्तुत हो गया।

उसका पत्नी प्रेम संसार के इतिहास की अपूर्व वस्तु है। नूरजहाँ की भतीजी। आसफ़ ख़ाँ की पुत्री, अपूर्व रूपवती, सुलक्षणा अर्जुमन्दबान् १६०० ई० में उत्पन्न हुई थी। १६१२ ई० की अल्पायु में जहाँगीर ने शाहजहाँ से उसका विवाह कर दिया। शाहजहाँ ने जब अपने पिता से विद्रोह किया तो इसके साथ मारी-मारी फिरती रही। परन्तु साम्राज्ञी होकर उसे अभिमान नहीं हुआ। धर्मपरायणा मुमताज़ महल नाम पाकर भी वैसी ही अर्जुमन्द बानो बनी रही। दीन-दुखियों की सहायता करना, विधवाओं और अनाथों को धन देना उसका नित्य नियम था। परन्तु १६३१ ई० में ही अपने पति का साथ छोड़कर चली गई। उसने केवल एक अनुचित कार्य किया। उसने अपने पति में धार्मिक भावनायें भर दीं, तथा उसे हिन्दुओं के प्रति सद्भाव नहीं रखने दिया। मरते समय उसने अपने पति से प्रतिज्ञा करा ली थी कि वह दूसरा विवाह नहीं करेगा, तथा उसकी स्मृति सदा स्थिर रखने का उपाय करेगा। आज आगरे का तजमहल संसार को उसकी स्मृति दिलाने के लिये सजीव प्रतिमा के समान प्रेम की मधुर स्मृति दिलाने के लिये अपने कक्ष में उस सौन्दर्य प्रतिमा को विश्राम दे रहा है। तथा न जाने कितने भविष्य तक संसार यात्रियों को प्रेम की पूजा पर स्नेह के दो आँसू चढ़ाने के लिये अपनी ओर आकृष्ट करता रहेगा। इस भव्य समाधि मन्दिर के निर्माण के लिये विदेशों से भी कारीगर बुलाये गये परन्तु भारतीय भवन निर्माताओं की देखरेख में ही इसका निर्माण हुआ। ईसा मुख्य इन्जीनियर था। २२ वर्ष में ३ करोड़ रुपये के व्यय से बना था।

प्रेम शीलता

शाहजहाँ की इमारतों की मुख्य विशेषता उनका पत्थर है। अभी तक के मुगल बादशाहों की रुचि लाल पत्थर की ओर अधिक थी। शाहजहाँ ने उनके स्थान पर संगमरमर का अत्यधिक प्रयोग किया। पच्चीकारी का काम हिन्दूकला का अंग था। परन्तु उसमें मुसलमान कला का इतना मिश्रण हो गया कि उसका हिन्दू रूप जाता रहा। अब पच्चीकारी का काम भाव व्यंजना के स्थान पर सौंदर्य भावना को जगाने और सजावट के लिये ही होने लगा। जाली के काम का प्रारम्भ और उसकी उन्नति इसकी अपनी विशेषता है।

शाहजहाँ ने अपने बैठने के लिये एक सिंहासन "तख्त-ताऊस" बनवाया। १०½ फीट चौड़ा ७½ फीट लम्बा १५ फीट ऊँचा यह तख्त नाचते हुये पंख फुलाये मोर के आकार का था। जिसके प्रत्येक पंख पर हीरे मोती जड़कर पंखों के चँदोवे बनाये गये थे। १४ लाख तात्कालिक रुपयों की लागत का अर्थात् वर्त्तमान अनुपात के लगभग १½ करोड़ का यह सिंहासन नादिरशाह की लूट में फारस चला गया और उसका पता न चला कि क्या हुआ।

साहित्य प्रेम

शाहजहाँ स्वयं विद्वान् था और फारसी तथा तुर्की भाषा में सरलता से बोल सकता था। उसने विद्या प्रचार के लिये मदरसे खोलने तथा विद्वानों का सम्मान करने में अपने धन का सद्व्यय किया। अबुल हकीम को चाँदी से तौलकर तुलादान देना उसके विद्या प्रेम का उदाहरण है। कहा जाता है कि शाहजहाँ ने जो नगर दिल्ली के निकट बनाया था उसी की आरम्भिक बोली से उर्दू भाषा का विकास हुआ। वर्त्तमान हिन्दी बोली का यही रूपान्तर आज भारतीय मुसलमान की बोलचाल की भाषा है।

उसके समस्त जीवन पर विचार करके देखिये। कला का प्रेम अपने कुटुम्बियों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह, राजसी ठाटबाट से रुचि और न्याय प्रियता सर्वत्र स्पष्ट देख पड़ेगी। वह बड़ा ही कुशल शासक था। उसके चरित्र में न तो आचार का दोष था न व्यवहार में। वह चतुर सेनापति और प्रतिभावान अनुभवी शासक था। उसे अपने अन्तिम जीवन में बन्दी बन कर रहना पड़ा, परन्तु यह उसके निज दोष के कारण नहीं था। उसने अपना उत्तराधिकारी चुनने में बड़ी योग्यता से दारा को निर्वाचित किया। परन्तु उसके; दारा के तथा सबसे अधिक भारतवर्ष के दुर्भाग्य से शक्ति ने दारा का साथ नहीं दिया। अन्यथा उसका अन्तिम जीवन भी इस प्रकार न बीतता। गान विद्या से उसे प्रेम था। और वह अनेक बाजे भी कुशलता से बजा सकता था। चित्रकला से उसे अनुराग था। यद्यपि उसने कुछ मन्दिर तुड़वा दिये थे परन्तु हिन्दुओं पर अत्याचार उसने नहीं किये। भारतीय राजपूत राजाओं ने भी सदैव उसका साथ दिया। जसवन्तसिंह के सगे भाई अमरसिंह ने भी दरबार में उसका अपमान किया। यद्यपि उसे इस प्रकार अपमान करने और विद्रोह के कारण अपने प्राण देने पड़े परन्तु इसके कारण उसने जसवन्तसिंह का अपमान कभी नहीं किया। रमजान के महीने में वह खुले हाथों दान करता था और इस प्रकार अपनी दानशीलता के लिए भी वह प्रसिद्ध हो गया था। उसे रत्नों से प्रेम था अतएव वह रत्नों का अद्भुत पारखी भी था। उसे इस विषय में कोई ठग नहीं सकता था। और यही सब कारण हैं कि शाहजहाँ को सौंदर्य प्रेमी शाहजहाँ कहा जाता है।

चरित्र

पेंतीसवाँ अध्याय

मुग़ल वंश की अन्तिम शिखा

आलमगीर औरंगजेब

(१६५८—१७०७ ई०)

जिन परिस्थितियों में औरंगजेब को दिल्ली का सिंहासन प्राप्त हुआ था उन परिस्थितियों में सीधा से सीधा व्यक्ति भी अविश्वासी बन सकता था। दारा के गुणों से मुग्ध प्रजा रुष्ट थी। औरंगजेब की सुन्नी कट्टरता से शिया अधिकारी अप्रसन्न थे। राजपूत भी उसे सन्देह की दृष्टी से देखते थे। दारा के युद्ध में ही राजपूतों में दो दल बन गये थे। इन स्थितियों में कूटनीति से औरंगजेब यदि सब पर अविश्वास करने लगा तो हम उसे दोषी नहीं कह सकते। उसकी धार्मिक भावना ने भी उसके बनाने में सहयोग दिया।

अतएव राज्याधिकार पाते ही उत्सव मनाया जाने लगा। खज़ाने खोल दिये गये। दान-पुण्य और आमोद-प्रमोद के द्वारा दिल्ली की जनता के हृदय से दारा का दुख दूर करने की चेष्टा की। मुसलमान धार्मिक नियमों के अनुसार ४ करों के अतिरिक्त शेष समस्त ८० कर अनियमित ठहरा कर बन्द कर दिये गये। इससे साधारण प्रजा पर कर का भार हलका हो गया और सुख की स्थिति जान पड़ने लगी। उसने तीर्थ यात्रा पर लगने वाला कर भी बन्द कर दिया जिससे हिन्दुओं को मुसलमानों की अपेक्षा बहुत अधिक लाभ हुआ। मुसलमान धर्म में शराब पीना

निषिद्ध है अतएव उसने शराब बन्दी की आज्ञा दे दी। अकबर ने भी शराब बन्दी की आज्ञा दी थी, परन्तु उसमें लोगों को अपने घर के अन्दर शराब बनवा लेने की सुविधा रह गई थी। परन्तु औरंगजेब ने इसका कठोरता से पालन कराया। इसी प्रकार गाँजा और अफीम पर भी उसने प्रतिबंध लगा दिया और इसके लिये गुप्तचर व्यवस्था के साथ ही अलग अधिकारी नियुक्त कर दिये यदि उदार दृष्टि कोण से देखा जाय तो उसके ये काम उसे उच्च और श्रेष्ठ शासक की पदवी पर पतिष्ठित कर देते हैं।

अब उसके काल की राजनैतिक घटनाओं पर विचार कीजिये। उसका सिंहासन प्राप्ति में सहायक मीरजुमला बंगाल का सूबेदार था। कूच बिहार तथा आसाम मुगुल राज्य के अंग बन चुके थे।

आसाम पर चढ़ाई

परन्तु वहाँ के हिन्दु राजा ने स्वतंत्र होना चाहा। राजकर देना बन्द कर दिया अतएव मीरजुम्ला ने १६६१ ई० को नौ-सेना के द्वारा आसाम पर आक्रमण किया। राजा पराजित हुआ और उसका कोष लूटकर सुलतान के खजाने में जामा कर दिया गया। परन्तु इस आक्रमण के परिश्रम तथा पूर्व की आर्द्र जलवायु ने मीरजुमला का शरीर शिथिल कर दिया और वह आसाम से लौटते समय मार्ग में ही काल का ग्रास हो गया। इस पर औरंगजेब को प्रसन्नता ही हुई। एक तो बहुत सा धन उसे प्राप्त हो गया तथा दूसरे एक वीर और धनी सूबेदार मर गया जिससे विद्रोह की सम्भावना कम हो गई।

मुगुल दरबार के आज्ञा-पत्रों के आधार पर भारतवर्ष में पुर्त्तगालियों को व्यापार की आज्ञा प्राप्त हो ही गई थी।

चिटगाँव और अराकान पर आक्रमण

परन्तु अर्थ पिशाच पुर्त्तगाली व्यापारी नहीं थे वरन् लुटेरे थे। पूर्व में चीन तक व्यापार करने वाले तथा पश्चिम में अब भी मेडागास्कर तक पहुँचने वाले भारतीय जहाज इन लुटेरों के लिये अनायास लूट का सामान थे। समुद्र में अकेले दुकेले जहाजों को पकड़ कर लूट लेना, यात्रियों की हत्या कर डालना या गुलाम बना कर बेच देना ही इनका मुख्य व्यापार था। इधर मीरजुल्मा की मृत्यु के उपरान्त बंगाल की गवर्नरी शादूस्ता खाँ को मिल चुकी थी। उसका ध्यान उस ओर गया। उसने १६६४ ई० में पुर्त्तगालियों को चटगांव की कोठी पर आक्रमण करके उसे लुटवा लिया तथा उस पर १६६६ ई० में अधिकार कर लिया। तथा बंगाल की खाड़ी में नौ सेना का अड्डा बना कर पुर्तगालियों के लिये पूर्व का मार्ग बन्द कर दिया। इस प्रकार पुर्तगालियों के सहायक अराकान राजा की शक्ति को भी निर्बल कर दिया।

इसी समय मुग़ल सेना ने काश्मीर के लदाख मार्ग से तिब्बत पर आक्रमण करके १६६५-६६ ई० में उस पर अधिकार कर लिया। वहाँ का राजा बौद्ध धर्म त्यागकर मुसलमान हो गया। अतएव तिब्बत उसी के अधिकार में दे दिया गया।

तिब्बत पर आक्रमण

१६६७ ई० में सीमान्त विद्रोह आरम्भ हुये। पहले युसुफ जई वर्ग ने विद्रोह किया। मीरजुम्ला के पुत्र अमीर खाँ तथा जसवन्तसिंह ने उसे शान्त किया। परन्तु १६७१ ई० में अफरीदियों और खट्टक कबीलों में विद्रोह की आग भड़क उठी। अमीर खाँ ने बड़ी कुशलता से उसे शान्त किया। तथा इसी

सीमान्त विद्रोह दमन

के उपलक्ष में उसे १६५७ ई० में काबुल का सूबेदार बना दिया गया। जाट विद्रोह औरङ्गजेब की हिन्दू विरोधिनी नीति से, मथुरा में मन्दिर तुड़वा कर बनाई गई। मस्जिद को देख कर जाटों का खून खौल उठा। गोकुल जाट के नेतृत्व में मथुरा के फौजदार का वध करके विद्रोह आरम्भ कर दिया परन्तु १६६७ ई० में जाटों की शक्ति तोड़ दी गई। यद्यपि पीछे भी जाटों के विद्रोह करकम चलता रहा जो १६६१ ई० में पूर्ण तया शान्त हो सका।

हिन्दू मसलमान संस्कृति के मेल से भारत में एक नवीन संस्कृति का जन्म हो रहा था। सतनामी पन्थ उसी का उदाहरण था। सतनामी पन्त के प्रवर्त्तक मान वीर ब्राह्मण सन्त थे उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि से देख लिया था कि भारतवर्ष में मुसलमानों की संस्कृति के आ जाने से जाति व्यवस्था की कठोर शृङ्खलाओं में पड़ी हुई भारतीय संस्कृति जीवित न रहेगी अतएव एक ऐसी संस्कृति का निर्माण आवश्यक है जो हिन्दू मुसलमान दोनों को एक स्थान पर ला सके। अतएव उन्होंने अपने बारह हुक्मों के द्वारा इस प्रकार का प्रचार आरम्भ कर दिया। दोआबे में सतनामियों का प्रचार बल पर ही रहा था कि औरंगजेब की कुदृष्टि उस पर पड़ गई। सत नामी गृहस्थ थे किसानी का व्यवसाय करते थे। वे जानते थे कि वाद विवाद से कटुता बढ़ती है अतएव वाद विबाद से दूर रहते थे। ऐसे जाति से द्वेष करना सुल्तान की धार्मिक असहिष्णुता को छोड़ कर और क्या कहा जा सकता है। एक मुगल सिपाही ने सतनामी स्त्री का अपमान किया।

सतनामी विद्रोह

सतनामियों ने उसे मार डाला। लोगों ने बादशाह से शिकायत कर दी और १६७२ ई० में सेना सतनामियों का विनाश करने के लिए भेज दी गई। हल धारण करने वाले सतनामी भी तलवार पकड़ कर युद्ध भूमि में उतर आये। भयंकर युद्ध के उपरान्त सतनामी कुचल दिये गये। और विद्रोह शान्त हो गया। परन्तु सामान्य शांति प्रिय जनता की अवस्था मुग़ल शासन से उठ गई और यही मुग़लों के विनाश का कारण बन गई।

औरंगजेब की अनुदार भावना राजनीति में उसकी असफलता का कारण बनीं। दक्षिण में मराठे शक्ति संगृहीत कर रहे थे, उत्तर में सिक्खों का समुदाय राजपूतों से युद्ध सैनिक जाति का रूप ले रहा था। सीमान्त प्रदेश में विद्रोह अवश्य शान्त हो गया था परन्तु मुग़ल साम्राज्य के लिये सैनिक मिलने बन्द हो चुके थे। ऐसे समय में राजपूत सैनिक ही ऐसे थे जिनके साथ उदारता का व्यवहार करके उसे शक्ति प्राप्त हो सकती थी। परन्तु उसके सब के प्रति अविश्वास ने अपने उस साधन को भी खो दिया। महाराजा जसवन्त सिंह सीमान्त विद्रोह का दमन करने गये थे। औरङ्गजेब ने उन्हें सीमान्त विद्रोह का दमन करने के लिये इसीलिये भेजा था कि यदि विद्रोह दब गया तो कबीलों की शक्ति नष्ट हो जायगी और यदि राजपूत पराजित हुये तो राजपूतों की शक्ति टूट जायगी। परन्तु जसवन्तसिंह विद्रोह दमन में सफल हुये। इस पर बादशाह ने उन्हें खिलअत (राजसी वस्त्र) भेजी। कहा जाता है कि जिस दिन उन्होंने वे वस्त्र धारण किये उसी दिन वे बीमार हुये

और शीघ्र ही १६७८ ई० में उनकी मृत्यु हो गई। औरंगजेब का मनोरथ पूर्ण हो गया। राजा निस्सन्तान थे उनके बड़े पुत्र रामसिंह का देहान्त हो चुका था। अब जोधपुर राज्य को मुग़ल साम्राज्य का अंग बना लेना सरल था। परन्तु संयोग से जसवन्त की दोनों रानियां जो उनके साथ थीं गर्भवती थीं और दोनों से पुत्र सन्तान हुई। एक तो मार्ग में ही मर गई दूसरी का पुत्र बच गया। राजपूतों ने उसे जोधपुर का महाराजा स्वीकार करने की प्रार्थना की। परन्तु औरङ्गजेब ने शाही महल में उसके पालन पोषण की व्यवस्था करनी चाही। राजपूत महाराज जसवन्तसिंह की मृत्यु में ही कुछ रहस्य समझते थे अतएव अब औरङ्गजेब का विश्वास कैसे करते। रानी अपने मंत्री और सेनापति दुर्गादास की सहायता से दिल्ली से निकल गई। इस पर औरङ्गजेब ने जसवन्त सिंह के एक पोते इन्द्रसिंह को जोधपुर का शासक घोषित कर दिया और स्वयं विद्रोह शान्त करने के लिये जोधपुर पहुँचा। परन्तु वीरवर दुर्गादास ने विद्रोह आरम्भ ही कर दिया साथ ही मेवाड़ के महाराज राजसिंह से भी सहायता मांगी। महाराज राजसिंह ने रूपनगर की राजकुमारी चंचल कुमारी का हरण करके औरङ्गजेब को चिढ़ा दिया था क्योंकि उसके रूप की प्रशंसा सुन कर औरङ्गजेब उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता था अतएव औरङ्गजेब ने दोनों को एक साथ दण्ड देने के लिये अपनी विशाल सेना लेकर आक्रमण कर दिया। राजपूत इस विशाल सेना के समक्ष युद्ध करने में असमर्थ थे अतएव उन्होंने छापा मार युद्ध प्रथा को अपनाया। राजकुमार भीमसिंह ने गुजरात लूट लिया, मंत्री दयालुदास ने मालवा दुर्गादास ने अपने छोटे छोटे आक्रमणों से मुगल सेनों की रसद व्यवस्था को

नष्ट करना आरम्भ किया। राजपूतों ने औरङ्गजेब के पुत्र अकबर को अपनी ओर मिला कर औरङ्गजेब को पराजित करने का भी उपाय कर लिया परन्तु कूटनीति में चतुर औरङ्गजेब के जाली पत्रों ने राजपूतों का हृदय अकबर की ओर से फेर दिया। राजपूतों ने उसका साथ छोड़ दिया। इस पर निराश होकर दुःखित राजकुमार अपमान सहने के लिये पिता के पास न जाकर फारस चला गया। १६८१ ई० तक इसी प्रकार युद्ध चलता रहा। अन्त में अपनी दक्षिण की आवश्यकताओं से विवश होकर औरङ्गजेब ने राणा राजसिंह से सन्धि करली। परन्तु वीर वर दुर्गादास निरन्तर ३० वर्ष तक विद्रोही ही बना रहा और अन्त में १७०६ ई० में औरङ्गजेब की मृत्यु पर अपने पालित राजा अजीतसिंह को सम्राट बना कर ही माना।

इधर पंजाब में सिक्खों से भी औरङ्गजेब ने विरोध मोल ले लिया। जहांगीर ने गुरु अर्जुन देव को जो दण्ड दिया था उसका घाव अभी पूर्णतया भर नहीं पाय

सिक्खों से युद्ध

था कि गुरु हरगोविन्द को बन्दी करा लिया गया। उसके उपरान्त हिन्दू जाति की रक्षा करने के कारण गुरु तेग बहादुर का निर्दयता पूर्वक औरङ्गजेब ने १६७५ ई० में वध करा दिया। अतएव सिक्ख समुदाय में जिसे गुरु अर्जुन हरिगोबिन्द तथा तेग बहादुर ने सैनिक जाति की भावनाओं से भर दिया था एक तीव्र प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न हो चुकी थी। शक्ति से उमकी भावना काम करने लगी। नवीन गुरु गोविन्दसिंह ने कठोर तप करके अपने अन्दर ऐसा आत्मिक बल उत्पन्न कर लिया कि उसकी प्रेरणा से सिक्ख जाति अजेय सैनिक

जाति बन गई । उस शक्ति के उद्गम के दृश्य की कल्पना कीजिये ।

सिक्खों का दरबार है । कड़ाही में शरबत रक्खा है गुरु हाथ में नङ्गी तलवार लेकर खड़े हैं उसकी सिंह गर्जना हो रही है "देवी जाति की रक्षा के लिये बलि चाहती है कौन तैयार है" ? सभा में सन्नाटा छा गया । परन्तु अधिक देर नहीं । फिर गुरु की गर्जना होती है" क्या कोई नहीं ? क्या हिन्दू जाति सिक्ख जाति नामर्द हो गई है जो देवी को बलि नहीं दे सकती ? वीर ललकार पर मरने वाले बलि होने वाले वीरों की जिस जाति में दयाराम जैसे वीर बैठे हों वहां इस प्रकार की ललकार व्यर्थ नहीं जायगी । उठ खड़ा हुआ वीर दयाराम "मैं हूँ बलि होने को प्रस्तुत हूँ"

गुरु और दयाराम तम्बू में पधारे, झटके की आवाज हुई, रक्त टपकाती हुई तलवार लिये गुरु फिर पधारे, अभी देवी तृप्त नहीं हुई उसे और बलि चाहिये"

फिर एक वीर उठा फिर तम्बू के भीतर झटके का शब्द फिर वही पुकार । एक एक करके पांच वीर बलि चढ़ गये क्या फिर पुकार होगी ? परन्तु अब की बार समस्त सिक्ख बलि के लिये प्रस्तुत हैं । परन्तु बलि देने वाला कहता है । "नहीं देवी सन्तुष्ट है बोलो वाह गुरु की फतह और देखो यह हमारे पांच प्यारे हैं । इन रक्त के बूंदों से मिश्रित यह शर्बत अमृत है । आज जो यह अमृत पियेगा वह अमर है । उसका नश्वर शरीर भले ही मिट जाय परन्तु उसका आत्मा सत श्री अकाल पुरुष का आत्मा होगा ।

बलिदान की इस भूमि पर स्थिर सिक्ख जाति के साथ

औरङ्गजेब ने विरोध करके मुगल साम्राज्य के लिये जिस महा गर्त्त का निर्माण किया था उसमें उन्हीं सिक्खों द्वारा भारतीय राज्य क्रान्ति का नायक बहादुरशाह ढ़केल दिया गया। बेचारे गुरु जी भी क्या जानते थे कि यही शक्ति जिस हिन्दुत्त्व या भारतीयत्त्व की रक्षा के लिये आज संगठित हो कर मगलों के विरुद्ध खड़ी हो रही है वही शक्ति एक दिन भारतीयत्त्व के पतन में भी सहायक होगी। अन्य सिक्ख गुरुओं के इतिहास से इस समय हमारा प्रयोजन नहीं है। अतएव उसका वर्णन हम परिशिष्ट के लिये छोड़ कर औरङ्गजेब के दुराग्रह से सताये श्री गुरुगोविन्द सिंह के बलिदान की कहानी पर ही विचार करेंगे।

पुत्रों का बलिदान

इस प्रकार सैनिक शक्ति के सुसंगठित हो जाने पर गुरु जी ने स्वतन्त्र सिख शासक की भांति आचरण आरम्भ कर दिया। समीपवर्त्ती पहाड़ी राजाओं पर आक्रमण करके उनको पराजित कर दिया। इस पर औरंगजेब ने सरहिन्द के सूबेदार को गुरु जी के दमन की आज्ञा दी। युद्ध भूमि में गुरु जी के दो युवक पुत्र वीरता से युद्ध करते हुये काम आये। तथा गुरु जी को राजधानी आनन्दपुर छोड़ कर भागना पड़ा। गुरु जी ने अपना कुटुम्ब अपने एक विश्वास पात्र अनुचर के पास भेज दिया था। परन्तु उसने विश्वासघात किया तथा गुरु जी के दो ८-१० वर्ष के बच्चों को सूबेदार के हाथ सौंप दिया। सूबेदार ने उन बच्चों को मुसलमान होने की आज्ञा दी। परन्तु गुरु तेगबहादुर के पौत्र, उनसे "सर दिया सार न दिया" के मन्त्र को वंश परम्परा से प्राप्त कर चुके थे।

जीवित दीवाल में चुन दिये गये परन्तु इस्लाम स्वीकार न किया। गुरु जी पर निरन्तर आक्रमण होते रहे। वे सदैव इधर से उधर भागते और कष्ट उठाते रहे परन्तु उन्होंने आत्म समर्पण न किया। अन्ततः दक्षिण के युद्ध में फँस जाने के कारण औरंजेब को गुरु जी से सन्धि करने के लिये वाध्य होना पड़ा और उसने गुरु जी को दक्षिण में ही बुलाया। परन्तु इसी समय उसकी मृत्यु हो गई। बहादुरशाह ने गुरु जी से सन्धि कर ली। परन्तु गुरु जी जब दक्षिण की ओर जा रहे थे उस समय एक पठान ने उनके पेट में कटार भोंक दी थी। यद्यपि घाव अच्छा हो गया था परन्तु टाँके दृढ़ नहीं हुये थे। गुरु जी ने एक कड़ी कमान पर प्रत्यञ्चा चढ़ानी चाही। इस में बल लगाने के कारण टाँके फट गये और गुरु की मृत्यु हो गई।

गुरु जी का व्यक्तित्त्व बड़ा उदार और शीलवान था। वे बड़े विद्वान और हिन्दी तथा गुरुमुखी के कवि थे। उनका

गुरु जी का चरित्र

अवतार हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिये एक सैनिक जाति को जन्म देने के लिये हुआ था। सिक्खों को पञ्च ककार "केश, कंघा, कड़ा, कच्छ (जांघिया) और कटार" से सजाकर उन्होंने दल के बन्धन से छुड़ा कर शक्तिशाली जाति बना दिया। विलास की भूमि से ऊपर उठा कर त्याग और तपस्या की शिक्षा दी। गुरु जी के जीवन को ध्यान से पढ़ने पर विदित होता है कि उनका उद्देश्य हिन्दुओं की रक्षा करना था। अलग सिक्ख सम्प्रदाय बनाकर क्षुद्र सम्प्रदायिक सुख की उन्हें इच्छा नहीं थी। कदाचित गुरु जी का यह उपदेश क्रान्ति के काल

में भी सिक्ख अपने साथ रख सके होते तो आज भारतवर्ष का कुछ दूसरा इतिहास होता।

औरंगजेब और दक्षिण

औरंगजेब के दक्षिण पर आक्रमण करने के अनेक कारण थे। उनमें से एक मराठों की बढ़ती हुई शक्ति भी था। शिवाजी ने दो बार सूरत को लूट लिया था तथा मुगल थानों पर भी आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया था। अतएव मराठों की शक्ति का विनाश भी करना था। साथ ही दक्षिणी भारतवर्ष में अब भी स्वतन्त्र शिया मुसलमान राज्य उपस्थित थे उन्हें मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत करना था। अतएव औरंगजेब ने दक्षिण पर आक्रमण किया। शिवाजी का इतिहास औरंगजेब के आराम काल से प्रारम्भ होता है अतएव उनका अलग वर्णन करना अधिक अच्छा होगा। अतएव हम अभी गोलकुण्डा और बीजापुर की विजय का पहले वर्णन करेंगे।

बीजापुर पर विजय

राजपूतों से सन्धि करके इसने स्वयं दक्षिण पर आक्रमण करने का विचार किया। शिवाजी की मृत्यु हो चुकी थी, अतएव मराठे भी निर्बल से हो गये थे। अहमद नगर में पहुँच कर उसने सेना का संगठन करके अपने दो पुत्रों, मुअज्जम और आज़म के नेतृत्व में बीजापुर के विरुद्ध आक्रमण की योजना बनाई। मुअज्जम मराठों से परास्त हो गया। परन्तु आज़म ने शोलापुर जीत लिया और बीजापुर पर आक्रमण कर किया। परन्तु पराजित होकर लौट आया, अब १६८४ ई० में मुअज्जम ने फिर बीजापुर पर आक्रमण

किया। बीजापुर के प्रधान मन्त्री शरजा खाँ ने मुअज्जम से सन्धि करली। अतएव १६८६ ई० में औरंगजेब ने स्वयं आक्रमण करके बीजापुर का घेरा डाल दिया। खाद्य समाप्त हो जाने के कारण बीजापुर के सुल्तान अली आदिल शाह को आत्म समर्पण करना पड़ा। रियासत मुग़ल साम्राज्य में मिला ली गई।

आक्रमण के लिये बहाने बनाना उस समय जितना सरल था उसके कहने की आवश्यकता नहीं। गोलकुण्डा में दो हिन्दू मन्त्री थे इसी लिये उस पर आक्रमण आवश्यक था। १६८७ ई० में गोलकुण्डा पर मुग़ल सेना ने धावा बोल दिया। भयंकर युद्ध के पश्चात् अपने ही अधिकारियों के विश्वासघात से गोलकुण्डा भी पराजित हो गया। और मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया।

गोलकुण्डा पर आक्रमण

मुग़ल साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में कुमारी अन्तरीप तक हो गया। इतना बड़ा लाभ थोड़ा नहीं था। यदि इस विजय के साथ जनता के हृदय को भी विजय सम्मिलित होती। यदि उस समय जनता औरंगजेब शासन में सुरक्षा का विश्वास पा सकी होती तो कदाचित अलाउद्दीन के समय का विशाल भारतवर्ष फिर केन्द्रीय शक्ति को शक्तिमान बनाकर भारतीय साम्राज्य के लिये सर्वश्रेष्ठ वस्तु होता। परन्तु औरंगजेब ने परिस्थितियां बदल दी थीं। अकबर की नीति उसने छोड़ दी थी। अतएव जनता का उस पर विश्वास उठ गया था। इस दशा में साम्राज्य विस्तार केवल ऊपरी दिखावा था। साम्राज्य की नीव खोखली हो चुकी थी। इन दोनों रियासतों के

विजयों का प्रभाव

औरंगज़ेब का साम्राज्य
सन् १७०७
काबुल
पेशावर
कोहाट
गज़नी
बन्नू
लाहौर
मुल्तान
सिन्धु न०
दिल्ली
यमुना न०
गंगा न०
आगरा
सामूगढ़
खजवा
जोधपुर
अजमेर
ग्वालियर
उदयपुर
प्रयाग
बनारस
पटना
राजमहल
ढाका
अहमदाबाद
नर्मदा न०
ताप्ती न०
बुरहानपुर
चन्द्रनगर
कलकत्ता
दौलताबाद
बेसीन
सालसट
बम्बई
औरंगाबाद
अहमदनगर
गोदावरी न०
पूना
बीदर
गोलकुण्डा
मछलीपट्टम
सतारा
बीजापुर
कोल्हापुर
कृष्णा
गोआ
बेलारी
मदरास
बंगलोर
पाँडीचेरी
माही
कालीकट
नेगापट्टम
कोचीन
मदूरा
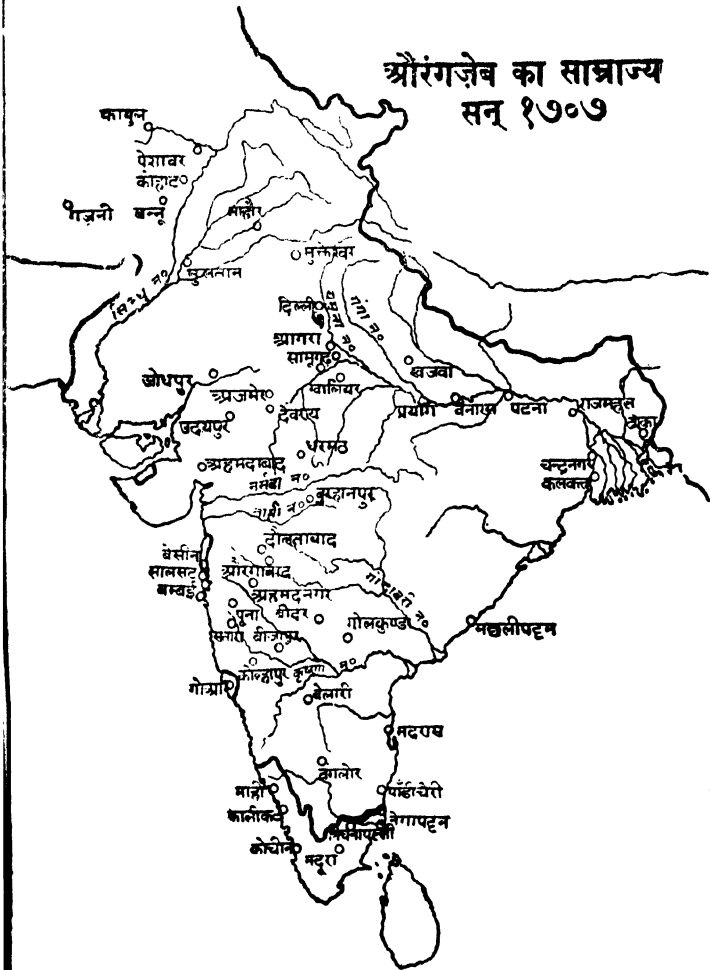
विनाश से उसमें और घुन लग गया। क्योंकि ये दोनों रियासतें दक्षिण की उठती हुई मराठा लहर को तोड़ने के लिये दीवार का कार्य्य कर रही थी और अब नष्ट हो गई। अतएव वे लहरें सीधी मुगल साम्राज्य पर ठोकर मारने लगीं जिससे समस्त साम्राज्य बालू पर की दीवाल की भांति ढेर हो गया।

निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण मुगल सैनिक ऊब गये थे। कहीं विराम नहीं विश्राम नहीं। वेतन का कहीं ठिकाना नहीं। अतएव मुगल सेना में अव्यवस्था ने घर कर लिया। इसके विपरीत मराठा सेना का अर्थ उत्साह और उमंग क्योंकि उनका उद्देश्य ही भिन्न था। जिससे टक्कर लेने के लिये जिस दृढ़ता की आवश्यकता थी वह मुगल सेना में शेष नहीं रही थी। फलत इस समय का साम्राज्य केवल इस प्रतीक्षा में था कि औरंगजेब की मृत्यु हो और उसके साथ ही स्वप्न की भांति मिट जाय।

जिस मराठा शक्ति का ऊपर वर्णन आया है अब थोड़ा औरंगजेब से सम्बन्ध रखने के कारण उस पर विचार कर लेना चाहिये।

छत्तीसवां अध्याय

शिवाजी

बम्बई सूबा के पश्चिमी घाट के पर्वत प्रदेश का नाम महाराष्ट्र है। इसी देश के निवासी मरहट्टे कहलाते हैं। इन मराठों को पर्वतीय भागों में रहने के कारण प्रकृति से ही सहन शक्ति और परिश्रम का स्वभाव प्राप्त है। इसको शिवाजी जैसा नेता मिल गया। जिस का फल दुर्जय मराठा शक्ति का उत्थान हुआ। पहले जो लोग किसान थे और शान्त शिष्ट थे उन्हें सन्त राम दास, तुका राम आदि ने एकता का पाठ पढ़ाया और शिवाजी ने उन्हें तलवार देकर संगठित शक्ति देकर उन्हें सैनिक जाति बना दिया।

जिस समय मराठा शक्ति एकता का पाठ सन्तों द्वारा पढ़ रही थी और जाति बन्धन शिथिल हो रहे थे उसी समय शाह जी भोसलें ने मराठों का नेतृत्त्व ग्रहण किया। शाह जी ने बीजापुर के सुल्तान की सेवा में सेना नामक का पद स्वीकार कर लिया था। अतएव वे दक्षिण में अपनी जागीर पर ही

शिवाजी का परिचय

अधिकतया रहते थे। १६२७ ई० में शिवा जी का जब जन्म हुआ तो उनके पालन पोषण का भार उनकी माता जीजा बाई और गुरु कोंड देव पर पड़ा। माता और गुरु ने पुस्तक शिक्षा के स्थान पर उन्हें वीरता की शिक्षा दी। रामायण, महाभारत

की कहानियों से उनमें भारतीयत्व की भावना उत्पन्न की, शस्त्र शिक्षा द्वारा उन्हें सेना के नेतृत्व में कुशल बना दिया। उनमें स्वधर्म और स्वराष्ट्र प्रेम की भावना इसी वृद्ध गुरु द्वारा उत्पन्न हुई इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

आरम्भिक विजयें

१६ वर्ष की अवस्था में शिवाजी ने समस्त पर्वतीय प्रदेश में महाराष्ट्र एकता का प्रसार आरम्भ किया। १६४६ ई० में तोरण राजगढ़ के दुर्ग जीत लिये फिर धीरे धीरे चाकन सिंह गढ़, पुरन्दर और कोण्डाना दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया। परन्तु जब कल्याण दुर्ग पर भी शिवाजी ने १६४८ ई० में अधिकार कर लिया तो बीजापुर का सुल्तान क्षुब्ध हो गया। उसने शाहजी को बन्दी करके अपने पुत्र शिवाजी को इस प्रकार का आचरण करने से रोकने के लिय कहा। फलतः शिवाजी को बीजापुर के दरबार में जाना पड़ा। अधिकारियों ने शिवाजी की थोड़ी आयु देख कर तथा शाहजी की स्वामि-भक्ति तथा तात्कालिक मुगल आक्रमणों के भय से राजनैतिक हित को देखते हुये शिवा जी के पिता शाहजी को छुड़वाने में सहायता दी। तथा पिता ने शिवाजी को शान्त रहने का आदेश दिया। फलतः १६५५ ई० तक शिवाजी शान्त रहे और अपने अधिकृत प्रदेशों की सुदृढ़ शासन व्यवस्था में लग गये।

जावली पर अधिकार

कोंकण प्रदेश में चन्द्र राव मोरोपन्त के अधिकार में जावली का दुर्ग बीजापुर राज्य के आधीन था। शिवाजी ने चन्द्रराव से प्रार्थना की वह दुर्ग मराठों को दे दे। परन्तु स्वामि-भक्त चन्द्रराव ने अस्वीकार कर दिया। फलतः शिवाजी ने चतुरता से १६५५ ई० में चन्द्रराव का वध करा दिया

और जावली पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में कर लिया। १६५६ ई० के लग-भग शिवाजी ने औरंगजेब से सन्धि कर ली।

औरंगजेब की अविश्वास की नीति से शिवाजी परिचित थे। अतएव उन्होंने भी उसी नीति से काम लिया। औरंग-जेब की सेनाओं को इधर-उधर व्यस्त देख कर उन्होंने अहमद नगर को लूट लिया। इसी समय शाहजहां की बीमारी की सूचना पाकर औरंगजेब अपनी सूबेदारी की रक्षा का ध्यान छोड़ कर उत्तर की ओर चला गया और शिवाजी पर प्रत्या-क्रमण न कर सका।

शिवाजी और बीजापुर राज्य

शिवाजी की यह बढ़ती हुई शक्ति सबसे अधिक घातक बीजापुर के लिये ही थी। अतएव आदिलशाही सुल्ताना को उसके दमन की चिन्ता हुई। और हाथी सा शरीर रखने वाला सेनापति अफ़ज़ल खां शिवाजी का दमन करने के लिये भेजा गया। १६५६ ई० में सदलबल अफ़ज़ल खां ने शिवाजी को जीवित पकड़ने की प्रतिज्ञा के साथ आक्रमण किया। सीधे युद्ध में अपनी सफलता अनिश्चित समझ कर उसने छल करने की ठानी और सन्धि का प्रस्ताव किया।

अफ़ज़लखां का वध

निश्चित हुआ कि प्रतापगढ़ के बाहर टीले पर शिवाजी और अफजलखां मिल कर परस्पर विचारों का आदान प्रदान करें और दोनों राज्यों में मेल हो जाय तथा सीमा रेखा निश्चित कर दी जाय। शिवाजी को तात्कालिक मुसलमानों ने अपने व्यव-

अफजलखां की मृत्यु

शिवाजी का राज्य
सन् १६८० ई०
कल्याण
औरंगाबाद
अहमदनगर
शोलापुर
हैदराबाद
कोल्हापुर
बीजापुर
रायचूर
कृष्णा न०
गोदावरी न०
मैसूर
पोर्टो नोवो
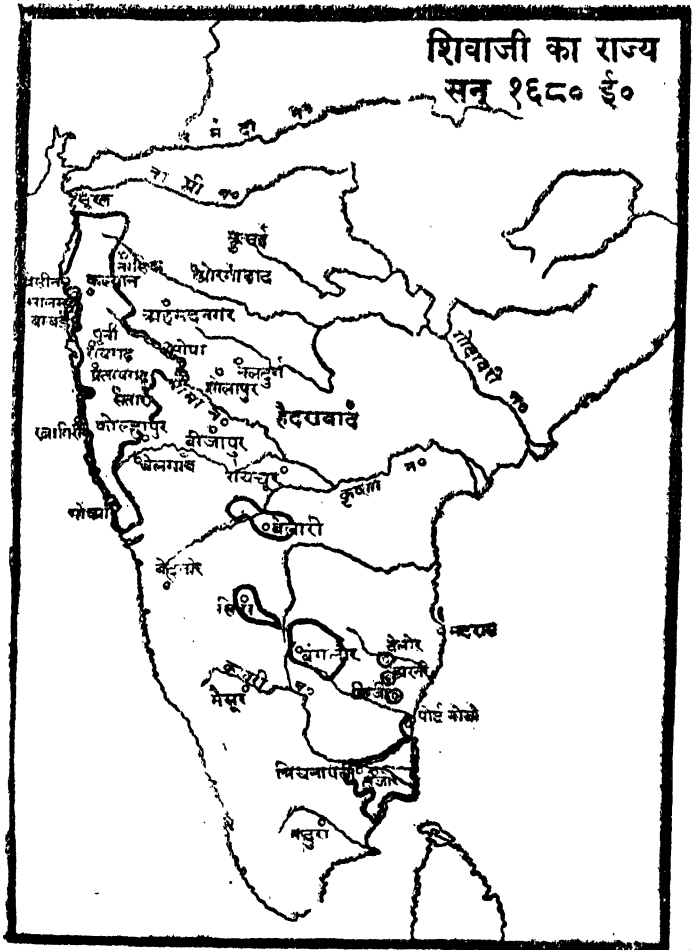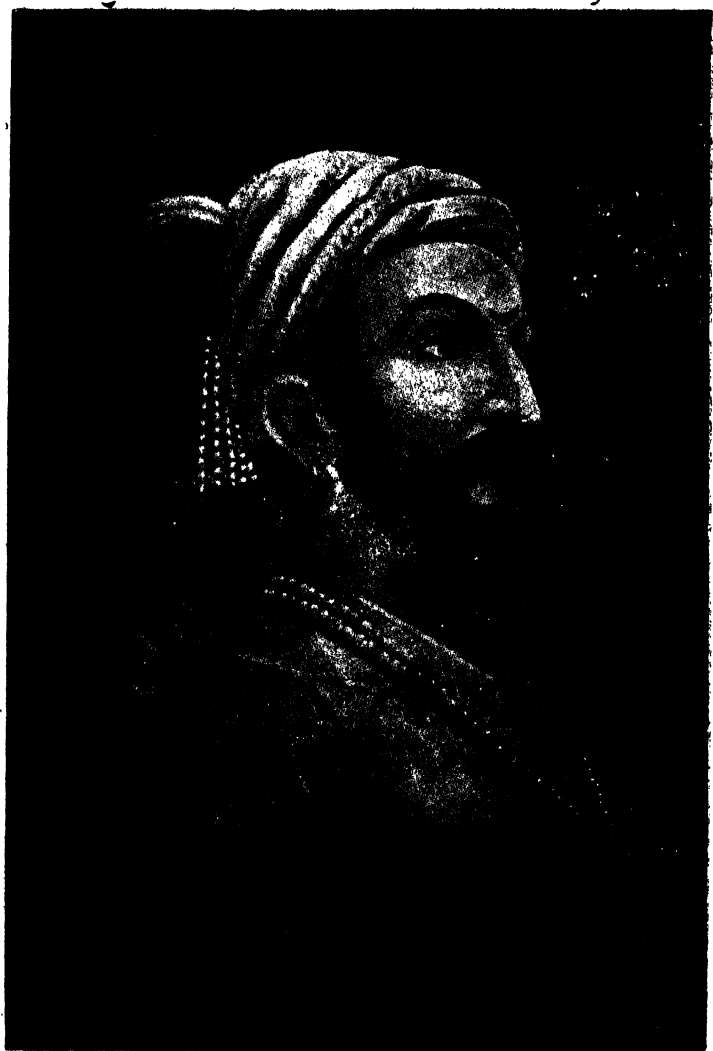
हार से सदैव सजग रहना सिखा दिया था। अतएव सब लोगों के रोकने पर भी शिवाजी भेंट करने तो गये परन्तु उन्होंने अपने कपड़ों के भीतर कवच पहन लिया तथा दहिने हाथ में बघनखा धारण कर लिया। उसके साथी प्रस्तुत थे संकट का अवसर देखते ही युद्ध में कूद पड़े। इस प्रकार सब प्रकार से सावधान हो कर शिवाजी ने भेंट की। परन्तु अफजलखां तो अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने आया था। उसने अवसर पाकर शिवाजी की गर्दन अपनी बायें पंजे से पकड़ कर कटार का वार किया शिवाजी ने कटार से पहले ही बघनखां को पेट में भोंक कर आंतें बाहर खींच ली। जैसे को तैसा मिल गया। अफजलखां धराशाही हो गया। और मराठों ने समस्त बीजापुरी सेना को छिन्न भिन्न कर दिया।

अंग्रेज इतिहासकारों ने अपने नीति के अनुसार शिवाजी पर आक्रमण करने का दोष लगाया है। जिनकी नीति भी भारतीयों के चरित्रों को कुरूप करके दिखाना हो उन्हें सब कुछ सोहाता है। परन्तु श्री यदुनाथ सरकार ने शिवाजी के ही पत्र से प्रमाणित कर दिया है कि घटना वस्तुतः वैसे थी ही हुई जैसा ऊपर वर्णन किया गया है।

इस विजय से प्रोत्साहित मराठा सेना ने पन्हाला विजय कर लिया तथा बीजापुर तक आक्रमण किया। अन्त में बीजापुर दरबार ने शिवाजी से सन्धि कर ली और दोनों ओर की राज्य सीमा निश्चित हो गई। शिवाजी अपने जीते हुये प्रदेश का स्वतंत्र शासक मान लिये गये।

अब शिवाजी का ध्यान सूरत की ओर

गया। सूरत में अंग्रेज व्यापारियों की कोठी थी। मुगल साम्राज्य का पश्चिमी व्यापार इन्हीं के हाथ में था तथा ये व्यापारी नाम के व्यापारी थे वस्तुतः इनका व्यवसाय तटवर्त्ती देशी जाहजों को लूटना था। अतएव शिवाजी ने १६६४ ई० में सूरत पर आक्रमण किया। और उसे लूट लिया। पांच दिन की लूट में मराठों को लगभग १ करोड़ रुपया मिला।

शिवाजी और शाइस्ताखां

शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति देख कर औरंगजेब ने बंगाल के सूबेदार शाइस्ताखां तथा राजा जसवन्तसिंह को १६६२ ई०में शिवाजी का दमन करने के लिये भेजा। दोनों की संगठित सेना से युद्ध करना शिवाजी की शक्ति से बाहर था। शाइस्तखां ने जिसके हाथ समस्त मुगल सेना थी। चिकन कल्याण पर विजय प्राप्त की। तथा आगे बढ़ते बढ़ते समस्त पर्वतीय प्रदेश रौंद डाला और पूना तक पहुंच गई। रमजान का महीना था। पूना में शाइस्तखां ने पड़ाव डाल दिया। उसने शिवाजीके बचपन के निवास-भवन को अपने लिये चुना। शिवाजो उस भवन के कोने कोने से परिचित था। अतएव ४०० मनुष्यों की बरात का आयोजन हुआ। गाजे बाजे के साथ बरात चली। परन्तु उस भवन के सामने पहुंचते ही बरात की सेना बन गई। शिवाजी महल में घुस गया।

शिवाजी और शाइस्ताखां

अपनी सुख सेज पर पड़ा शाइस्तखां इस मार काट से चौंक पड़ा परन्तु अपने कमरे के द्वार पर नङ्गी तलवार लिये शिवाजी को देख कर उसे भागना सूझा। खुली खिड़की

पकड़ कर कमरे से बाहर कूद पड़ा परन्तु शिवाजी की तलवार ने उसकी उङ्गलियां काट दीं। प्राण बचे लाखों पाये। शाइस्तखां मुगल इतिहास से अलुप्त हो गया। मार काट मची हुई थी। शाइस्तखां का पुत्र मारा जा चुका था। सेना का साहस टूट गया और केवल ४०० वीरों ने असंख्य मुगल सेना को पराजित कर दिया। मराठों का उत्साह चौगुना हो गया।

अब औरङ्गजेब खिसिया गया। उसने जसवन्तसिंह को लौटा लिया। और शाहजादा मुअज्जम के साथ राजा जयसिंह को भेजा। इस बार प्रधान सेनापति जयसिंह थे।

शिवाजी और जयसिंह

जयसिंह ने १६६५ ई० में अनेक किलों पर अधिकार कर लिया था। पुरन्दर दुर्ग में शिवाजी को घेर लिया। कोई उपाय चलता न देख कर शिवाजी ने जयसिंह से सन्धि की प्रार्थना की। जयसिंह उदार राजपूत थे। उन्होंने उदारता के साथ सन्धि प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। शिवाजी को अपने २२ दुर्ग औरङ्गजेब को दे कर उसकी आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु जयसिंह के मृदु व्यवहार ने शिवाजी को जितना अधिक जीत लिया उतना उनकी शक्ति नहीं। शिवाजी ने बीजापुर से युद्ध में जयसिंह की बड़ी सहायता की।

औरङ्गजेब ने इसी समय शिवाजी को १६६६ ई० में आगरे बुला भेजा। उसकी कीमत कुछ भी रही हो परन्तु शिवाजी

शिवाजी आगरे में

का उद्देश्य आगरा आने तक अच्छा ही था। अतएव जब आगरा दरबार में उसे तीसरी श्रेणी का सरदार समझा गया। पंचहजारी

मनसब दिया गया तो उन्हें अपना अपमान जान पड़ा। अतएव वे रुष्ट हो गये। औरङ्गजेब ने उन्हें पुत्र सहित बन्दी कर लिया। अनेक प्रार्थनाओं के उपरान्त उन्होंने अपनी मुक्ति का उपाय स्वयं सोचा। बीमारी का बहाना किया, फिर अच्छे होने पर मिठाइयां बांटी जाने लगी। एक दिन मिठाई के झावे में बैठ कर पिता पुत्र निकल गये। दिल्ली से ६ मील दूर जसवन्तसिंह के पुत्र रामसिंह ने घोड़ों का प्रबन्ध कर दिया था। अतएव आगरा से मथुरा, काशी जगन्नाथ पुरी होते हुये शिवाजी साधुवेश में रायगढ़ पहुंच गये।

शिवाजी और जसवन्तसिंह

बीजापुर युद्ध में सवाई जयसिंह के बुरी तरह पराजित होने के कारण उनको औरङ्गजेब ने बुला लिया और उनके स्थान पर जसवन्तसिंह को भेजा। जसवन्तसिंह की सहानुभूति पहले से ही थी। अतएव उन्होंने प्रयत्न करके औरङ्गजेब और शिवाजी में सन्धि करवा दी। शिवाजी को पुरन्दर और सिंहगढ़ के अतिरिक्त समस्त महाराष्ट्र प्रदेश का राजा मान लिया गया। औरङ्गजेब की आधीनता शिवाजी ने स्वीकार कर ली यह सन्धि १६६६ ई० में हुई।

परन्तु शिवाजी बन्धन में रहने के लिए उत्पन्न नहीं हुए थे उन्होंने १६७० ई०में सूरत को फिर लूट लिया। सिहंगढ़ और पुरन्दर के दुर्ग फिर मुगलों से छीन लिए और बींदर राज्य तथा खानदेश पर आक्रमण करके चौथ वसूल की तथा बगलाना जीत कर राज्य में मिला लिया।

१६७४ ई० में शिवाजी को पण्डितों ने जनेऊ पहना कर क्षत्रिय स्वीकार किया और उनका शास्त्र विधि से राज्या

राज्याभिषेक

भिषेक किया गया । रावगढ़ को समस्त महाराष्ट्र प्रदेश की राजधानी बनाया । इस अभिषेक के १२ दिन पश्चात जीजाबाई का देहान्त हो गया ।

१६७८ ई० में शम्भाजी अपने पिता शिवाजी का साथ छोड़ कर मुगलों से जा मिले । इससे मुगल सेनापति दिलेर खाँ का साहस बढ़ गया । परन्तु वह शिवाजी का कुछ बिगाड़ न सका । अपितु शिवाजी ने अपने ६ वर्ष के राज्य काल में जिञ्जी, वेलौर, अरनी, कोलार और तञ्जौर पर अधिकार कर लिया तथा गोलकुन्डा के बादशाह से सन्धि करके कर्नाटक को खूब लूटा । परन्तु महाराष्ट्र के दुर्भाग्य से १६८० ई०में उनकी मृत्यु हो गई ।

अन्तिम वर्ष-

शिवाजी का राज्य प्रबन्ध

हिन्दू राज्य प्रणाली को मुसलमानों ने स्वीकार किया था तब शिवाजी तो हिन्दु राष्ट्र के ही निर्माता थे । चाणक्य के अष्ट प्रधान वर्ग को उन्हों ने अपनाया और समस्त राज्य प्रबन्ध ८ विभागों में बाँट दिया गया । उनके मन्त्रि मन्डल में प्रधान मन्त्री (पेशवा) उप मन्त्री राज्य के आय व्यय का निरीक्षक (मजुमदार) गृह मंत्री जो दरबारी कार्यवाहियाँ तथा राजा की व्यक्ति गत चर्चा का लेखा रखने वाला था (वाकया नवीस) मंत्रणा मंत्री जो राज की कागज पत्रों का लिखने वाला था (शुरुनवीश) सेनापति (सर-ए-नोवत) दानाध्यक्ष (सद्रस्मूदूर) न्यायधीश (काजी उल्कज्जात) थे । इन में से प्रधान मंत्री का पद सब से ऊंचा था । उसकी

अष्ट प्रधान केन्द्रीय व्यवस्था

निर्णय प्रत्येक विषय में अन्तिम था जब तक राजा स्वयं उसमें हस्ताक्षेप न करे। शिवाजी ने जागीरदारी प्रथा को उठा कर विभागीय व्यवस्था इस प्रकार स्थापित कर दी और समस्त शक्ति केन्द्र के आधीन कर दी।

अकबर की नीति भूमि व्यवस्था के लिए उपयोगी सिद्ध हुई थी। अतएव शिवाजी ने भी उसी का अनुसरण किया।

भूमि व्यवस्था

समस्त भूमि की नाप की गई तथा उपज के आधार पर कर की दरें निर्धारित की गईं। इन करों में उपज का प्रतिशत ४० देना पड़ता था। इस के अतिरिक्त आय की राज्य के दो मुख्य साधन और थे। वे थे चौथ और सरदेश मुखी।

शिवाजी ही नहीं समस्त मराठा इतिहास में चौथ का अत्यधिक प्रयोग होगा अतएव इस शब्द की परिभाषा समझ लेना आवश्यक है।

चौथ-

मराठे जिन देशों को जीतते थे उनमें दो प्रकार की व्यवस्था ये स्थापित होती थी। पहली व्यवस्था में विजित देश साम्राज्य में मिला लिया जाता था। उस देश से लगान के रुपये में ४० % लिया जाता था परन्तु दूसरी व्यवस्था यह होती थी कि जो पराजित राजा या सरदार मराठों की आधीनता स्वीकार कर लेते थे उन्हें अपने राज्य का स्वयं प्रबन्ध सौंप दिया जाता था। ऐसे राजा या सरदार को अपनी वर्षिक आय का $\frac{1}{4}$ भाग मराठा केन्द्र को देना पड़ता। इसी को चौथ कहते थे।

साम्राज्य के निकटवर्ती प्रदेश के साधारण किसान या जागीरदार जो अपने अपने राज्यों को मालगुजारी देते थे

परन्तु मराठा राज्य के निकट पड़ते थे उन्हें

सरदेश मुखी अपनी आयका १/१० भाग मराठों के केन्द्रों को भी देना पड़ता था। इस से मराठे उन गावों या जागीरों पर आक्रमण नहीं करते थे तथा उनको लूट से बचाए रखते थे। इसी कर को सरदेश मुखी कहते थे।

न्याय व्यस्था में भी शिवाजी ने अकबर की नीति का अनुकरण किया सर्वोच्च न्यायाधिकारी केन्द्रीय अष्ट प्रधानों में से था ग्राम पंचायतें ही प्रत्येक प्रबन्ध की इकाई

न्याय व्यवस्था होने के कारण न्याय भी करती थीं। पञ्चायत के फैसलों का निर्णय केन्द्र से ही होता था। वैसे साधारणतया बड़े झगड़े जिले के अधिकारी निर्णय कर देते थे। जो केन्द्रीय न्याय विभाग के आधीन प्रत्येक जिले में रहते थे। परन्तु लिखित कानूनों का अभाव था। केवल हिन्दु शास्त्र ही लिखित कानून थे। मुसलमानों के साथ पक्ष पात रहित तथा उनके धर्म का विचार रखते हुए न्याय किया जाता था।

शिवाजी की सेना की इकाई १० सिपाही न हो कर ६ सिपाही थे जिसके अधिकारी को नायक कहते थे। ५ नायकों पर हवलदार, ३ हवलदारों पर जमादार,

सेना

दस जमादारों पर एक हजारी की पदवी थी। घुड़ सवारों में हवलदार के आधीन २५ घुड़ सवार होते थे। ५ हवलदारों पर जमालदार, और ५ ही जमालदारों पर १ हजारी पदवी थी। शिवाजी को सैनिक की परख बहुत अच्छी थी। उन्होंने स्वयं अनेक राह चलते सैनिक को भरती किया जिन्हों ने अपनी योग्यता से मराठा जाति की बड़ी बड़ी सेवायें कीं।

अंग्रेजों और पुर्त्तगालियों की लूट से भारतीय व्यापार बचाने के लिए शिवाजी ने संगठित जलसेना का भी प्रबन्ध किया था। २०० जहाजों की जलसेना मराठा तट की रक्षा के लिए कोलावा बन्दरगाह में पड़ी रहती थी।

जल सेना

सूरत से गोआ के दक्षिण तक समुद्र तट में फैला हुआ शिवाजी का राज्य चौड़ाई में अधिक नहीं था। समस्त पर्वतीय प्रदेश पर उनका अधिकार था, इसकी पश्चिमी सीमा पर बगलान', नासिक और पूना के जिले थे। इसके अतिरिक्त तंजौर, बंगलौर, कोलार विलारी, अरनी, कोपाल और जिञ्जी के जिले भी थे जो साम्राज्य सीमा से अलग मुसलमानों के आधीन भागों में थे।

शिवाजी का राज्य विस्तार

औसत शरीर के शिवाजी जिस घर में उत्पन्न हुये थे उसकी न तो कोई बड़ी राजनैतिक प्रतिष्ठा थी न सामाजिक। परन्तु आज शिवाजी का नाम ही लाखों महाराष्ट्रों ही नहीं हिन्दू जाति के करोड़ों व्यक्तियों में उत्साह की प्रेरणा देता हुआ सजीव आदर्श बन गया है। इसका कारण शिवाजी का शरीर नहीं वरन् उनके वे दिव्य गुण हैं जिनके कारण उनके द्वेषी मुसलमानों में से अनेक इतिहास लेखकों खफीखां जैसे पक्षपातियों ने भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वे गुण यदि संक्षेप में कहे जायें तो हम उन्हें "सच्चा राष्ट्रीय नेता" कह कर व्यक्त कर सकते हैं। छोटी सी पिता की जागीर का परतंत्र अधिकार पाकर केवल माता और गुरु से राष्ट्र-धर्म की प्रेरणा लेकर शिवाजी ने जिस अदम्य साहस, वीरता और रणकुशाता का परिचय दिया इतिहास में

शिवाजी का व्यक्तित्व

ऐसे उदाहरण कम मिलेंगे। बाबर ने जिस प्रकार राज्य लाभ किया ठीक उसी प्रकार शिवाजी ने भी राज्य स्थापन किया। अन्तर केवल इतना ही है कि बाबर की विरोधिनी शक्तियों में केवल असंगठित राजपूत शक्ति ऐसी थी जिससे बाबर को कठिनता का अनुभव न हुआ। परन्तु एक साथ ही, दक्षिण के शियों की शक्ति, राजपूतों की शक्ति और उस समय की अजय मुगल शक्ति के शिर पर ठोकर मार कर शिवाजी ने जिस साम्राज्य की स्थापना की उसे औरंगजेब के शब्दों में पहाड़ी चूहा कहना आंखों देखते अन्धा बनना है।

राजनीति में जिसे कुशलता कहा जाता है शिवाजी में वह पूर्णतया उपस्थित थी। उन्होंने अवसर देखकर सन्धि कर ली तथा अवसर देखकर उसे तोड़ भी दिया। आज हम इसे बुरा कह सकने के अधिकारी नहीं हैं। वर्त्तमान जगत के सभ्यता के ठेकेदारों ने किस प्रकार अपनी सन्धियाँ तोड़ी हैं इसका उदाहरण पढ़ने के लिये दूर जाने की आवश्यकता नहीं। रूस और जर्मनी की सन्धि, रूस और जापान की सन्धि, इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि शिवाजी ने सन्धियां तोड़ी अपनी सुरक्षा और धोखा न खाने के विचार से। तथा इन ठेकेदारों ने सन्धियां तोड़ी व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिये। अंग्रेजों के इतिहास में इस प्रकार के उदाहरण आगे अनेकों मिलेंगे।

शिवाजी कट्टर हिन्दू राष्ट्र वादी थे, परन्तु कल्याण दुर्ग के पतन के उपरान्त बीजापुर के सैयद सरदार की पुत्र वधू पकड़ ली गई। शिवाजी के सम्मुख उपस्थित की गई। इस अपूर्व स्वर्गीय अपसरा का रूप देवताओं को भी विचलित कर सकता था। परन्तु शिवाजी उस पर मुग्ध होकर कहने लगे, हे देवी यदि

तुम्हारे समान मेरी माता सुन्दरी होती तो मैं भी सुन्दर होता। कितना उदार भाव है। यवन कन्या की आंखों में आंसू आ गये उसने पुत्र के समान शिवाजी की आरती उतारी और जब कुशल पूर्वक कल्याण पहुंच गई तो उसके श्वसुर ने ही शिवाजी के पिता शाह जी को बन्धन से मुक्त होने में सहायता दी। न केवल स्त्री जाति के लिये वरन् मुसलमानों के धर्म ग्रंथ कुरान, मस्जिद और मदरसों का न केवल शिवाजी ने सम्मान किया वरन् उन की रक्षा के उपाय किये। उसके दानाध्यक्ष को आदेश था कि हिन्दू मन्दिरों की भांति खानकाहों, मकबरों और मस्जिदों की रक्षा और पुनरुद्धार के लिये धन राज कोष से दिया जाता रहे।

शिवाजी को बचपन में शस्त्र शिक्षा के अतिरिक्त शास्त्र शिक्षा नहीं मिली परन्तु शिवाजी सदैव विद्वानों, कवियों और गुणियों का सत्कार करते थे। हिन्दी भाषा का प्रसिद्ध राष्ट्रीय कवि भूषण उनके दरबार का भूषण था जिसकी ओज भरी वाणी शिवाजी की पुण्य गाथा गाकर पवित्र हो गई। तथा जिसने अपनी कविता से शिवाजी की पुण्य गाथा को अमर कर दिया। शिवाजी ने सदैव राज्य को अपने गुरु की धरोहर समझा इसी लिये शिवाजी का झंडा भगवा वस्त्र का था।

परन्तु शिवाजी की मृत्यु (१६८० ई०) के उपरान्त समस्त मराठा शक्ति भी छिन्न भिन्न हो गई। उसका कारण उस समय की राजनैतिक मनोवृत्ति थी। जब राज्य का अर्थ व्यक्ति की शक्ति हो उस समय जिस व्यक्ति में शक्ति होती थी राज्य स्थापित हो जाता था। जहां व्यक्ति की शक्ति का विनाश हुआ। अनेक छोटी छोटी शक्तियाँ राज्य के टुकड़े टुकड़े कर डालती थीं। वही शिवाजी के राज्य के साथ भी हुआ। इसकी कमी औरंगजेब के आक्रमणों ने पूरी कर दी।

४३ वर्ष की आयु में १६८० ई० में शिवाजी की मृत्यु से मराठा शक्ति को संगठित करने वाला व्यक्ति नहीं रह गया।

शिवाजी के पश्चात् मुगल मराठा युद्ध

शिवाजी का पुत्र शम्भाजी विलासी था अतएव १६८२–८३ ई० में शिवाजी के बचे हुये सेनापतियों ने औरंगजेब की दाल गलने नहीं दी। इसी समय औरंगजेब गोलकुण्डा और बीजापुर में उलझ गया। शिवाजी जैसे चतुर राजनीतिज्ञ के प्रभाव में मुगल सेना को दोनों मुसलमान राज्य को जीत लेने का अवसर मिल गया और मराठे चुप-चाप उनका विनाश देखते रहे। सम्भव था कि शिवाजी या तो मुगलों से मिल कर स्वयं भी शक्ति सम्पादित करते अथवा गोलकुण्डा और बीजापुर को संगठित करके स्वयं भी मुग़ल शक्ति का ध्वंस कर देते। परन्तु दोनों में से कुछ भी न करके मराठों ने अपने लिये गड्ढा खोद लिया। औरङ्गजेब जब इन राज्यों से निबट चुका तो उसने १६८६ ई० में शम्भा जी को बन्दी करके प्राण दण्ड दे दिया। शम्भा जी के पुत्र साहू जी को बन्दी करके दिल्ली भेज दिया। अब शिवाजी द्वितीय राजा हुआ परन्तु उसे भी औरङ्गजेब ने बन्दी कर लिया फिर राजाराम राजा बनाया गया। वह १७०० ई० में मर गया। अब गद्दी शिवाजी की दूसरी स्त्री तारा बाई के पुत्र शिवाजी तृतीय को मिली। ताराबाई बड़ी बुद्धिमती और साहसी स्त्री थी। उसके नेतृत्त्व में मराठे संगठित हो गये और गोरिल्ला युद्ध पद्धति से मग़लों को तंग करने लगे। इसी बीच में उत्तर भारत में सिक्खों का विद्रोह आरम्भ हुआ। अतएव औरङ्गजेब के हाथ पाव फूल गये। इसी विषम अवस्था में औरङ्गजेब दक्षिण में ही बीमार हो गया और १७०६ ई० में इस संसार से पछताता हुआ चला गया।

बचपन के दिन थे। १७–१८ वर्ष की आयु थी। शाहजहां हाथियों की लड़ाई देख रहा था। अचानक एक हाथी बिगड़ा हुआ और राजकुमारों की ओर झपटा। निकट था कि दाराशुजा या मुराद में से किसी का प्राण जाता परन्तु औरङ्गजेब ने आगे बढ़ कर भाले से हाथी का मस्तक छेद दिया। कौन जानता था कि यही औरङ्गजेब उन्हीं अपने भाइयों का प्राण घातक हो जायगा। परन्तु क्यों ?

औरङ्गजेब का चरित्र

कट्टर सुन्नी मुसलमान की दृष्टि में दारा काफिर हो चुका था। बाबालालू नामक हिन्दू सन्त का शिष्य दारा राज्य का कैसे अधिकारी होता। विलासी शुजा और मुराद के हाथों में पहुंचने वाली सत्ता सुखी नहीं हो सकती थी। अतएव धार्मिक दृष्टि से टोपी सी कर अपनी जीविका चलाने वाला राज कोष को प्रजा की अमानत समझने वाला औरङ्गजेब ही उक्त पदवी के योग्य था। औरङ्गजेब की इसी मनोवृत्ति ने उसे अपने भाइयों की निर्भय हत्या कराई। फिर उसके सामने उसके पिता शाहजहां का आदर्श था। खुसरो की प्राण हत्या को औरङ्गजेब कैसे भूल जाता। और उसी मार्ग पर क्यों न चलता।

हम उसे दोष दे सकते हैं परन्तु उसी समय जब हम उसे तटस्थ दृष्टि से देखें। उसके हृदय में बैठे हुये कट्टर मुसलमान फकीर के साथ उसके जीवन को मिला कर देखने से उसके दोषों का बोझ बहुत कुछ हलका हो सकता है। उसने गद्दी पर बैठते ही ८० कर क्षमा कर दिये। जजिया देकर हिन्दुओं को अपनी आय का ४५ से ४५ प्रतिशत तक भूमि कर

देना पड़ता है। शिवाजी ४० प्रतिशत कर लेते थे। क्या इसी लिये हम उसे धार्मिक पक्ष पाती कहेंगे।

उसने मन्दिर तुड़वाये, मस्जिदें बनवाईं। परन्तु औरङ्गजेब की विज्ञप्तियों से पता चलता है कि उसने केवल नये बनने वाले मन्दिर ही तोड़ने की आज्ञा दी थी। सम्भव था कि उसका विचार हो कि जब पुराने मन्दिर सुधार के अभाव में जीर्ण हो कर नष्ट हो जांय तब नये मन्दिरों के न रहने से भारतवर्ष से मूर्त्ति पूजा मिट जायगी। यह भ्रम केवल उसे ही नहीं हुआ भारतवर्ष का अफ़गान इतिहास इसी भ्रम में था। अतएव उसे केवल इसी कारण धर्मान्ध और क्रूर नहीं कहा जा सकता। उसी समय में योरोप में इसी प्रकार के ऐसे ऐसे जघन्या अत्याचार हो रहे थे जिन का ध्यान आते ही घृणा से मुंह विकृत हो जाता है।

यह अविश्वासी अवश्य था। उसने हिन्दू पटवारियों से लेकर माल विभाग के प्रत्येक अधिकारी को बेईमान होने की स्थिति में निकाल देने तथा उसके स्थान पर मुसलमान अधिकारी रखने का आदेश दिया। परन्तु विचारणीय यह है कि उसने प्रत्येक स्थान पर एक हिन्दू और एक मुसलमान रक्खा। क्या माल विभाग, क्या सेना उसने सर्वत्र इसी नियम का पालन किया। अतएव उसका अविश्वास न केवल हिन्दुओं पर ही था वरन् मुसलमानों पर भी था। सच बात तो यह है उसका धार्मिक हृदय दुराचार से डरता था अतएव हिन्दू का निरीक्षण करने के लिये मुसलमान रक्खा गया और मुसलमान का निरीक्षण करने के लिये हिन्दू यदि यह अविश्वासी यहीं तक रह जाता तो अधिक हानि नहीं थीं। उसे अपने सेनापति और पुत्रों पर भी विश्वास नहीं था। इसका फल यह हुआ कि स्वतन्त्र शक्ति के अभाव में न तो सेनापतियों के व्यक्तित्त्व का विकाश हो सका न पुत्रों के व्यक्तित्त्व का। फल यह हुआ कि उसके मरते ही ऐसा व्यक्ति न रहा जो साम्राज्य की रक्षा कर सकता।

वह बड़ा न्याय प्रिय था। कहते हैं कि किसी समय आजम की शिकायत उसके पास पहुँची। उसने आज्ञा पत्र लिखाया या तो अपने को सुधारो या न्याय के आसन से अलग हो जाओ। इस प्रकार उसने अपनी न्यायशीलता का भी पर्याप्त परिचय दिया।

विद्वानों का आदर उसके स्वभाव में था। शिवाजी के साथ वर्णित भूषण कवि औरङ्गजेब के दरबार का कवि था। रस गंगाधर तथा गंगा लहरी के कर्त्ता पण्डित राज जगन्नाथ का आश्रय दाता औरङ्गजेब ही था। यद्यपि ये दोनों कवि कालानार में दरबार से निकाल दिये गये परन्तु इससे यह अवश्य प्रकट होता है कि उसमें विद्या व्यसन अवश्य था। तथा इस विषय में हिन्दू मुसलमान का भाव उसके हृदय में नहीं था।

नाटक और गान विद्या, तथा चित्रकारी मुसलमान धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। अतएव औरङ्गजेब को इनसे घृणा थी। सम्भवतः उसने इनका निषेधकर किया था। इसलिये एक बार कत्थकों में बड़ी धूम धाम से एकशव यात्रा बादशाह के महल के निकट होकर निकाली। बादशाह ने पूछा यह किसकी अर्थी है? "उत्तर मिला गान विद्या की"। उसने उत्तर दिया, "खुदा के लिये इसे इतना गहरा दनफाना कि फिर न निकल सके। प्रश्नोत्तर दोनों में व्यङ्ग था। परन्तु इससे औरङ्गजेब की नीरस धर्म परायणता पर जो प्रकाश पड़ता है उसका चित्र स्पष्ट उभर आता है।

उसका साहस, उसकी युद्ध कुशलता, धैर्य्य और सैनिक संगठन की शक्ति तथा शासन की अपूर्ण योग्यता की सबने मुक्त काठ से सराहना की है। कठिन से कठिन परिस्थतियां में अड़ोल रहना उसकी प्रकृति में था। अपने सङ्कल्प में वह पत्थर की भांति कठोर और राजनीति के दांव पेचों के समझने में उस्ताद था। व्यक्ति गत जीवन में वह अत्यन्त साधा और वे लौस था। चड़क भड़क और शान से उसे कभी प्रेम नहीं। अपने धर्म में उसकी अटल श्रद्धा थी। कुरान का वह

शाइस्तखाँ

गुरु गोविंदसिंह
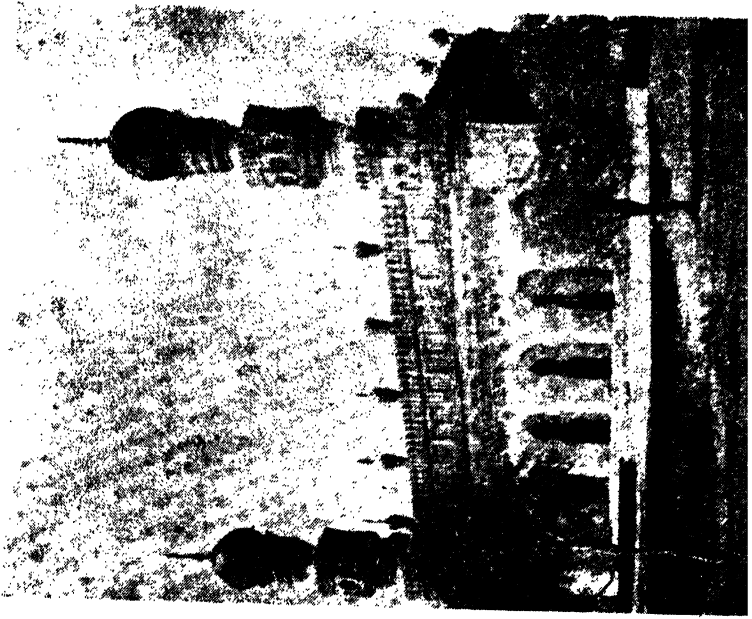
जुमा मसजिद दिल्ली

औरंगजेब

हाफ़िज था, अतएव शरह में वह कभी चूकने वाला नहीं था। रमज़ान में रोज़े रखना तथा पञ्चवक्ता नमाज का पालन करने में वह कट्टर मुल्लाओं का भी नेता था। अपने जीवन भर उसने परिश्रम किया सदैव साम्राज्य के विस्तार में लगा रहा परन्तु उसकी समस्त उदारता हिन्दुओं के लिये सूखी हुई थी।

राजनैतिक दूरदशिता की भी उसमें कमी थी। उसने गोलकुण्डा और बीजापुर राज्यों का विनाश करके मराठों को निष्कण्टक कर दिया। शाइस्ता खाँ की रिपोर्ट पर भी उसने विदेशी व्यापारियों के पट्टे नहीं छीने और उन्हें व्यापार की स्वतन्त्रता प्रदान किये रक्खी

राजनीति में छल को वह अनुचित नहीं मानता था। जसवन्त सिंह की मृत्यु शिवाजी का बन्धन अकबर का राजपूतों से तोड़ देना स्पष्ट उदाहरण हैं। इसका फल यह हुआ कि उसके पुत्र भी उससे शङ्कित रहने लगे। यद्यपि अपनी अयोग्यता के कारण उन्हें विद्रोह का साहस नहीं हुआ परन्तु वे कभी अपने पिता का विश्वास न प्राप्त कर सके। उसने अपने पुत्रों को ही बन्दी करके उनके जीवन के समस्त विकाश पर पानी फेर दिया।

अपनी मृत्यु के समय उसे अपनी भूल का पता चल गया था। मराठा संघर्ष में निरन्तर कष्ट पाते हुये औरङ्गजेब ने जो पत्र अपने पुत्र कामबख्श को लिखा था उसका प्रत्येक शब्द दुःख पश्चात्ताप और करुणा से भरा हुआ है। कदाचित यही भावना उसको आरम्भ में प्राप्त हो गई होती। परन्तु अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत।

औरङ्गजेब ने अकबर की नीति का परित्याग करके भूल की परन्तु उससे अधिक भूल की उस समाज ने जिसने शक्ति को ही राष्ट्र मान लिया। अन्यथा शिवाजी की मृत्यु के उपरान्त जिस मराठा शक्ति का उदय हुआ था उसके होते हुये भारतवर्ष दासता के बन्धन में न बंध जाता। इस पर हम आगे विचार करेंगे।

औरंजेब की असफलताओं के कारण

ऊपर हम प्रसङ्ग में चलते हुये औरङ्गजेब की असफलताओं के कारणों पर संक्षेप में विचार कर चुके हैं। यहां उन पर फिर से कुछ लिखने की आवश्यकता इसलिये है कि औरङ्गजेब के साथ भारत के भाग्य परिवर्तन का इतिहास जुड़ा हुआ है।

उसको धार्मिक नीति हिन्दुओं और शिया मुसलमानों के सम्बन्ध में हम ऊपर लिख आये हैं। यहां जो दो तीन बातें उसने अपनी इसी धार्मिक अनुदार भावना से की उसका वर्णन और प्रभाव और देख लेना है। औरङ्गजेब ने अकबर के काल से प्रचलित नौ रोज के उत्सव को बन्द कर दिया, फल यह हुआ कि जनता की समस्त प्रसन्नता का त्योहार समाप्त हो गया और ऐसे नीरस जीवन स्वाभाविक परिणाम बादशाह के प्रति अरुचि का उत्पन्न हो जाना है। औरङ्गजेब अब केवल भय का स्थान रह गया और जनता का प्रेम उसने खो दिया।

औरङ्गजेब ने इसी धर्मोन्माद में सिक्कों पर खुतवा लिखवाना बन्द कर दिया और इलाही सम्वत् का चलन भी रोक दिया। इलाही सम्वत भारती राष्ट्र पिता का प्रतीक था। खुतवे बादशाह को धार्मिक दृष्टि से भी आदर देते थे। फलतः जनता की राष्ट्रीय भावना पर आघात हुआ। और उसने समझ लिया कि अब बादशाहत किसी ऐसे राजा की नहीं है जो सम्पूर्ण नया भारतीय हो वरन् ऐसे बादशाह की है जिसका हृदय राष्ट्र का नहीं वरन् कट्टर इस्लाम का है।

बादशाह के अविश्वास, हिन्दुओं के प्रति अनुदार भाव ने विद्रोहों की उत्पत्ति की और सतनामियों के विद्रोह का वर्णन हम कर चुके हैं। चम्पतराय बुन्देला और उसका पुत्र छत्र शाह भी विद्रोही हो गये। राजपूत विद्रोही थे ही दक्षिण में मराठा शक्ति कार्य कर रही थी पश्चिमोत्तर से सिख शक्ति ने विद्रोह का झंडा ऊँचा किया फलतः समस्त राष्ट्र में

विद्रोह ही की ज्वाला सुलगने लगी जिसने औरङ्गजेब की मृत्यु के साथ ही मुगुल साम्राज्य को भस्म कर दिया।

प्रारम्भ में उसने कर क्षमा कर दिये अतएव साम्राज्य की आय घट गई। हिन्दु जिनकी संख्या अधिक थी जजिया नाम से कर देने से मन ही मन द्वेष करते थे। परन्तु मुसलमानों पर कर का भार कम था। फल यह हुआ कि निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण राज कोष में पैसा नहीं रहा। सेनाओं को वेतन न दिया जा सका सेना असन्तुष्ट होकर छोड़ छोड़ कर भागने लगी।

औरङ्गजेब सब काम स्वयं ही करना चाहता था अतएव स्वयं ही राजकीय पत्र व्यवहार करता था अतएव इसके सेनापति और पुत्र दिनोदिन निकम्में होते गये। उन्हें राजनीति और युद्ध नीति में स्वतन्त्रता से कार्य्य न कर सकने के कारण बड़ी असुविधा रही और समस्त सेना निकम्मी हो गई।

२२ सूबों के बड़े साम्राज्य का शासन एक केन्द्र से सरल न था। परन्तु औरङ्गजेब ने अपने पूर्वजों की नीति त्याग कर सबको अपने ही अनुसार चलाना चाहा। अर्थात् जो कार्य्य असम्भव था उसे औरङ्गजेब ने करना चाहा अतएव उसे असफलता क्यों न होती।

फिर इन सूबों के अधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं की गई। योग्य अधिकारी होते हुये भी अयोग्य सुन्नी लोगों को अधिकार दे दिये। फलतः अयोग्य हाथों में पड़ कर अव्यवस्था फैली। इसीलिये औरङ्गजेब के अन्तिम दिन दुःख के दिन बन गये।

इन अधिकारियों ने अपनी कठोरता से सामान्य जनता को विद्रोही बना दिया। यदि ये अधिकारी ही प्रजा को संभाले रहते तो इतनी शीघ्रता से साम्राज्य का नाश न हो जाता।

विदेशियों को व्यापार में खुली छूट मिलने और उन पर

नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध में हम कुछ लिख आये हैं। अतएव यहां दुहराना व्यर्थ है। इसी प्रकार औरङ्गजेब की विदेश नीति के सम्बन्ध में हम विचार कर चुके हैं।

इस सब का फल यह हुआ कि साम्राज्य में वैसा, अत्याचार और स्वेच्छा चरिता फैल गई ऐसे साम्राज्य का तो अन्त होना ही था।

छत्तीसवां अध्याय

मुग़लकाल पर सिंहावलोकन

भारतवर्ष में ३ वर्ष के अफ़गान साम्राज्य के उपरान्त मुग़ल साम्राज्य का जन्म हुआ था। हिन्दू राज्य शक्ति में शक्तिमान ही राजा हैं का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया था। इसी सिद्धान्त को आगे आने वाले भवन शासकों ने भी स्वीकार कर लिया था। सामान्य जनता राज्य से बिल्कुल अलग हो चुकी थी। अतएव राजभक्ति नामक वस्तु का जनता में प्रभाव हो गया था। सबसे पहले मुग़ल शासन काल में अकबर के समय राजभक्तिकी भावना उत्पन्न हुई। उसी समय दिल्लीश्वरों जगदीश्वर का वाक्य का उदय हुआ। अतएव मुग़ल साम्राज्य में प्रांतीय शक्तियों का विरोध लगभग नहीं सा हुआ। केवल कन्धार, ईरानी बादशाह द्वारा जीत लिया गया। विद्रोह वहां भी नहीं हुआ।

जन राज्य सम्बन्ध

परन्तु मुग़ल साम्राज्य की सबसे बड़ी निर्बलता उत्तराधिकार सम्बन्धी थी। हिन्दू शास्त्रों के अनुसार राज्य का उत्तराधिकारी सब से बड़ा पुत्र ही होता था। परन्तु ऐसा जान पड़ता हैं कि मुग़लों में ऐसा कोई नियम नहीं था। अतएव सम्राट की इच्छा ही उत्तराधिकारी की निर्णायक होती थी। इसलिये राजकुमारों में विद्रोह की भावनायें और फल

राजकुमार विद्रोह
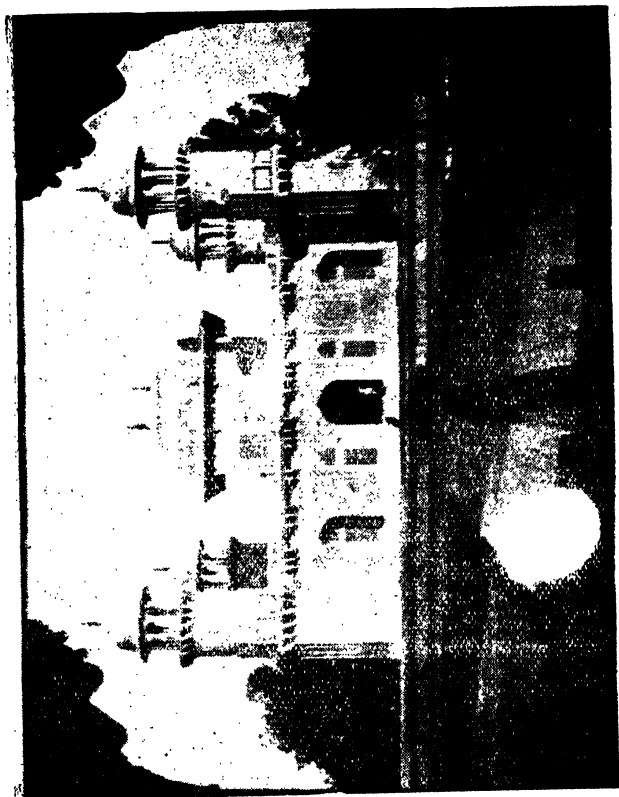
मादुद्दौला का रोज़ा (आगरा)

स्वरूप शक्ति संचय की प्रवृत्ति सदैव बनी रही। जहाँगीर को राज्य केवल उसके भाइयों की मृत्यु के कारण प्राप्त हुआ। फिर शाहजहां और औरङ्गजेब अपनी शक्ति के कारण ही सम्राट पदवी पर आसीन हो सके। जहां इस प्रकार सैनिक शक्ति आगे बढ़ गई वहां विवेक का दब जाना स्वाभाविक है। इसीलिये परस्पर हत्या और विश्वासघातों की परम्परा चल पड़ी। इसी का फल यह हुआ कि सिंहासन पर वही अधिकार कर सका जो अधिक से अधिक निर्मम और कठोर था।

राज्य शासन मुग़ल राज्य शासन में पहली बार जनता को यह अनुभव हुआ कि सैनिक शासन में नहीं वरन् प्रजा शान्त शासन में बसती है। अतएव प्रजा की कला और उद्यमों का विकास प्रारम्भ होने का अवसर मिला।

जागीरदारी प्रथा का अन्त होकर उसके स्थान पर सूबेदारी प्रथा स्थिर हुई। परन्तु इस प्रथा में भी कुछ विभागों का सम्बन्ध सीधा केन्द्र से बना रहा और प्रत्येक सूबेदार स्वतंत्र होते हुये भी पूर्ण स्वतंत्र न हो सका। यही कारण था कि मुगल साम्राज्य में सूबों ने स्वतंत्र होने का साहस नहीं किया।

जमींदारों को भी इस माध्यमिक काल में केवल राजकर एकत्र करने तथा उसे केन्द्र तक पहुँचाने का ही अधिकार था। यद्यपि इस में साधारण किसान को राजकर अधिक देना पड़ता था परन्तु इससे कर की वसूली में सुविधा हो गई थी। जमींदारों को प्रजा पर अत्याचार करने का अधिकार न था। वाकया नवीसों द्वारा प्रतिदिन की सूचना राज दरबार को मिलते रहने के कारण ये जमींदार अत्याचार का साहस नहीं कर सकते थे। परन्तु औरंगजेब ने जब दक्षिण के युद्धों में फंस जाने के कारण कर प्राप्ति में ढील होते देखी तो उसने इन जमींदारों को भी कोड़ों से पिटवाया फलतः असन्तोष उत्पन्न होने लगा।

शाहजहां तक मुगल काल में कन्धार, काबुल और बलख

पर अधिकार बना रहा। परन्तु कन्धार और काबुल के निकल जाने के उपरान्त मुगलों की कोई स्थिर नीति फारस अथवा मध्य ऐशिया के लिये नहीं रही। फलतः उन देशों की घटनाओं के प्रति उदासीनता हो जाने के कारण मुगल साम्राज्य के शत्रु उत्तर पश्चिम में उत्पन्न होने लगे। साथ ही पश्चिम के योरोपियन व्यापारियों पर भी उचित नियंत्रण तथा उनकी देख रेख का कोई विभाग मुगल साम्राज्य ने स्थापित नहीं किया। और इनको अपनी शक्ति संग्रह करने का अवसर मिलता गया। कहा जाता है कि औरंगजेब को जब कलकत्ता में फिरंगियों का किला बनाये जाने की सूचना मिली तो उसने उदासीनता से उन्हें नहीं रोका और कहा कि "यदि हमारी प्रजा अपनी रक्षा के लिये किले बनवा रही है तो इस में क्या हानि है"। उसे क्या पता था कि न केवल उसकी वरन् इन किलों से भारतवर्ष की कितनी हानि होने वाली है।

पश्चिम के देशों से सम्बन्ध

यद्यपि विद्रोहों की संख्या औरंगजेब के अतिरिक्त कम रही। परन्तु सेना में एक विनाशकारी तत्व का प्रवेश हो गया था। मुगल बादशाहों की सेना का अर्थ था पूरा नगर जिसमें सैनिक ही नहीं व्यापारी भी थे। मुगलों का हाथ भी था और विलास की समस्त सामग्रियाँ थीं। ऐसी सेना का चरित्र ऊंचा नहीं हो सकता दुःख तो यह है कि राजपूतों की सेना जो मुगलों के नेतृत्त्व में लड़ती थी उसमें भी राजमहल साथ रहता था। भला ऐसी सेना के द्वारा घोड़ों की पीठ पर अपना घर रखने वाले मराठे कैसे पराजित किये जा सकते थे।

सैनिक दशा

इस प्रकार मुगल काल की कुछ मुख्य विशेषताओं विचार करके हम उस काल की संस्कृति, कला कौशल और समृद्धि पर थोड़ा विचार करेंगे।

मुगल काल में राजभाषा फारसी बन गई। अतएव उत्तर

से दक्षिण तक फारसी भाषा का जितना प्रचार मुगल काल में हुआ उतना और कभी न हो सका। परन्तु

भाषा का विकास

मुगलों के ही काल में वर्त्तमान खड़ी बोली का जन्म और प्रसार हुआ। मुगलों के साम्राज्य के साथ इस खड़ी बोली ने भी भारतवर्ष के कोने नापने आरम्भ किये। दरबारी शिष्टाचार, राजप्रबन्ध के लिये अनेक पारिभाषिक शब्द फारसी से जो लिये गये आज तक ज्यों के त्यों हमारे पास उपस्थित हैं। क्या सिक्कों में, क्या नाप तौल के पैमानों में समस्त भारतव्यापी एकता का श्रेय इसी मुगल युग को है जिसने भाषा के प्रसार में बड़ी सहायता पहुँचाई। इसी प्रकार तिथि सम्वत युक्त इतिहास लिखकर भाषा का भण्डार भरा गया। अनेक उत्तम कवि और गायकों द्वारा हिन्दी साहित्य का सर्वोत्तम विकास इसी काल में हुआ। हिन्दी का समस्त भक्ति काल इसी मुगल काल का अंग है।

आज अपनी नौ-शक्ति का अभिमान करके संसार को आंखें दिखाने वाले देश ठट्टा, भड़ौच, सूरत, गोआ, मछली पट्टम और चटगाँव के व्यापारी जहाजों की कार्य तत्परता

भारतीय व्यापार

देख कर भी केवल पक्षपात के कारण भारत को सदैव समद्री व्यापार में पिछड़ा हुआ कहते हैं। अंग्रेजी के पुराने पत्रों से प्रकट है कि जितने अच्छे जहाज उस समय भारतवर्ष में बनते थे उतने संसार में कहीं नहीं बनते थे। भारतवर्ष के ३००० व्यापारी जहाज प्रतिवर्ष, अरब, मिश्र, मेडागास्कर, सुमात्रा, जावा, श्याम और चीन तक भारतीय कला की वस्तुयें पहुंचा कर सोना लाते थे।

यह काल अपनी धार्मिक सहिष्णुता के लिये भी प्रसिद्ध है। न केवल सहिष्णुता ही वरन् मुसलमान हिन्दू सहयोग से एक नवीन संस्कृति का निर्माण अफगानों के काल

धार्मिक सहिष्णुता

में ही प्रारम्भ हो गया था। साधारण ग्राम वासी मुसलमानों ने हिन्दुओं की, हिन्दुओं ने

मुसलमानों की प्रथाओं का पालन प्रारम्भ कर दिया था। फल यह होता था कि राजकुल के परिवर्तन होने पर भी सामान्य प्रजा की शान्ति में बाधा नहीं पड़ती थी।

जहाँगीर अपने जीवन वृत्तान्त में स्वयं लिखता है।

" तैमूर लंग की सन्तान अपने साथ मोहम्मद का मजहब लाई परन्तु उन्होंने केवल तलवार से भारत की भूमि जीती। किसी का मजहब तलवार से नहीं जीता और धर्म के मामले में सबकोस्वतंत्र छोड़ दिया गया।"

मुग़ल दरबार में होली और ईद दोनों मनाये जाते रहे। रक्षाबन्धन का सत्कार मसलमानों ने किया। दीपावली में हिन्दू और मुसलमान ने दोनों ने दिये जलाये और मुहर्रम में हिन्दुओं ने भी ताजियादारी की। यह सब मुग़ल काल की देन थी।

परन्तु औरङ्गजेब ने इस सहिष्णुता की भावना को ठेस पहुंचाई यद्यपि इस से सामान्य जनता में विरोध के भावों की वृद्धि तो नहीं हुई परन्तु उच्च स्तर पर विरोध प्रखर हो गया। जिसकी प्रतिक्रिया औरंगजेब के अन्तिम काल में सिक्ख विद्रोह के काल में दिखाई पड़ने लगी थी।

अकबर ने बड़ी बुद्धिमानी से जागीर प्रथा के दोषों को देखा था अतएव उसने जागीर प्रथा उड़ा दी थी। जहाँगीर ने पिता के चरणों पर चलकर प्रजा का सुख बढ़ाया।

भूमि व्यवस्था

परन्तु शाहजहाँ के काल में इस प्रथा को फिर जीवन प्राप्त हो गया। अब जागीरदार तो नहीं वरन् आधुनिक अर्थ में जिससे राज्य कर की प्राप्ति में सुविधा तो हो गई परन्तु प्रजा के कष्ट बढ़ गये। ये जमींदार वैधिक अधिकार भोगने वाले थे। इनके अधिकार में चौकीदार भी रहते थे। जिनका कर्त्तव्य शान्ति रक्षा करना था। इस प्रकार हम देखते हैं की यद्यपि प्रारम्भिक मुग़ल काल की भूमि व्यवस्था सुल्तान की व्यवस्था से उत्तम थी। परन्तु अन्त में वह समाज को ऐसी वस्तु दे गई जिससे अभी तक हमारा पीछा नहीं छूटा

और जिसके कारण राष्ट्र के किसान जीवन में विकास की गति में रुक गई।

आइन अकबरी के दो प्रकार के नियमों का उल्लेख किया है। पहले कानून वे थे जिनका सम्बन्ध सामान्य प्रजा से था। दूसरे वे थे जिन का प्रभाव केवल उच्च अधिकारियों पर ही था। उच्च अधिकारी का विचार जन सामान्य के लिये निश्चित कानूनों के द्वारा नहीं होता था। परन्तु सामान्य प्रजा में हिन्दुओं के झगड़ों का विचार उनके शास्त्रों तथा मुसलमानों के झगड़ों का निपटारा शरअ के अनुसार किया जाता था। औरंगजेब सुन्नियों के झगड़े स्वयं निपटाता था। अन्य व्यवस्था का प्रबन्ध किस प्रकार से होता था इसका वर्णन हम कर चुके हैं। जमीन्दारों के उदय के साथ न्याय व्यवस्था के कुछ अधिकार जमींदारों को भी मिल गये थे।

न्याय विभाग

औरंगजेब ने कानूनों के संग्रह करने में तथा उन्हें लिपिबद्ध करने में सब से पहले प्रवृत्ति दिखलाई। उसने "फतवा ए आलमगीरी" को लिपिबद्ध किया।

हम प्रत्येक बादशाह का विवेचन करते हुये उसके काल में थोड़ा थोड़ा इन सब बातों का वर्णन कर चुके हैं। उत्तर में हिंदू मुसलमान कला का जिस प्रकार योग हो रहा था उसी प्रकार दक्षिण में जैन और बौद्ध कला के साथ हिन्दू कला मिल रही थी। हिन्दुओं ने शिखर और मिनार का काम डाट और मेहराब का काम मुसलमानों से स्वीकार कर लिया। मुसलमानों ने गुम्बद, पच्चिकारी और रंगों का सुन्दर मिश्रण हिन्दू कला से सीखा। परन्तु इस काल की वस्तु कला में सौन्दर्य पर ही अधिक ध्यान रहा। पत्थर का उपयोग कला में अत्यधिक बढ़ गया परन्तु नीरस औरङ्गजेब के काल में अनेक कलाओं के साथ वस्तु कला में पतन की प्रवृत्ति भी दिखाई दी।

वस्तु कला

हिन्दू चित्रकला में वस्तु कला की अपेक्षा रंगों के मिश्रण पर कम ध्यान दिया गया। हिन्दुओं की कला की विशेषता रेखाङ्कन में है। एक एक रेखा प्रत्येक चित्र को सजीव और भावमय बनाने वाली है। परन्तु मुसलमान काल में चित्रकला में भी रंगों का मिश्रण प्रारम्भ हुआ। चटकीले और नेत्र मोहक रङ्गों के योग से चित्र का सौन्दर्य चमक उठा। हाशिया (कोर) की सजावट में भी इस काल की कला सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी। परन्तु इन चमकीले भड़कीले रङ्गों में यदि आप जीवन ढूँढना चाहें तो कदाचित न मिलेगा। सौन्दर्य की वेदी पर भाव व्यञ्जना के बलिदान का उदाहरण मुग़ल काल की चित्रकला है। चित्रों में अधिकांश एकाक्ष अथवा पर्श्व चित्र हैं। जिनमें केवल आधा अंग दिखाई देता हैं। ऐसे बहुत कम चित्र हैं जो सन्मुख से खींचे गये हैं।

चित्र कला

इस कला के प्रवर्त्तक हुमायूँ द्वारा फ़ारस से लाये गये चित्रकार थे। परन्तु भारतवर्ष में इस का प्रचार होने पर भारतीयता का रङ्ग भी उन पर यत्किञ्चित चढ़ा। इस प्रकार रूप चित्रण के साथ-साथ ही घटना चित्रण की प्रवृत्ति भी विकास पाने लगी। और इसी मुग़ल काल की चित्रकला का रूप ले लिया। अनेक चित्रकारों द्वारा 'अमीरहमजा' 'रामायण' 'महाभारत' 'बाबर नामा' 'अकबरनामा' आदि काव्यों पर चित्र खिचवाये गये और पुस्तक में प्रसङ्गानुकूल स्थान पर लगा कर पुस्तक का मूल्य बढ़ा दिया गया।

चित्रकला के साथ ही सुलेख की कला का भी विकास हुआ। सुलेख के आठों प्रकारों में कलाका प्रदर्शन किया गया। इस प्रकार से 'कलमा' 'विभिन्न बादशाहों के उपाधी सहित नाम' आदि लिखे गये जिन के देखने पर किसी वस्तु, पशु या पक्षी आदि का चित्र जान पड़े परन्तु ध्यान देकर पढ़ने से पूरी बात पढ़ी जाय साथ ही अक्षरों के सुन्दर, सुनहले रंगों से रङ्गने की भावना का भी प्रचार हुआ।

बसावन, दसवन्त, मुराद और फारुख बेग इस काल के सर्व श्रेष्ठ चित्रकार थे। इनकी कलाकृतियों ने ही मुगल काल की चित्रकला को जन्म और विकास दिया है।

अकबर ने तो नियम बना लिया था कि नित्य चित्र देखता था तथा सुन्दर चित्रों पर पारितोषिक दिया करता था। जहांगीर मुगल चित्रकला का प्राण है इसे प्राकृतिक दृश्यों के चित्र अत्यन्त प्रिय थे। उसकी सौन्दर्या भावना ने अबुल हसन, मंसूर, विष्णुदास, मनोहर, गोवर्धन, देवलाल आदि कलाकारों के द्वारा जिन सौन्दर्यमय चित्रों का सृजन कराया वे उस काल के भूषण हैं। शाहजहां को वस्तुकला से अधिक प्रेम था। अतएव उसके काल में चित्रकला का अधिक प्रचार नहीं रहा। और औरंगजेब ने तो अपनी कट्टरता के कारण उस कला के मूल पर ही आघात कर दिया। फिर गुणी क्या करे जब उसके गुण का कोई गाहक न हो।

मुगलों से तिरस्कृत हो कर चित्रकला राजपूतों से सहारा पाने लगी। इस कला में राजपूत शैली ने अपना विकास अलग कर दिया था। हाशिये की तड़क भड़क द्वारा क्रिया हीन रंग चित्रों के स्थान पर राजपूत कला में क्रियावान घटना चित्र खींचे गये। यद्यपि कोमल भावनाओं के प्रदर्शन की ओर राजपूत कला में भी प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती किन्तु पौराणिक गाथाओं और ग्राम्य जीवन की झांकी राजपूत कला में दिखाई दी। चित्रों में गति का समावेश हुआ यद्यपि बाहरी वेश भूषा मुसलमानी ही रही।

इस काल में छाया का सर्वथा अभाव है जान पड़ता है कि प्राचीन हिन्दू कला में रेखा द्वारा अकेली छाया का आभास देने की भावना जो थी उसकी ओर इस काल के कलाकारों का ध्यान नहीं गया।

औरंगजेब के अतिरिक्त बाबर से लेकर शाहजहां तक संगीत प्रेम सब मुगल बादशाहों में समान रूप से दिखाई

संगीत

देता है। बाबर ने हिरात के प्रसिद्ध गायकों द्वारा अनेक गीत बनवाकर गवाये। सूफी गीतों से हुमायूं बड़ा प्रभावित हुआ। तानसेन, बैजू बावरा और हरिदास अकबर के श्रद्धा भाजन रहे। जहांगीर और शाहजहां को गायन सुनना दैनिक चर्य्या में था। परन्तु औरङ्गजेब ने गान विद्या से घृणा की इसका विवरण हम पहले कर चुके हैं।

वैष्णव और सूफी कवियों ने गान विद्या के प्रचार में बड़ी सहायता दी। कबीर के भजन थे ही, मीराबाई, सूरदास तुलसीदास ने उत्तरी भारत में, सन्ततुकाराम, रामदास, एक नाथजी ने दक्षिण भारत में मधुर और गीत साहित्य द्वारा ही हिन्दू जनता को आत्म विश्वास के साथ प्रभु का आधार दिया इसी नवीन रागों की कल्पना तथा नवीन रागों के लिये नवीन स्वर और तालों की योजना हुई।

जौनपूरी राग इसी समय की उपज है विद्या प्रचार और साहित्य। हम से हमारे भाई या व गौराङ्ग अंग्रेज प्रभु कहा करते थे कि हम तुम्हें अशिक्षित से शिक्षित बनाने आये हैं असभ्य से सभ्य बनाने पधारे हैं। अतएव हमें अपना त्राण कर्त्ता मानों। हम विवश थे जो कुछ उन्हें ने हमें पढ़ाया हमने वही जाना और समझ लिया कि सचमुच हमारे पूर्वज अपढ़ और असभ्य थे। अपनी असभ्यता और उनको सभ्यता पर विचार हम आगे चलकर करेंगे परन्तु अपनी अशक्षिता पर विचार करने के लिये मुगल काल का इतिहास हमारे सामने हैं। पहल उसे पढ़लें।

जौनपूरी राग समय की उपज है

प्रत्येक ग्राम में समर्थ किसान या जमीन्दार के दरवाजे पर एक मुन्शी, मौलवी या पण्डित बैठा रहता था। सवेरे से शाम तक चारपाई पर पड़े-पड़े उसका काम गांव भर के बच्चों को बिना फीस लिये शिक्षा देना था। विद्यार्थी अधिक बढ़

शिक्षा की परिपाटी

जाने के कारण व्यस्क विद्यार्थी अपने छोटे सहपाठियों को भी शिक्षा देते थे। तथा स्वयं भी पढ़ते थे। आवश्यकता पड़ने पर अपने गुरुजनों के छोटे मोटे काम भी करते थे जैसे पानी भरना, भोजन पकाना, चौका बर्त्तन करना पैर दबाना आदि। सजाति विजाती का भेद नहीं, स्वर्णदलित का अन्तर नहीं। पाठशाला का द्वार सबके लिये समान रूप से खुला था उसी प्रथा के अवशेष में उसकी अवनति के काल में इस बीसवीं सदी के आरम्भ में इस इतिहास के लेखक ने मुसलमान मौलवी के हुक्के ताजे किये हैं और सम्पन्न चमारों के लड़कों के साथ ओनम की शिक्षा पाई है।

इन पाठशालाओं के अतिरिक्त जो मौलवी, पण्डित या मुन्शी स्वयं समर्थ होते थे। छात्र उनके घर पर भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। गुरु के घर रह कर तथा अपने घर रह कर दोनों प्रकार से शिक्षा मिलती थी। गुरु के घर रहने वाले विद्यार्थी की गुरु ही भोजन देता था परन्तु उसे घर काम धाम करना पड़ता था। बदले में नहीं वह गुरु गृह का एक सदस्य था। अतएव काम करना अनिवार्य था

ऐसी घरेलू पाठशालाओं के अतिरिक्त राजकीय व्यय से चलने वाली उच्च शिक्षा देने वाली पाठशालायें भी थीं। ऐसी पाठशालायें मन्दिरों और मस्जिदों से सम्बन्ध रखती थीं। जिन में राज्य की ओर से भूमि लगी रहती थी उसी से उनका व्यय चलता था। योग्य और संसार त्यागी साधुओं के तत्त्वविधान में चलने वाले विद्यालय उच्च साहित्य और शास्त्र की शिक्षा के साथ साथ ही चरित्रवान और परिश्रमी भी बनने की शिक्षा देते थे।

इस प्रकार पाठशालाओं का जाल समस्त देश में फैला था। राज्य बनते थे बिगड़ जाते थे सल्तनतें बिगड़ जाती थीं किन्तु पाठशालाएं चलती रहती थीं उसी अबाध और मक्त गति से जैसी वे अकबर के शान्त

शासन में चल रही थीं। फल यह तो होता था कि भारतवर्ष के ८० प्रतिशत मनुष्य शिक्षित थे। हमारे इन भाई बापों ने हमें शिक्षित बनाने का ठेका लेकर ऐसा शिक्षा असर किया। हमारी ऐसी उन्नति हुई कि हम ८० प्रतिशत के लग भग से ६ प्रतिशत शिक्षित हो गये। धिक्कार है ऐसे शिक्षा प्रसार पर और उनको क्या कहा जाय जो अपनी नेकनीयत का दम भरते थे।

इस प्रकार की शिक्षा से उच्च साहित्य का भी निर्माण हुआ। यदि वैसा न हुआ होता जन साधारण अशिक्षित होते केवल थोड़े से व्यक्ति शिक्षित होते तो उच्च साहित्य की जो बाढ़ मुगल काल में आई वह कदापि न आती। मैं तो अभिमान पूर्वक कह सकता हूँ कि संसार के साहित्य में उतनी मात्रा में सत्साहित्य उस काल में नहीं बना जितनी मात्रा में भारतवर्ष में। तुलसी, सूर, रहीम, मुगलानी ताज, सेनापति, भूषण, मतिराम, देव, बिहारी, पण्डित राज जगन्नाथ, अष्ट छाप के कवियों, सुजान राय, सिक्खों के गुरुओं, केशव, रसखानि, मीराबाई, जायसी आदि हिन्दी कवियों के जैसा सुन्दर साहित्य किस भाषा के पास उस काल में था। इन हिन्दी कवियों की ही नहीं। अबुलफजल, फैजी, खफीखान, फरिश्ता अब्दुलहमीदला हैं। निजामुद्दीन आदि फारसी इतिहास लेखकों से भी इस देश का मस्तक ऊंचा है। इतिहास लेखकों में हिन्दू सुजान राय, ईश्वरदास नागर और भीमसेन भी इसी काल में हुये। अग्नि पुराण की रचना भी इस काल तक चलती रही।

इस काल में हिन्दुओं ने फारसी का अध्ययन किया मुसलमानों ने हिन्दी संस्कृत का। इस प्रकार परस्पर प्रेम भावना का प्रसार हुआ कौन ऐसा हिन्दु है जो रहीम, रसखानि ताज, सैयद गुलाम नवी रसलीन आदि की कृष्ण प्रेम विषयक कविता सुन कर प्रेम से उनके सामने न झुका होगा। इसी समय ब्रज भोषा अपने सम्पूर्ण यौवन पर पहुंच कर सब से

आदर पाने की अधिकारणी बनी। उर्दू का प्रथम कवि वली इसी काल में हुआ।

स्वयं बाबर से लेकर औरङ्गजेब तक सब बादशाह (अकबर को छोड़ कर) विद्वान कवि और लेखक थे। स्त्रियों में नूरजहां जहान आरा और जेबुन्निसा भी सुन्दर कवितायें करती थीं। इन्हीं के काल में चैतन्य की भक्ति परम्परा का बंगाल में विकास हुआ और कृत्तिवास आदि कवि बंगाल में भी हुये।

सामाजिक दशा

कोई जाति बिना कार्यों का विभाजन किये नहीं रह सकती अतएव भारतवर्ष के मुसलमानों में भी कार्य विभाजन आरम्भ हुआ। बढ़ती हुई मुसलमान जन संख्या अनेक भागों में बटने लगी और उसमें भी चातुर्वर्ण्य व्यवस्था जैसे ही लग भग व्यवस्था उत्पन्न हो गई। सैयद मुहम्मद साहब के वंशधर होने के नाते विशेष सम्मान की दृष्टि से देखे जाने लगे उनकी स्थिति लग भग भारतीय ब्राह्मणों की सी थी। यद्यपि उनसे उस त्याग और तपस्या की आशा नहीं की जाती थी। दूसरा दल पठानों का था। अफ़गानिस्तान और उसके निकटवर्त्ती प्रदेश के निवासी पठान कहलाते थे। वस्तुतः उत्तरी पश्चिमी सीमान्तवर्त्ती समस्त निवासी पुष्टाङ्ग हिन्दू जब मुसलमान हुये तो उनमें अपने पूर्वज क्षत्रियों के सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे। युद्ध व्यवसायी पठान जाति इस काल में भी युद्ध व्यवसायी बनी रही। अतएव इन का स्थान लगभग क्षत्रियों का सा था तीसरा वर्ग मुगलों का बन गया। वस्तुतः मुगल मंगोल वंशधर थे जो मुसलमान होकर मुगल प्रसिद्ध हो गये। वंश मर्यादा के अनुसार इनको सैयदों और पठानों से कम सम्मान प्राप्त था इनका कोई निश्चित व्यवसाय नहीं था। आवश्यकता और समय के अनुसार ये क्षत्रिय धर्म का पालन भी करते थे और उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रदेश का व्यापार भी। आज भी उत्तरी भारतवर्ष के कोने कोने में काबुली व्यापारी मुगलिये कह कर पुकारे जाते हैं। चौथा वर्ग शेखों का था। यद्यपि शेख

शब्द का अर्थ बुजुर्ग या बड़ा है परन्तु इस वर्ग में भारतवर्ष के वे परिवर्त्तित हिन्दू थे। जिन्हें भारतीय समाज में सत्कार प्राप्त नहीं था अथवा जिन्होंने वर्नाश्रम धर्म का बहिष्कार कर दिया था। इसके अतिरिक्त इन में भी अवान्तर उपजातियां बनने लगीं थी, तनाफी, किदवई, नकवी, फारुकी आदि उच्च वर्ग तथा जुलाहे धुनिया आदि निम्न वर्ग में परिगणित होने लगे थे। अतएव मुसलमान जाति का भी सामाजिक संगठन और अलग अलग संगठन आरम्भ होने लगा था।

हिन्दू धर्म में जाति भेद तो था ही साथ ही निम्न जातियों का सामाजिक स्तर भी नीचे उतरने लगा था। परन्तु राजकीय पक्षपातों में, हिन्दू जाति पर अत्याचार होने पर उनका पारस्परिक जाति भेद संगठन में बाधक नहीं हुआ था। जब कभी विद्रोह हुए हिन्दुओं की संगठीत शक्ति लगी और सब जातियों ने विद्रोह में सहयोग दिया। हिन्दुओं में बाल विवाह सती प्रथा तथा दहेज की प्रथा का प्रचलन खूब था परन्तु उनके जीवन में सरलता और सादगी थी। साधारण रीति नीति का पालन करने में हिन्दू समाज पूर्णतया लगा हुआ था। समाज की रक्षा का विचार प्रत्येक हिन्दू उपजाति में गम्भीर होकर बैठ चुका था। ग्राम पंचायत के स्थान पर लोगों कोजातीय पंचायत का भय अधिक था। अतएव हिन्दुओं में दुराचार की मात्रा भी कम रही इस काल के ब्राह्मणों ने अत्यन्त सावधान होकर अपने को सिकोड़ रक्खा था। उसने अपना समय विद्याध्ययन में अथवा स्वावलम्बन के लिये उसने कृषि कार्यों में भी अपने को लगा रक्खा था इस प्रकार इस काल के ब्राह्मण का व्यवसाय अध्ययन, अध्यापन पूजा पाठ, पौरोहित्य और कृषि बन गये वे क्षत्रिय जाति में भी इसी प्रकार अवनति हुई और इसी प्रकार शूद्र और वैश्य जातियों में भी। अब भी अनेक विद्वान ब्राह्मण और युद्ध में प्राण निछावर करने वाले क्षत्रियों का पूर्णतया अभाव नहीं हुआ था। समाज में ऐसे ब्राह्मण क्षत्रियों का बड़ा सम्मान था।

धार्मिक और सामाजिक त्यौहार हिन्दू मुसलमान दोनों मिल कर धूमधाम से मनाते रहे। हम इनका ऊपर विवरण कर चुके हैं। अतएव फिर दोहराने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इन त्यौहारों में प्रत्येक जाति के लोग चाहे वे किसी सामाजिक स्थिति में क्यों नहीं सम्मिलित होते थे। हिन्दू की राखी का मुसलमान तक आदर करते थे और इस प्रकार केवल हिन्दुओं में परस्पर वरन् हिन्दू मुसलमान दोनों में एकता और स्नेह का भाव बढ़ने लगा था।

धार्मिक और सामाजिक त्यौहार

उच्च वर्ग के लोगों में चाहे वे हिन्दू हों चाहे मुसलमान शिष्टाचार अत्यधिक मात्रा में बढ़ गया था। दरबारी शिष्टाचार का विकास होने लगा था। मुसाहब दारी की प्रथा चल पड़ी थी। प्रत्येक उच्च वर्गीय के पास एक आध कवि दो चार अन्य मनोविनोद करने वाले मुसाहब रहते थे। मदिरा पान और इसी प्रकार के अन्य दुर्गुणों में उच्च वर्ग फंस गया था अतएव उसका नैतिक स्तर नीचे गिरने लगा था। साधारण जन चरित्र और आचार शुद्ध और पवित्र था। इसका विशेष विवरण हम आगे चलकर करेंगे।

उच्च वर्ग

हम ऊपर कुछ साधु सन्तों का वर्णन और उनके प्रयत्नों का लेखा दे चुके हैं। यहां इन साधु सन्तों की मौलिक भावना पर थोड़ा और विचार कर लेंगे। हिन्दू मुसलमान सहयोग के कारण दो तीन मार्ग स्पष्ट हो उठे थे। एक में वे साधारण जन थे जिनका जीवन अपने निश्चित कार्यों में व्यस्त था। जो अपने नित्य के पूजा पाठ क्रिया कर्म अपने अपने धर्म के नियमों के अनुसार करते थे। उनका कोई विशेष सिद्धान्त नहीं था। इसी वर्ग में दो प्रकार के साधु सन्त थे। पहले वे थे जो निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर अधिक बल देते थे। इनमें हिन्दू और

साधु सन्तों की भावनाएं

मुसलमान दोनों थे। हिन्दू निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति आत्मचिन्तन और ज्ञान की प्राप्ति से मानते थे अतएव आत्मा परमात्मा के वेदान्त तत्त्व का विकास होने लगा था। दूसरी कोटि में निर्गु ब्रह्म को प्राप्त करने का साधन सूफी धर्म के अनुसार प्रेम साधना थी। इस साधना में परमात्मा को प्रियतम मानकर उसके प्रेम की तन्मयता प्राप्त करना ही मुख्य साधना थी। इस साधना के लिये उन्होंने योग मार्ग की नाद और विन्दु साधाना को भी स्वीकार कर लिया था। दूसरे प्रकार के हिन्दू सन्त ईश्वर के सगुण रूप के उपासक थे। इनमें भी दो दल हो गये थे। एक लोकाचार की पालना करते हुये भगवान रामचन्द्र की भक्ति करते थे और मर्य्यादा मय जीवन के पक्षपाती थे। दूसरे लोक मर्यादा पर प्रेम को महत्त्व देते थे। तथा साकार ब्रह्म भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की प्रेम भावना में आत्मविलय कर देने को ही सच्चा भक्ति मार्ग कहते थे इनका मार्ग पुष्टि मार्ग कहलाता है। इस इतिहास ग्रन्थ में इस पर अधिक विचार नहीं किया जा सकता। नीचे हम प्रत्येक धारणा के साधु सन्तों का नाम देते हैं।

हिन्दू वेदांत वादी निर्गुण ब्रह्म के उपासक स्वामी शङ्कराचार्य शिष्य परम्परा मुसलमान सूफी धर्म वादी हल्लाज, मन्सूर, बाबालाल, कबीर आदि सरकार उपासना में मर्य्यादा वादी स्वामी रामानन्द, तुलसी आदि साकार उपासना में प्रेम वादी- मीरा, सूर, रसखान, ताज आदि ।

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है । इसका फल यह है कि भारतवर्ष ग्रामों का देश बन गया। ग्रामीणों की आवश्यकतायें सीमित होती हैं तथा उनका क्षेत्र भी सीमित होता है । अतएव ग्राम सब राज्य की इकाई बन जाता है तब उसे स्वावलम्बी होना आवश्यक हो जाता है। भारतवर्ष के ग्राम्य जीवन की आवश्यक सामग्री में धातुओं को छोड़ कर किसी अन्य वस्तु के बाहर से

आर्थिक दशा

आने की आवश्यकता नहीं है। अतएव केवल धातुओं के लिये परावलम्बी अन्य सभी बातों में स्वावलम्बी ग्राम्य जीवन अपने में पूर्ण था हिन्दू प्रथा की पंचायत प्रणाली को अपना कर मुग़ल सम्राटों ने ग्राम जीवन को स्वतन्त्र बना रहने दिया। बड़े बड़े ग्रामों में तो साधारण क्या जूते बनाने वाले से लेकर प्रत्येक उद्यम करने वाले समाज से हुये थे। वे परस्पर सहयोग से अपना काम चलाते रहते थे। उन्हें कभी अपनी आवश्यकता के लिये विदेशों का आसरा लेने की आवश्यकता नहीं थी। परन्तु छोटे छोटे गांव भी, बढ़ई, लुहार आदि जो उनके कृषि कर्म के लिये परम आवश्यक थे शून्य न थे इसके अतिरिक्त बाज़ारों और मेलों का प्रबन्ध सदैव राजाओं जमींदारों और जागीरदारों के द्वारा होता रहा जिससे ग्रामों की सब आवश्यकतायें पूरी होती रहीं।

इन व्यवसाइयों और कृषकों के उपयोगी यंत्र अत्यन्त सरल और साधारण थे। कम परिश्रम और अधिक उत्पादन की ओर भारतवर्ष ने कदाचित कभी ध्यान नहीं दिया। सम्भवत: इसका कारण जाति व्यवस्था थी। इससे जहां पारस्परिक प्रतियोगिता से भारतवर्ष बचा रहा वहां बेकारी और भुखमरी के दिन भी उसे देखने नहीं पड़े। उसका हल इतनी पृथ्वी को जोतता रहा जिससे हज़ारों वर्ष जोते जाने पर भी पृथ्वी की उर्वरा शक्ति में कमी नहीं आई। परन्तु लाखों वर्षों से पड़त पड़ी हुई जमीन को इन सभ्य यूरोपियनों ने अपने सुन्दर और अति उपयोगी यंत्रों से जोत कर पिछले दो सौ वर्ष में ही अनुर्वरा (बंजर) होने के निकट पहुंचा दिया है और अब फिर उन्हीं सरल यंत्रों की बात सोचने लगे हैं। सच बात तो यह है कि जब तक कम परिश्रम और अधिक उत्पादन का सिद्धान्त नहीं त्याग दिया जाता तथा उचित परिश्रम और उचित उत्पादन का सिद्धान्त नहीं अपनाया जाता संसार का आर्थिक सन्तुलन ठीक हो सकना सम्भव नहीं है। मुग़ल काल इसी में

लिये जनता का आर्थिक सन्तुलन बिगड़ने नहीं पाया।

कृषि उपज के अतिरिक्त शक्कर, नमक, नील, और अफीम व्यापार ही मुख्य वस्तुयें थीं। भारतवर्ष में तम्बाकू की खेती जहांगीर के पश्चात् प्रारम्भ हुई। इनके अतिरिक्त अन्य उपयोगी सामग्री में से लकड़ी, काग़ज, चमड़ा और मिट्टी के वर्त्तनों का उद्योग भी अत्यन्त उन्नत स्थिति में थे।

रुई और ऊन के वस्त्र भारतवर्ष की अपनी कला हैं। आज योरोपियन और इंग्लैंड वालों का इस उद्योग पर ऐकाधिकार करने का अभिमान कितना झूठा है। जब हम देखते हैं कि इस काल में योरोप के समस्त बाजारों में भारतवर्ष का ही कपड़ा बिकता था। अन्य सब स्थानों के कपड़ों की अपेक्षा भारतीय रुई के वस्त्र ही राजाओं और दरबारियों के परिधान के काम में आते थे। रेशमी काम के लिये बनारस, सूती काम के लिये समस्त बंगाल और ढाका और ऊनी काम के लिये कश्मीर प्रसिद्ध थे। जरी और कढ़ाई के काम के लिये, मुरशिदाबाद बनारस, लखनऊ और दिल्ली संसार में प्रसिद्ध थे।

जब शाहजादी जेबुन्निसा को भेंट देने के लिये बांस की चोंगली में कपड़ा औरङ्गजेब के समस्त उपस्थित किया गया तो वह इस बनिक से कपड़े की भेंट देखकर हँसने लगा। परन्तु उसके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि इस चोगंली से इतना बड़ा थान निकला जिससे अम्बारी समेत जेबुन्निसा का हाथी ढग गया। ऐसे कारीगर का पारितोषिक हौदा समेत हाथी जो उसे दिया गया। कारीगरों को प्रोत्साहन देने की एक नहीं ऐसी अनेकों मिसालें मुग़ल काल के इतिहास में मिल सकती है। यही कारण था कि भारतीय कला उस समय अत्यन्त उन्नत थी।

इन वस्तु व्यापार के लिये भारत के पूर्वो और पश्चिमी दोनों तटों पर उत्तम बन्दरगाह थे जिसमें भारतीय नाविक संसार के समस्त देशों से व्यापार करते थे। हम इसका

वर्णन पीछे कर चुके हैं। इन बन्दरगाहों में कच्छ की खाड़ी में, सूरत भड़ौच, मलाबार तट पर, बंगाल, उड़ीसा और चटगांव तक बन्दरगाहों की परम्परा थी। विरजीब्रर सूरत के एक व्यापारी का नाम था। कहा जाता है कि वह संसार में सबसे धनी व्यापारी था।

यद्यपि इस व्यापार प्रणाली में कुछ दोष भी थे। जैसे उपयोक्ता और उत्पादक में सम्मुख सम्बन्ध नहीं था विदेशों से व्यापार करने वाले व्यापारी मन माने मूल्य पर बेचते थे तथा उत्पादक को कम से कम लाभ देकर अधिक से अधिक स्वयं ले लेते थे। परन्तु तात्कालिक यातायात की असुविधाओं का विचार करके इस दोष पर ध्यान न देना चाहिये।

दूसरा दोष इस प्रथा में यह था कि धन का परिवर्तन करने वाले बैंक नहीं थे। अतएव लूटे गये व्यापारी सर्वस्व एक बार ही नष्ट हो जाता था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में यह असुविधा अवश्य थी विशेष कर उस समय उत्पन्न हो गई थी जब योरोप निवासियों का व्यवसाय ही लूट पर निर्भर हो गया था। परन्तु पुत्रदेशीय व्यापार में ख्याति प्राप्त साहूकारों की हुण्डी वही काम करती थी जो अपने बैंक करते हैं। इसमें हुण्डी देने वाले को १ पैसा प्रति रुपया था उसके लगभग मिला करता था। भक्त प्रवर नरसी मेहता की हुण्डी की कहानी इसी काल की है।

यातायात के साधनों में बैल गाड़ी ऊंट गाड़ी ही थे। यद्यपि पक्की सड़कों का सम्पूर्ण प्रभाव था फिर भी पक्की सड़कें कम थीं। अतएव यह कठिनाई अवश्य थी। परन्तु इस कठिनाई का सम्बन्ध केवल भारतवर्ष से ही नहीं वरन् उस काल के समस्त संसार से है सभ्यता के ठेकेदार इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन के राजमार्ग पर कीचड़ों के ढ़ेर के कारण सम्भ्रान्त लार्ड दीवाल से सट कर चलते थे। ऐसे समय यदि आमने सामने से दो लार्ड आ गये तो कदाचित कीचड़ में पैर उसी का पड़ता था जो तलवार से हटाया जा सके।

बादशाहों, जागीरदारों, जमीन्दारों या राजाओं के विशाल भवनों और मन्दिरों के सम्बन्ध में बहुत कुछ कह चुका हूँ अतएव उसने दुहरा कर केवल साधारण जनता के रहन सहन का विवेचन करूँगा। जिन्होंने मुग़ल काल के कस्बों के खण्डरों को देखा है और जिनकी परम्परा बंगाल से लेकर पश्चिम में पेशवा तक फैली है। वे सहज ही अनुमान लगा लेंगे कि मुग़ल की साधारण जनता तीन भागों में बँटी हुई थी। पहली सम्पन्न घराने, दूसरी साधारण श्रेणी तीसरी निम्नश्रेणी। अब हम प्रत्येक श्रेणी के रहन सहन पर अलग अलग विचार करेंगे।

सामाजिक रहन सहन

सम्पन्न श्रेणी में वे व्यक्ति थे जो अपनी वंश मर्यादा के कारण अथवा उत्तम कलाकार होने के कारण ग्रामों में अपने पेशे के मुखिया या पञ्च थे। ये मुखिया या पञ्च प्रत्येक जाति में थे अतएव प्रत्येक जाति में सम्पन्न व्यक्ति भी थे। उनका रहन सहन थोड़े बहुत अन्तर से एक सा था। उनके घर पक्के छोटी ईंट के बने थे। ईंटों में गारे की सामान्यतया जुड़ाई थी। कहीं कहीं चूने की जुड़ाई भी थी। छतें लकड़ी की पाटन से छाई हुई थी जो साधारणतया कच्ची थी तथा कहीं कहीं चूनी की। घर दो भागों में बंटा था जनाना और मरदाना। उनके पास नौकर चाकर भी थे घोड़ा गाड़ी हल बैल भी और सुख सुविधा के सब साधन थे। इसी प्रकार इसके वस्त्रों में भी चूड़ीदार पजामा अचकन, साफा या कुलाह समेत साफ़ा था। चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान कोई अन्तर नहीं था। भोजन छाजन में उसके यहां कटोरियों और थालों की बहुतायत थी। मांस खाने का साधारणतया चलन था। घर में स्त्रियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध था परन्तु उर्दू का प्रचार अधिक था। कुटुम्ब का स्नेह कुटुम्ब तक ही नहीं दास दासियों तक सीमित था परस्पर

सम्पन्न श्रेणी

शिष्टाचार और दान दक्षिणा का महत्त्व था। ऐसे ही घरों के द्वार पर पण्डित मौलवी या मुंशी चटसार भी लगती थी।

मध्यम श्रेणी में स्थानीय व्यापारी तथा स्थानीय कारीगर वंश परम्परा से सम्मान पाने वाले लोग थे। इनके घर कच्चे मिट्टी के बने हुये, छत्तें बिना गढ़ी हुई लकड़ियों से पटीं थीं। प्रत्येक स्थिति में ये उच्च श्रेणी के व्यक्तियों से मध्यम ही थे। परन्तु आत्म सम्मान और वंश मर्यादा का विचार इनमें भी था, बड़े लोगों के साथ बैठते उठते थे और समानता का व्यवहार ही पाते थे। इनके यहां भी आवश्यकतानुसार घोड़ा, बैल, गाड़ी और आवश्यक पशु थे परन्तु साधारण गृह कार्य करने के लिये घर घर में काम करने वाले प्रजा-जन इनके घर का काम भी करते थे जो इनके यहां से मासिक या फसल पर अन्न आदि पाया करते थे। स्वयं स्त्रियां भी अपना काम आप कर लेती थीं। यही वर्ग था जो सूत कातता था उससे अपने घर की आवश्यकता भर के कपड़े घर में बन जाया करते थे। इनकी पोशाक मीरजाई, चौबन्दी, धोती या पाजामा थी। पाजामा अधिक तथा न तो अधिक सँकरा था न अधिक घेर का था शिर पर चौगोशिया टोपी पहनते थे और काम काज या विशेष अवसरों पर अचकन और चूड़ी दार पजामा। इनके घरों में भी स्त्रियों अशिक्षित नहीं थी रामायण आदि पढ़ लेती थी। यहाँ पर्दा प्रथा अवश्य थी परन्तु उसकी कठोरता उतनी अधिक नहीं थी जितनी सम्पन्न घरानों में।

अब तीसरी स्थिति निम्न श्रेणी के लोगों की थी जिस में समाज से बहिष्कृत या अत्यन्त निर्धन नीच कार्य करने वाले व्यक्ति थे। यद्यपि खाने पीने की तङ्गी भारतवर्ष में किसी को कभी नहीं हुई परन्तु अन्य बातों में इनका स्थान नीचा था। इनके घरों में छप्पर और कच्ची दीवाले थीं द्वार पर दरवाजे के स्थान पर टट्टर था। इनका भोजन सामग्री भी उसी प्रकार निम्न श्रेणीकी थी। शिक्षा का प्रसार भी इन्हीं में नहीं था। इन्हीं में से

तथा थोड़ी सी स्त्रियों को लेकर वे २० फीसदी के लग भग व्यक्ति थे जो अशिक्षित और दरिद्र थे। इतना होते हुए भी किसी व्यक्ति के लिए उन्नति का मार्ग बन्द नहीं था। अपने ही व्यवसाय में ला कर यदि कोई अपनी मर्यादा में रहता हुआ उन्नति कर जाता था तो उसके प्रति ईर्ष्या की अपेक्षा सत्कार भावना ही में दिखाई जाती थी। हिन्दु जाति में रैदास चमार, धन्ना, जोलाहे, आदि के समक्ष बल हो कर अपनी उदार भावना का परिचय दिया था। परन्तु अपनी वंश गत मर्यादा छोड़ कर चलने वाले अथवा धन पा कर अभिमान करने वाले इस श्रेणी के व्यक्तियों का उपहास करके उसे नीचा दिखाने की प्रवृति भी उत्पन्न हो चली थी। जो अंग्रेजी काल में फल फूल कर विष का वृक्ष बन गई।

सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा भारतवर्ष की अपनी वस्तु है। इस समय भारतवर्ष में इस पर विशेष बल दिया गया। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में इसी समय उप विभागों का निर्माण हुआ। ब्राह्मणों में जो दान न लेने वाले स्वावलम्बी और विद्वान थे उनके वंश परम्परा के विचार से अलग अलग कुटुम्ब बन गए इसी प्रकार क्षत्रिय जाति में जिन लोगों ने निरन्तर यवनों से संघर्ष बनाए रखा, उन दुआवे तथा राजपूताने के क्षत्रियों को ऊंचा स्थान प्राप्त हुआ। वैश्यों में जो केवल धन पिपासु साह थे उनका सत्कार कम हो गया परन्तु जो धन का उचित दान करने वाले थे उन्हें सेठ की पदवी प्राप्त हुई। यह न समझना चाहिए कि हिन्दु समाज में नये विभाग बने। केवल इस समय में इन समाजों के पुनः संगठन और वर्गीकरण की व्यवस्था हुई। मैनपुरी क्षत्रियों का यज्ञ, ब्राह्मणों का बीरबल द्वारा किया हुआ यज्ञ इसी काल की घटनायें हैं जिन में उक्त श्रेणी विभाजन हुआ। इसी का परिणाम यह हुआ कि अप्रतिग्रही कान्य कुब्जों का दोआब में आदर बढ़ गया और वेदों का अध्ययन करने वाले तथा पराया

दान लेने वाले ब्राह्मण पीछे पड़ गए । इसी का प्रभाव हुआ कि भोज जैसे राज मुकुट को जन्म देने वाला परमार राज वंश पीछे पड़ गया। चौहान और राठौर आगे बढ़ गए। यद्यपि ये जातियां भी यवन संसर्ग से अपने को सम्पूर्णतया बचा न सकी परन्तु तात्कालिक परिस्थितियों में हिन्दु संस्कृति की रक्षा इस व्यवस्था में अवश्य हुई।

मुगल मंगोल थे या तुर्क

अब इस काल के सम्बन्ध में केवल दो शब्द मुगल वंश के सम्बन्ध में और कहने को रह गए हैं। वस्तुतः मुगल मंगोल नस्ल के नहीं थे। तुर्कों ने जब चीनी तुर्किस्तान पर विजय प्राप्त की तो वहीं बस गए। मंगोलो को बैद्ध धर्म से मुसलमान धर्म की दीक्षा दी। चंगेजखाँ का परिवार मंगोलों में शक्ति शाली परिवार था। अतएव तुर्की इसके वंश से सहानुभूति प्राप्त करने के विचार से उनसे विवाह सम्बन्ध स्थापित किया इस प्रकार मुगल वंश न तो शुद्ध मंगोल वंश रहा न शुद्ध तुर्क वंश। बाबर ने स्वयं स्वीकार किया है कि उसका मातृ वंश मंगोल था और पितृ वंश तैमूर का वंशराज तुर्क।

दूसरी विचारणीय बात यह है कि क्या हम यह समझते रहें कि मुहम्मद गोरी के उपरान्त हम हिन्दु पराधान रहें। हमें वह धारणा भी अपने अंग्रेज प्रभुओं से प्राप्त हुई है। रवीन्द्र ने कहा है मुसलमानों से हमारी पराजय केवल शस्त्र की, तलवार की पराजय थी, संस्कृति में हमने उनको पराजित कर दिया और अपने आधीन कर लिया"। पिछले विवरण में हम स्थान स्थान पर इस ओर सङ्केत करते आए हैं कि प्रजा राज शक्ति से उदासीन थी। इस उदासीनता का कारण भले ही जाति बन्धन रहा हो, संगठन का अभाव रहा हो अथवा क्षात्र शक्ति की निरङ्कुरता रही हो, हूणों का रक्त रहा हो। अथवा अन्य जातियों का हिन्दुओं में सम्मिलित हो जाना रहा हो। फलतः क्षात्र शक्ति की पराजय भी हुई। परन्तु इस

पराजय का अर्थ हिन्दु जाति की पराजय लगाना मुसलमानों की आधीनता स्वीकार कर लेना नहीं कहा जा सकता । इस के दो मुख्य कारण हैं। पहला प्रजा पर इस पराजय का कोई प्रभाव नहीं पड़ा हम ऊपर कह आये हैं कि किस प्रकार हिन्दु कभी निःशस्त्र नहीं किए गए, किस प्रकार अनाचारी शासन के विरुद्ध हिन्दु विद्रोह करते रहे विशेषतया दोआबे के हिन्दु जिन के शिर पर सदैव तलवार लटकती रही। और किस प्रकार अन्त में मुगल काल तक पहुँचते पहुँचते सामान्य हिन्दु जनता ने सामान्य मुसलमान जनता को अपने रंग में रंग लिया, किस प्रकार हिन्दुओं को रीति, व्यवहार, भाषा और साहित्य ने सामान्य मुसलमान को अपने आधीन कर लिया अतएव इस से हिन्दु जाति की पराधीनता नहीं कही जा सकती।

दूसरा कारण पराधीनता में होने में यह था कि क्या मुसलमान, अफगान या मुगल बाहरी थे ? क्या वे बाहरी ही रहे ! क्या उन्हों ने देश की सम्पति विदेश में डाल कर देश को निर्धन बनाया। उक्त तीनों प्रश्नों के उत्तर में किसी प्रकार न के स्थान पर हां नहीं कहा जा सकता। तो क्या हम मुसलमानों के राज्य शासन को पराधीनता कह सकते हैं। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो गुर्जरों अभीरों, शकों और कहांतक कहा जाय मौर्यों के राज्य भी विदेशी राज्य हैं। उनके काल में यदि भारतीय आर्य पराधीन नहीं हुआ तो कैसे मान लिया जाय कि मुसलमानों के राज्य में वह पराधीन हो गया।

धर्म व्यवस्थापक एक युक्ति दे सकते हैं वे कह सकते हैं कि उच्च जातियों ने हिन्दू संस्कृति को स्वोकार कर लिया वे अपने को हिन्दू कहने लगे, ठीक है। परन्तु क्या आज आमीर अपने को अहीर कह कर अलग नहीं हैं क्या गूजर और जाट आज भी अपनी अलग सत्ता नहीं रख सकते।

इसी प्रकार मुसलमान भी अपनी अलग सत्ता रखते हुये हिन्दू होने लगा था। परन्तु देश का दुर्भाग्य कि गोरों ने आपस में लड़ाओ और राज्य करो की नीति "अपना कर उस मिलती हुई गंगा यमुना की धारा में पहाड़ खड़ा कर दिया आज पाकिस्तान हम से अलग अवश्य हो गया है। शरअ के नाम पर वह अपनी अलग सत्ता रखना चाहता है परन्तु पाकिस्तान के ६० प्रतिशत निवासियों की नस नस में, शिरा शिरा में धमनी-धमनी में भारतीय संस्कृति घर कर चुकी है। सामयिक उन्माद एक दिन अवश्य समाप्त होगा। उस समय फिर पाकिस्तान विदेशी न रह कर स्वदेश और भारत का अविभाज्य अंग बन जायगा। आवश्यकता केवल उदारता पूर्वक प्रतीक्षा करने की है। ऐसा न हो कि शेख सादी के शब्दों में दोनों ओर दो जाहिल इकट्ठा हो कर जंजीर तोड़ डालें और आपस में लड़ने लगें। मैं हिन्दुओं से कहूंगा कि तुम्हारा देश सदैव तुम्हारा रहा और अबभी तुम्हारा है। मुसलमानों से कहूंगा कि तुम गैर नहीं हो तुम भी हिन्दू न सही हिन्दी तो हो ही। परस्पर मिल कर चलो रात दिन हो गया जो जब अंग्रेजों द्वारा फैलाया हुआ दूषित विष पच कर हमारे शरीर से निकल जायगा तब न हिन्दू रहेगा न मुसलमान केवल हिन्दी होगा जिसका हित हिन्द का हिन्द में बसने वाली समस्त जातियों और धर्मों का हित होगा।

अब अन्तिम शब्द औरंगजेब के स्थान के विषय में है

इस पर भी दो विभिन्न दृष्टि कोणों से विचार किया जा सकता है। पहले राजनैतिक दृष्टि से दूसरे सांस्कृतिक दृष्टि से।

राजनैतिक दृष्टि से औरंगजेब का स्थान

इसी अध्याय में है जहां उसका वर्णन किया गया है क्यों कि इस अध्याय में मुगल वंश की राजनैतिक कहानी कही गई है।

साँस्कृतिक दृष्टि से औरंगजेब का स्थान

इस अध्यायके आगे है। प्रस्तुत इतिहास भारतवर्ष का संस्कृतिक गौरव है अतएव उसका वर्णन अगले अध्याय में ही होना चाहिये था। क्योंकि प्रारम्भिक मुगल बादशाहों की उदार नीति जो साम्राज्य की स्थिरता की ओर ले जाने वाली थी उसे औरंगजेब ने छोड़ कर साम्राज्य को पतन की ओर ढकेल दिया। वस्तुतः साम्राज्य का पतन औरंगजेब के काल से ही आरम्भ हो गया था। जनता के हृदय से उसकी बादशाहत उसके जीते जी ही उठ चुकी थी। केवल उसकी मृत्यु की ही प्रतीक्षा राजनैतिक छिन्न भिन्नता को रोके हुये थी। अतएव औरंगजेब सांस्कृतिक इतिहास के अगले अध्याय मुगल साम्राज्य का पतन और मराठों के उत्कर्ष में आता है। परन्तु औरंगजेब का काल दोनों का सन्धि काल था इसीलिये इस का वर्णन पहले अध्याय में कर दिया गया।

प्रश्न

(१) बाबर के जीवन पर विचार करते हुये सिद्ध करो कि साम्राज्य स्थापन के गुणों से वह युक्त था ?

(२) राजपूतों की पराजय के कारणों पर विचार करो।

(३) ज्योतिषी ने कह दिया कि 'पराजय सम्भव है' बाबर कथन से चंचल होजाता तो क्या होता ?

(४) हुमायूं की पराजय का कारण उसका बन्धु प्रेम है "सिद्ध करो।

(५) किन कारणों से शेरशाह ने हुमायूं को पराजित किया समझाओ।

(६) अकबर की सफलता शेरशाह के मार्ग पर चल कर हुई, कैसे ?

(७) सूर वंश का पतन इतने शीघ्र क्यों हो गया ?

(८) हेमचन्द्र (हेमू) के चरित्र का विश्लेषण करो।

(६) अकबर और बैरमखां के परस्पर व्यवहार में किस को तुम अपराधी समझोगे सप्रमाण लिखो ?

(१०) अकबर की सफलताओं पर कारणों सहित प्रकाश डालो। किस किस दिशा में उसने सफलता प्राप्त की।

(११) "अकबर को महान कहा जाता है" ? कारण देकर अपनी सम्मति दो।

(१२) अकबर ने दक्षिण विजय के लिये क्या क्या प्रयत्न किये ?

(१३) अकबर की भूमि, शासन और धार्मिक व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालो।

(१४) नोट लिखो, जजिया, कार्जिउलकज्जात, जमीन्दार, हजारी मनसबदार, सूबेदार, नवरत्न और प्रतापसिंह।

(१५) जहांगीर को ऊँचे उठाने तथा नीचे गिराने में नूरजहां का कितना हाथ था ? सप्रमाण लिखो।

(१४) जहांगीर की न्याय व्यवस्था पर नोट लिखो।

(१५) सिद्ध करो कि मुगल साम्राज्य पतन का मुख्य कारण इसके उत्तराधिकार के नियम का प्रभाव है।

(१६) क्या शाहजहां को सौन्दर्य प्रिय बादशाह कहना उचित है ? कारण सहित समझाओ।

(१७) मुगल काल के मुख्य भवनों का विवरण दिल्ली गाइड से पढ़ो और उन पर नोट लिखो।

(१८) शाहजहां ने जिस नीति की नीव डाली औरंगजेब ने उसी पर भवन खड़ा करके मुगल साम्राज्य को बनाया और बिगाड़ दिया, कैसे ?

(१९) औरंगजेब को राज्याधिकार किस प्रकार प्राप्त हुआ ?

(२०) खफीखां लिखता है, प्रत्येक योजना जो उसने की निष्फल हुई जिन कार्यों को उसने प्रारम्भ किया उनमें बहुत-सा समय लगा और अन्त में कुछ भी सफलता न मिली, औरंगजेब के सम्बन्ध में खफीखां की इस बात पर विचार करो तथा उन

कार्यों की तालिका बनाते हुये उनमें उसकी सफलताओं और असफलताओं पर विचार करो।

(२१) शिवाजी को हिन्दू राष्ट्र भावना का जन्म दाता कहा जाता है' सकारण विचार करके समझाओ कि शिवाजी के हिन्दू राष्ट्र का अर्थ क्या था ?

शिवाजी तथा मराठों की सफलता के कारणों पर विचार करो तथा समझाओ कि किस प्रकार औरंगजेब इसके लिये कहां तक उत्तरदायी है ?

(२२) वर्त्तमान हिन्दू समाज का निर्माण मुगल काल में पूर्ण हो गया फिर उसमें विकास की गति बन्द हो गई, क्या उक्त कथन सत्य है ? दोनों पक्षों पर विचार करो।

(२३) अछूत समस्या का उदय मुगल काल है' किस प्रकार।

(२४) औरङ्गजेब की वैदेशिक नीति पर विचार करके उस के गुण दोष समझाओ।

(२५) क्या मुसलमान काल पराधीनता का काल है ? दोनों दृष्टियों से विचार करके अपनी सम्मति के पक्ष में प्रमाण दो।

(२६) मुगल साम्राज्य के क्रमिक विकास और पतन के कारणों में कहा जाता है कि प्रारम्भिक काल में मुगल बादशाहों ने छोटे डग लिये परन्तु दृढ़ता से पैर जमाये औरङ्गजेब ने लम्बे डग लिये परन्तु डगमगाते हुये' उक्त सम्मति पर अपना मत प्रकट करो।

सैंतीसवां अध्याय

मुगल साम्राज्य का पतन और हिन्दू राष्ट्र भावना का उत्थान

हम पहले कह आये हैं कि मुगल राज्य जनता के हृदय पर से उठ चुका था केवल उसका बाहरी ढाँचा सूखे कंकाल की भाँति खड़ा रह गया था। इस सूखे शरीर में कहीं भी सरसता और सम की कोई धारा नहीं बची थी जिसे किसी उपाय से

जीवित रक्खा जा सकता। फिर मुग़लों की उत्तराधिकार नीति की अव्यवस्था का भी हम वर्णन कर चुके हैं। राजकुमार वृद्ध हो चुके थे। औरंगजेब अविश्वास के पिशाच की मूर्त्ति लेकर उनके जीवन का समस्त उत्साह और चेतना चूस चुका था। उन अकर्मण्य अथवा यों कहिये निर्जीव शरीरों में भी अपने पिता, पितामह की भाँति परस्पर इस मरे मुर्दे के समान राज्य का मांस नोचने के लिये गिद्धों की भाँति लड़ने की ही शक्ति रह गई थी वह दूरदर्शिता नहीं थी। जो ऐसे समय साम्राज्य संभालनेके लिये परमावश्यक थी फलत: युद्ध हुआ।

उत्तराधिकार का युद्ध

औरङ्गजेब के ५ पुत्र थे मुहम्मद, अकबर, मुअज्जम, आजम और कामबख्श। औरङ्गजेब सबसे अधिक कामबख्श को चाहता था। मुहम्मद मर चुका था। अकबर राजपूत विद्रोह के समय विद्रोही बन कर अपने अविश्वासी पिता के पास लौट कर आने का साहस नहीं कर सका था। फारस भाग गया था वहीं उसकी मृत्यु हो चुकी थी। अब चाह कर भी औरङ्गजेब सम्राट न बना सका। युद्ध प्रारम्भ हुआ। काबुल से आकर कामबख्श को मुअज्जम ने गद्दी और राजकोष पर अधिकार कर लिया। आजम आगरे के पास जाजऊ के युद्ध में काम आया और कामबख्श हैदराबाद में था। दीनपनाह बन बैठा तथा अपने अधिकार को प्रकट करने के लिये पदवियाँ देनी प्रारम्भ करदीं। इधर राजकोष पर अधिकार पा जाने तथा आजम की मृत्यु के कारण मुअज्जम की शक्ति बढ़ गई थी। अतएव उसने बहादुरशाह नाम धारण करके गद्दी पर अधिकार कर लिया।

कामबख्श की पराजय

इस प्रकार शक्ति हाथ में लेकर उसने कामबख्श पर आक्रमण किया। हैदराबाद के समीप भयङ्कर युद्ध में कामबख्श इतना परास्त हुआ कि उसकी मृत्यु हो गई। बहादुरशाह ने उदारता दिखाई वह उसे दफनाने के लिये अर्थी के साथ गया। और उसकी सन्तान को वजीफे बाँध दिये।

हम इस युद्ध के लिये बहादुर शाह को दोषी नहीं कह सकते। मुग़ल वंश की पूर्व प्रचलित प्रथा को अतिक्रमण कर सकना बहादुर शाह के लिये सम्भव न था। कदाचित वह न भी करता और अपने पिता के उत्तराधिकार पत्र को स्वीकार करके ही शान्त हो जाता तो भी युद्ध ही होता उसके उत्तराधिकारी को दिल्ली, पञ्जाब, अवध, इलाहाबाद, आदि ग्यारह सूबे मिलते, दूसरे को आगरा, मालवा, गुजरात, अजमेर, बरार, औरंगाबाद, बीदर और खानदेश मिलते। तथा कामबख्श को हैदराबाद और बीजापुर के सूबे। इस बटवारे के अनुसार आजम को दिल्ली की गद्दी मिलनी चाहिये थी परन्तु राजकोष मुअज्जम के हाथ आ चुका था। गद्दी छोड़ने का अर्थ समस्त धन देना होता फिर क्या जाने आजम ही शत्रुता पर उतारू न हो जाता। अतएव जो कुछ हुआ वही होता था।

बहादुर शाह १७०७-१७१२

सिक्खों का विद्रोह

औरङ्गजेब के प्रकरण में बताया जा चुका है कि सिक्खों में क्षात्र शक्ति का उदय और संगठन तथा विद्रोह की भावना बैठ चुकी थी। अतएव गुरु गोबिन्द सिंह की मृत्यु के उपरान्त बन्दा वैरागी को नेता बना कर विद्रोह का झण्डा ऊंचा किया। बन्दा वैरागी था वह वस्तुतः गुरु गोविन्द सिंह के शिष्य सम्प्रदाय में नहीं था परन्तु गुरु तेग बहादुर की निर्मम हत्या तथा गुरु गोविन्द सिंह के बच्चों का जीवित दीवाल में चुनवाये जाना उसके हृदय में कांटे की भांति खटक रहा था। उसकी प्रतिशोध भावना को उद्दीप्त देख कर सिक्खों ने उसे अपना नेता मान लिया। बन्दा ने उक्त समस्त अनर्थों की जड़ सरहिन्द के सूबेदार पर पहले आक्रमण किया। परन्तु सिक्खों की सेना को पहले आक्रमण में सफलता नहीं मिली। परन्तु दूसरी बार उन्होंने और अधिक वेग से आक्रमण किया। युद्ध में वजीरखां मारा गया और सर हिन्द के किले की लूट में

सिक्खों को असंख्य धन प्राप्त हुआ ।

अब इस विजय से उत्साहित बन्दा ने अपनी सेना चारों ओर मुसलमान साम्राज्य का नाश करने के लिये फैला दी। सिक्खों ने लाहौर पर भी आक्रमण किया । परन्तु उसे जीत न सके। इस पर बहादुर शाह ने १७१० ई० में बन्दा पर आक्रमण किया। बन्दा ने लोहारू गढ़ किले में शरण ली। युद्ध में सिक्ख पराजित हुये परन्तु बन्दा हाथ न आया। लोहारू गढ़ के खोदने से बहादुर शाह को बहुत बड़ी धन राशि प्राप्त हो गई ।

सन् १७१२ ई० में बहादुर शाह की मृत्यु हो गई।

बहादुर शाह अपने पिता की नोति को बदल कर अकबर की नीति पर चलना चाहता था। वह स्वभाव से भी उदार था। कामबख्श के सम्बन्ध में हम उसकी उदारता का वर्णन कर चुके हैं। उसने दूसरी बार अपनी उदार नीति का परिचय गद्दी पर बैठते ही दिया था। उसके राज्याभिषेक होते ही मेवाड़, मारवाड़ और जोधपुर स्वतन्त्र हो गये थे। महाराज जसवन्त सिंह का पुत्र अजीत सिंह अब पूर्ण युवक था। उसने जोधपुर राज्य पर अधिकार कर लिया । उदयपुर, मारवाड़ और जोधपुर की सम्मिलित शक्ति से बहादुर शाह को युद्ध करना चाहिये था। परन्तु वह राजपूतों से बिगाड़ का फल अपने पिता के साथ साथ रहते हुए देख चुका था । अतएव उसने विरोधों को भुलाने की भावना से प्रेरित होकर तीनों राज्यों को अपना मित्र बना लिया ।

बहादुर शाह का व्यक्तित्व

इसी प्रकार औरंगजेब ने शिवाजी के पौत्र साहूजी को बन्दी कर रक्खा था। गद्दी पर बैठते ही उसने साहूजी को मुक्त करने की आज्ञा दे दी तथा उसने भी मुगल राज्य के साथ प्रेम भावना रखने का प्रण कर लिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि बहादुर शाह का जीवन

साथ देता तो सम्भव था कि साम्राज्य की वह दुर्दशा न होती जो आगे चल कर हुई। वह शक्तिमान भी था। यद्यपि सेना का चरित्र बहुत गिर गया था जैसा कि खफी खां ने लिखा भी है परन्तु उस चरित्र में भी सुधार की सम्भावना थी। परन्तु उसे राज्याधिकार ही वृद्धावस्था में ६४ वर्ष की आयु में मिला था। वृद्धावस्था में परिश्रम सहन न कर सकने के कारण उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई।

जहांदार शाह १६१२-१३ ई०

बहादुर शाह के भी चार पुत्र थे। अजीमुश्शान, रफीउश्शान, मुईनुद्दीन और खजिस्ता अख्तर। इन में सब से योग्य अजीमुश्शान था जो बंगाल का गवर्नर था। परन्तु उत्तराधिकार में तो युद्ध होना था और युद्ध योग्य और अयोग्य को नहीं देखता। इस जुये में जिसकी गोट चित पड़ जाय वही योग्य बन जाता। अजीमुश्शान मारा गया और रफीउश्शान और खजिस्ता अख्तर की भी वही गति हुई। मुईनुद्दीन जहांदार शाह के नाम से राज गद्दी पर बैठा, जो उन चारों भाइयों में सब से अधिक अयोग्य था।

उत्तराधिकार युद्ध

अजीमुश्शान का पुत्र फर्रुखसियर इस पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। पहले तो उसने आत्म-हत्या का विचार किया किन्तु अपने मित्रों के समझाने से वह विचार त्याग दिया। स्वयं स्वतन्त्र हो गया। बंगाल से पटना तक अधिकार कर लिया। अपने को बादशाह घोषित करके सिक्के चला दिये तथा जहांदार शाह पर आक्रमण किया। बिहार तथा इलाहाबाद के सूबेदार सैयद बन्धु, अब्दुल्ला और हुसैन अली ने फर्रुखसियर का साथ दिया। इलाहाबाद के पास खजुआ में जहांदार शाह से युद्ध हुआ। जहांदार पराजित हो कर पंजाब की ओर भाग खड़ा हुआ। परन्तु बन्दी बना कर मार डाला गया।

अब फर्रुखसियर दिल्ली और आगरे का बादशाह घोषित

हुआ। परन्तु अब्दुल्ला और हुसैनअली की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि सुन्नी मुसलमान सरदार ईर्ष्या करने लगे थे। इन सुन्नियों में ईरानी, तूरानी, तुर्क, रूमी, अफ़गान, पठान सब सम्मिलित थे। फर्रुखसियर भी इन सैयद भाइयों के पञ्जे से छुटकारा चाहता था। अतएव उसने हुसैन अली को दक्षिण का सूबेदार बना कर दोनों भाइयों को अलग अलग करके जीतना चाहा। उसने गुप्त रीति से गुजरात के सूबेदार को आदेश दिया कि वह हुसैनअली को मार डाले। युद्ध में दाऊद की पराजय हुई और बड़ी कठिनता से हुसैन अली अपनी प्राण रक्षा कर सका। उसने दक्षिण के मराठा नायक बाला जी विश्वनाथ पेशवा को साथ लिया तथा प्रतिज्ञा की कि वह दिल्ली दरबार से चौथ और सरदेश मुखी वसूल करने का आज्ञा-पत्र दिलवा देगा। इस प्रकार सैयद बन्धुओं और पेशवों की शक्ति के सम्मुख बादशाही सेना पराजित हुई। अब्दुल्ला ने फर्रुखसियर का वध कर दिया। एक बार फिर सैयदों, जाटों, राजपूतों और मराठों की सम्मिलित भारतीय शक्ति के समक्ष विदेशी तुर्कों को पराजय प्राप्त हुई।

फर्रुखसियर (१७१३-१७१९ ई०)

पहले कहा जा चुका है कि बहादुरशाह प्रथम के समय में अजमेर, मारवाड़ और चित्तौड़ स्वतंत्र हो गये थे परन्तु हुसैन अली ने मारवाड़ पर आक्रमण करके राजा को पराजित किया और उसे अपनी कन्या का विवाह मुग़ल फर्रुखसियर से करने पर बाध्य कर दिया।

राजपूत

बन्दा बैरागी के सम्बन्ध में हम कुछ बातें ऊपर कह आये हैं। फर्रुखसियर के राज्य काल में बन्दा बैरागी ने बटाला का नगर लूट लिया। जब उस पर आक्रमण किया गया तो उसने गुरुदासपुर में शरण ली। मुग़ल सेना ने क़िले का घेरा डाल कर १७१५

सिख विद्रोह

ई० से उसे जीत लिया । बन्दा पकड़ा गया तथा दिल्ली लाया गया था । उससे मुसलमान होने अथवा मृत्यु के लिये प्रस्तुत होने को कहा गया । वीर बन्दा ने शिर देना स्वीकार किया । उसकी आंखों के सामने उसके पुत्र को चीर डाला गया परन्तु उसने आह न की । अन्त में सलाखों से छेद छेद कर बन्दा के प्राण लिये गये । बन्दा बलिदान हो गया परन्तु सिख जाति को अमर होने की विधि सिखा गया ।

जाट विद्रोह बहादुरशाह ने जोटों से सन्धि कर ली थी परन्तु जाटों ने अपने नेता चूड़ामणि के नेतृत्व में जाटों ने दिल्ली और आगरा के मध्यवर्त्ती भागों में लूट मचाना आरम्भ कर दी । पहले तो इससे सन्धि करके उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा की गई किन्तु अन्त में राजा जयसिंह और मुग़लों की सेना ने उसे सन्धि करने के लिये वाध्य किया । १७१५ ई० में जाटों से सन्धि हुई और उन्हें ५० लाख रुपया दण्ड देना पड़ा ।

फरुखसियर की बीमारी में डाक्टर हैमल्टन ने औषधि की थी अतएव बदले में अंग्रेजों को कलकत्ते के पास भूमि लेने की आज्ञा दे दी गई और अन्य व्यापारिक सुविधायें भी प्रदान की गईं ।

अंग्रेजों से व्यवहार

अब सैयद बन्धुओं ने दो अन्य राजकुमारों को गद्दी पर बिठाया । परन्तु अन्त में जब उन्होंने मुहम्मद शाह को गद्दी पर बिठाया तो इन बादशाह बनाने वाले सैयद बन्धुओं को भी अपनी करनी का फल मिल गया । मुहम्मद ने षडयंत्र करके दोनों भाइयों का वध करा दिया और स्वतंत्र हो गया ।

सैयद बन्धुओं से छुट्टी पाकर मुहम्मद शाह ने दक्षिण के सूबेदार निजामुल्मुल्क को अपना प्रधान मंत्री बनाया ।

मुहम्मद शाह (१७१६-४८)

निजामुल्मुल्क बड़ा योग्य और ईमानदार व्यक्ति था । राजा जयसिंह आदि हिन्दू सरदारों ने निजामुल्मुल्क की सहायता से

हिन्दुओं पर लगने वाला राजकर जज़िया बन्द करवा दिया।

निजामुल्मुल्क का पिता गाजीउद्दीन फीरोज जंग था। उसका वंश समरकन्द से आया था। उसकी माता शाहजहां के प्रसिद्ध मंत्री सादुल्ला खां की कन्या थी। इस समय उसकी आयु लगभग ५० वर्ष की थी। १३ वर्ष की अवस्था में उसे मनसब प्राप्त हो गया था औरंगजेब की मृत्यु के समय वह बंगाल का सूबेदार था। परन्तु दरबारी अमीर उसकी सरलता और ईमानदारी का दक्षिणी बन्दर कह कर उपहास किया करते थे। बहादुर शाह ने उसे सिन्ध [से बुलाकर अवध का सूबेदार बनाया था उसे खानदौरान की उपाधि और ६००० हजारी मनसब प्रदान किया था। सैयद बन्धुओं की चढ़ती कला देख कर उसने १७११ ई० में अपने पद से त्याग पत्र दे दिया था। परन्तु पुनः कुछ समय के उपरान्त नौकरी कर ली थी। फर्रुखसियर ने उसे दक्षिण का सूबेदार बना दिया था। सैयद बन्धुओं ने जब उसे दिल्ली बुलाया तो उसने अस्वीकार करके विद्रोह कर दिया। अवध के सूबेदार सआदत अली खां ने उसकी सहायता की थी।

मुहम्मद शाह निजामुल्मुल्क का विश्वास करता था। जब निजामुल्मुल्क ने हुसैन अली सैयद के कुटुम्ब को दक्षिण में बन्दी बना लिया तो हुसैन अली अपने कुटुम्ब की रक्षा करने तथा निजामुल्मुल्क को दण्ड देने के लिये सेना लेकर चला। मुहम्मद शाह साथ ही था। षडयंत्र पूरा हुआ और १७२० ई० में हुसैन अली की हत्या कर दी गई। उसका पड़ाव लूट लिया गया और उसके मित्रों को बन्दी कर लिया गया। अब्दुल्ला ने इस अन्याय के प्रतिकार के लिये मुहम्मद शाह को एक करुणा जनक पत्र लिखा। मुहम्मद शाह ने उससे प्रतिज्ञा की कि हत्यारे को दण्ड दिया जायगा। परन्तु जब षडयंत्र में स्वयं उसी का हाथ था तो दण्ड देने का उपाय वह क्या करता। १७२२ ई० में अब्दुल्ला को भी विष देकर मार डाला गया

ये लोग बारह सैयद कहलाते थे। दिल्ली के आस पास मेरठ जिले तक बारह गांवों में बसे होने के कारण ये लोग बारह सैयद कहलाते थे। सैयद हुसैन अली बड़ा वीर और अभिमानी तथा कूट नीति में चतुर सेनापति था। वह कहा करता था कि जो मेरी छाया में आ जायगा दिल्ली का बादशाह हो जायगा। परन्तु दीन दुखियों और विद्यार्थियों पर वे दोनों बड़ी दया करते थे। अबदुल्ला हिन्दू प्रथाओं का सम्मान करता था तथा उनके उत्सव बड़े समारोह से मनाता था। परन्तु दोनों भाइयों में राज्य शासन की कुशलता कम थी। अपनी सुविधा की ओर अधिक ध्यान देने के कारण उनके शत्रुओं की संख्या बढ़ती गई। औरंगजेब कहा करता था "जो इन बारह सैयदों के सम्पर्क में आ जायगा वह अपना जीवन तो नष्ट करेगा ही अपने साथ ही अपने साथियों और संसार का जीवन भी नष्ट कर देगा। वे सैयद बन्धु बादशाह बनाने वाले के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हो गये हैं।

सैयद बन्धु

दक्षिण में निजामुल्मुल्क ने सुधार का बड़ा यत्न किया। परन्तु नवयुवक राजकुमार युवक ही नहीं मूर्ख भी था। विलाभिता में फंसा हुआ बादशाह मन्त्री के सुधारों में सहायता देने की अपेक्षा इसके विपरीत खुशामदी दरबारियों की बातें सुनता और हंसता था। साथ ही इन मुसाहबों ने बादशाह को सुझाया कि मन्त्री राजगद्दी हथियाना चाहता है। मंत्री को सुझाया कि बादशाह तुम्हारा वध करना चाहता है इन स्थितियों में निजामुल्मुल्क के लिये कार्य्य करना सम्भव नहीं था। अतः वह दक्षिण चला गया। और १७२४ ई० में हैदराबाद में स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली।

साम्राज्य का विनाश

रुहेलखण्ड दाऊद खाँ को और उसके सौतेले भाई अली मोहम्मद की शक्ति भी बढ़ चुकी थी। अतएव रुहेले वंश के

इन नौ-मुस्लिमों ने अलीमोहम्मद के नेतृत्व में १७४० ई० में रुहेलखण्ड में स्वतन्त्र शासन स्थापित कर लिया।

अवध के सूबेदार सआदत अलीखाँ का ऊपर वर्णन आ चुका है यहां भी १७२५ ई० में स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गया।

बंगाल के सूबेदार अलीवर्दी खां ने मुग़ल बादशाह मुहम्मद शाह से अपना सम्बन्ध १७४० ई० में विच्छिन्न कर लिया और बंगाल में स्वतन्त्रता स्थापित कर ली।

राजपूतों ने अपनी स्वतन्त्रता अलग स्थापित करली थी। मराठों ने गुजरात, सिंध और मध्य प्रदेश रौंद डाले थे। इस प्रकार समस्त साम्राज्य छोटे छोटे टुकड़ों में बँट कर छिन्न भिन्न हो रहा था। इसी अव्यवस्था के समय नादिरशाह ने १७३८ ई० में भारतवर्ष पर आक्रमण किया।

नादिर कुली का जन्म निर्धन घराने में हुआ था उसका पिता भेड़ के चमड़े के थले और टोपियां बनाकर अपनी जीविका चलाता था। बाल्यावस्था में नादिर भेड़ें चराया करता था। युवक होने पर उसने एक अमीर की नौकरी करली। परन्तु उसकी उत्साही प्रकृति दासता के लिये नहीं वरन् स्वामित्व के लिये बनी थी। अतएव उसने युवकों का एक जत्था बना कर लूट मार करनी प्रारम्भ कर दी। लूट का माल साथियों में बाँटते रहने के कारण उसका झुण्ड बढ़ता गया। और इस प्रकार एक सेना बन गई। अब इस सेना के नेतृत्व में नादिरशाह ने ईरान की भूमि से अफ़गानों को निकाल कर स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। १७३८ ई० में उसने कन्धार पर भी विजय प्राप्त करली।

नादिरशाह का परिचय

भारतवर्ष पर आक्रमण करने के कारण कन्धार पर आक्रमण करते समय उसके कुछ शत्रु भारतवर्ष में भाग आये थे। नादिरशाह ने मुहम्मदशाह को उन शत्रुओं को कन्धार भेज देने के लिये लिखा परन्तु खुशामदियों से घिरे मुहम्मद

भारतवर्ष पर आक्रमण

शाह ने अस्वीकार करके इनका अपमान किया। नादिर-शाह को बहाना मिल गया। वस्तुतः भारतवर्ष की अव्यवस्था से उसे विश्वास हो गया था कि उसके आक्रमण से विजय निश्चित है अतएव उसने पहले क़ाबुल पर आक्रमण किया तथा पठानों को सरलता से पराजित करके भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया।

मुग़ल काल में पश्चिमोत्तर के किलों की रक्षा का सुप्रबन्ध नहीं रहा था अतएव बड़ी सरलता से खैबर को पार करके उसने पेशावर पर अधिकार कर लिया। और

आक्रमण

लाहौर तक आ गया। निजामुल्मुल्क पर यदि विश्वास किया जाता तो सम्भव था कि मुग़ल साम्राज्य की यह दुर्गति न होती। अतएव नादिरशाह के मार्ग में कोई बाधा नहीं पड़ी। करनाल के स्थान पर उसने मुग़ल सेना पराजित हुई और मुहम्मदशाह पराजित हुआ। मुहम्मदशाह के साथ नादिर दिल्ली आया और एक दीवान खास किया।

उसके सिपाहियों ने व्यापारियों को सस्ते दामों पर वस्तुओं देने के लिये बाध्य करना चाहा। अतएव व्यापारियों ने सिपाहियों पर आक्रमण कर दिया। शहर में अफवाह फैल गई कि नादिरशाह मर गया अतएव लोगों ने इधर से उधर लूट मार मचा दी। नादिरशाह ने ६ बजे से २ बजे तक क़त्ल आम की आज्ञा दे दी। इस भयङ्कर विनाश से प्रजा को बचाने के लिये मुहम्मदशाह ने अपने दरबारियों को नादिरशाह के पास भेजा। क्रोध शान्त होने पर नादिरशाह ने क़त्ल आम बन्द करा दिया। इस युद्ध में नादिरशाह ७० करोड़ रुपया. तख्तताऊस और कोहनूर हीरा लेकर लौट गया।

नादिरशाह के आक्रमण के कारण शिथिल साम्राज्य के अंजर पंजर ढीले हो गये। हम इसके विनाश का वर्णन पहले

कर आये हैं फिर करने की आवश्यकता नहीं केवल इतना कहना शेष है कि इस आक्रमण ने सामान्य हिन्दू और मुसलमान को यह पाठ और पढ़ा दिया कि आक्रमणकारी न तो जाति-भेद देखते हैं न हिन्दू या मुसलमान वरन् प्रत्येक भारतीय को चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान एक समान विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।

नादिरशाह के आक्रमण का परिणाम

अब मुहम्मदशाह का शेष जीवन विद्रोहों को शान्त करने में ही बीता परन्तु उसे कहीं सफलता न प्राप्त हुई अन्त में १७४८ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। इसकी मृत्यु के एक मास पूर्व अहमद शाह अब्दाली ने भारतवर्ष पर आक्रमण करके मुल्तान, पंजाब और सिंध पर अधिकार कर लिया।

अहमदशाह (१७४८-५४) ने रुहेले विद्रोह को मराठों की सहायता से दमन करने की चेष्टा की परन्तु पूर्णतया सफल न हो सका। निजामुल्मुल्क के पुत्र गाजीउद्दीन ने अहमदशाह का वध कर दिया और जहाँदारशाह के दूसरे पुत्र आलमगीर को राज्यासन पर बिठाया।

अब गाजीउद्दीन और नजीबुद्दौला बेगस दोनों बादशाह को अपने वश में रखना चाहते थे। गाजीउद्दीन ने अहमद शाह अब्दाली के सूबेदार को मुलतान में बन्दी बना लिया। अतएव अहमदशाह अब्दाली ने फिर दिल्ली पर आक्रमण करके लूटमार मचादी। गाजीउद्दीन मराठों के पास भाग गया। अब अहमद शाह दुर्रानी ने नजीबुद्दौला रुहेले को मन्त्री बनाया।

परन्तु जैसे ही अब्दाली ने पीठ फेरी गाजीउद्दीन ने पेशवा राघोवा की सहायता से आलमगीर का वध कर दिया और कामबख्श के पुत्र को राजा बनाया। नजीबुद्दौला भाग गया। राघोवा ने पञ्जाब और मुल्तान से अफ़गानों को मार भगाया। अब नजीबुद्दौला ने अहमदशाह अब्दाली को फिर निमन्त्रित किया। अतः उसने फिर आक्रमण किया। पञ्जाब को मराठों

से जीत कर दिल्ली तक पहुँच गया। उसके लौटने पर पेशवा के दो नेताओं विश्वास राव और सदाशिव राव ने दिल्ली पर अधिकार करके आलमगीर के पुत्र शाह आलम को गद्दी पर बिठाया, अतएव अब्दाली को फिर भारतवर्ष पर आक्रमण करना पड़ा, मराठे पराजित हुए और नजीबुद्दौला सेनापति बनाया गया।

शाह आलम ने अनेक उतार चढ़ाव देखे। कभी वह अँग्रेजों के अधिकार में आ गया कभी मराठों के। अंग्रेज अपना स्वार्थ साधते रहे मराठे अपना। १७८८ ई० में उसे गुलाम क़ादिर नामक पठान ने अन्धा कर दिया परन्तु वह जैसे-तैसे दिल्ली की गद्दी पर १८०६ ई० तक रहा। फिर अंग्रेजों ने शाह आलम को पेन्शन देकर अकबर शाह दूसरे को बादशाह बनाया। वह १८३७ ई० तक दिल्ली का नाम मात्र बादशाह रहा।

१८३७ ई० में बहादुरशाह को राज्यासन मिला। उसने १८५७ ई० में अपनी वृद्धावस्था में भी सिपाही विद्रोह का नेतृत्व किया। परन्तु पराजित हुआ और बन्दी बना कर रंगून भेज दिया गया जहाँ १७६२ ई० में उसकी मृत्यु हो गई और मुग़ल-वंश का अन्त हो गया।

उत्थान के साथ पतन सब का निश्चित है। सिकन्दर की विजय का इतिहास, रोमनों का युरोप विजय। प्यारा बहादुर शाह जनता का प्यारा था। हिन्दू का प्यारा, मुसलमान का प्यारा, भारतीय क्रान्ति का प्यारा और विश्व हित की भावना रखने वाला सूफ़ी सन्त था। उसके साथ जिस जाति ने छल किया अथवा विश्वासघात किया उस जाति ने मानवता के साथ विश्वासघात किया। मनुष्य के विश्वासघात को क्षमा मिल सकती है। मानवता के विश्वासघात को नहीं। देर भले ही हो अँधेर नहीं हो सकता।

अन्त

मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारणों पर हम विचार कर चुके हैं अतएव यहां दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

'मराठा उत्कर्ष' हिन्दू राष्ट्रीय भावना का उदय १७०८-१७६१

हम पहले कह आये हैं कि साहू जी पेशवा को बहादुरशाह

प्रथम ने मुक्त कर दिया था जब वह दक्षिण में पहुंचा उस समय राज शक्ति राजाराम की स्त्री ताराबाई के हाथ में थी। उसने परास्त हो कर राज्य भार तो छोड़ दिया परन्तु कोल्हापुर में एक छोटे से प्रदेश पर वह और उसके पुत्र का थोड़े समय तक शासन बना रहा। साहुजी (१७०८४६) दिल्ली दरबार में रहने के कारण साहुजी विलासी और चरित्रहीन हो गया था। उसमें किसी कार्य्य अथवा नेतृत्त्व की शक्ति नहीं थी। अतएव समस्त राज्य कार्य पेशवा पर छोड़ कर वह सुख भोग में मग्न हो गया। सबसे पहला और राजनीति कुशल पेशवा बालाजी विश्वनाथ था। इसने समस्त मराठों को परस्पर संगठित कर दिया। इस संगठन से ५ मुख्य रियासतों का उद्गम हुआ। १ नागपुर में राघोजी भोंसले की, २. ग्वालियर में रानो जी सिन्धिया की, ३. मालवा में मल्हार राव होलकर की (१७२४ ई. में स्थापित), ४. गुजरात में बाला जी गायकवाड़ की (१७३१ ई० स्थापित), ५. पूना में शिवाजी के वंशज साहूजी की जिसका वास्तविक अधिकारी स्वयं पेशवा था। उसने राज्य प्रबन्ध में भी बड़े सुधार किये और मराठा देश समृद्धिशाली बना दिया।

बाजीराव

१७२० ई० में बाजीराव बालाजी विश्वनाथ का पुत्र बाजीराव पेशवा बना। वह बड़ा उत्साही वीर, और राजनीति पटु व्यक्ति था। इसके काल में चारों मराठों राज्यों का संगठन और दृढ़ हो गया। निज़ाम द्वारा मराठों में फूट डालने वाली नीति का तोड़ उसने निजाम से ही चौथ और सरदेश मुखी १७३१ई. में वसूल करके कर दिया। १७३७ई. में उसने दिल्ली पर चढ़ाई की और सहायता के लिये आये हुये निज़ाम को भोपाल के निकट पराजित किया। १७३६ ई. में उसने पुर्त्तगालियों से बसीन का किला छीन लिया। उसने ही अलगर इन चारों सिन्धिया, होलकर, गायक वाड़, भोंसले) राज्यों की स्थापना करके केन्द्र के आधीन संगठित कर दिया।

बालाजी बाजीराव (१७४०-६१ ई०) यद्यपि बालाजी

बाजीराव विलासी पुरुष था परन्तु राजनीति और शासन में वह अपने पिता की ही भांति कुशल और योग्य था। उसके काल में मराठा शक्ति अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। राघोजी भोंसले और भास्कर पण्डित उड़ीसा जीत कर बंगाल के नवाब अलीवर्दीखां को पराजित किया और १२ लाख रुपया वार्षिक की चौथ देने पर विवश करके सन्धि करली। १७५८ में राघोबा ने पंजाब के अफ़गानों को पराजित किया सदाशिवराव भाऊ ने निजाम के कई किले छीन लिये और मैसूर और कर्नाटक से चौथ वसूल की, इस समय मराठा शक्ति सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुकी थी। सिन्ध से लेकर कन्याकुमारी तक तथा बंगाल तक मराठों को कर देने वाले राज्य ही थे।

वस्तुतः मराठों का यह उत्कर्ष उनके सैनिक संगठन के कारण तथा एकता के बल पर ही स्थिर था परन्तु १७६१ ई. के पानीपत के युद्ध की पराजय ने मराठा शक्ति की लहर को तोड़ दिया।

पानीपत का युद्ध और परिणाम १७३१ ई० में जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि इस युद्ध में मराठों की शक्ति को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी तथा मराठे पराजित हुये। यहां केवल उस पराजय के कारणों तथा उसके प्रभाव पर विचार करना शेष है।

सब से बड़ा और प्रधान कारण मराठों की समस्त विजयें उनकी युद्ध नीति के आधार पर ही थी। गारिल्ला युद्ध नीति में ही मराठे सैनिक अत्यधिक कुशल थे। परन्तु सदाशिव राव भाऊ ने अपने अभिमान से तोपों पर भरोसा करके सम्मुख युद्ध की प्रथा अपनानीं चाही जिसमें मराठा सैनिक अभ्यस्त नहीं थे। सूरजमल जाट इसी पर रूठ कर चला गया।

सदाशिव रावभाऊ ने अपने पीछे के शत्रुओं पर कम ध्यान दिया। अवध और रुहेलखण्ड अहमदशाह अब्दाली के साथ थे उन्होंने भाऊ के रसद यातायात को काट दिया। यदि सेना के सामने होते ही भाऊ आक्रमण कर देता तो सम्भवतः मराठे विजयी होते।

भारतवर्ष के मराठों ने शिवाजी की उदार नीति में भी परिवर्त्तन कर दिया था। अतएव भारतीय मुसलमान रियासतें दूसरों को जीने देना न रह कर दूसरों को अपने आधीन मराठों की विरोधिनी थीं। उन्होंने अहमद शाह का साथ दिया यह न समझना चाहिये कि दोनों ओर की सेना में केवल एक ही जाति के सैनिक थे। मराठों की ओर से समस्त तोपखाना इब्राहीम लोदी के ही आधीन था साथ ही शुजाउद्दौला (नवाब अवध) और नजीबुद्दीन रुहीलों की सेनायें क्षत्रियों की बहुत बड़ी संख्या थी।

मराठों की पराजय का तीसरा कारण यह था कि इस युद्ध में मराठों ने अपनी शक्ति का गलत अनुमान लगाया। केवल पेशवा होल्कर और सिन्धिया ने ही इस युद्ध में भाग लिया। भोंसले और गायकवाड न जाने क्यों युद्ध में सम्मिलित नहीं थे।

पराजय के परिणाम

पानीपत के ये दो युद्ध १५२६ और १७६१ विशेष महत्त्व के हैं। हम दोनों युद्धों पर तुलनात्मक रीति से विचार करेंगे

पानीपत की पहली लड़ाई में मुग़ल राज्य की शक्ति बढ़ी परन्तु दूसरी शक्ति का नाश हो गया पानीपत के पहले युद्ध में अकबर को भारत का भरा पुरा साम्राज्य प्राप्त हुआ परन्तु दूसरे युद्ध में अहमद शाह को कुछ लाभ नहीं हुआ। केवल पंजाब और सिन्ध प्रदेश कुछ काल के लिये अब्दाली राज्य में बन रहे।

बाला जी बाजीराव को जब पत्र मिला "दो मोती नष्ट हो गये सत्ताइस सोने की मोहरें खो गईं, और चांदी तांबे की तो गिनती ही नहीं तो सहायता के लिये आता हुआ क्षय रोग से पीड़ित पेशवा नर्मदा नदी के तट पर शोक के मारे मर गया। थोड़े समय के लिये मराठा शक्ति क्षीण हो गई।

सब से बड़ी हानि मराठा संघ का बिखर जाना थी

जिसका परिणाम भारतवर्ष की दासता हो गई पेशवा का कोई उत्तराधिकारी इस योग्य नहीं हुआ कि फिर से मराठों को संगठित करके एक राष्ट्र बनाने में नेतृत्व कर सकता ।

अभी तक आगरा और दिल्ली केन्द्रीय शक्तियां थीं। परन्तु इस युद्ध ने दिल्ली और आगरे का महत्व खो दिया। प्रत्येक प्रान्त में अपनी ढफली अपना अपना राग की भावना करने लगी। इसीलिये भारतवर्ष में विदेशियों को पैर जमाने का स्थान और अवसर मिल गया।

इस समय तक मराठा भारतवर्ष की अन्तरिक नीति में नियंत्रण करने योग्य थे। सम्भव था कि धुरी केन्द्र दिल्ली हट कर पूना पहुंच जाता परन्तु मराठों की इस पराजय ने धुरी के केन्द्र पूना नहीं दिया फलतः मराठों को भी राजनैतिक महत्त्व स्थापित न हो सकी ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष की तात्कालिक स्थिति से विदेशियों को लाभ उठाने का अवसर था और उन्होंने उससे लाभ उठाया भी। इसी का वर्णन हम आगे के अध्याय में करेंगे

प्रश्न

(१) मराठा शक्ति की उन्नति और पतन पर निबन्ध लिखो

(२) सैयद बन्धु कौन थे । उन्हें बादशाह निर्माता क्यों कहते हैं ?

(३) निजामुल्मुल्क, सआदतअली खाँ और अलीवर्दीखाँ की जो उन्होंने मुगल राज्यके साथ व्यवहार किया आलोचना करो।

(४) अहमद शाह अब्दाली और नादिरशाह दुर्रानी दोनों के आक्रमण का क्या प्रभाव पड़ा । संक्षिप्त रीति से लिखो ।

(५) उन स्थितियों की ओर सङ्केत करो जो भारतवर्ष में विदेशियों के प्रवेश के लिए उपयोगी थीं।

अड़तीसवाँ अध्याय

भारतवर्ष की लूट का प्रारम्भ

(१७०० से १८५७ तक)

भारतवर्ष में योरोपियनों का प्रवेश

इससे पहले कि हम इस लज्जापूर्ण इतिहास का प्रारम्भ करें, हमें उसकी पृष्ठ भूमि तथा उनके मानसिक स्तर पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये; क्योंकि भारतवर्ष में आकर जो कुछ योरोपियनों ने किया उसके मौलिक कारण को जाने बिना हम उनके कार्य्यों पर न्याय पूर्वक विचार नहीं कर सकते। प्रस्तुत प्रसङ्ग में हम अपना विचार अंग्रेजों तक केन्द्रित रक्खेंगे क्योंकि हमें उन्हीं की दासता में लगभग १५० वर्ष बिताने पड़े हैं। वस्तुतः इंग्लैंड हो या फ्रांस, पुर्त्तगाल हो या हालैण्ड सबकी स्थिति एक ही समान थी, केवल इंग्लैंड की स्थिति जानकर ही हमें इन सब की मनोदशा और स्थिति का पता लग जायगा।

समशीतोष्ण कटिबन्ध के उत्तरी भाग में स्थित होने के कारण ये देश शीत प्रधान हैं। यहां की वनस्पति में वर्ष के अधिकांश भाग में रूखापन और दीनता रहती है।

प्राकृतिक परिस्थितियां

मानो प्रकृति के प्यार से वञ्चित पराश्रित बालक हों। वनस्पति की ही नहीं आज के साधनों से सम्पन्न युद्ध पूर्व में भी सामान्य श्रमिक का

जीवन इसी प्रकार का रूखा और रसशून्य-सा था। वर्ष के थोड़े से समय में जब ग्रीष्मऋतु में इनकी प्रकृति शृङ्गार करती है तभी मानों सारे देश को नव-जीवन-सा प्राप्त होता था। नित्य वर्षा और जाड़े की अधिकता के कारण यहां की भूमि में शस्य-श्यामला होने की छवि भी केवल वसन्त में ही दिखाई देती है।

प्रकृति की इस कठोर स्थिति में सामान्यतया मानव जीवन सुखकर नहीं हो सकता। और आज से दो-तीन सौ वर्ष पूर्व सचमुच सुखकर था भी नहीं। रात दिन प्राकृति के साथ संघर्ष करने वाले मानव को उच्च दार्शनिक विचारों पर चिन्तन करने का अवसर ही कहां था। उसका मन सदैव भौतिकता में उलझा रहा। भौतिक सम्पत्ति के प्रति लालसा उसका स्वभाव बन गई। आगे का समस्त योरोपीय इतिहास उसकी इस प्रकृति का साक्षी है।

प्रकृति की इस कठोर यातना से पीड़ित मानव को जहां अपनी ही जीवन रक्षा की चिन्ता सदैव रहती है वहां दूसरे के जीवन की रक्षा की चिन्ता कैसे हो। इसीलिये प्रकृति ने उन्हें दूसरों के प्रति उदासीन ही नहीं निर्मम और कठोर बना दिया। अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये दूसरों से छल करना तथा उसको यहां तक निचोड़ना कि रक्त की एक बूंद भी शेष न रह सके उनकी प्रकृति में समा गया। उनके लिये जीवन कभी सहयोग की वस्तु नहीं बना सदैव संघर्ष ही बना रहा जिसमें जो समर्थ है वही बच सकता था। निर्बलों के लिने स्थान खाली कर देने के अतिरिक्त कोई मार्ग ही नहीं था।

इंग्लैण्ड में एक के बाद एक करके अनेक जातियां आईं। इनके पास न कोई अपनी संस्कृति थी न कोई सभ्यता। अतएव अपने वंश की विशुद्धता बनाये रखने की भावना इनमें उत्पन्न

न तो हो सकती थी, न है। आज भी सभ्रान्त अंग्रेज़ अपना इतिहास किसी काल विशेष में बने हुए लार्ड से पीछे को ओर जाने पर चुप जाता है। अनेक जातियों के मिश्रण से रक्तगत अभिमान नाम की वस्तु का उदय अथवा संस्कृतिक अभिमान की कोई मौलिक सामग्री अंग्रेज के पास नहीं है।

फलत: शक्ति के संगठन के साथ-साथ उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न हुई है। इस राष्ट्रीय एकता की भावना का आधार शुद्ध भौतिक था। आज अंग्रेज़ और जर्मन एक ही जाति के बनते हुए भी क्षुद्र राजनैतिक स्वार्थों के कारण एक दूसरे का सर्वनाश करने पर उद्यत दिखाई देते थे। इसमें न उनका धर्म रोक सकता था न कोई अन्य बन्धन। योरोपियन क्या करें उनकी प्रकृति में ही क्षुद्र स्वार्थ से ऊपर उठ सकने की शक्ति नहीं है।

इस प्रकार हम योरोपियनों की मानसिक स्थिति पर संक्षिप्त विचार करके अब हम १७वीं, अठारहवीं शताब्दी की उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति पर विचार करेंगे।

सामाजिक और आर्थिक दशा ऐसी थी कि नित्य वर्षा से दुखी साधारण अङ्गरेज फूस और घासकी झोंपड़ियां बनाकर अपनी रक्षा का उपाय करता था। उसके पास केवल कृषि का उद्यम था और वह भी वर्षा पर ही निर्भर था। यदि वर्षा न हो तो उसे केवल मछलियां और पशुओं के मांस पर निर्वाह करना पड़ता था। वैसे भी उसके सामान्य भोजन में शिकार किए हुए पशुओं के मांस का ही भाग अधिक था क्योंकि उसके खेत सबकी आवश्यकताओं को अन्न नहीं दे सकते थे। उसका साधारण वस्त्र इन्हीं पशुओं के चमड़े से बनता था जिसमें अधिक काट-छांट नहीं थीं। सीधी सिलाई से बन जाता था। उसका बिछौना चमड़े

के थैलों में भुस या रबर भरकर बनाया जाता था। लेटने के लिये लकड़ी के तख्ते अथवा चटाई होती थी। तकिया लकड़ी का। हाथ पैर सर्दी से बचाने के लिए फूस से लपेट लिए जाते थे।

सदाचार नाम की वस्तु का पता नहीं था। दूषित और दुराचार से उत्पन्न बीमारियों से कोई भला बुरा घराना मुक्त न था। स्त्री पुरुष सब इन रोगों के शिकार थे। यही नहीं धर्म गुरु पादरी भी बड़े व्यभिचारी थे। राज दण्ड में भी ऐसे धर्मगुरुओं को केवल जुर्माना देने की विधि थी। इंग्लिस्तान में १ लाख दुराचारिणी स्त्रियों की गणना १७वीं शताब्दी में की गई थी जो केवल वेश्या वृत्ति करती थीं।

उनके यातायात के साधनों में केवल घोड़ा और गड़ियां थीं। सड़कों की दशा शोचनीय थी। राजधानी लन्दन की सड़क का वर्णन हम पहले कर आये हैं। जब राजधानी की यह दशा थी तो साधारण ग्रामों और कस्बों का वर्णन ही क्या। इसी दुरावस्था के कारण कोई गाड़ी दिन भर में २० मील से अधिक नहीं जा सकती थी। भारतवर्ष में ऊंट गाड़ी तक (जो सबसे धीमी सवारी थी) दिन भर में बीस मील की यात्रा करती थी। मार्ग सुरक्षित नहीं थे। रात्रि में यात्रा सदैव आशंका पूर्ण थी।

राजव्यवस्था

इंग्लैण्ड में सदैव से सामन्त वादी व्यवस्था रही। मुख्य राजा के आधीन उसके सेना नायकों को जागीरें बांट दी जाती थीं। इन जागीरों के अधिकारी सम्पूर्णतया स्वेच्छाचारी होते थे। केवल निश्चित लगान राजा को देकर प्रजा से मन माना वसूल करते थे। फलतः साधारण प्रजा दरिद्रता में जीवन बिता रही थी। जमीन पर किसान का कोई अधिकार नहीं था। जमींदार जब चाहे ज़मीन ले सकता था।

भारत के शासकों की दण्ड व्यवस्था को कठोर कहा जाता है। परन्तु इंग्लैंड की दण्ड व्यवस्था का वृत्तान्त सुनिये। साधारण अपराधियों को कोड़ों से पीटा जाता था। पत्नी ने यदि भोजन बनाने में देर करने का अपराध किया तो पति को कोड़ों से पीटने का अधिकार था। राजनैतिक अपराधों पर लोगों को लकड़ी के शिकञ्जे में कस दिया जाता तथा पत्थर मार-मार कर मार डाला जाता था। अथवा उनके सर काट कर टेम्स नदी के पुल पर लटका दिये जाते थे। स्त्रियों को भी शिकञ्जे में कसकर सड़कों पर छोड़ दिया जाता था तथा उनकी सहायता करनेवाला भी दण्डित होता था।

दण्ड व्यवस्था

धार्मिक अपराधों की व्यवस्था और भी शोचनीय थी। राजा न मानना राजकीय का धर्म गिर्जे से अनुपस्थित हो जाना भयङ्कर अपराध था। ऐसे अपराधियों के घुटने कुचल दिये जाते थे और उन्हें चलने फिरने के अयोग्य बनाकर छोड़ दिया जाता था, स्त्रियां यदि यह अपराध करें तो उनके गाल गर्म धातु से दाग दिये जाते थे अथवा बन्दी करके अमेरिका में दासों की भांति बेच दी जाती थीं। यह है सभ्यता के ठेकेदारों की धार्मिक सहिष्णुता।

धार्मिक अपराधों की व्यवस्था

सदाचार के विषय में हम थोड़ा ऊपर कह आये हैं। ५० लाख के लगभग जन-संख्या वाले देश में १ लाख वेश्याओं की उपस्थिति ही सदाचार का प्रमाण है परन्तु षड्यंत्रों और परस्पर धोखा देने की ऐसी स्थिति थी कि यदि कोई धनिक मर जाता था तो यही समझा जाता था कि उसे विष दे दिया गया है।

अब शिक्षा की व्यवस्था सुन लीजिये। हाउस आफ लार्डस

के अनेक सदस्य सरकारी काग़ज पत्रों पर हथेलियों की छाप लगाते थे। उन्हें अपने हस्ताक्षर करने का ज्ञान नहीं था। जहां लार्ड्स की यह दशा हो वहां सामान्य जनता की शिक्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। सदाचार शिक्षा देने वाली पुस्तकें विद्यालयें जला दी जाती थीं। केवल भौतिक विद्या का विद्यालयों में आदर होता था।

ग्रामों के समान शहरों की स्थिति भी शोचनीय थी। मकान सामान्य तथा झोंपड़े से ही थे। सम्पन्न व्यक्तियों के घर लकड़ी और प्लास्टर के थे जिनमें न तो खिड़कियां थीं न शीशे, गलियां गन्दी और कीचड़ से भरी रहती थीं। लालटेनों का सड़क पर कोई प्रबन्ध

नगर

नहीं था, सड़क में भी सामान्य सवारी लद्दू टट्टू ही थी। ग्रामों के व्यापारी लद्दू टट्टू के पलानों में ग्रामों से वस्तुयें लाकर नगरों में बेच जाते थे। और सन्ध्या से पहले घर जाने की चेष्टा करते थे अन्यथा चोर डाकुओं द्वारा लुट जाने का भय रहता था। नगर के मुख्य भागों में ही सड़कों की व्यवस्था थी। शेष मार्ग पग डण्डियों के ही बने थे। यदि कोई यात्री भटक जाय तो उसे आश्रय पाने का किसी गृहस्थ के घर में स्थान नहीं था। जहां सराय न मिली तो बेचारे यात्री को खुले स्थानों पर कटकटाती सर्दी में पड़ा रहना पड़ता था।

हम मुगल संस्कृति में भारतवर्ष की स्थिति का वर्णन कर आये हैं दोनों की तुलना करके देखिये। और दोनों के अन्तर पर विचार कीजिये।

परन्तु इंग्लैंड की इस दुरवस्था से उसे लाभ हुआ। जब स्पेन और पुर्तगाल वालों ने समुद्र पार बस्तियों को ढूंढ़ निकाला और उनकी सम्पत्ति की लूट से मालामाल होने लगे तो इंग्लैंड

की थोड़ी आबादी होते हुए भी विदेशों में संघर्ष करने वाले तथा प्राण होम देने वाले सैनिकों और मज़दूरों की कमी नहीं पड़ी। और इसी का फल यह हुआ कि समस्त संसार का सबसे बड़ा भाग लाल रंग से रङ्ग गया।

उनतालीसवाँ अध्याय

भारतवर्ष में योरोपियन कम्पनियाँ

हम ऊपर के वर्णनों में भारतीय व्यापार का संसार व्यापी होना कह आये हैं। परन्तु मुसलमान शक्ति के उदय के कारण एशिया के पश्चिमीय देशों में अव्यवस्था फैल गई। यह अवस्था खलीफाओं के उपरान्त इतनी बढ़ी कि भारत का स्थल मार्ग सम्पूर्णतया पश्चिमीय दिशा में लगभग अस्त व्यस्त हो गया। मुग़ल काल तक जैसे तैसे जल मार्ग खुला था परन्तु उसमें भी आशंका उत्पन्न हो चुकी थी। अबीसीनियाँ प्रदेश के लुटेरे अरब और लाल सागर में फैले हुए थे। अतएव यह मार्ग भी अवरुद्ध होने लगा था। इस काल तक भारतवर्ष ही योरोपिय देशों को वस्त्र और पालिश किए हुए मिट्टी के बर्त्तन पहुँचाया करता था। इन वस्तुओं के प्रभाव में पश्चिमीय देशों के कष्ट बढ़ने लगे और उन्हें भारतीय मार्गों की खोज करने की चिन्ता हुई।

भारतवर्ष की खोज का कारण

इस खोज के भी कारण वही थे। क्योंकि भारतवर्ष का स्थल मार्ग और जल मार्ग दोनों ऐसे देशों में से थे जहाँ से योरोपियनों का आवागमन सम्भव न था। यहाँ भारतीय व्यापारिक मार्गों को भी समझ लेना आवश्यक है।

भारतवर्ष से खैबरदर्रे से काबुल और ईरान होकर अल-बुर्ज पर्वत की तराई होता हुआ पहला मार्ग आरमीनियाँ के पठार के पास जाता था। यहाँ से व्यापारी या तो काफ़ पर्वत पार करके रूस के दक्षिणी भागों से व्यापार करते थे या दजला और फरात की घाटियों से चल कर कुस्तुन्तुनियाँ से बल्कान प्राय-द्वीप होते हुए ये व्यापारी आस्ट्रिया तक जाते थे। दूसरा मार्ग कंधार से अरब सागर और फारस की खाड़ी के समीप होकर शीराज, बग़दाद और स्मरना होते हुए पहले मार्ग से मिल जाता था। टर्की, ईरान और अफ़गानिस्तान में अव्यवस्था फैल जाने के कारण ये दोनों मार्ग बन्द हो गए।

स्थल मार्ग

पालदार जहाज़ होने के कारण खुले समुद्रों की यात्रा कम होती थी। भारतीय जहाज अरब सागर के तट पर चलते हुए लाल सागर होकर मिश्र देश में पहुँचते थे तथा मिश्र से उनका व्यापार इटली और फ्रांस तक फैला हुआ था। साथ ही अफ्रीका के तट के समीप होता हुआ मेडागास्कर तक था। यह मार्ग भी समुद्री डाकुओं के कारण बन्द हो चुका था।

जल मार्ग

इन मार्गों से सब से बड़ी हानि योरोप के बालकन प्रायद्वीप और इटली को थी। परन्तु बन्द समुद्रों में होने तथा मुसल-मानों से निरन्तर पद दलित होते रहने के कारण न तो इनके पास उतनी शक्ति शेष थी न इतना साहस कि वे भारत के मार्गों की खोज करते।

परन्तु स्पेन और पुर्त्तगाल देश अटलाण्टिक महासागर के खुले तट के पास थे। उन्होंने साहस किया। पुर्त्तगाल के प्रसिद्ध नाविक बारथोलोमियों ने १४८६ ई० में दक्षिणी अफ्रीका की

उत्तमाशा अन्तरीप पार करके हिन्द महासागर में पाँव रक्खा। परन्तु भारतवर्ष को प्राप्त करने का श्रेय वास्कोडी-गामा को १४६८ ई० में ही प्राप्त हुआ। अर्थात् भारतवर्ष में वास्कोडीगामा के रूप में दुर्भिक्ष और दरिद्रता ने प्रथम दर्शन दिए। भारत के प्राप्त होने का समाचार सुनकर पश्चिमी योरोप निवासियों के आनन्द की सीमा न रही। कालीकट पहुँच जाने पर वास्कोडीगामा और ईसाई पादरी वहाँ के तात्कालिक राजा सायुरो जमोरिन के सम्मुख उपस्थित हुए। जमोरिन ने उनका सत्कार किया। तथा उनकी प्रार्थना पर उन्हें भारत भूमि में बसने और व्यापार करने की आज्ञा दे दी। बेचारा जमोरिन दूसरी शताब्दी के ईसाई अत्याचारों को भूल गया था अन्यथा अपने लिये कुआँ न खोद लेता।

पुर्तगालियों का पहला शासक भारतवर्ष में १५०५ ई० में आया। इसका नाम अल्मीडा था। इस समय भारतवर्ष के पश्चिमी तट का व्यापार मिश्री और तुर्की व्यापारियों के हाथ में था अतएव संघर्ष अनिवार्य हो गया। ड्यू से कुछ दूरी पर अल्मीड़ा को इन दोनों शक्तियों का सामना करना पड़ा। दैव अनुकूल था मुसलमान पराजित हुए और अल्मीड़ा के कारण पुर्त्तगालियों को समुद्र सम्राट की पदवी प्राप्त हो गई।

अल्मीडा उच्च वंशीय और बुद्धिमान पुरुष था। उसका उद्देश्य अपनी जलशक्ति को दृढ़ करना तथा भारतवर्ष में केवल व्यापार करना था। अतएव उसने इसी ओर विशेष ध्यान दिया। यदि पुर्त्तगाली उसकी नीति पर चलते तो उनका पतन इतने शीघ्र न होता।

अल्मीड़ा जब १५०६ ई० में अपने देश को लौट रहा था तो अफ्रीका में उसकी हत्या कर डाली गई।

अल्बुकर्क १५०६—१५१५ ई० तक। अलमीड़ा के विपरीत अल्बुकर्क का उद्देश्य भारत में केवल व्यापार करना नहीं था। वह भारतवर्ष में पुर्तगाली साम्राज्य स्थापना का स्वप्न देखने लगा। उसका विचार था कि भारतीय राजाओं को पुर्त्तगाल नरेश के आधीन कर दाता बनाया जाय। इसलिये उसने अपनी सैनिक शक्ति सुधारने की ओर ध्यान दिया। १५०६ ई० तक पुर्त्तगालियों के हाथ में केवल गोआ का नगर था। १५१० ई० में धर्म प्रचार की उन्मत्त भावना को लेकर जमोरिन और पुर्त्तगालियों में विरोध उत्पन्न हो गया। कालीकट में पुर्त्तगालियों ने १५०३ में ही अपनी कोठी की किलेबन्दी करली थी। उन्होंने कालीकट के राजमहल में आग लगाकर सामुरी की हत्या कर डाली और नगर को लूट लिया।

१५११ ई० में अल्बुकर्क ने मलाका द्वीप पर भी अधिकार कर लिया और इस प्रकार पूर्व की ओर जाने वाले व्यापारिक जहाजों की सुविधा भी उसने नष्ट कर दी। १५१५ ई० में फारस की खाड़ी में उरभुजद्वीप पर अधिकार करके फारस की खाड़ी का मार्ग भी बन्द कर दिया। इस प्रकार भारतीय जलयानों के पश्चिमी व्यापार मार्गों पर पहरा बिठाकर सब जहाजों को लूटने का प्रबन्ध अल्बुकर्क ने कर लिया और इसका नाम व्यापार रक्खा।

परन्तु योरोप की राजनैतिक स्थिति में पुर्त्तगाल के स्पेन अधिकार में जाने तथा स्पेन की नौ-शक्ति के पराजय ने पुर्त्तगाल के शक्ति केन्द्र को नष्ट कर दिया। साथ ही भारतवर्ष में उनके अत्याचार और लूट मार के कारण घृणा का भाव फैल रहा था। अतएव उनका शीघ्र पतन अवश्यंभावी था और वही हुआ भी। सत्रहवीं शताब्दी के प्रति पुर्त्तगालियों की नौ

शक्ति नष्ट हो गई। इस विनाश में हालैण्ड, फ्रांस और इग्लैण्ड का भी हाथ था।

सूची के रूप में पुर्त्तगालियों के पतन के कारण इस प्रकार हैं :—

योरोप में १—पुर्त्तगाली व्यापारी जनता के व्यक्ति न थे वरन् सम्राट् के नियुक्त किए हुए थे अतएव अपने व्यक्तिगत लाभ की कम आशा देखकर केवल मजदूरी करते थे।

२—पुर्त्तगाल देश की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी तथा वह देश भी छोटा था।

३—१५८० ई० में पुर्त्तगाल पर स्पेन का अधिकार हो गया।

४—योरोप के युद्धों में फंस जाने के कारण पुर्त्तगाली भारतवर्ष की ओर अधिक ध्यान न दे सके।

५—स्पेन का आर्मीडा (जलसेना) नष्ट हो गई।

६—पुर्त्तगाल की स्थल सेना भी निर्बल और असमर्थ थी।

भारतवर्ष में १—पुर्त्तगाली बड़े अत्याचारी थे। साधारण अपराधों पर भारतीयों को फाँसी पर लटका देते या खाल खिंचवा लेते थे।

२—भारतीय हिन्दू मुसलमानों को बल पूर्वक ईसाई बनाते थे।

३—इनके कर्मचारी व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्त्ति पर ही ध्यान देते थे राज कार्य पर नहीं।

४—डचों, फ्रांसीसियों और अंगरेजों का विरोध।

———

चालीसवाँ अध्याय

डच ईस्टइण्डिया कम्पनी

१६००–१७०० तक

बार बार कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय व्यापार का लाभ देख कर हालैण्ड वासी डचों ने भी भारत व्यापार का उद्योग किया। सबसे पहले १५६६ ई० में हाउटमैन नामक व्यापारी भारतवर्ष के दक्षिण होता हुआ जावा द्वीप में पहुँचा तथा १६०२ ई० में डच ईस्टइण्डिया कम्पनी खोली गई। प्रारम्भ से ही इन्हें अपने ही सहधर्मी पुर्त्तगाल वालों से लड़ना पड़ा १६०५ ई० में उन्होंने पुर्त्तगालियों से अम्बोयना का टापू जीत लिया। अब लङ्का और भारतवर्ष में अपना व्यापार भी फैलाने लगे। इसीलिये कोचीन, विमलीपट्टम, बीजागापट्टम, पुलीकट में व्यापारिक कोठियाँ बनाई गईं।

डच सचमुच भारतवर्ष में व्यापार करने आये थे और इसमें उन्होंने पुर्त्तगालियों को निकाल दिया। हालैण्ड वालों ने भारतवर्ष पर अधिकार जमाने की चेष्टा की। उनकी अधिक चेष्टाएँ पूर्वीद्वीप समूह में ही अपना राज्य स्थापित करने में लगीं।

इनकी पुलीकट (मद्रास से कुछ दूर दक्षिण) की कोठी का हम वर्णन कर चुके हैं। १६६८ ई० में इन्होंने अपनी एक कोठी आगरे में भी बना ली थी। इसमें वे शराब का निर्माण करते थे। १६७५ ई० में इन्होंने चिनसुरा में अपनी कोठी बनाई। इन्होंने भारत में साम्राज्य स्थापना का विचार तब किया जब अंग्रेज अपने पाँव पसार चुके थे। १७५६ ई० में चिनसुरा में सात सशास्त्र जहाज पहुँचने ही वाले थे कि अंग्रेजों को खबर

मिल गई। बंगाल के नवाब से सहायता लेकर अंग्रेजों ने उन जहाजों को भगा दिया। १८०५ ई० में सुमात्रा के बदले चिनसुरा और मलाका द्वीप लेकर अंग्रेजों ने हालैण्ड वालों का चिन्ह भी भारतवर्ष से मिटा दिया।

डच कम्पनी भी प्रजा की नहीं वरन् राजा की थी तथा छोटा देश होने के कारण भारत पर अधिकार जमाने का उनकी चेष्टा न करना ही अधिक उत्तम और उचित मार्ग था। डच अपने उद्देश्य में सफल हुए। भारत के व्यापार से उन्होंने लाभ भी उठाया और पूर्वी द्वीपसमूह पर अधिकार कर लिया।

इकतालीसवाँ अध्याय

फ्रांसीसी शक्ति

(१७०० से १७६० तक)

भारतीय व्यापार से लाभ उठाने के लिए फ्रांसीली भी उत्सुक थे अतएव प्रधान मंत्री रशिलू ने १६४२ई० में एक कम्पनी की स्थापना की। परन्तु वह सफल न हुई। फिर दूसरा यत्न चौदहवें लुई के काल में हुआ। मंत्री कोलबर्ट ने फिर फ्रेञ्च ईस्टइण्डिया कम्पनी का निर्माण किया। इस कम्पनी को १६७१ ई० में सूरत में व्यापार करने की आज्ञा मिल गई और थोड़े ही समय के उपरान्त उन्होंने दूसरी कोठी मछलीपट्टम में भी बना ली। १६७५ ई० में फ्रांसीसी मार्टिन ने पाण्डेचेरी बन्दरगाह की स्थापना की तथा चन्द्रनगर में भी अपनी कोठी बना ली।

परन्तु योरोपीय युद्ध में फंस जाने के कारण इस कम्पनी को अधिक लाभ न हुआ। उलटे हानि हुई फलतः १७२० ई० में कम्पनी का पुनः सगठन किया गया।

१७३५ ई० में ड्यूमा इस कम्पनी का गवर्नर था। वह बड़ा योग्य और चतुर था अतएव उसने राजनैतिक गति से आगे बढ़ना प्रारम्भ किया। कारीकल और माही पर अधिकार कर लिया। कर्नाटक के नवाबदोस्त अली की आज्ञा लेकर कम्पनी के सिक्के भी उसने ढलवाये और १७४० ई० में मराठा आक्रमण से उसने पाण्डेचरी की रक्षा भी की। सम्राट मुहम्मदशाह ने उसे मन्सब प्रदान करके नबाब की उपाधि प्रदान की। परन्तु १७४१ ई० में वह अपने कार्य्य से छुट्टी लेकर विदेश चला गया।

उसका उत्तराधिकारी डूपले था। डूपले की योग्यता तथा राजनीतिज्ञता का वर्णन हम आगे करेंगे। यहां हमें फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के उद्देश्यों पर थोड़ा सा विचार कर लेना आवश्यक है।

फ्रांससी कम्पनी का संगठन राज मन्त्री की प्रेरणा से हुआ था अतएव उनके समक्ष स्पष्ट राजनैतिक उद्देश्य था। व्यापार करने का केवल बहाना था। उससे पाये हुये लाभ की अपेक्षा फ्रांसीसी कम्पनी राज्य स्थापना के लिये बनीं थी।

फ्रेञ्च कम्पनी का दूसरा उद्देश्य भारत के धन से फ्रांस के राजा की शक्ति को सुदृढ़ करना था। अतएव व्यापार और राज्य व्यवस्था से प्राप्त धन फ्रांस को राजा का धन होना निश्चित सा था।

इस कम्पनी का तीसरा उद्देश्य भारतवर्ष में ईसाई धर्म प्रचार करना था। ईसाई धर्म के प्रचार की भावना के भीतर भी यूरोपियन के मन की यही भावना सदैव बनी रही कि वह अपनी श्रेष्ठता तथा विधार्मों की नीचता का प्रदर्शन न करे। हम इंगलैण्ड की धार्मिक स्थिति का भी थोड़ा वर्णन कर आये

हैं। यद्यपि यही दशा फ्रांस की भी थी परन्तु धर्म प्रचार करना उद्देश्य था। कितना बड़ा असत्य बोलकर इतिहास के विद्यार्थी को धोखा दिया गया है। व्यापारिक कम्पनियां धर्म प्रचार का साधन नहीं होतीं। धर्म प्रचार करने वाले प्राणों पर खेलने वाले सन्त होते हैं जिनके द्वारा संसार को धर्म और सदाचार की शिक्षायें मिला करती हैं। कुछ भी हो कम्पनी के उद्देश्य में से एक यह भी था।

परन्तु फ्रांसीसी कम्पनी को सबसे बड़ी टक्कर अङ्गरेजी कम्पनी से लेनी पड़ी। जिसमें पराजित हो जाने के कारण फ्रांस की शक्ति नष्ट हो गई। हमने अंग्रेजी कम्पनी का विवरण इसलिये बीच में छोड़ दिया था कि इन सब कम्पनियों का उदय होकर नाश भी हो गया। इनके द्वारा भारतवर्ष पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। परन्तु अंग्रेज कम्पनी का पिछला इतिहास ही भारत वर्ष में अङ्गरेजी राज्य का इतिहास है अतएव उसका क्रम बराबर बना रहे। इसीलिये उसका वर्णन बीच में छोड़ कर फ्रांसीसी कम्पनी का वर्णन प्रारम्भ कर दिया था।

ब्यालीसवाँ अध्याय

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी

(आंग्ल शक्ति का विकास)

अबजाति भेद रहित ईसाइयों के परस्पर द्वेष अकूटनीति का परिचय लीजिये। पुर्तगालियों ने भारत का व्यापार प्रारम्भ किया था। पुर्तगाल से यह व्यापार डच लोगों ने छीन लिया। डचों से अधिकार अङ्गरेजों ने छीन लिया। किस प्रकार? इस इतिहास को जानने से पूर्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना का इतिहास जान लेना चाहिये।

हम कई बार कह चुके हैं कि योरोपियन व्यापारियों का उद्देश्य व्यापार और भारतीय जहाजों की लूट करना दोनों था।

खोज

अङ्गरेजों के भारतवर्ष के पुर्तगाली व्यापारियों के लाभ को देखकर ईर्ष्या होना स्वाभाविक था अतएव भारत के व्यापार की ओर इनकी भी प्रवृत्ति हुई। व्यापार का अर्थ सदैव ध्यान में रखिये कि दूसरों के जहाज लूट लेना भी व्यापार ही था। इन अङ्गरेज व्यापारियों ने भारतवर्ष का मार्ग ढूंढ़ने की चेष्टा प्रारम्भ की किन्तु सफल न हुये। १५७८ ई० में सर फ्रांसिसड्रेक नामक अङ्गरेज नाविक ने एक पुर्त्तगाली जहाज को खुले समुद्र में पकड़ लिया। इस लूट में उसे भारतवर्ष के मार्ग का एक मान चित्र भी मिल गया। अब क्या था। अङ्गरेज व्यापारियों का हृदय बल्लियों उछलने लगा।

इङ्गलैण्ड के सट्टेबाज और साहसी व्यापारियों ने १६०० ई० तक कम्पनी बनाकर साम्राज्ञी एलिजाबेथ से भारतीय

ईस्ट इन्डिया कम्पनी की स्थापना

व्यापार (?) की आज्ञा मांगी। प्रार्थना पत्र में स्पष्ट निर्देश था कि कम्पनी के कर्मचारी कंपनी की इच्छानुसार भारती किये जायेंगे क्योंकि शरीफों की उचित अनुचित का विवेक रखने वालों की भर्त्ती से कम्पनी के साझीदारों में फूट पड़ने और कम्पनी टूट जाने की सम्भावना रहेगी। एलिजाबेथ ने इस साहसी लोगों की मण्डली को आज्ञा दे दी।

हेक्टर कप्तान हाकिन्स के नेतृत्व में १६०८ ई० में सूरत पहुँचा। सूरत के सम्बन्ध में हम मुगल काल में

भारतवर्ष में पहला अंग्रेजी जहाज

लिख आये हैं कि यह बन्दरगाह भारतीय समुद्री व्यापार का केन्द्र था। जेम्स प्रथम का दूत बनकर कप्तान हाकिन्स

जहांगीर के पास पहुंचा और व्यापार की आज्ञा चाही। आज्ञा मिल भी गई किन्तु पुर्त्तगालियों के प्रभाव के कारण वह आज्ञा लौटा दी गई। परन्तु १६१२ ई० में अङ्गरेजों ने सूरत के पुर्त्तगाली व्यापारियों पर आक्रमण करके उन्हें हरा दिया तथा गुजरात के सूबेदार से खुशामद करके खम्भात की खाड़ी और सूरत में व्यापार करने तथा कोठी बनाने की आज्ञा प्राप्त करली। इसी सूबेदार के अनुरोध से १६१३ ई० में जहांगीर की आज्ञा भी पुनः प्राप्त हो गई।

१६१५ ई० में जहांगीर के दरबार में पहुंचा किस प्रकार उसने रिश्वत देकर शाही फरमान प्राप्त किया इसके दुहराने की आवश्यकता नहीं। इस फरमान के आधार पर १६६१ ई० में मछली पटम और कालीकट में भी अङ्गरेजी कोठियां स्थापित हुईं। टामसरो की नीति शुद्ध व्यापारिक नीति थी उसने राजनैतिक झगड़ों में पड़ने से कम्पनी को रोक दिया था।

सर टामसरो

इस समय तक भारत में आने वाले अङ्गरेज भारतीय प्रजा होते थे। उन्हें केवल भारतीय नागरिकों के आधार पर रहना तथा चलना होता था। यदि कोई अपराध वे करते थे तो उन्हें भारतीय न्यायालयों में ही पहुंचकर उत्तर देना पड़ता था। लूट की इच्छा रखने वाले अङ्गरेज नित्य अपराध करते थे। अतएव उन्होंने मुगल दरबार से प्रार्थना की। प्रार्थना अत्यन्त-दीनता पूर्वक इस बात पर बल देकर की गई थी अङ्गरेज विदेशी हैं उनके धर्मशास्त्र के अनुसार भारतीय काज़ी और पण्डित न्याय नहीं कर सकते अतः अपने कर्मचारियों या अपनी कोठी के अपराधियों को दण्ड देने के लिये उन्हें ही न्याय का अधिकार दे दिया जाय। जहाँगीर ने उसको उचित समझा। धार्मिक

उदारता की नीति इस प्रार्थना को उचित ही समझेगी। भविष्य को कोई नहीं देख सकता फिर भारतवर्ष के सरल और सभ्यता सम्राट् को विदेशियों की धूर्त्तता और उससे होने वाले परिणाम को देख सकना तो असम्भव ही था। अतएव १६२४ ई० में उन्हें इस प्रकार की आज्ञा मिल गई।

१६३४ ई० में पुर्त्तगालियों को बंगाल से निकालकर शाहजहाँ ने अङ्गरेजों को व्यापार करने की आज्ञा दे दी इसी समय अंग्रेज दक्षिण में भी अपना व्यापार फैलाना चाहते थे अतएव १६३९ ई०में फ्रांसिस डूकने पूर्वी समुद्र तट पर थोड़ी सी भूमि मोल लेकर मद्रास बन्दरगाह की नींव डाल दी। १६४० ई० में शाहजहां की पुत्री जल गई। अङ्गरेज डाक्टर उपस्थित था उसके औषधि उपचार में वह भी दौड़ धूप करता रहा। कन्या के अच्छे होने का भी रहस्य है। भारतीय औषधि विज्ञान के अनुसार वैद्य और हकीम जो दवा लगाते थे वह गर्म होती थी इससे राजकुमारी को कष्ट होता था। वह दवा खोल डालती थी घाव अच्छा नहीं होता था। अंग्रेज डाक्टर इस बात को समझ गया। उसने शीतल लेप लगवाये। इससे शाहजादी को आराम मिला और वह दवा लगाये रही यद्यपि लाभ अधिक करके हुआ, परन्तु अङ्गरेज डाक्टर वाटसन का यश फैल गया। शाहजहां ने इसके पहले अङ्गरेजों को बंगाल में स्वतन्त्र व्यापार की आज्ञा दे दी और चुङ्गी माफ करदी। शाहशुजा ने अंग्रेजों को उनके व्यापार की वृद्धि में बड़ी सहायता दी। कलकत्ता नगर की कोठी का निर्माण इसी समय हुआ और इसी समय सेण्ट फोर्ट नाम दुर्ग का निर्माण अङ्गरेजों ने किया। कुछ विद्वानों का मत है कि उक्त घटना १६५० ई० की है।

बंगाल में प्रवेश

१६५१ ई० में अंग्रेजों ने हुगली और कासिम बाजार में भी अपनी कोठियां स्थापित करलीं।

१६६१ ई० में चार्ल्स द्वितीय का विवाह पुर्त्तगाल की राजकुमारी से हुआ। पुर्त्तगाली भारत के व्यापार से उखड़ रहे थे अतएव पुर्त्तगाल के बादशाह ने बम्बई की बन्दरगाह दहेज में चार्ल्स द्वितीय को दे दिया। चार्ल्स द्वितीय ने १६३८ ई० में १० पौंड वार्षिक किराये पर बम्बई कम्पनी को दे दिया।

बम्बई

१६६४ ई० में शिवाजी ने सूरत को लूट लिया उसका वर्णन हम कर चुके हैं। शिवाजी अंग्रेजों के सिर पर रहते थे। वे उनकी धूर्त्तता और लूटके व्यापार से परिचित थे अतएव उन पर अपना जादू न चलते देख कर अंग्रेजों ने औरंगजेब की शरण ली तथा शिवाजी के विरुद्ध सहायता देने का वचन दे कर गुजरात में व्यापारिक सुविधाएं प्राप्त करलीं। किस प्रकार अंग्रेजों ने मुगल साम्राज्य के साथ अपनी इस सन्धि को निभाया आगे आने वाला इतिहास इसका साक्षी है। परन्तु शिवाजी ने सूरत को दुबारा लूट लिया इसका भी हम वर्णन कर चुके हैं। अतएव अंग्रेजों को मराठों की भी खुशामद करनी पड़ी।

सूरत की लूट

इन व्यापारियों को स्वतन्त्र व्यापार तथा स्वन्याय की आज्ञा क्या प्राप्त हो गई उन्हें अत्याचारों की खुली छुटी मिल गई। अब अंग्रेज व्यापारी देशी तथा अन्य योरोपीय व्यापारियों का व्यापार नष्ट करने लगे। उन्होंने एक नीति बनाई जिसके अनुसार उनसे कम मूल्य पर वस्तु बेचने वाले को वे पकड़ लेते थे। उसे अपनी कोठी के अन्दर ले जाकर कोड़े मार मार कर या

व्यापारियों के अत्याचार

कोठरी में बन्द करके भूखों मार डालते थे। व्यापार में ठग करना धोखेबाजी और जाल करना साधारण कार्य्य था। वे दूसरों से अपना काम निकालने के लिये गोली भाले तलवार चला सकते थे। शक्ति द्वारा असफल होने पर बड़ी से बड़ी घूंस दे सकते थे। बंगाल का सूबेदार इससे बहुत अप्रसन्न हुआ। अपनी प्रजा पर बढ़ते हुए इस अत्याचार से औरंगज़ेब क्षुब्ध हो उठा। १६८६ ई० में पहली बार अंग्रेज़ों को राजकोप का सामना करना पड़ा। अपनी वीरता और बहादुरी की डींग मारने वाले अंग्रेज़ केवल शाइस्ताखां की थोड़ी सी सेना के द्वारा बंगाल से निकाल दिये गये। सूरत मछली पट्टमविशाखा पट्टम की कोठियां छीन ली गईं और बम्बई का किला घेर लिया गया। अब अपनी सारी वीरता और अभिमान खो कर अंग्रेज़ चुल्लीभर पानी में डूब नहीं मरे वरन् झट औरंगजेब के पैरों पर गिर पड़े। कान पकड़ कर क्षमा मांगी और भविष्य में सदाचार का विश्वास दिला कर प्राण भिक्षा चाही। औरंगजेब ने क्षमा कर दिया। अंग्रेज़ों ने भी समझ लिया अतएव वे थोड़े काल के लिए शान्त रहे। १६६० ई० में औरंगजेब ने ही उन्हें नई कोठियां बनाने की भी आज्ञा दे दी। आजीमशाह ने उन्हें तीन गांव भी जागीर में दिये और जाब चारनांक ने १६६० ई० में वर्तमान कलकत्ता के निकट फोर्ट विलियम नामक किला बनवाया। यद्यपि भारतीय इस किले के बनने के विरुद्ध थे। परन्तु औरंगजेब ने क्या समझा था कि उसके समय का तुच्छ अंग्रेज इन किले बन्दियों के भीतर भारतवर्ष में अपनी साम्राज्य स्थापन की बन्दिशें बांध रहा है। उसने आज्ञा दे दी। इसी समय मराठों से कुछ भूमि मोल लेकर अंग्रेजों ने पाण्डीचरी के दक्षिण में सेण्ट डेविड नामक दुर्ग भी बनवाया।

पुरानी कम्पनी की लाभ-राशि को देख कर अन्य अंग्रेज

व्यापारी भी भारतवर्ष में व्यापार करने के लिए उत्सुक हो गए।

नई इस्टइण्डिया कम्पनी

अतएव १६६२ ई० में एक और कम्पनी की स्थापना हुई। कुछ दिनों तक दोनों कम्पनियों में परस्पर झगड़ा चलता रहा परन्तु १७०८ ई० में दोनों मिलकर काम करने लगीं।

१७१५ ई० में डाक्टर हैमिल्टन ने फर्रुखसियर की दवा की। बादशाह अच्छा हो गया और अंग्रेजों को बिना चुंगी दिए व्यापार को आज्ञा प्राप्त हो गई।

कम्पनी एक व्यापारिक संस्था के रूप में संगठित हुई थी इस प्रकार व्यापारिक संस्था बनाने का कारण स्पष्ट है।

कम्पनी का प्रबन्ध

इंगलैण्ड जैसे निर्धन देश में किसी एक व्यापारी के पास इतना धन नहीं था कि दूर देश के समुद्रों से व्यापार करने योग्य जहाज और कर्मचारी रख सके। अतएव बहुत से साझीदारों ने मिलकर कम्पनी की स्थापना की थीं। इस कम्पनी की दो मुख्य सभाएँ थीं। पहली संस्थापक सभा जिसके सदस्य ५०० पौंड या उससे अधिक के हिस्से लेने वाले व्यक्ति थे। इस संस्था का कार्य्य कम्पनी को आवश्यक मूलधन देना तथा लाभ का विभाजन पाना था। कम्पनी की सामान्य नीति की बातें भी इस सभा द्वारा स्वीकार की जाती थीं। परन्तु काम चलाने को एक दूसरी सभा थी जिसे हम संचालक सभा कह सकते हैं। इसके सदस्यों की संख्या कुल २४ थी। कम्पनी की समस्त नीति का निर्माण कर्मचारियों की नियुक्ति इसी के हाथ में थी। भारतवर्ष में चार प्रकार के कर्मचारी थे। इन कर्मचारियों में कुछ साधारण लेखा जोखा रखने वाले लोग थे तथा कुछ मुख्य कार्य करने वाले। नए और पुराने लोग तथा अन्य ऐसे

थे जो सीधे व्यापार का कार्य ही करते थे। कम्पनी के सामान्य कर्मचारियों को अत्यन्त साधारण वेतन मिलता था अतएव उन में ऐसे ही व्यक्ति पनपते थे जो मन चाही रिश्वतें पचाते थे तथा कम्पनी को धोखा देकर अपना पेट भरा करते थे। कुछ व्यापारी तो ऐसे भी थे जो अपने धन से निजी व्यापार भी करते थे।

तेतालिसवाँ अध्याय

कम्पनी का दक्षिण राजनीति में प्रवेश

हम ड्यूमा का वर्णन करते हुये कह आये हैं कि किस प्रकार उसने दोस्त मुहम्मद की सहायता करके मराठों के युद्ध में कर्नाटक की रक्षा की थी अतएव फ्रांसीसियों का प्रभाव दक्षिण में बढ़ने लगा था। उनके इस बढ़ते हुये प्रभाव से अंग्रेज चिन्तित हो उठे थे अतएव उन्होंने भी दक्षिण की राजनीति में हाथ पांव मारने का यत्न प्रारम्भ कर दिया।

सन् १७४१ में डूप्ले फ्रांसीसी कम्पनी का प्रधान अधिनायक होकर भारतवर्ष में आया। उसके समक्ष तीन मुख्य समस्यायें थीं। पहली क्या फ्रांस का हित भारतवर्ष में केवल व्यापार करने को ही है? क्या उसे भारतवर्ष की आन्तरिक राजनीति में भाग न लेना चाहिये? दूसरा क्या अङ्गरेजों का भारतवर्ष से बिना निकाले फ्रांसीसी शक्ति का भारतवर्ष में विकास हो सकता है? तीसरा क्या भारतवर्ष में सफलता प्राप्त करके वह अपनी भी व्यक्तिगत उन्नति नहीं कर सकता? डूप्ले ने अपना मार्ग निश्चित कर लिया। वह समझ गया कि बिना भारतीय आन्त-

डूप्ले

रिक राजनीति में प्रवेश पाये न तो भारतीय व्यापार में लाभ होगा न भारतवर्ष में फ्रेञ्च साम्राज्य की स्थापना हो सकेगी। अतएव यह भी निश्चत हो गया कि भारतवर्ष से अंग्रेजों को निकाल देना आवश्यक है बिना इसके प्रथम उद्देश्य में वह सफल नहीं हो सकता तथा यदि उसने ये दोनों काम कर दिखाये तो निश्चय ही उसकी उन्नति होगी और उसे भी इंग्लैंड के प्रधान मंत्री बुल्जे की भांति उच्च पद अवश्य प्राप्त होगा। अतएव उसने अपना कार्य्य प्रारम्भ किया और इसके लिये उसने तीन मार्ग निश्चित किये।

डूप्ले के मार्ग पहला काम उसने अङ्गरेजी कोठियों में शक्ति संगृहीत करने का किया। कलकत्ता के समीप उसने चन्द्र नगर को दृढ़ किया। मद्रास के समीप वह पण्डीचरी में था ही तथा बम्बई के समान ही उसने माही बन्दरगाह को शक्तिशाली बनाने की चेष्टा की। दूसरा काम उसने दोस्त मुहम्मद के उत्तराधिकारी कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन से मित्रता करने का किया क्योंकि इससे उसे अपनी सैनिक शक्ति सुदृढ़ करने में सहायता मिल सकती थी तथा अङ्गरेजों को निकालने में सरलता हो जाती। तीसरा काम उसने भारतीय सैनिकों को योरोपीय ढंग पर युद्ध शिक्षा देने का किया वह। जानता था कि भारतीय बड़े लड़ाके हैं उनमें केवल सैनिक चतुरता की कमी है। यदि यह दूर कर दी जाय तो एक अजेय शक्ति बन सकती है। इस प्रकार प्रस्तुत होकर वह अपने कार्य्य के लिये समय की प्रतीक्षा करने लगा।

इसी समय आष्ट्रिया उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर योरोप में १७४४ ई० में अङ्गरेज और फ्रांसीसी एक दूसरे से लड़ने लगे फलतः भारतवर्ष में भी युद्ध प्रारम्भ हो गया। डूपले ने अनवरुद्दीन को सुझाया कि यदि वह इस युद्ध में फ्रांसीसियों

की सहायता करे तो मद्रास का किला उसे दे दिया जायगा। नवाब सहमत हो गया। अब मारीसश द्वीप से आई हुई जल सेना के साथ मद्रास पर आक्रमण किया गया। अङ्गरेज़ पराजित हुये और मद्रास फ्रांसीसियों के अधिकार में आ गया। परन्तु फ्रांसीसी सेनापति ने मद्रास नवाब को देने की अपेक्षा ४० हज़ार पौण्ड रिश्वत लेकर अङ्गरेज़ों को ही लौटा दिया। जब नवाब को इस धोखेबाजी का पता चला तो उसने १७४६ ई० में फ्रांसीसियों पर आक्रमण कर दिया। डूप्ले ने अपने तोपखाने तथा भारतीय सेना की सहायता से मद्रास के निकट नवाब को पराजित कर दिया। डूप्ले इस समय अङ्गरेज़ों को दक्षिण से निकाल देना चाहता था परन्तु जब रिश्वत के बन्धन में बंधा हुआ सेनापति लावार्डने सहमत न हुआ तो वह हाथ मलकर रह गया। उसने फ्रांस के राजा को इसकी सूचना दी और लावर्डने स्वदेश बुलाकर बन्दीगृह में डाल दिया गया। उधर योरोप में भी फ्रांस और अङ्गरेज़ों में एलाशपल सन्धि १७४८ ई० में हो गई अतएव भारतवर्ष में भी युद्ध बंद करना पड़ा और संधि के अनुसार मद्रास को अङ्गरेज़ों के ही अधिकार में रखना पड़ा। इस असफलता से डूप्ले को बड़ा दुःख हुआ। किन्तु वह निराश होने वाला प्राणी न था। उसने फिर चाल चलने के लिये तय्यारियां प्रारम्भ कर दीं।

उस समय दक्षिण पूर्व में फूट फैली हुई थी। हैदराबाद के निज़ाम आसफ़जाह की मृत्यु के उपरान्त दो उत्तराधिकारी थे आसफ़जाह का पुत्र नासिरजंग और पौत्र मुज-

दक्षिण की दशा

फ्फ़रजंग दोनों परस्पर चचा भतीजे होते हुये भी एक दूसरे के शत्रु थे। कर्नाटक की नवाबी यद्यपि अनवरुद्दीन को प्राप्त हो चुकी थी परन्तु एक उत्तराधिकार के लिये दावा करने वाला चांदा साहब भी था। तंञ्जौर

मराठों का राज्य था। वहां का राजा साहूजी था। परन्तु प्रताप सिंह स्वयं राज्यासन हथियाने की चिन्ता में था इस प्रकार प्रत्येक घर में शत्रुता थी। तथा विदेशियों को मान न मान के महमान बनकर पञ्चायत करने का बन्दर बांट का अवसर मिल गया।

उस समय से घूमने लगा जब चँदा साहिब तंजौर पर आक्रमण करके साहूजी को गद्दी से उतारकर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु मराठों ने तुरन्त आक्रमण करके चांदा साहब को बन्दी कर लिया तथा प्रतापसिंह को तञ्जौर का अधिकार दे दिया।

पटना चक्र

साहू अंग्रेजी रेजों की शरण में आया था। अङ्गरेजों ने उसे भरोसा देकर तंजौर पर आक्रमण के लिये सेना भेजी। परन्तु प्रतापसिंह की शक्ति देखकर उन्होंने साहू जी को धोखा दिया और प्रतापसिंह से सन्धि करली।

अब डूप्ले ने नवाब अनवरुद्दीन की ओर ध्यान दिया। चँदा साहब को सेना की सहायता लेने के लिये मराठों से बातचीत प्रारम्भ की प्रतापसिंह को राजा मान लिया और चांदा साहब के बदले में धन देकर इसे मुक्त करा दिया। और १७४६ ई० में अम्बर के स्थान पर नवाब अनवरुद्दीन से फिर युद्ध हुआ। नवाब हार गया। अनवरुद्दीन मार डाला गया। तञ्जौर त्रिचनापल्ली को छोड़कर समस्त दक्षिण पर फ्रांसीसियों का प्रभुत्व बैठ गया चँदा साहब कर्नाटक का नवाब बना। अनवरुद्दीन का पुत्र त्रिचनापल्ली में जा छिपा।

यह पहले कहा जा चुका है कि डूप्ले से पहले ही अङ्गरेजों ने प्रतापसिंह से मित्रता करली थी। डूप्ले अङ्गरेजों से नहीं डरता था। उसे भय यही था कि यदि प्रतापसिंह पर आक्रमण

किया गया तो दक्षिण का सूबेदार जिसके आधीन बञ्जौर का राज्य है बिगड़ जायगा। अतएव उसने पहले दक्षिण की सूबेदारी में ही अपना हाथ लगाया था। मुजफ्फर जंग से मिलकर उसने उसे अपने चचा नासिर जंग के विरुद्ध भड़काकर अपनी ओर कर लिया तथा अपने को दक्षिण निजाम घोषित कर दिया। अब मुजफ्फर जंग चँदा साहब और फ्रांसीसियों ने मिलकर तंजौर पर चढ़ाई की। नासिर जंग ने प्रतापसिंह को सहायता की फल यह हुआ कि मुजफ्फर जंग बन्दी हो गया। फ्राँसीसी पराजित हुये। चांदा साहब के स्थान पर अनवरुद्दीन का पुत्र मुहम्मद अली कर्नाटक का नबाब बन या गया। १७४६ ई० में ही फ्राँसीसियों ने पहली बार युद्ध जीता और फिर बुरी तरह हरे।

परन्तु डूप्ले ने जब सम्मुख युद्ध की नीति से सफलता होते न देखी तो कूटनीति स्वीकार की उसने अपने छल से नासिर जंग के कुछ सिपाहियों को पड़ाव पर ही फोड़ लिया तथा सेना में विद्रोह करा दिया। इसी गड़बड़ी में डूप्ले के कुछ आदमियों ने नासिर जंग का १७५० ई० में बंध कर दिया और मुजफ्फर जंग तथा चँदा साहब को क्रमशः निजाम और कर्नाटक के नवाब का पद फिर प्राप्त हो गया।

फ्रांसीसी सेना नायक बुसी मुजफ्फर जंग को लेकर हैदराबाद में जब राज्य सिंहासन पर बिठाने जा रहा था तो कुछ पठानों ने मुजफ्फर जंग की हत्या करदी। फलतः मुजफ्फर जंग को अपने चाचा से विद्रोह और विश्वास घात करने का हाथो हाथ दण्ड मिल गया। फ्रांसीसियों ने निजामुल्मुल्क के तीसरे पुत्र सलावत जंग को हैदराबाद का निजाम बनाया। इस युद्ध से दक्षिण में फ्रांसीसियों की गिरती दशा फिर चमक उठी।

डुप्ले दक्षिण का नवाब बना दिया गया और उसे फ्रांसीसी सिक्के चलाने की भी आज्ञा प्राप्त हो गई। इसी के परिणाम स्वरूप ४० लाख वार्षिक आय की उत्तरी सरकार रियासत फ्रांसीसियों को मिल गई और भारतवर्ष में विदेशी राज्य का सूत्रपात हुआ।

परन्तु त्रिचनापल्ली पर अब भी फ्रांसीसी प्रभुत्व न हो सका था। त्रिचनापल्ली में प्रतापसिंह मुहम्मदअली के सहायक अङ्गरेज थे। और चंदा साहब के सहायक डूप्ले था। दोनों ने त्रिचनापल्ली को घेर लिया। अंग्रेज गवर्नर ने सम्मुख युद्ध में विजय न देखकर चंदा साहब की राजधानी पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी। क्लाइव के नेतृत्व में १७५१ ई० में आरकाट पर क्लाइव ने अधिकार कर लिया। चंदा साहब ने अपने पुत्र रजा साहब के नेतृत्व में कुछ फ्रांसीसी और कुछ देशी सेना भेजी। कुछ दिन आरकाट को घेरे रहने के उपरान्त रजा साहब ने आक्रमण किया परन्तु पराजित हुआ। क्लाइव ने अर्नी के स्थान पर फिर रजा साहब को पराजित किया। जिससे उसे भागकर त्रिचनापल्ली लौट जाना पड़ा।

अब त्रिचनापल्ली पर आक्रमण किया गया जिसमें चंदा साहब दोनों ओर के युद्ध का भार न संभाल सका और १७५३ ई० में फ्रांसीसियों की पराजय हुई। मुहम्मद अली मुक्त हो गया। तंजौर के राजा ने चंदा साहब का वध कर दिया और फ्रांसीसियों की शक्ति चूर चूर हो गई। मुहम्मदअली कर्नाटक का नवाब बना दिया गया। फ्रांसीसि सिक्के का चलन बन्द हो गया। १७५४ ई० में फ्रांस की सरकार ने डूप्ले को बुला लिया।

उक्त विषय की आलोचना से हम देख सकते हैं कि डूप्ले

बड़ा ही चतुर राजनीतिज्ञ था। उसके हृदय में फ्रांस के उत्कर्ष की भावना काम करती थी। कठिन से कठिन अवसरों पर भी धैर्य न खोना तथा राजनीति का सीधा तिरछा उपयोग करने में उसके समान कुशल व्यक्ति दूसरा नहीं था। उसे अपनी पहली विजय दिखाई दी। पहली पराजय को सफलता में १५ वर्ष के भीतर ही बदल दिया। उसने सदैव फ्रांस की शक्ति बढ़ाने के लिये परिश्रम से काम किया। वह पहला व्यक्ति था जिसने भारतीय सैनिक शक्ति को पहचाना तथा योरोपीय सामरिक प्रणाली की शिक्षा देकर भारतीय सैनिक शक्ति का उचित उपयोग किया। डूप्ले जानता था कि भारतवर्ष में प्रभुत्व प्राप्त करने के लिये भारतीय राजाओं की सहायता आवश्यक है। उसके उपरान्त अङ्गरेजों ने भी उसी की नीति का अनुसरण किया एक को दूसरे के विरुद्ध लड़ाकर भारतवर्ष में अङ्गरेजी राज्य स्थापित हुआ है।

डूप्ले का व्यक्तित्व

डूप्ले की असफलता पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। जिस कम्पनी का नेतृत्व डूप्ले करता था उसका संचालन राज्य के द्वारा होता था। राज्य के कर्मचारी होने के कारण कम्पनी के व्यक्तिगत हित कम थे। और फ्रांस का राजा योरोपीय युद्धों में उलझा रहने के कारण कम्पनी की आर्थिक दशा में सहायक नहीं हो सकता था। फलतः डूप्ले को कठिनाई के अवसर पर अपनी ही कमाई पर भरोसा करना पड़ता था। और यह भरोसा शान्ति के अवसर पर तो बहुत बड़ा था युद्ध के अवसर पर पर्याप्त न था।

डूप्ले की असफलता के कारण

राज्य की कम्पनी होने के कारण फ्रांसीसी जनता में भी वह

डूप्ले

मीर कासिम

अलबुकर्क

सिराजुद्दौला

राबर्ट क्लाइव

भावना न थी जो अङ्गरेजों में थी क्योंकि फ्रांसीसी जनता यद्यपि अङ्गरेजों की भांति ही निर्धन और दुखी थी फिर भी अपने राजा के प्रति अश्रद्धा होने के कारण जनता कम्पनी को अश्रद्धा की दृष्टि से देखती थी। उसमें विदेश जाकर राज्य के लिये लड़ने का उत्साह नहीं था।

यही कारण थे जिनसे फ्रांसीसी कम्पनी को सदैव सेना और धन की कमी रही। साथ ही फ्रांस की नौ शक्ति भी अङ्गरेजों की जैसी बलवान नहीं थी। बिना इतनी नौशक्तियों के सन्तुलन के डूप्ले क्या किसी के लिये सफलता प्राप्त करना सम्भव न था।

हम ऊपर देख चुके हैं कि किसी प्रकार लावार्डन ने डूप्ले की नीति के अनुसार काम न करके अनवरुद्दीन को फ्रांसीसियों का शत्रु बना दिया तथा आगे भी अन्य अधिकारी बुसी उसके साथ एक मत होकर काम न कर सका। हैदराबाद के निजाम के पास सेना लेकर पड़ा हुआ बुसी यदि आरकाट और त्रिचनापल्ली के युद्धों में सहायता देता तो कदाचित डूप्ले सफल हो जाता।

फ्रांस की शासन व्यवस्था में दोष था। साधारण असफलताओं के ही कारण डूप्ले जैसे व्यक्ति को भारतवर्ष से बुला लेना तथा उसे बन्दी बना देना ऐसी घटनाऐं थीं जिनसे फ्रांसीसी कम्पनी के अधिकारी स्वेच्छा से कुछ करने में असमर्थ हो गये। डूप्ले को उस समय भारत से बुला लेना फ्रांस की सब से बड़ी भूल थी।

डूप्ले ने जब जब अंग्रेजी शक्ति के विनाश का उपाय किया तब तब उसके साथियों ने उसका साथ नहीं दिया। मद्रास विजय के उपरान्त डूप्ले सेंट जार्ज फोर्ट को नष्ट करना चाहता

था। उसे नहीं माना गया। फोर्टडेविड को भी उसने अपने आक्रमण से जीतने के तीन बार प्रयत्न किये परन्तु सेनापति के सम्पूर्ण असहयोग के कारण ही वह असफल हुआ।

डूप्ले के लौटने के उपरान्त नाडह्यू नामक फ्रांसीसी गवर्नर ने साण्डर्स नामक अंग्रेज अधिकारी से सन्धि कर ली। इधर क्लाइव भी बीमारी के कारण स्वदेश लौट गया। वहाँ उसका अत्यधिक सम्मान हुआ उसे लार्ड की उपाधि हीरों से जटित ५०० पौंड की तलवार भेट में मिली। डूप्ले और क्लाइव सेनानायकों के स्वदेश में पाये हुये व्यवहार से ही पता चल जाता है कि किस कम्पनी को फफलता मिलनी थी।

१७५६ ई० में फ्रांस और हालैण्ड में फिर सप्तवर्षीय युद्ध प्रारम्भ हो गया। अतएव भारतवर्ष में युद्ध संचालन के लिये लार्ड क्लाइव को भेजा गया। इस समय बंगाल में चक्र चल रहा था अतएव थोड़ा सा बंगाल का इतिहास देख कर फिर फ्रांसीसी युद्ध का वर्णन किया जायगा।

चवालीसवाँ अध्याय

बंगाल के नवाब की शक्ति का विनाश

बंगाल में अंग्रेजी राज्य की स्थापना

बंगाल का नवाब अलीवर्दी खाँ बड़ा योग्य, कुशल और बलवान शासक था उसके समय में अंग्रेज सफल व्यापारी न हो सके थे। अतएव जब अलिवर्दीखाँ ने अपनी मृत्यु के समय अपने

से ही योग्य नाती सीराजुद्दौला को अधिकार सौंपा तो अंग्रेजों के हृदय पर साँप लोट गया। प्रथा के अनुसार १७५६ ई० में उसकी राजगद्दी के समय अंग्रेजों की ओर से कोई नजराना नहीं भेजा गया। तथा गुप्त रूप में अंग्रेज गद्दी का दूसरा उत्तराधिकारी ढूंढ़ने में लग गये। यह स्थिति एक स्वाभिमानी नवाव के लिये असह्य थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने कलकत्ते के दुर्ग की दृढ़ता बनाने के लिये खाई बना ली तथा मुग़ल फरमान के आधार पर स्वयं तो अपना व्यापार बिना चुङ्गी दिये करते ही थे अब उन्होंने अपनी बस्तियों से निकलने वाले अन्य व्यापारियों से स्वयं चुङ्गी लेकर छूट का परवाना देना प्रारम्भ किया। परन्तु अति की सीमा होती है। अंग्रेजों ने पूर्णीया के सूबेदार शौकतजंग को सहायता देने का वचन देकर नवाब के विरुद्ध उकसाया। फलतः नवाब ने शौकतजंग पर आक्रमण करके षड्यन्त्र तोड़ दिया। फिर अंग्रेजों ने ढाका के दीवान किशनदास को फोड़ कर अपनी ओर मिला लिया। उसके द्वारा ढाका की समस्त मालगुजारी कलकत्ते मंगाकर उसे कलकत्ता में रख लिया। अब सीमा पार हो गई थी।

नवाब ने अंग्रेजों को लिखा कि वे किशनदास को भेज दें परन्तु अंग्रेज तो किसी प्रकार बंगाल में उलझना चाहते थे।

कलकत्ता युद्ध

उन्होंने अस्वीकार किया। अतएव १७५६ ई० के मध्य में सिराजुद्दौला को आक्रमण करने पर विवश होना पड़ा। वाटस पराजित हुआ कासिम बाजार की कोठी को लूटा नहीं गया। केवल युद्ध को की सामग्री छीन ली गई। कासिम बाजार से चल कर सिराजुद्दौला ने तान्नाह स्थान पर फिर अंग्रेजों को पराजित किया। अंग्रेजों ने इधर अपने सहायक भारतीयों को भी लूटना तथा उजाड़ना प्रारम्भ कर दिया था जिससे लड़ाई के लिये धन

और स्थान प्राप्त हो सके। परन्तु उनका कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। जून सन् १७५६ ई० में कलकत्ता सिराजुद्दौला के हाथ आ गया। कलकत्ते में सिराजुद्दौलाने दरबार करके अंग्रेज बन्दियों को क्षमा कर दिया। यहाँ भी उसने केवल गोला बारूद ले लिया और कम्पनी के माल पर हाथ नहीं लगाया। अंग्रेजों ने प्रार्थना की कि उन्हें मद्रास जाने की आज्ञा दे दी जाय जो स्वीकार करली गई। इस विजय के उपरान्त सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद लौट गया।

अंग्रेजों जान लिया था कि ईमानदारी की लड़ाई में अंग्रेज जाति की विजय सम्भव नहीं है। अतएव उन्होंने कूटनीति का सहारा लिया। कलकत्ते के नवीन अधिकारी राजा मानिक-चन्द को रिश्वतें देकर अंग्रेजों ने मिला लिया। दरबार के लगभग सभी अधिकारियों को असंख्य धन राशि देकर अंग्रेजों ने अपनी ओर कर लिया। अब क्लाइव अपनी सेना लेकर पहुँचा। मानिकचन्द ने कलकत्ता अंग्रेजों को सौंप दिया। कलकत्ता से आगे बढ़कर अंगरेजों ने हुगली को उसी प्रकार लूटा जिस प्रकार तैमूर ने दिल्ली को लूटा था। सिराजु-द्दौला को पता चल गया था कि उसके दरबारी उसके शत्रु हो गये हैं अतएव उसने इस तरह दब कर सन्धि करना चाही। इसलिये कलकत्ता भी गया। यद्यपि उसे धोखा देकर बुलाया गया था और रात्रि में उस पर आक्रमण भी किया गया। जिसमें अंगरेज पराजित हुए परन्तु सिराजुद्दौला ने सन्धि करली। यदि उस समय सिराजुद्दौला चाहता तो फिर अंगरेजों को मनाया जा सकता था। इस सन्धि में उसने कम्पनी की सब हानि पूरी कर देने का वचन दिया तथा अंगरेजों ने शान्ति पूर्वक व्यापार करने की प्रतिज्ञा की।

इधर क्लाइव ने अपना षडयन्त्र चालू रक्खा। सिराजुद्दौला जिस समय मुगल सम्राट् के आक्रमण करने के लिये सेना सजा रहा था। उसने अंग्रेजों से सैनिक सहायता चाही। अंग्रेजों को अपनी सेना बढ़ाने का अवकाश मिल गया। नवाब की सहायता की अपेक्षा उन्होंने चन्द्रनगर की फ्राँसीसी कोठी पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण का केवल यह कारण था कि इङ्गलैण्ड और फ्रांस में सप्तवर्षीययुद्ध चल रहा था। चन्द्रनगर से निपट कर क्लाइव ने सिराजुद्दौला को खुशामद भरा पत्र लिखा तथा मीरजाफ़र से गुप्त अभिसन्धि कर ली। इस सन्धि के अनुसार मीरजाफ़र ने राज्यासन की प्राप्ति के बदले बंगाल के दक्षिणी भाग को अंग्रेजों को देना स्वीकार कर लिया। अब क्या था क्लाइव ने धावा बोल दिया।

चन्द्रनगर पर आक्रमण

१७५७ ई० में प्लासी के मैदान में युद्ध प्रारम्भ हुआ सिराजुद्दौला की सेना का सेनापति यही मीरजाफ़र था यद्यपि यह दो बार सिराजुद्दौला से वफादारी की कसम खा चुका था। परन्तु जब विजय में थोड़ी ही देर रह गई तब मीरजाफ़र ४५००० सिपाही ले कर अंग्रेजों से जा मिला। केवल वफादार मीरमदन अपने १२०० सैनिकों के साथ अन्तिम समय तक मृत्यु से खेल कर सिराजुद्दौला की रक्षा करता रहा। उसकी मृत्यु के उपरान्त ही अंग्रेजों और मीरजाफर की सेना को अपनी विजय होती दिखाई दी। इस युद्ध का समस्त काम सेठ अमीचन्द के द्वारा हुआ था। दरबारी सेठ अमीचन्द के पैसों से खरीदे गये थे परन्तु क्लाइव ने जाली सन्धि पत्र बना कर सेठ अमीचन्द को भी अंगूठा दिखा दिया। इसी प्रकार के एक झूठे अपराध पर महाराज नन्दकुमार को फांसी दी गई थी। तथा अपने मुंह

प्लासी का युद्ध

जाल का बखान करने वाले क्लाइव को इङ्गलैण्ड की पार्लिमेंट में लार्डस सभा में बैठने का स्थान दिया और उसकी मूर्त्ति बनवा कर प्लासी विजय के सिक्के ढाले गये। सिराजुद्दौला साधु वेश में राजमहल की पहाड़ियों के पास पकड़ लिया गया तथा क्लाइव के संकेत से मोहम्मद बेग ने उसका सर काट लिया उसका प्रदर्शन पूरे मुर्शिदाबाद में किया गया।

अब हमें केवल इस युद्ध के परिणामों पर विचार करना शेष रह गया है।

इस युद्ध के तीन प्रकार के परिणाम हुये। १-भारतवर्ष में अंग्रेजों की स्थिति २—भारतवर्ष पर उनका प्रभाव ३—फ्रांसीसी शक्ति का पतन।

भारतवर्ष में अंग्रेजों की स्थिति के सम्बन्ध में इतना ही कहना यथेष्ट है कि इस युद्ध में अंग्रेजों को नकद रुपये और भूमि दोनों का लाभ हुआ। कम्पनी को १ करोड़ रुपया प्राप्त हुआ कलकत्ते के दक्षिणी भाग के २४ परगने अंग्रेजों के हाथ आ गये जिनका क्षेत्रफल लगभग ६०० मील था इस प्रकार उत्तर भारत में अंग्रेजों के गमन की वास्तविक नीव पड़ी।

क्लाइव को व्यक्तिगत रूपमें ३० लाख रुपये प्राप्त हुये तथा चौबीस परगने की मालगुजारी आजीवन उसे मिलती रही। मद्रास के स्थान पर कलकत्ता अंग्रेजों का प्रधान केन्द्र बन गया और शासन व्यवस्था का सूत्रपात हुआ। यहीं एक कौंसिल की स्थापना हुई जिसका काम नवीन राज्य का शासन करना था।

इस युद्ध के फल स्वरूप बँगाल के नवाब की शक्ति क्षीण हो गई। मीरजाफर अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गया

भारतवर्ष पर प्रभाव

अतएव अंग्रेजों को खुली लूट का अधिकार मिल गया। मुगल और अवध राज्यों के लिये खतरा उपस्थित हो गया क्योंकि अभी तक अंग्रेजों की शक्ति नष्ट करने के लिये बंगाल के नवाबों को ही लोहा लेना पड़ता था। बंगाल की साधारण जनता में अंग्रेजों का आतंक बैठ गया और अंग्रेजों की नौकरी के लिये बंगाली उत्सुक हो पड़े। इस युद्ध का ही यह परिणाम हुआ कि भारतीय इतिहास की गति बदल गई।

फ्रांसीसी शक्ति का विनाश तो सचमुच इसी युद्ध का परिणाम है। मीरजाफर की दुर्बलता के तथा अंग्रेजों के हाथ में होने के कारण चन्द्रनगर फिर पाकर भी फ्रांसीसी फिर उत्तर भारत में सिर न उठा सके और भारतवर्ष अंग्रेजों के लिये निर्विघ्न रूप से निश्चित हो गया।

पैंतालीसवाँ अध्याय

दक्षिण में फ्रेंचशक्ति का पतन

सप्तवर्षीय युद्ध के कारण दक्षिण में भी फ्रांसीसी और और अंग्रेज लड़ने लगे थे। इस समय फ्रेंच सेनाओं का नायक वीर लैली था जिसने अपने योरोपीय युद्ध में कीर्ति पाई थी। पाण्डीचेरी पहुँचते ही उसने हैदराबाद से कर्नल बुसी को बुलाकर डूप्ले की समस्त नीति पर पानी फेर दिया। अब नवाब सलावत जंग भी अंग्रेजों से मिल गया। लैली ने सेन्टडेविड का किला जीत लिया तो क्लाइव ने कर्नल फोर्ड को कलकत्ते से भेजकर उत्तरी सरकार पर अधिकार कर लिया। १७६० ई० में आयर कूट नामक अंग्रेज सेनापति ने लैली और बुसी

दोनों को वण्डेवास के युद्ध में पराजित करके उनकी शक्ति क्षीण करदी। १७६१ ई० में पाण्डेचरी, जिञ्जी और कर्नाटक के दुर्ग भी अंग्रेजों के अधिकार में आगये। अब फ्रांसीसियों के पास केवल पश्चिमी समुद्र तट रह गया। उधर अमेरीका और योरप में भी फ्रांसीसी पराजित हुए। अतएव फ्रांसीसियों को भी साम्राज्य विस्तार की आशा भारतवर्ष में छोड़ देनी पड़ी १७६३ ई० में इस सप्तवर्षीय युद्ध का अन्त हो गया। यद्यपि पांडेचरी, चन्द्रनगर माही आदि बन्दरगाहें उन्हें लौटा दिये गये परन्तु उत्तरी सरकार का परगना अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तथा फ्रांसिसीयोंको केवल भारतवर्षमें व्यापार करने भर का साहस रह गया। निरन्तर युद्ध की पराजय के कारण फ्रांसीसी कम्पनी सदैव घाटा उठाया करती थी अतएव १७७० ई० में फ्रांसीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भी अन्त हो गया।

लैली क्रूर स्वभाव का हठी था। राजनीति में भी उतना पटु न था जितना डूप्ले। उसमें केवल सैनिक योग्यता ही उच्च-कोटि की थी। परन्तु अंग्रेज बड़े चतुर कूटनीतिज्ञ थे अतएव अंग्रेज सफल हुए थे और लैली असफल। डूप्ले की असफलता के समस्त कारण इस समय भी कुछ बढ़े-चढ़े रूप में उपस्थित थे। अतएव फ्रांसीसियों की कम्पनी का टूट जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

इस काल के अन्त में एक विषय को मैंने जानबूझ कर छोड़ दिया है। आज के अंग्रेज बच्चों को पढ़ाये जाने वाले इतिहास में ब्लैक हौल कलकत्ता की घटना का वर्णन पढ़ने को मिलता है। कहा जाता है कि सिराजुद्दौला ने कलकत्ता के एक छोटे से घर में १४६ अंग्रेज बन्द कर दिये थे। उसमें से केवल २३ व्यक्ति दूसरे दिन जीवित निकले। यह घटना असत्य थी इस-

लिये छोड़ दी गई है। यहां केवल उसके असत्य होने के कारण संक्षेप में लिखे जाते हैं।

१४६ वर्ग फीट स्थान वाली कोठरी में १४६ आदमियों को सीधा खड़ा भी नहीं किया जा सकता तो क्या वे एक दूसरे पर बोरे की भांति चुन दिये गये थे। केवल उस घटना के मिथ्या होने का यही प्रमाण पर्याप्त है।

उस काल के किसी कागज पत्र में, कम्पनी के रोजनामचों में, क्लाइव के बयानों में, मद्रास कौन्सिल की बहसों में सैयद गुलाम हुसैन के इतिहास में (जो उसी समय लिखा था) कम्पनी की हानि दिखाने वाले क्लाइव और सिराजुद्दौला के पत्रों में, वाटसन के पत्रों में, सिराजुद्दौला के राजदूत वाटस के पत्रों में, मीरजाफर से प्रत्येक अंग्रेज को मुआवजा दिलवाने वाले सन्धि पत्र में इस घटना का वर्णन नहीं है।

उन योरोपीय निवासी जनो (जिनकी मृत्यु उस समय कलकत्ते में हुई) की संख्या मालूम करने की की भी बड़ी चेष्टा की गई परन्तु किसी प्रकार यह सूची ५६ से ऊपर नहीं पहुँच सकी। इनमें से कोई ऐसा नहीं था जिसकी मृत्यु कोठरी में दम घुट जाने से हुई हो।[?]

इस घटना की चर्चा केवल हालवेल ने की है जिस पर सिराजुद्दौला ने कृपा करके उसको मुक्त कर दिया था। यदि हालवेल ऐसी भयंकर कल्पना करके अंग्रेजों का मस्तिष्क बिगाड़ने का काम न करता तो अपने ऊपर की गई कृपा का बदला कैसे चुकाता।

सिराजुद्दौला की प्रकृति से इस प्रकार की भावना नहीं थी जब उसने अंग्रेजों की कोठियों की लूट तक नहीं की तो इस प्रकार की हत्या की कल्पना भी वह कैसे कर सकता था।

छियालीसवाँ अध्याय

बंगाल के स्वर्ण की लूट

इस प्रसंग को प्रारम्भ करते समय हमें बंगाल की आर्थिक स्थिति पर विचार कर लेना आवश्यक है। बंगाल की भूमि-उर्वरा है। जल का अभाव नहीं है। सहज परिश्रम से अत्यधिक परिमाण में उत्पन्न होता है। अतएव बंगाल का सामान्यजन जोवन सुखी जीवन था। यातायात के साधनों की कमी के कारण अन्न बाहर नहीं भेजा जा सकता था। अतएव दुर्भिक्ष और अकाल की सम्भावना ही नहीं थी। शोरा और वस्त्र उद्योग बंगाल के कोने-कोने में अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। मुसलमान काल में इस कला में अत्यधिक उन्नति हुई। और इसका व्यापार विदेशों तक फैल गया। अंग्रेज व्यापारी बंगाल का वस्त्र इंग्लैण्ड ले जाते थे जहां बड़े मूल्य पर बेचकर लाभ उठाते थे। भारतवर्ष के वस्त्र के सम्मुख इंग्लैंड के वस्त्र कोई मोल लेना ही नहीं चाहता था। यही कारण था ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बङ्गाल पर अधिकार करने का लालच था।

बंगाल पर अधिकार का एक और अथ भी था। बङ्गाल की विजय के द्वारा उत्तर भारतवर्ष में प्रवेश का मार्ग खुल गया। क्लाइव ने इतना प्रपंच करके यदि भारतवर्ष में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित न की होती तो कदाचित् इतनी बड़ी स्वर्ण राशि के साथ ही साथ भारतवर्ष का साम्राज्य अंग्रेजों को प्राप्त न हुआ होता।

क्लाइव ने नाम के लिए मीरजाफर को बादशाह बना दिया। परन्तु मीरजाफर के नवाब हो जाने से ही बंगाल में

मीरजाफर

अङ्गरेजों का प्रभुत्व स्थापित नहीं होता था अतएव बङ्गाल के नवाब के आधीन सब सूबेदारों को शक्ति न तोड़ दी जाय तब तक अंग्रेजों को

स्वतन्त्रतापूर्वक लूट का अवसर न था। अतएव मीरजाफर को पकड़वाकर उड़ीसा के राजा रामसिंह, बिहार के राजा रामनारायण तथा पूर्णिया के राजयुगलसिंह पर एक एक करके आक्रमण कराया गया। स्वयं क्लाइव ने पंचायत की और बन्दर बाँट की नीति अपना खूब रिश्वतें लीं तथा कम्पनी के व्यापारिक हक़ स्थित करा दिये। राजा युगलसिंह जिसने रिश्वत देना स्वीकार न किया बन्दी कर लिया और खुद्दामहुसैन पूर्णिया का शासक बना दिया गया। कहते हैं कि अकेले रामनारायणसिंह से क्लाइव ने ७ लाख रुपये वसूल किये।

दिल्ली के राजकुमार अलीगौहर शाह आलम का आक्रमण

बङ्गाल इस समय भी नाममात्र के लिये मुग़ल साम्राज्य का एक सूबा था। अतएव उसे वस्तुतः दिल्ली के आधीन करने के लिए ही शाह आलम ने अवध के नवाब की सहायता लेकर आक्रमण करने का विचार किया। परन्तु क्लाइव के मित्र बिहार के राजा रामनारायण सिंह ने युद्ध होने का अवकाश ही नहीं दिया। १७५९ ई० में जब बिना युद्ध के ही अलीगौहर लौट गया तब क्लाइव ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये लिखा कि उसने शाह आलम को पराजित कर दिया। वस्तुतः क्लाइव और मारेन ने जब शाहज़ादे की विशाल सेना देखी तो वे घबरा गये और रामनारायण के प्रयत्नों से युद्ध टल गया था। क्लाइव जब शाहज़ादे के सम्मुख गया तो उसने झुककर सलाम किया और अपनी भक्ति प्रदर्शित की थी।

अब क्लाइव का महत्व और भी बढ़ गया। मीरजाफर का रक्षक क्लाइव हो गया। क्लाइव की निजी जागीर का ३ लाख रुपया जो अभी तक नज़राने के रूप में नवाब को मिलता था क्लाइव को मिलने लगा। वस्तुतः इस समय क्लाइव पूरा भारतीय अमीर बन गया था।

क्लाइव इस बात के लिये सदैव यत्नवान रहता था कि किस प्रकार भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य स्थापित किया जाय। इसीलिये वह प्रतीक्षा कर रहा था कि मीरजाफर के मरने पर मीरन के स्थान पर किस को नवाब बनाया जाय क्योंकि मीरन वस्तुतः "क्लाइव का गधा" नहीं था जैसा कि उसका पिता था। जिसे अफीम खाने और विलासिता से ही छुट्टी नहीं थी।

इस समय कम्पनी भारतवर्ष में सबसे धनी व्यापारिक संस्था थी। शोरा के व्यापार पर, नमक के व्यापार पर उसका एकाधिकार था। भारतीय जहाजी व्यवसाय नष्ट कर दिया जा चुका था अतएव भारतीयों का विदेशीय वस्त्र व्यवस्था अभी सम्पूर्णतया अंग्रेजों के हाथ में था। केवल चिन्सुरा के डच व्यापारियों के पास कुछ व्यापार था। क्लाइव ने षड़यन्त्र रचने का अपराध लगा कर उसे भी १७५६ ई० में समाप्त कर दिया था।

इसी समय असंख्यधन राशि बटोर कर उसे अपने घर में रखने के लिये १७६० ई० में क्लाइव इंगलैण्ड लौट गया। तथा उसके स्थान पर कुछ दिनों ब्लैक होल का काल्पनिक वर्णन लिखने वाला हालवेल कलकत्ते का गवर्नर रहा फिर वंशीटार्ट गवर्नर बना।

१७५६ ई० में शाहजादा अली गौहर फिर अपनी सेना लेकर बंगाल की ओर आता रहा था। वह १७६० ई० में फिर पटने के निकट आ गया। अंग्रेजों ने मीरजाफर को विवश किया कि वह अलीगौहर के विरुद्ध सेना भेजे। परन्तु अलीगौहर प्रवास में ही अपने पिता की मृत्यु के कारण सम्राट् घोषित हो चुका था। मीरजापुर का हृदय उससे विरोध करने को नहीं चाहता। अतएव वह किसी प्रकार युद्ध के लिये सहमत न हुआ।

किन्तु मीरन के साथ कुछ सेना उसने पटने की ओर भेजी। अंग्रेज सेनापति कैलो भी उसके साथ था।

इस समय भी अंग्रेजों ने दुहरी नीति से काम लिया। ऊपर ऊपर तो वे मीरजाफर से मिले रहे परन्तु अन्दर अन्दर उन्होंने मुगल सम्राट् से भी वार्त्तालाप प्रारम्भक कर दिया ऐसा जान पड़ता है कि अंग्रेज दोनों को लड़ा कर दोनों की शक्ति नष्ट करना चाहते थे परन्तु मीरन बुद्धिमान था। उसने इस कार्य्य में जब सहयोग न दिया तो अंग्रेजों ने बिहार के राजा रामनारायणसिंह को युद्ध के लिये सहमत कर लिया। रामनारायणसिंह बड़ी वीरता से लड़ा परन्तु पराजित हुआ और बुरी तरह घायल हो गया। शाहआलम ने मीरन और कैलोकी सेना को पटना में घेर लिया कैलो चाहता था कि मीरन युद्ध करे। मीरन इसके लिये उत्सुक न था। अतएव अंग्रेजों ने शाहआलम से गुप्त रीति से वार्त्तालाप प्रारम्भ किया। शाहआलम ने पटने का घेरा तो उठा लिया परन्तु गंगा के किनारे किनारे आगे बढ़ना आरम्भ किया। पुर्णिया के सूबेदार खुद्दाम हुसेन ने शाहआलम की सहायता के लिये सेना भेजी। इस पर अंग्रेजों ने पूर्णियां की सेना पर आक्रमण किया। परन्तु पराजित हुये क्योंकि मीरन ने युद्ध में भी अंग्रेजों का साथ नहीं दिया। इधर शाहआलम का भी कोई निश्चित कार्य्यक्रम नहीं था। उसने बिहार के समस्त प्रदेश तक घूमकर अपनी सेना फेर दी। कैलो का अकेले साहस न हुआ कि मुगल सम्राट् की सेना के साथ छेड़ छाड़ करता। अतएव उसने अपना सारा क्रोध मीरन पर उतारा। एक दिन अपने डेरे में रात को सुख पूर्वक सोने के बाद मीरन सदा के लिये सो गया। कैलो ने प्रसिद्ध कर दिया कि मीरन पर बिजली गिर पड़ी। यद्यपि यह स्पष्ट था कि किसी गुप्त उपाय से मीरन की हत्या

को गई। तथा मीरजाफ़र के नाम पर समस्त विहार प्रदेश में अंग्रेजों की सेना का प्रभुत्त्व स्थापित हो गया।

"मीरजाफर के विरुद्ध षड़यन्त्र"

मीरजाफर यद्यपि अंग्रेजों का मित्र बन कर अपने स्वामी सिराज से विश्वासघात कर चुका था । परन्तु उसका हृदय सम्पूर्णतया पतित नहीं हो गया था। विशेष कर उसके पुत्र मीरन में भारतीय गौरव रक्षा का विशेष भाव था अतएव अंग्रेजों के समस्त अत्याचारों और दुरभिसन्धियों में वह साथ नहीं दे सकता था जिसका प्रमाण अंग्रेजों का शाहआलम के साथ वरतने में मिल गया था । अंग्रेज उस समय बंगाल में ऐसा सूबेदार नहीं चाहते थे। अतएव मीरजाफर के दामाद मीर-कासिम को ठीक उसी प्रकार सहमत किया गया जिस प्रकार सिराज के विरुद्ध मीरजापुर को पंच बनाया गया था । १७६० ई० में यह षड़यन्त्र पूरा हुआ और मीरजाफर को उतार कर मीर कासिम के सर पर बंगाल की कांटों भरी नवाबी का राज-मुकुट पहनाया गया ।

अध्याह सैंतालीसवाँ

कम्पनी पर विहंग दृष्टि

यहां हमें थोड़ा रुक कर २६० वर्षों के इन योरोपियन कम्पनियों के इतिहास पर भारतीय हित की दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। कम्पनी के इतिहास की परम्परा १८५७ तक जाती है परन्तु इस स्थल पर रुक जाने के दो प्रधान कारण हैं। पहला तो इस समय तक पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी कम्पनियों के भारतीय रंग मंच से अन्तर्हित हो जाना है जो

इसी काल में पूर्ण हो गया। दूसरा कारण यह है कि अब कम्पनी का भारतवर्ष में राज्य भी स्थापित हो गया था। दक्षिण में उत्तरी सरकार का परगना उनके राज्य में था और उत्तर में बंगाल का चौबीस परगना अब कम्पनी भारतवर्ष में केवल व्यापारिक कम्पनी नहीं थी वरन् एक शासन की अधिकारिणी भी थी। मीरकासिमके कालको भी इसमें सम्मिलित किया जा सकता था परन्तु मीरकासिमका उद्देश्य कम्पनीका नाश करना न हो कर कम्पनी की राजसत्ता का नाश करना था। जिस पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे। अतएव मीरकासिम के काल को इस काल से अलग कर दिया गया।

कम्पनियों का अन्त ताथ अँग्रेजों की सफलताके मुख्य दो कारण

इतिहास से हम यह जान चुके हैं कि किस प्रकार पुर्त्तगाल की शक्ति नष्ट हुई, हालैण्ड का भारत से सम्बन्ध टूट गया और अन्त में फ्रांसीसी कम्पनी की भी वही दशा हुई। हम अलग अलग सबके विनाश के कारणों पर विचार कर चुके हैं यहां केवल इतना कहना शेष है कि अंग्रेज का व्यापार का अर्थ यह लगाते थे कि किसी भी उपाय से भारतवर्ष का माल लिया जाय, चाहे लूट कर मिले चाहे छीन कर, चाहे बलपूर्वक, कारीगरों से विवश कर कपड़ा बनवाया जाय, भारतीय माल सस्ते से सस्ते दामों पर लेकर इंग्लैण्ड में बेचा जाय। अन्य कम्पनियों ने व्यापार को खुला व्यापार समझा। उन्होंने स्थल में इस प्रकार जुआ-चोरी नहीं की अतएव अन्य व्यापारियों को उतना लाभ न हो सका जितना अंग्रेज व्यापारी उठा सकें।

अंग्रेज व्यापारी न केवल कम्पनी के नौकर थे वरन् वे अपना घर भी खूब भरते थे। इसी प्रकार जो सैनिक बन कर भारतवर्ष में आता था वह चाहे सिपाही हो या सेनापति

कम्पनी से वेतन पाने की अपेक्षा चौगुना धन लूट में पाता था जिस पर उसका एकाधिकार होता था क्योंकि इन लूटों में कम्पनी के लिये सदैव अलग से व्यवस्था बनाये रखने की वफादारी दिखाई गई थी। अतएव कम्पनी को मुफ्त में जो कुछ मिल जाता था कम्पनी के सन्तोष के लिये पर्याप्त था। इससे न तो कम्पनी पर कभी आर्थिक कठिनाई का बोझ पड़ा न उसे योग्य से योग्य मनुष्यों की सेवायें भारतवर्ष के लिये प्राप्त होने में कोई कठिनाई हुई। यदि क्लाइव को व्यक्तिगत लाभ न होता तो उसे तीन तीन बार भारतवर्ष की कड़ी गर्मी में दौड़कर आने की आवश्यकता न पड़ती।

इसके विपरीत अन्य कम्पनियां राज्य को ओर से नियन्त्रित रहती थी। उन्हें व्यक्तिगत लाभ की आशा नहीं थी। युद्ध आदि के कारण उन पर बोझ पड़ जाता था अतएव उनको सफलता न मिलना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति से अंग्रेज़ों को ही विशेष लाभ नहीं था। यह लाभ तो प्रत्येक कम्पनी को सुलभ हो सकता था यदि उससे उसी प्रकार लाभ उठाया जाता जिस प्रकार अंग्रेज़ों ने उठाया।

यहां इस बात पर भी विचार कर लेना चाहिये कि पानी सदैव पोली मिट्टी को गला कर बहा लेता है और अपने बहने का क्षुद्र मार्ग बनाकर बड़े बड़े पत्थरों को काट देता है। अंग्रेज इस सिद्धान्त को खूब जानते थे। पश्चिमी तटपर मराठों द्वारा अपनी सूरत की कोठी लुटवा कर उन्होंने समझ लिया था

भारतवर्ष में अग्रेज़ों की चतुरता

कि उधर की चट्टान कड़ी है उसे तोड़ सकना सम्भव नहीं। अतएव उन्होंने अपना सम्पूर्ण ध्यान पूर्वी तट पर केन्द्रित कर दिया। यहां उन्हें पोली मिट्टी मिल गई डूप्ले की भेद नीति ने दक्षिण की राजसत्ता को पोला कर दिया था। क्लाइव और

उसके साथियों ने बंगाल की राज सत्ता की जड़ अपनी धूर्त्त-ताओं से पोली कर दी थी। इस लिये अंग्रेज पानी ने इन्हीं स्थानों पर दो बड़े छेद बनाकर देश को बहा देने की योजना बनाई। जिसमें उसे सफलता प्राप्त हुई।

अंग्रेज जानता था कि जो अंगरेज इंग्लैण्ड छोड़ कर भारतवर्ष में पड़ा है उसके सामने दो ही मार्ग हैं या तो कुछ करे या मर जाय। कुछ कर सकना उसकी अपनी शक्ति के बाहर था। अतएव वृक्ष काटने के लिये उसने उसी की लकड़ी से अपनी कुल्हाड़ी का दस्ता बनाया। अंगरेज जाति यदि इस चतुरता से काम लेती, यदि मुहम्मदअली, सलावतजंग, मीरजाफर, अमीचन्द जैसे देश द्रोही उसे न मिल जाते तो भारतवर्ष का इतिहास किसी दूसरे प्रकार का होता।

अब इन व्यापारिक कम्पनियों के प्रभाव पर भी विचार कर लेना चाहिये। हम औरंगजेब काल के जहाजी बेड़े, शिवाजी के जहाजी बेड़े और शाइस्ताखाँ के जहाजी बेड़ का वर्णन कर चुके हैं। परन्तु कम्पनियों के प्रभाव से अरब सागर और बंगाल की खाड़ी भारतीय नाविकों के लिए भय का स्थान बन गई थी। जो भारतीय जहाज इनके फन्दे में फँस जाता था उसका धन ही नहीं लूट लिया जाता था वरन् उस जहाज को फिर भारतवर्ष में लौटने का अवसर ही नहीं था। अंग्रेज गुलाम व्यापार भी करते थे। भारतीय नाविक गुलाम बना कर बेच दिये जाते थे जहाज इन कम्पनियों के मालिकों की जायदाद बन जाता था। इस प्रकार भारतीय समुद्री व्यापार चौपट हो रहा था। जिन नाविकों के सम्बन्धी एक बार समुद्र में जाकर फिर नहीं लौटे न केवल वे ही वरन् उनकी देखा देखी नवीन नाविक भी अपने

प्रभाव

धर्म अपने प्राण और अपने धन की रक्षा के लिये नौ व्यापार ही छोड़ बैठे। सम्भवतः इसी समय भारतवर्ष में यह धारणा उत्पन्न हुई कि समुद्र पार जाने से धर्म नष्ट होता है उक्त कारणों पर विचार करके यदि देखे तो हमें उक्त काल की इस धारणा में सत्य का अंश दिखाई देगा। वैसे पुराने वैदिक साहित्य में इस प्रकार का कोई निषेध नहीं पाया जाता जिससे कहा जा सके कि भारतवर्ष ने धार्मिक रूप में समुद्र यात्रा का निषेध किया। इसके विपरीत भारतीय जलशक्ति का वर्णन हम इतिहास में कर आये हैं।

इसका दूसरा प्रभाव यह हुआ कि जिन देशों में अंग्रेजों या इन व्यापारिक कम्पनियों का पदार्पण हुआ उनका आर्थिक ढाँचा बिखर गया। देश की असंख्य धन राशि ढो ढोकर विदेशों में जाने लगी। विदेश से धन का आगमन नष्ट हो गया। फलतः दरिद्रता बढ़ने लगी। व्यापार पर एकाधिकार स्थापित हो जाने के कारण, चुङ्गी न देकर व्यापार करने के कारण भारतीय राजशक्ति का कोष भी घटने लगा। बंगाल के राजकोष की लूट का वर्णन हम कर चुके हैं। आय का साधन न होने के कारण भारतीय नवाब जो अंग्रेजों के सम्पर्क में आ गये थे निरन्तर अशक्त और निर्बल होते गये। और अंग्रेजों को अपने पैर पसारने का अवसर मिलता गया।

इसका तीसरा प्रभाव भारतीयों के नैतिक स्तर पर पड़ा। बंगाल की जो दुरवस्था हुई उससे कृषि आदि उद्योग चौपट हो गये। दरिद्रता के कारण स्वार्थ परता का उदय हुआ। स्वार्थ परता से परस्पर अविश्वास और विश्वासघात की प्रवृत्ति जागी। अंग्रेजों ने इस प्रवृत्ति से लाभ उठाया। उन्हें भारतीय सैनिक प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। क्लाइव जैसे नवीन शासक के पास ५०,००० सेना का संगठित हो

आना जिसमें केवल २००० गोरे थे। भारतीय नैतिक पतन का ही सूचक है। बंगाल की किरानी बनने की मनोवृत्ति भी इसी नैतिक पतन के कारण उत्पन्न हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि कम्पनी का यह काल उस विनाश का श्री गणेश काल था जिसकी पूर्त्ति आगे चल कर हुई।

तिथियों के अनुसार इस काल की घटनायें

१४६८ ई० वास्कोडी गामा का आगमन (पुर्त्तगाली)

१५०३ ई० कालीकट में कोठी

१५०५ ई० से अल्मोड़ा का भारत आगमन

१५०६ ई० अल्बुकर्क का भारत आगमन

१५१० ई० सामूरों (जमोरिन) का वध

१५११ ई० मलाका द्वीप पर अधिकार

१५१५ ई० उरभुजद्वीप पर अधिकार

१५७८ ई० फ्रांसिसड्रेक की भारत के मार्ग का नक्शा पुर्त्तगाली जहाज की लूट में मिलना

१५८० ई० स्पेन को पुर्त्तगाल पर अधिकार

१५६६ ई० हाउटमैन नामक डच व्यापारी का भारत प्रवेश

१६०० ई० अंग्रेजी ईस्टइण्डिया कम्पनी

१६०२ ई० डच ईस्टइण्डिया कम्पनी

१६०५ ई० अम्बोयना टापू पर डचों का अधिकार

१६०८ ई० अंग्रेज कप्तान हाकिन्स का भारत प्रवेश

१६१२ ई० सूरत में अंग्रेजी कोठी

१६१५ ई० में सरटामसरो अंग्रेजी दरबार में

१६२२ ई० उरभुज अंग्रेजी अधिकार में

१६२४ ई० जहाँगीर के दरबार से स्वन्याय का अंग्रेजों को अधिकार मिला

१६३६ ई० फ्रांसिसड्रेक द्वारा मद्रास नगर की नीव

१६४० ई० शाहजहाँ की पुत्री की दवा करने के उपलक्ष में बंगाल में स्वतंत्र अंग्रेजी व्यापार की आज्ञा

१६४२ ई० में पहली फ्रांसीसी कम्पनी का निर्माण जो सफल नहीं हुई

१६५१ ई० हुगली और कासिम बाजार में अंग्रेजो कोठी

१६६१ ई० बम्बई अंग्रेजों को दहेज में मिला

१६७१ ई० फ्रांसीसी दूसरी कम्पनी को सूरत में व्यापार की आज्ञा

१६८६ ई० अंग्रेज शाइस्ता खाँ के कोप के शिकार हुए

१६६० ई० वर्त्तमान कलकत्ता नगर और फोर्ट विलियम क़िला का निर्माण

१६६८ ई० नई ईस्ट इण्डिया कम्पनी अंग्रेजी।

१७०८ ई० दोनों कम्पनियों का एक में मिलना

१७३५ ई० ड्यूमा डच कम्पनी का गवर्नर

१७४१ ई० डूप्ले ,, ,, ,,

१७४२ ई० अलीवर्दी खां बंगाल का नवाब

१७४४-४८ ई० अङ्गरेजों और फ्रांसीसियों का युद्ध

१७४८ ई० एलाश पल सन्धि आसफ़जाद की मृत्यु

१७५१ ई० त्रिचनापल्ली का घेरा

१७५४ ई० डूप्ले का पतन

१७५६ ई० सिराजुद्दौला द्वारा कलकत्ते में अङ्गरेजों की पराजय

१७५७ ई० प्लासी का युद्ध चन्द्र नगर का विजय सिराजुद्दौला की हत्या

१७५८ ई० लैली का आक्रमण मद्रास फ्रांस अधिकार में

१७५६ ई० उत्तरी सरकार अङ्गरेज अधिकार में

१७६० ई० वण्डेवास का युद्ध, फ्रांसीसी पराजय

१७६१ ई० में पाण्डीचरी पर अङ्गरेज़ी अधिकार शाह आलम और अङ्गरेज़ मीरन की हत्या

प्रश्न

(१) भारतवर्ष में व्यापार करने वाली किस योरोपियन कम्पनी को तुम अच्छा कह सकते हो कारण समेत बताओ।

(२) क्या कारण है कि डच, पुर्तगाली और फ्रांसीसी सफल न हुए ?

(३) समझाओ कि अङ्गरेज़ों ने फ्रांसीसी नीति का अनुकरण करके ही फ्रांसीसियों को पराजित किया।

(४) सिराजुद्दौला और अङ्गरेज़ युद्ध के कारणों पर विचार कर के अङ्गरेज़ों की विजय के साधनों के औचित्य पर विचार करो।

(५) इस विजय का बंगाल और भारतवर्ष पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(६) सिद्ध करो कि भारतवर्ष में अङ्गरेज़ों के पांव भारतीयों की सरलता और अङ्गरेज़ों की धूर्त्तता के ही कारण जमें। कम्पनी के संगठन में इसके अनुकूल कौन-सी बातें थीं।

(७) मीरन के अधिक जीवन की कल्पना करके उसके व्यवहार को जो उसने किया तथा जिसकी सम्भावना थी। आलोचना करके बताओ इसकी हत्या अङ्गरेज़ों के लिए आवश्यक थी।

अड़तालीसवां अध्याय

अङ्गरेजों के निकालने का पहला प्रयत्न

(१६६० ई० १६७४ ई० तक)

मीरकासिम नवाब तो बन गया परन्तु वास्तविक नवाबी अंग्रेज हाथ में रखना चहाते थे अतएव उन्होंने पहले तो मीरकासिम को नवाब बनाते समय जो सन्धि हुई थी उसके पालन कराने में मीरकासिम को दिवालिया बना दिया। जब उसके पास रुपये की कमी हो गई। तो बिहार के सूबेदार राम-नारायण से रुपया वसूल करने को कहा। रामनारायण-निर्बल नहीं था अतएव अंग्रेजों ने उस पर चढ़ाई की नवाब की सेना तथा अंगरेजी सेना के संयुक्त आक्रमण से रामनारायण परा-जित हुआ और बन्दी बना कर नवाब के पास भेज दिया गया यह वही रामनारायण था जिसने अंगरेजों के कहने से सम्राट् शाह आलम से युद्ध करके अपनी वीरता दिखाई थी।

मीरकासिम ने रामनारायण को विवश करके जो कुछ धन प्राप्त किया वह अंगरेजो की भेंट करके सन्धि की शर्तें पूरी करदी परन्तु अंगरेजों के अत्याचार बढ़ते गये जिन वस्तुओं पर उन्हें चुंगी की माफ़ी का अधिकार नहीं भी था जैसे ये नमक,

छालियां आदि उनका भी व्यापार करने लगे और चुंगी देने से इनकार करने लगे। शाह आलम जानता था कि अङ्गरेज अत्याचार कर रहे हैं। परन्तु मुर्शिदाबाद के पास ही कासिम बाजार की कोठी थी। वहां से यदि अङ्गरेजों को निकालने का यत्न प्रारम्भ करता तो निश्चय ही न कर पाता। अतएव उसने सबसे पहला काम राजधानी बदलने का किया और मुंगेर को राजधानी बनाया।

प्रयत्न का प्रारम्भ मीरकासिम अच्छी तरह जानता था कि इन कुशाल और धूर्त्त अङ्गरेजों को जीतने के लिये इन्हीं के ढंग पर शिक्षित सेना आवश्यक है। अतः उसने अनेक आर्मी नियन सैनिक रक्खे। तथा जर्मन सेनापति सभा के नेतृत्त्व में उसने सेना का यौरोपीय ढंग से संगठन किया। गोला और बारूद तथा तोपों के कारखाने खुलवा कर युद्ध सामग्री बनवानी प्रारम्भ करदी।

प्रयत्न का प्रारम्भ

अङ्गरेज असावधान नहीं थे। वे सब समझते थे परन्तु उनकी इच्छा थी कि किसी बहाने से युद्ध शीघ्र प्रारम्भ हो। बहाने की कमी नहीं थी। उन्होंने दुष्ट प्रकृति तथा धूर्त एलिस को पटना की कोठी का अधिकारी बना कर भेजा तथा उसे सैनिक संगठन करके नवाब को हानि पहुंचाते रहते तथा आज्ञा मिलते ही पटना पर अधिकार कर लेने की स्वतंत्रता देदी। इधर अङ्गरेजों ने देशी व्यापारियों को भी रिश्वतें लेकर चुंगी माफी के परवाने देने प्रारम्भ कर दिये तथा जगत सेठ और स्वरूपचन्द जैन बन्धुओं द्वारा राजधानी में जाल फैलाना प्रारम्भ कर दिया। मीरकासिम भी अब भोला नहीं था उसने उक्त दोनों सेठों को बन्दी कर लिया तथा चुंगी सम्बन्धी वार्त्ता करने को अँगरेजों को लिखा वर्सीटार्ट और हेस्टिंग्स से सन्धि हुई इसमें अङ्गरेजों ने ६ प्रतिशत चुंगी देना स्वीकार की तथा देशी व्यापारियों पर

२० प्रतिशत चुंगी निश्चित हुई। यद्यपि यह स्वदेशी व्यापारियों के प्रति अन्याय था परन्तु मीरकासिम उस समय युद्ध नहीं करना चाहता था और अङ्गरेजों से उदारता का व्यवहार करना चाहता था अतएव उसने इसे स्वीकार कर लिया। परन्तु अङ्गरेजों की ढाढ़ में खून लग चुका था। उन्होंने एक दिन भी इस सन्धि का पालन नहीं किया। फलतः नवाब ने विवश होकर सब चुँगी माफ कर दी। इससे देशी व्यापारियों के समक्ष अङ्गरेजों का व्यापार नष्ट होने लगा। १७६३ ई० में अङ्गरेजों ने इसके विरोध में युद्ध की तैयारियां प्रारम्भ कर दीं। बिना घोषणा के ही एलिस ने पटना पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। फलतः समरू के नेतृत्व में मीरकासिम को पटना के उद्धार के लिये सेना भेजनी पड़ी। इस समय पटना की ओर जाती हुई अस्त्र शस्त्र से भरी हुई अङ्गरेजी नावें भी मीरकासिम ने पकड़ लीं। अब उसे निश्चय हो गया कि अङ्गरेज बिना युद्ध के नहीं मान सकते। समरू ने एलिस से पटना छीन लिया और मीरकासिम ने अङ्गरेजी दूतयमयाट की धृष्टता तथा नीचता भरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

अब अङ्गरेजों ने खुल्लम खुल्ला युद्ध घोषणा करके पहले के दुश्चरित्र अफीमची मीरजाफर के गुणों का बखान प्रारम्भ किया और मीरकासिम के दोष दिखाये जाने लगे। मीरजाफर को नवाब घोषित करके उसके नाम पर सैन्य संग्रह और मीरकासिम की सेना में विश्वासघात के बीज बोये जाने लगे। जनरल एडम्स के नेतृत्त्व में एक सेना पटने की ओर भेज दी गई। उधर मीरकासिम भी अपनी सेना सहित उदवा नाला के दुर्ग में आ पहुँचा।

उदवा नाला का दुर्ग सामरिक स्थिति से बड़ा सुदृढ़ उसके दो ओर गङ्गा और उदवानाला नमक नदियां थीं· तीसरी ओर

उदवा नाला का युद्ध

दलदल और पहाड़ियां,चौथी ओर उसकी रक्षा के लिये मीरकासिम ने खाइयां खुदवा दी थीं। उससे निकलने का भी एक गुप्तमार्ग था जिसे मीरकासिम के सेनापति जानते थे परन्तु मीरकासिम की सेना के विश्वासघाती ईसाई सैनिकों ने धोखा देकर उसी गुप्त माग से रात्रि में ही अङ्गरेज सैनिकों को किले के अन्दर पहुंचा दिया जिससे निकल कर मुसलमान सैनिक नित्य अङ्गरेजों को क्षति पहुँचाते रहते थे। रात्रि के इस आकस्मिक आक्रमण से अचेत मुसलमान सेना में अव्यवस्था फैल गई। और पराजित अङ्गरेज़ विजयी हुये। जिस प्रकार पलासी के युद्ध ने सिराजुद्दौला के भाग्य का निमित कर दिया था उसी प्रकार उदवानाला के युद्ध ने मीरकासिम के भाग्य का निर्णय कर दिया। कहते हैं कि मीरकासिम उस समय उदवानाला में नहीं था। वह वहाँ से पटने की ओर चल चुका था।

पटने से उसने अङ्गरेज़ों को सूचना दे दी कि आप का अन्याय बहुत हो चुका। अब यदि तुम मुंगेर पर अधिकार करोगे तो मैं पटने के बन्दियों को मृत्यु के घाट उतार दूंगा। अङ्गरेज़ों ने मुंगर के कोतवाल को इसलिए रिश्वत दे रक्खी थी कि वह बिना युद्ध किए ही किला सौंप दे। इस दशा में एडम्स यदि आगे न बढ़ता तो उसका रुपया व्यर्थ चला जाता। मुग़ल किलेदार अरबअली खां ने अपना रुपया एडम्स के हाथों किला सौंपकर चुकता कर दिया। अब मीरकासिम के सेनापति समरू ने समस्त अङ्गरेज़ बन्दियों और उनके साथ स्वरूप चन्द्र जैन का भी वध कर दिया। मीरकासिम उस समय अवध और मुग़ल बादशाह शाह आलम से सैनिक सहायता लेने गया था।

अङ्गरेज़ मुंगरे से आगे बढ़े और उनकी रुपयों की थैली

उनसे भी आगे-आगे चली। अजीमाबाद (पटना) का क़िलेदार मुहम्मद अलीखां भी ५०० रुपये मासिक पेंशन के दामों पर मोल ले लिया गया। उसने पटना का क़िला भी बिना युद्ध किए ही अङ्गरेज़ों की भेंट कर दिया।

अब अङ्गरेज़ आगे बढ़े और बक्सर की छावनी में पड़ाव डाल दिया। मीरकासिम शुजाउद्दौला तथा शाह आलम से मिला। उसे नवाबी की सनद दिल्ली दरबार से प्राप्त हो चुकी थी अतएव उसे शाह आलम से सहायता लेने का अधिकार था अब तीनों सेनाएँ मिलकर इलाहाबाद से आगे बढ़ीं तो नवाब वजीर शुजाउद्दौला (अवध) ने एक पत्र अङ्गरेज़ों से समझौते के लिये लिखा तथा उनसे चाहा कि वे राजनैतिक कार्यों मे विरत होकर केवल व्यापार करें जिसकी उसको मुग़ल दरबार से सनद प्राप्त थी।

अङ्गरेज़ों से सन्धि की बात करने की अपेक्षा अपनी नीति के घोड़े दौड़ाये शुजाउद्दौला का एक सेनापति कल्याण सिंह फोड़ लिया गया। मुगल सेना की प्रमुख जैनुल आबदीन भी रुपयों के मोल बिक गया उसका भाई शिताबराय अङ्गरेज़ों के साथ था मीरकासिम का सेनापति नजफ़खां उनका सहायक था ही। शाह आलम बादशाह को भी अङ्गरेज़ों ने सन्धि के लिए सहमत कर लिया अतएव युद्ध के लिये उसमें भी उत्साह नहीं रहा। केवल शुजाउद्दौला की कुछ सेना तथा मीरकासिम युद्ध के लिए सन्नद्ध थे।

१७६४ ई० में बक्सर पर युद्ध हुआ। विश्वासघातियों से घिरे शुजाउद्दौला की पराजय हुई उसे पीछे हटना पड़ा। शाह आलम अङ्गरेज़ों के साथ हो गया। परन्तु शुजाउद्दौला ने अभी हार नहीं मानी थी अतएव उसकी शक्ति तोड़ने के लिए
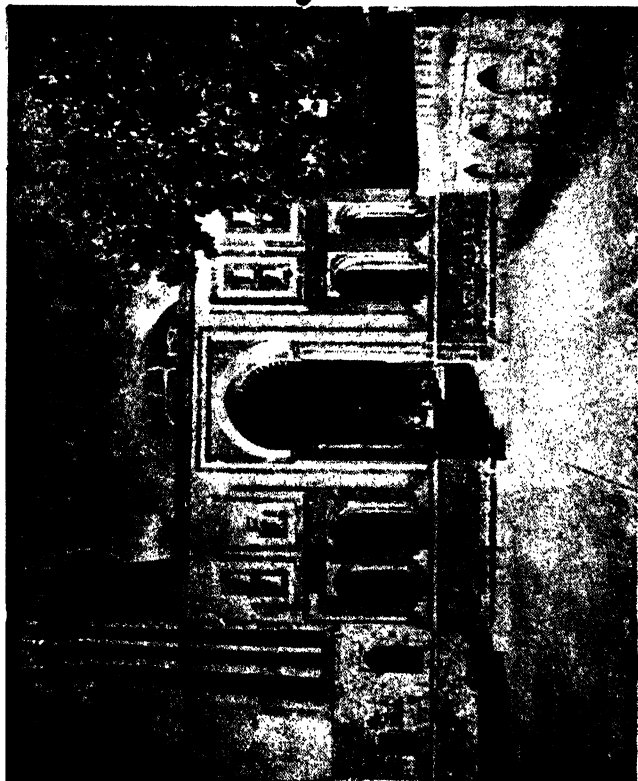
अलाइ दरवाज़ा (कुतुब देहली)

मीरजाफ़र अङ्गरेज और बिहार की सेना आगे बढ़ी। रोहीतास के किले का किलेदार साहूमल अङ्गरेजों के झांसे में आ गया और उसने रोहितास का किला अङ्गरेजों को सौंप दिया अब अङ्गरेजों ने यही चाल चुनार में चलनी चाही। किलेदार तो जाल में फंस गया परन्तु सेना ने किलेदार को पकड़ कर किले से बाहिर निकाल दिया और फाटक बन्द कर लिये। फलत: अंगरेज की चाल झूठी पड़ गई।

चुनार के सिपाहियों ने मेजर मनरो की अजय सेना को ढकेल दिया और अंगरेज मुंह की खाकर लौट आयेरशुजा-उद्दौला इलाहाबाद की ओर आ गया था अतएव अंगरेज सेना चुनार का ध्यान छोड़कर इलाहाबाद की ओर बढ़ी। नजफ़खां अब अँगरेजों के साथ था। वह इलाहाबाद के किले से परि-चित था। उसकी सहायता तथा शिताबराय की वीरता से इला-हाबाद का किला जीत लिया गया।

शुजाउद्दौला ने कड़ा के स्थान पर फिर अंगरेजों का सामना किया परन्तु विशेष सफलता न मिली परन्तु अङ्गरेजों की चिंता तब तक नहीं दूर हो सकती थी जब तक या तो शुजाउद्दौला को पराजित न कर दिया जाय अथवा सन्धि न करली जाय। अन्तत: महाराजा शिताबराय पर यह कार्य्य सौंपा गया। शिताबराय ने शुजाउद्दौला से सन्धि का प्रस्ताव रक्खा। शुजाउद्दौला भी जान गया था कि उसकी सेना में प्रतिदिन विश्वास घाती बढ़ते जाते हैं तथा जिसे सबसे अधिक अपने साम्राज्य की चिन्ता होनी चाहिये वह मुगल सम्राट ही निकम्मा और असमर्थ है अतएव युद्ध का फल विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अत: उसने सन्धि स्वीकार कर ली।

इसी समय राबर्ट क्लाइव फिर भारतवर्ष में आ गया था। इलाहाबाद की सन्धि में उसका साथ बहुत था। इस सन्धि को

कुछ विशेषताओं पर ध्यान देकर इस युद्ध की राजनैतिक चालों को समझा जा सकता है अतएव नीचे लिखी जाती हैं।

युद्ध में कम्पनी का खर्च ५० लाख रुपया शुजाउद्दौला दे। २५ लाख तुरन्त तथा २५ लाख वार्षिक किश्तों में। क्लाइव ने इस खर्च को बढ़ा कर ६० लाख कर दिया।

इलाहाबाद और कड़ा के प्रदेश शुजाउद्दौला बादशाह शाह-आलम को दे दे तथा गाजीपुर का इलाका कम्पनी को दे दिया जाय।

मुग़ल बादशाह बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार कम्पनी को दे दे जिसके बदले में कम्पनी २६ लाख रुपया सालाना देती रहेगी।

संधि की इन बातों पर विचार कीजिए स्पष्ट प्रतीत होता है कि शुजाउद्दौला को दबाकर शाहआलम को प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती है। यदि शाहआलम भी शत्रु पक्ष में रहा होता तो कम्पनी इलाहाबाद और कड़ा उसे देने को प्रस्तुत कदापि न होती। बंगाल, बिहार की दीवानी ले लेने का कुछ भी अर्थ नहीं है। शाहआलम निर्बल था। उसे दूर देशों के भागों से कुछ भी वास्तविक लाभ नहीं था क्योंकि बंगाल के नवाब नाम मात्र के लिये ही मुसलमानी प्रथा का पालन करने के लिये दिल्ली दरबार से सूबेदारी या नवाबी की सनद लेते थे तथा उसी समय थोड़ी बहुत नज़रें देते थे। अब २६ लाख रुपया सालाना आय की सम्भावना हो चुकी थी और प्रबन्ध करने का कोई भार नहीं पड़ता था तो इस में शाहआलम को हानि नहीं वरन लाभ ही था। इससे शाहआलम को दूसरा लाभ भी बंगाल के सूबेदार की शक्ति टूटने का दिखाई पड़ा होगा। उसे क्या पता था कि इसी प्रकार उसकी या उसके वंशधरों की

शक्ति तोड़ दी जायगी । शाहआलम का एक और लाभ इस संधि से यह था कि अवध के सूबेदार की शक्ति जिस से तृतीय पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय हुई थी टूट गई।

कम्पनी का मूल उद्देश्य भारतवर्ष की सम्पत्ति लूटना था। उन्हें शासन प्रबंध में हाथ डालने को केवल इसी लिये आवश्यकता पड़ती थी जिससे उनके देशी व्यापार में कम्पनी को भी इस वाधा न पड़ने पावे। दीवानी का अधिकार प्रकार की संधि से कम्पनी को मिल जाने से माल गुजारी पर लाभ ही लाभ थे अङ्गरेजों का एकाधिकार हो गया जिससे अंग्रेजों को किसानों को भी लूटने और मन चाहा लगान लेने की छूट मिल गई। धन की कमी के कारण बंगाल के नवाब को शक्ति संचय का अवसर ही नहीं रहा अतएव वह तो स्वयं ही कठपुतली बन गया। अब यदि कम्पनी सम्पूर्ण राज्याधिकार लेना चाहती तो उसे लाभ के साथ कठिनाइयां भी उठानी पड़तीं। अभी फौजदारी मुहकमे तथा वैदेशिक सम्बन्धों से निपटने के लिये उत्तरदायी नवाब को ठहराया जा सकता था। बंगाल के नवाब और मराठों में सन्धि थी जिसके कारण वे बंगाल पर आक्रमण नहीं करते थे। अब यदि नवाब न रहता तो मराठों का संघर्ष आरम्भ हो जाने की सम्भावना थी। तथा दक्षिण में स्थिति को सँभालने के लिये अंगरेज इस प्रकार के संघर्ष के लिये प्रस्तुत न थे।

इसके अतिरिक्त इन देशों के पश्चिमोत्तर प्रदेश में दिल्ली और अवध के राज्य का बना रहना सैनिक दृष्टि से भी आवश्यक था। दिल्ली की गद्दी का अधिकार यद्यपि नष्ट हो चुका था परन्तु उसका सम्मान शेष था। अतएव मुसलमान यदि इस सम्मान का निरादर होते देखते तो उनके भड़क जाने की सम्भावना थी। अतएव बंगाल से लेकर दिल्ली तक खुल कर

मुसलमान सम्मान को ठोकर मार देना न तो उचित ही था न उस समय अङ्गरेजों के हित में था। धूर्त्त क्लाइव ने बंगाल की नवाबी की गाय को जीवित तो रक्खा परन्तु उसके थनों से दूध निकालने के समस्त उपाय कर लिये।

अब क्लाइव ने कम्पनी के आन्तरिक प्रबन्ध को सुधारने की ओर ध्यान दिया। मीरजाफर की मृत्यु हो जाने पर क्लाइव के पूर्वाधिकारियों के नज्मुद्दौला को बंगाल का नवाब बना दिया था। क्लाइव को यह पसंद न था कारण यह था कि नवाब युवक था यद्यपि अङ्गरेजों से दबा हुआ था परन्तु धूर्त्त क्लाइव यह जानता था कि उसके रहते भारतवर्ष में मन चाही लूट नहीं की जा सकती। कहा नहीं जा सकता कि क्या हुआ। नज्मुद्दौला जब क्लाइव से भेंट करके लौट रहा था तो उसके पेट में दर्द उठा और उसी दर्द में वह मर गया। लोगों का विचार है कि उसे विष दे दिया गया। अब गद्दी का अधिकारी केवल एक पांच वर्ष का बालक रह गया अतएव उसके प्रबन्ध के लिये कम्पनी को स्वतन्त्रता हो गई।

उसने बंगाल बिहार को तीन भागों में बांट दिया। पश्चिमी भाग जसारत खां को नायबी में, मध्यवर्त्ती मुहम्मदरजा खां को को नायबी में, तथा पूर्वी भाग शिताबराय की नायबी में सौंपा गया। जिससे मालगुजारी वसूल करने में सुविधा हो। उसने नमक जैसी साधारण और प्रत्येक मनुष्य के लिये परमावश्यक पदार्थ पर ३५ प्रतिशत राज कर लगा दिया। इसी प्रकार पान और तम्बाकू पर भी कर लगा दिये। उसने कम्पनी के लोगों की व्यक्तिगत लूट में भी सुधार करना चाहा। क्योंकि इससे उन्हें सम्पूर्ण लाभ नहीं मिलता था। अतएव उसने

क्लाइव का प्रबन्ध

कम्पनी के व्यापारियों का मण्डल बना कर उनको नमक तम्बाकू के व्यापार का एकाधिकार दे दिया। इससे अब कोई भारतीय स्वतन्त्र रूप में यह व्यापार कर ही नहीं सकता था और समस्त लाभ कम्पनी के व्यापारियों को मिलने लगा। साधारण कर्मचारियों को जो हानि इससे होनी थी उसे उसने वेतन बढ़ा कर पूर्ण करना चाहा। उसने सैनिकों को दुहरा भत्ता देने का नियम बन्द कर दिया तथा युद्ध के अतिरिक्त काल में आधा भत्ता देना ही नियम बना दिया। इससे भारतीय सिपाहियों की कितनी हानि हुई इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। घायल सैनिकों के लिये स्थायी कोष स्थापित करके उसके व्याज से उनको पेन्शन देने का प्रयोग चालू किया।

क्लाइव का चरित्र और व्यक्तित्व

क्लाइव के अदम्य उत्साह और वीरता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक साधारण सैनिक या मुन्शी के पद से ऊँचा उठ कर हाउस आफ लार्डस' की सीट पर बैठने का गौरव उसने प्राप्त किया और सबसे अधिक प्रशंसा उसकी इसलिये करनी चाहिये कि उसमें स्वदेश का प्रेम था। उसने अपने स्वदेश की सेवा के लिये अपने कष्टों और कठिनाइयों को कभी नहीं सोचा। राजनैतिक दूरदर्शिता का भी उसमें अभाव न था। चँदा साहब की पराजय केवल क्लाइव के मस्तिष्क का परिणाम था। उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से देख लिया था कि भारतवर्ष का स्थान दक्षिण नहीं वरन् बंगाल है अतएव उसने अपनी बुद्धि कौशल तथा चतुर सेनापतित्व का परिचय बंगाल में दिया। सिराजुद्दौला को बनाने बिगाड़ने में उसकी दूरदर्शिता की झलक मिलती है साथ ही अवध मुग़ल बादशाह से की गई सन्धियों में भी।

अतएव इङ्गलैंएड देश के निवासी सेनापति के नाते उसमें शुभ ही गुण थे। परन्तु —

नुमष्य की दृष्टि से यदि हम क्लाइव के चरित्र पर विचार करें तो उसके कृत्यों से मानवता को लज्जा आती है। सिराजुद्दौला से विश्वास घात की पृष्ठ भूमि बनाना, मीरजाफर से अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये लाखों रुपये और जागीरें लेना, कम्पनी के व्यापारियों को जीवन की दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के व्यापार का एकाधिकार देना, पादरियों अथवा उच्च कर्मचारियों की स्त्रियों को चरित्र भ्रष्ट करना, नज्मुद्दौला की हत्या आदि उसके ऐसे दुर्गुण हैं जो उसे पशुता की ओर खींच ले जाते हैं। आश्चर्य नहीं कि अपने तापों की इसी मानसिक यातना से पीड़ित होकर उसने आत्म हत्या की हो।

मनुष्य की दृष्टि

हमें इस बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि क्लाइव को फिर से भारतवर्ष में अङ्गरेजी राज्य का स्थापक कह कर अङ्गरेज अधिकारियों में उसके स्थान की स्थिति पर निर्णय करें यह अङ्गरेजों का काम था। जब तक उनका राज्य रहा हम बहुत काल तक उस पर माथा पच्ची करते रहे। हमारा कार्य केवल भारतवर्ष की राजनैतिक में उसका स्थान देखना है।

क्लाइव का भारतीय राजनीति में स्थान

हिन्दू काल के उपरान्त भारतवर्ष में नवीन राज्य की स्थापना करने वालों में कुतुबुद्दीन एबक और बाबर के ही नाम हैं। मुहम्मदगौरी के अधिनायक के रूप में भी कुतुबुद्दीन ही था जिसने वास्तविक मुस्लिम राज्य भारत में स्थापित किया। अब दोनों के साथ हम क्लाइव की थोड़ी थोड़ी तुलना कर देंगे।

दोनों को भारत प्रवेश के समय भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति लगभग खाली ही मिली। दोनों को अपने धर्म से भिन्न धर्म वालों से युद्ध करके साम्राज्य स्थापना करने का प्रयत्न करना पड़ा। परन्तु इस दृष्टि से कुतुबुद्दीन का महत्व अधिक है। कुतुबुद्दीन को जिस जिस जाति से संघर्ष करना पड़ा वह वीर लड़ाकू और अधिक सशक्त जाति थी। कुतुबुद्दीन ने छल अथवा प्रपंच से काम लेकर उस जाति को अपनी ओर नहीं मिलाया परन्तु वे स्वयं ही अलग अलग थे अतएव उन्हें वह पराजित करता गया। अतएव कुतुबुद्दीन की विजय का अर्थ वस्तुत: तलवार की तलवार से विजय थी।

कुतुबुद्दीन और क्लाइव

क्लाइव के सम्बन्ध में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता उसने देश के उस भाग पर अधिकार किया जो भारतीय इतिहास में सदैव निर्बल रहा है। यहां जिनसे उसे युद्ध करना पड़ा वे आपस में शत्रु नहीं थे परन्तु क्लाइव ने छल और प्रपञ्च से उन्हें लड़ा दिया तथा फिर एक एक करके पराजित किया। हम ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार पैसों के बल से या लालच से उसने मीरजाफर और सराजुद्दौला के हिन्दू मुसलमान सेनापतियों को फोड़कर अपनी ओर मिला लिया। इस स्थान पर क्लाइव की पैसा और तलवार दो शक्तियां काम कर रही थीं इसके विरोध में केवल टूटी तलवार थी जिसकी पराजय निश्चित थी।

दोनों ने जीते हुये देशों के निवासियों पर अत्याचार किये परन्तु दोनों के अत्याचारों में आकाश पाताल का अन्तर था। कुतुबुद्दीन का अत्याचार यदि था तो केवल धर्म के नाम पर परन्तु क्लाइव का अत्याचार धर्म पर नहीं धन पर था। अतएव कुतुबुद्दीन के उपरान्त देश की सम्पदा फिर चमक उठी और

क्लाइव के उपरान्त दुर्भिक्ष महामारी का उदय हुआ।

कुतुबुद्दीन ने भारतीय व्यापार और कला कौशल के विकास में कभी बाधा नहीं डाली वरन् उसके राज्य संस्थापन के उपरान्त मुसलमान कलाओं का भारतवर्ष में प्रचार अधिकाधिक बढ़ा। परन्तु क्लाईव के कारण भारत का व्यापार और कला कौशल चौपट हो गया। हमको ५० रुपये की वस्तु देकर पांच रुपए मिलते थे न केवल इस उलटे व्यापार के द्वारा वरन् भारतीय जल-व्यापार का विनाश भी क्लाइव की शक्ति के विस्तार के साथ अपनी पूर्णता को पहुँच गया।

कुतुबुद्दीन की सेना और सरदारों को जो वेतन मिलता था उसे वे भारतवर्ष में ही व्यय करते थे। कुतुबुद्दीन विदेशी होकर भी भारतीय बन गया,भारत में बस गया अतएव उसके द्वारा भारतवर्ष पराधीन नहीं हुआ। परन्तु क्लाइव के नौकर वेतन पाते थे, लूटते थे और रुपया इंग्लैंड भेजते थे। क्लाइव भारतवर्ष का उपाधि प्राप्त अमीर बन चुका था परन्तु उसकी जागीर की आय इंग्लैंड जाती थी। अतएव भारतीय इतिहास की दृष्टि से क्लाइव भारत के दुखद भविष्य का पूर्व चिह्न था।

जब कुतुबुद्दीन के साथ क्लाइव की तुलना नहीं की जा सकती जो उच्च चरित्रवान विद्वान् रणकुशल और धार्मिक उदारता का बीज बोने वाले बाबर के साथ क्लाइव की तुलना करना टाट को रेशम की समता में लाना है जिसमें बाबर का एक भी गुण न था।

भारतवर्ष में क्लाइव के उपरान्त जिस लूट और दुर्व्यवस्था का दृश्य देखने को मिला इस काल तक के इतिहास में उसका उदाहरण मिलना असम्भव है। भारतीयों का व्यापार चौपट होगया। किसानों ने कर के भार से खेती का काम छोड़

क्लाइव के समय में
ब्रिटिश भारत।
नेपाल
अवध
रा ज पू त
सिंधिया
हैदराबाद
म रा ठा रा ज्य
भौंसला
N. S. M.

हेस्टिंग्ज़ के समय
में
ब्रिटिश भारत।
सन् १८२३ ई०
राजपूताना
सिन्ध
अवध
बिहार
बङ्गाल
निज़ाम का राज्य
मद्रास
अंग्रेज़ी राज्य
अंग्रेज़ी संरक्षता में

दिया। कपड़े बनाने वाले कारीगरों को जबरदस्ती पेशगी रुपए देकर निश्चित परिमाण में कपड़ा निश्चित और कम से कम समय में बना कर देना पड़ता था फिर उन्हें धन इतना दिया जाता था कि उससे उनका पेट भी न भर सके अतएव कपड़े के कारीगर या तो घर छोड़ कर भाग गये अथवा अपनी बुनने की शक्ति में असमर्थता दिखाने के लिये दाहिने हाथ के अँगूठे काट। डाले भले घरों की स्त्रियां सदैव प्रस्तुत रहती थीं कि गोरों को आता देखकर तालाब में कूद पड़ें और अपने धर्म की रक्षा करें। यह दशा केवल हिन्दूओं की ही नहीं मुसलमानों की भी थी। अब अङ्गरेज केवल व्यापारी ही नहीं शासक भी थे। अतएव नायब दीवानों के पास पर्चे भेज कर मन चाहा धन मंगवाया जाता था। न पहुँचा सकने पर उनकी कुशल नहीं थी। इस प्रकार सारे देश में दुर्भिक्ष और विद्रोह के लक्षण उभर आये थे क्यों कि फौजदारी का अधिकार नवाब के जिम्मे था जिसे कोई अधिकार नहीं था प्रजा में अशान्ति थी। दीवानी के अधिकारी बंगाल, बिहार लूट रहे थे अतएव पैसे की कमी हो रही थी। इस दशा में दीवानी में भी अङ्गरेजों को जैसा चाहिये वैसा लाभ न हो रहा था।

उन्चासवाँ अध्याय

अंग्रेजो का निकलना

दूसरा प्रयत्न

इसी समय दक्षिण में हैदरअली की शक्ति का उदय हो चुका था। हैदरअली का दादा बह लोल लोदी एक सन्त था उसके पुत्र मुहम्मद लोदी को अपने परिश्रम से मैसूर राज्य में बोधि कोटकी दीवानी मिल गई थी। उसका पुत्र हैदर-

अली १७५६ ई० में मैसूर का दीवान था। १७६७ ई० में हैदर अपने हिन्दू राजा को गद्दी से उतार कर मैसूर का राजा बन गया।

हैदरअली के हृदय में उत्तरी सरकार की अङ्गरेजों की आधीनता खटकती थी। बंगाल की घटनायें की सूचना उसे दिन प्रतिदिन मिलती रहती थीं। अतएव हैदर जानता थाकि यदि उत्तरी सरकार में अङ्गरेज बने रहे तो एक दिन दक्षिण की भी वही दशा होगी जो उत्तर की हुई अतएव उसने है हैदराबाद से सन्धि करके अङ्गरेजों से उत्तरी सरकार मांगा। अङ्गरेजों को उत्तरी सरकार अपने अधिकार में रखने का कोई उचित अधिकार नहीं था। उन्होंने उसे अस्वीकार किया अतएव १७६७ ई० में उसने अङ्गरेजों पर चढ़ाई की। अङ्गरेजों ने बंगाल में बरती हुई अपनी नीति दोहराई और निजाम को वार्षिक धन देने का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। १७६५ ई० में मराठों से पराजित होकर धन देकर हैदर सन्धि कर ली थी परन्तु इस समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मराठे भी अङ्गरेजों के साथ हैं। अतएव उसने १७६८ ई० में सन्धि का प्रस्ताव भेजा। परन्तु अङ्गरेज मराठों और निजाम को अपनी ओर मिला चुके थे अतएव हैदरअलो का विनाश ही कर देना चाहते थे अतः उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

हैदरअली समझ गया की यदि मराठों और निजाम की सैनिक सहायता मिलने से पूर्व ही उसने अङ्गरेजों को कुचल न दिया तो उसकी कुशल नहीं। आंधी की भांति चलकर तीन दिनों में त्रिचनापली और टिनेवली के अङ्गरेजों को पराजित करके १३० मील की यात्रा पूरी करता हुआ मद्रास के सर पर आ पहुँचा। अङ्गरेजों को विदित हुआ की उन्होंने हैदर को समझने में भूल की। फलतः सिन्ध की वार्त्ता फिर से शक्ति

संचय करने के लिए सोची गई। बहुत बड़ी धनराशि दण्ड के रूप में देकर अङ्गरेजों ने हैदरअली से सन्धि करली। १६६९ ई० की इस संधि ने दक्षिण में अङ्गरेजों को शान्त कर दिया परन्तु निजाम और मराठों के कारण हैदर को उत्तरी सरकार से अङ्गरेजों को निकालने में सफलता न मिली इस समय थोड़ा रुककर कम्पनी की तात्कालिक स्थिति पर विचार कर लेना भी आवश्यक है।

कम्पनी की दशा

बंगाल में दीवानी प्राप्त होने के फल का थोड़ा सा विवेचन हम कर आए हैं। उससे कम्पनी को विशेष लाभ नहीं हुआ। प्रजा से जो व्यापार अथवा अन्य प्रकार से लूट में मिल जाता था उससे कम्पनी के कर्मचारियों का पेट न भरता था। अतएव कर्मचारी लूट में जो कुछ पा जाते थे उससे किसान को कर देने की शक्ति तो घटती ही थी कम्पनी को लाभ कुछ नहीं था। उधर हैदरअली के युद्ध में कम्पनी को इतना अधिक व्यय करना पड़ा कि कम्पनी की आर्थिक स्थिति डावां डोल हो गई। बंगाल में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। इस दुर्भिक्ष काल में भी कम्पनी ने भारतीय लूट जारी रक्खी। बंगाल का समस्त चावल अंग्रेजी कोठियों में भर लिया गया और अभी तक जो मध्यम श्रेणी किसी प्रकार अपनी रक्षा कर सकी थी उसका भी रक्त दाने दाने चावल मनमाने मूल्य पर बेच कर चूस लिया। दुर्भिक्ष और महामारी के भीषण प्रकोप से गाँव के गाँव उजड़ गये। इतिहास बताता है कि उस समय दुर्भिक्ष की भयंकरता का कारण वर्षा न होना उतना अधिक नहीं था जितना अधिक इस प्रकार चावल का इकट्ठा कर लेना अतएव जनता में अंगरेजों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई और सन्यासी विद्रोह का जन्म हुआ।

संन्यासी विद्रोह, अंग्रेजों ने जिन्हें लुटेरे और डाकू कहा है

वे वस्तुतः लुटेरे और डाकू ही थे। परन्तु वे लूटते केवल दो व्यक्तियों को थे। पहले अंग्रेजों और उनकी कोठियों को जिनमें भरा हुआ अन्न लूटकर वे विपत्ति ग्रस्त ग्रामों में बांट देते थे। तथा धन लूटकर कुछ तो दुर्भिक्ष पीड़ित परिवारों की सहायता में तथा कुछ शस्त्रास्त्र संग्रह में लगाते थे। उनकी लूट के शिकार दूसरे वे व्यक्ति होते थे जो अंग्रेजों के सहायक थे। उनके धन के साथ भी वही व्यवहार होता था।

तीसरा यत्न

ये संन्यासी इतने शक्तिशाली तथा जनप्रिय होगये थे कि इन्हें बंगाल के गांव-गांव से नवयुवक अपनी सेना के लिये प्राप्त हो रहे थे। जो नवयुवक एक बार इन संन्यासियों के दर्शन पा जाता था वह सब कुछ छोड़कर मातृभूमि की सेवा के लिये निकल पड़ता था। अंग्रेजों ने इसी को लुटेरों का बच्चे उठा ले जाना लिखा है।

१७७२ ई० तक इन संन्यासियों के झुण्ड अंग्रेजों को तंग करते रहे। परन्तु फसलें अच्छी होने के कारण तथा आगे चलकर कम्पनी की नीति में परिवर्तन होते देखकर संन्यासियों के नेताओं ने युद्ध कार्य रोक दिया। वस्तुतः अंग्रेज या वारेन हेस्टिङ्गस कभी इस सन्यासी विद्रोह को बल से शान्त न कर सके नेताओं के अभाव में संन्यासी स्वयं शान्त हो गये थे।

पाचसवां अध्याय

कम्पनी की दशा और वारेन हेस्टिंग्स

बंगाल के दुर्भिक्ष और संन्यासियों की लूट ने तो कम्पनी को दिवालिया बना दिया। अतएव कम्पनी के डाइरेक्टरों ने भारतवर्ष में अतिकाल तक अनुभव पाये हुये वारेन हेस्टिंग को

उत्तरी भारत का गवर्नर नियुक्त किया। वारेन हेस्टिंग्स के सामने दो मुख्य समस्यायें थीं। पहली कम्पनी की आर्थिक दशा ठीक करना दूसरी कम्पनी के विरोधी तत्वों का दमन करना। अतः उसने बंगाल के नवाब की पेंशन आधी करके १६ लाख रुपया बचाया। शाहआलम को क्लाइव की सन्धि के अनुसार २६ लाख रुपया सालाना देना होता था। केवल इस बहाने पर कि बादशाह मराठों के साथ दिल्ली चला गया है बन्द कर दिया। दुहरे शासन की प्रथा का अन्त करने के लिये उसने देश को मालगुजारी सीधी लेनी आरम्भ की तथा जुर्माने का पंच वार्षिक बन्दोबस्त करके उन ठेकेदारों को भूमि दी जो सबसे अधिक भूमि करदे सके अर्थात् पुराने जमींदारों को नष्ट कर दिया।

न्याय विभाग में भी हेस्टिंग्स ने सुधार किया। उसने कलकत्ते में दो अपील की अदालत स्थापित की। पहला सदर दीवानी अदालत जिसका अधिकारी अपनी कौंसिल के दो सदस्यों के साथ वह स्वयं था। तथा दूसरे सदर निजामत जिसमें एक मुसलमान अधिकारी था।

हेस्टिंग्स के अन्य सुधार

उसने अपनी कौंसिल को समितियों में बांट कर प्रति समिति को एक विभाग दे दिया जिससे उचित सम्मतियां मिल सकें।

प्रत्येक प्रदेश (जिले) से मालगुजारी एकत्र करने के लिये कलक्टर नियत किये।

सब कलक्टरों को ६ कमिश्नरियों में विभक्त कर दिया जिनका काम अपीलें सुनना तथा मालगुजारी की देख-भाल

करना था। कलक्टरों को न्यायाधिकार भी प्राप्त थे जिनको सहायता के लिये पण्डित और मौलवी नियुक्त थे।

प्रत्येक अदालत में न्यायाधीशों की सहायता के लिये भारतीय असेसर नियुक्त थे जिनमें एक हिन्दू तथा एक मुसलमान था। मुसलमानों के फतवाए आलमगीरी से सहायता ली जाती थी तथा हिन्दुओं के लिये धर्मशास्त्र के विद्वानों से एक नवीन न्याय व्यवस्था का संग्रह कराया जाता था।

पुलिस विभाग — पुलिस विभाग का पुनर्निर्माण किया गया। सन्यासी विद्रोह को शान्त करने के लिये को विशेष पुलिस अधिकार दिये गये थे।

ग्रामों और जिलों में नये पुलिस अफसर नियुक्त किये गये।

जमींदारों को कानून द्वारा पुलिस की सहायता के लिये वाध्य किया।

व्यापारिक — अधिकांश व्यापारों का एकाधिकार समाप्त कर दिया।

सर्वत्र एक प्रकार की चुंगी नियत करने का नियम बनाया। नमक के कर का विवरण हम कर चुके हैं।

कलकत्ता में एक बैंक की स्थापना की।

शिक्षा सम्बन्धी सुधार — दिल्ली में मुसलमानों के लिए कलकत्ता मदरसा खोला।

प्राच्य साहित्य के अनुवाद का प्रबन्ध किया।

बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का निर्माण किया।

हम पहले कह चुके हैं कि उसे शाह आलम की पेंशन बन्द कर देने का नैतिक अधिकार नहीं था। सन्धि की शर्तों में यह नहीं था। शाह आलम अंग्रेजों की इच्छानुसार ही चलेगा। परन्तु पेंशन बन्द करके ही सन्तोष नहीं किया। हेस्टिंग्स ने कड़ा और इलाहाबाद के जिले फिर शुजाउद्दौला को दे दिये और

हेस्टिंग्स की अनीतियां

इसके बदले उससे ५० लाख रुपया और वसूल किया।

मराठों के आक्रमण में नवाब शुजाउद्दौला ने कुछ सहायता रुहेल सरदार हाफिज रहमत खां की की थी परन्तु नवाब ने उसके बदले रुहेलों से ४० लाख रुपया मांगा।

रुहेलों पर आक्रमण

रहमत खां इस योग्य नहीं था परन्तु नवाब ने अंग्रेजों की सहायता से रुहेलखण्ड पर आक्रमण कर दिया। रुहेले पराजित हुये। हेस्टिंग्स को रुहेलों पर चढ़ाई करने का कोई अधिकार नहीं था। रुहेलों को देश से निकाल दिया गया तथा उनके राज्य का बहुत सा भाग शुजाउद्दौला को दे दिया गया।

इतना सब करने पर भी हेस्टिंग्स कम्पनी की आर्थिक स्थिति न सुधार सका। सुधारता किस प्रकार नीचे के कर्मचारी से लेकर वह स्वयं तक भ्रष्टाचार में डूबे हुये थे। अन्यथा हेस्टिंग्स को जो रुपया मिला था यदि उसका उचित उपयोग किया जाता तो दशा अधिक न बिगड़ती। कम्पनीने दीवालियापन से बचने के लिये अँग्रेज सरकार से उधार रुपया मांगा। सरकार ने कम्पनी की दशा जांच करके दो कानून पास किये। पहले कानून से १४ लाख रुपया कम्पनी को ४ प्रतिशत व्याज पर दिया गया। ये कानून १७७३ में बने। दूसरे कानून से कम्पनी का शासन विधान सुधारा गया। इसको रेगूलेटिंग ऐक्ट कहते हैं।

रेगूलेटिंग ऐक्ट

अंग्रेजी राज्य का पहला विधान था। उसमें निम्नलिखित बातें कम्पनी को करनी आवश्यक थीं। बंगाल का गवर्नर सारे भारतीय राज्य का गवर्नर जनरल बनाया गया परन्तु उस पर नियन्त्रण रखने के लिए चार सदस्यों की कौंसिल बनाई गई। गवर्नर जनरल को कौंसिल के सदस्यों की सम्मति का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं दिया गया। गवर्नर जनरल का कार्य काल ५ वर्ष रक्खा गया।

गवर्नर जनरल को शेष भागों का सर्वोच्च अधिकारी बना दिया गया (अर्थात् बंगाल और बम्बई के गवर्नर बंगाल के गवर्नर जनरल के आधीन हो गये।

सरकार ने नियम बना दिया कि मालगुजारी या व्यापारिक लिखा पढ़ी सरकार के सामने अवश्य उपस्थित की जाय। तथा प्रत्येक नवीन फौजी या व्यापारिक कार्यवाही की सूचना अंग्रेजी सरकार को दी जाय।

न्याय विभाग से सुप्रीमकोर्ट की स्थापन की गई जिसमें इला-हेस्टिंग्स को यजा इम्पीजज नियुक्त हुआ। यद्यपि विधान के अनुसार इम्पी पर का कोई अधिकार न था। परन्तु इम्पी हेस्टिंग्स का बाल्यबन्धु था। यहाँ इस ऐक्ट की चर्चा केवल इसलिये करनी थी कि इसके द्वारा हेस्टिंग्स के कुकृत्यों पर बड़ा प्रकाश पड़ा है। इस ऐक्ट में एक फ्रांसिस नामक सदस्य था। वह न्याय-प्रिय और सत्य पर आग्रह करने वाला था। वह सदैव हेस्टिंग के दुष्कृत्यों का विरोध करता था। अतएव महाराज नन्दकुमार ने बङ्गाल में ज़मीनों के पट्टे देते समय हेस्टिंग्स की ली हुई रिश्वतें, तथा मुर्शिदाबाद के मृत नवाब मीरजाफर की स्त्री मुन्नी बेगम को धमका कर लिये हुये रुपये का अपराध लगाकर फ्रांसिस के पास गवाही, साक्षी और प्रमाणों के साथ पहुँचा दिया। प्रमाण पक्के थे अतएव हेस्टिंग भयभीत हो गया उसने इलायजा इम्पी से सौदा गाँठ कर नन्दकुमार पर जाल साजी का मुकद्दमा चलवा दिया। किसी प्रकार के शुद्ध प्रमाणों के अभाव में भी इम्पी ने इंग्लिस्तान के कानून के अनुसार नन्दकुमार को फाँसी की आज्ञा दे दी। इस अन्याय का उत्तर दायी केवल हेस्टिंग्स है। नन्दकुमार की फांसी से कम्पनी के लाभ हानि का कोई सम्बन्ध नहीं था। न तो उन पर अपराध

नन्द कुमार को फाँसी

प्रमाणित हुआ और न दण्ड ही भारतीय न्याय के अनुकूल था।

(१५७८) अंग्रेज और फ्रांसीसी युद्ध से बनारस को क्या प्रयोजन। परन्तु अंग्रजों को आवश्यकता पड़ने पर सेना कहाँ से मिलती। अथवा दक्षिण के युद्धों में ही अधिक सेना कहाँ से इकट्ठा की जाती कम्पनी के पास कोतल सेना रखने को पैसे नहीं थे।

बनारस की लूट

अतएव हेस्टिंग्स ने राजा चेतसिंह को आज्ञा दी कि ३ पलटने पैदल और १५ लाख सवार अपने यहाँ रक्खें तथा उनके खर्च के लिये ५ लाख रुपया सालाना दिया करे। ये पल्टनें कम्पनी के अधिकार में रहेगी उनके सेनापति अंग्रेज होंगे। बेचारे चेतसिंह की रियासत इस व्यय को संभालने के योग्य नहीं थी। अतएव उस पर चढ़ाई कर दी गई। पहले युद्ध में बनारस के नागरिकों ने अंग्रेजों को हरा दिया दूसरे युद्ध में चेतसिंह की हार हुई। बनारस और रामगढ़ का समस्त धन लूट लिया गया तथा इलाके पर अंग्रेजी प्रभुत्व स्थापित हो गया।

(१५८१) नवाब शुजाउद्दौला मर चुका था। और आसफनुद्दौला लखनऊ के सिंहासन पर था। हेस्टिंग्स ने उससे रुपये मांगे। उसने असमर्थता प्रकट की। परन्तु हेस्टिंग्स ने उसे विवश किया तो उसने बता दिया कि मेरी माताओं के पास धन है। फिर क्या था। जज इलाइजा इम्पी सहायक था।

अवध की बेगमों की लूट

गवाहियाँ ली जाने लगीं और अवध की बेगमों पर चेतसिंह को सहायता देने का अपराध प्रमाणित हो गया। महल घेर लिया गया। स्त्रियों का भोजन पानी बन्द कर दिया गया। लौडियों बादियों पर अत्याचार प्रारम्भ हुये और विवश होकर १ करोड़ २० लाख की सम्पत्ति बेगमों को देनी पड़ी।

इस्टिंग्स ने चुपके से १० लाख रुपये असफुद्दौला से रिश्वत में भी ले लिये।

इक्यावनवाँ अध्याय

अंग्रेजों को निकालने का चौथा यत्न दक्षिण में

एक बात स्मरण रखने की है। केवल विदेशी होने के नाते अंग्रेजों को भारत से निकालने का संगठित प्रयत्न कभी कभी नहीं किया गया। जब अंग्रेजों की चालबाजियों से देशी नरेश ऊब गये तभी उन्होंने ऐसे प्रयत्नों में हाथ लगाया। पूर्व में अपनी सत्ता स्थिर करने पर अंग्रेजों ने समझ लिया कि अब भारतवर्ष से केवल तीन शक्तियाँ शेष हैं जिनके पतन से समस्त भारतवर्ष उनके अधिकारों में होगा। वे शक्तियाँ मराठे निजाम हैदरअली की थीं।

उनमें सब से प्रबल शक्ति मराठों की थी यह शक्ति सबसे प्रबल इसलिए भी थी कि इसकी पाँचों सत्ताओं में अटूट संगठन था यदि यह संगठन तोड़ा जा सके तभी मराठा शक्ति का नाश सम्भव था। अतएव डोरे डाले जाने प्रारम्भ हुए। गुजरात के गायकवाड़ की मृत्यु पर चार उत्तराधिकारी हो गये। उनमें से सयाजी और गोविन्दराम मुख्य थे। पहले तो छोटे भाई को उभार कर अंग्रेजों ने अपने बड़े भाई से लड़ा दिया फिर सयाजी से मेल करके भड़ौच और सूरत की आस पास की भूमि पर अधिकार करके उसे मराठा संगठन से फोड़ दिया।

इसी समय दुर्भाग्य से पेशवा माधवराव की मृत्यु हो गई। माधवराव की मृत्यु के उपरान्त उसका भाई नारायण-राव पेशवा निर्वाचित हुआ। अंग्रेजों ने नारायणराव के चाचा राघोवा को फोड़ लिया और उससे सन्धि करके साष्टी और

वसई (सालसिट और वसीन) स्थानों को अंग्रेजी अधिकार में लेने के बदले राघोवा को पेशवा बना देने का निश्चय किया। राघोवा ने छल से नारायणराव का वध कर दिया। और स्वयं पेचवा बन गया। यह घटना (१७७२—७३ ई०) की है।

परन्तु दुर्घटना का भेद खुल गया अतएव जब राघोवा दक्षिण में हैदरअली पर चढ़ाई करने गया था पूना दरबार ने नारायणराव की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न बालक को पेशवा घोषित कर दिया। राघोवा दुर्बल हृदय था। अतएव भागकर गुजरात पहुंचा और अंग्रेजों से सहायता की याचना की।

कहा जाता है कि वारेन हेस्टिंग्स ने बम्बई के गवर्नर द्वारा की गई राघोवा सन्धि को स्वीकार नहीं किया और पुरन्दर में उस सन्धि को रद्द करके नानाफडनवीस से नवीन सन्धि की। इसमें राघोवा को पेशवा नहीं माना। वस्तुत: यह भी हेस्टिंग्स की एक चाल थी। इस सन्धि के पूर्ण होने से पहले ही हेस्टिंग्स अपनी बंगाल की सेना पश्चिम की ओर भेज चुका था। तथा मूदाजी भोंसले नागपुर के शासक तथा महादाजी सिंधिया से वार्त्तालाप करके उन्हें फोड़ने के कुचक्र चलाने लगा था।

कुछ भी हो पुरन्दर की सन्धि का अंग्रेजों ने पालन नहीं किया। बंगाल से आने वाली सेना, सिन्धिया के प्रलोभन में फंस जाने से ग्वालियर होकर भूपाल के नवाब को रिश्वत देकर नर्मदा तक आ गई। अब मराठों ने देख लिया कि यह सन्धि केवल एक जाल है। अत: उन्होंने युद्ध की तैयारी की। बम्बई सरकार की पहली सेना को १७७६ ई० में पराजित करके बम्बई सरकार को सन्धि करने के लिए बाध्य कर ही दिया था। अब की बार फिर तालीगांव स्थान पर कर्नल एगर्टन की सेना को मराठों ने काट डाला तथा और आगे बढ़ने पर गोडार्ड की सेना को भी धूल में मिला दिया। अँग्रेजों ने आते

समय सिन्धिया को पूना दरबार से विश्वासघात करने का भी पुरस्कार उसका ग्वालियर का किला छीन कर दे दिया था। परन्तु इस पराजय से अँग्रेजी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई और १७८२ ई० में भीगी बिल्ली की भांति समस्त युद्ध का हर्जाना देकर, गायकवाड़ की समस्त भूमि छोड़कर तथा बसई छोड़कर सालबई सन्धि करनी पड़ी।

यदि इस प्रयास में मूदाजी भोंसले ने नानाफरनवीस की आज्ञानुसार बंगाल पर आक्रमण कर दिया होता तो हेस्टिंग्स की भी दशा वही होती जो चंदा साहब की क्लाइव ने की थी। परन्तु अंग्रेजों की भेद-नीति के फन्दे में फँस कर मूदाजी अपनी ४० हजार सेना लेकर उड़ीसा तक गया और वहां से वर्षा ऋतु का बहाना बना कर लौट आया। इसी प्रकार सिन्धिया ने भी अपना कर्तव्य ठीक से पालन नहीं किया नहीं तो अँग्रेजी सेना बंगाल से पश्चिम तक पहुँच ही न पाती।

अंग्रेजों ने इस अवसर पर सिन्धिया को अवश्य अपनी ओर पूर्णतया मिला लेने में सफलता पाई और उसी के प्रयत्न से सालबई की सन्धि में साष्टी का द्वीप अंग्रेजों को मिल गया। परन्तु पश्चिम तट से अंग्रेजों की शक्ति का अन्त अवश्य हो गया।

बावनवां अध्याय

अंग्रेजों को निकालने का ५वां प्रयत्न दक्षिण में

१७६९ ई० में अंग्रेजों ने हैदरअली से सन्धि करके प्रण किया था कि अवसर पर दोनों एक दूसरे की सहायता करेंगे। परन्तु मराठा आक्रमण के समय अंग्रेजों ने सहायता मांगने

पर भी कोई सहायता नहीं दी थी। अतएव १७८० ई० में जब अंग्रेज मराठा युद्ध में फँसे हुए थे उसने उत्तरी सरकार अंग्रेजों से मांगा। जब अंग्रेजों ने अपनी सन्धि का पालन नहीं किया जिसके आधार पर कर्नाटक उन्हें दिया गया था तो हम हैदर के इस आग्रह पर उसे अन्याय करने का दोष नहीं दे सकते। इस आक्रमण का मुख्य कारण यह था कि मुहम्मद अली को पहली हैदर अली की सन्धि में मैसूर राज्य के आधीन मानलिया गया था। लगान पहुँचाने का उत्तरदायित्व अङ्गरेजों ने लिया था परन्तु उसे अङ्गरेजों ने नहीं किया।

हैदर ने १७८० ई० में एक बड़ी सेना के साथ कर्नाटक पर आक्रमण कर दिया। आरकाट में इतनी शक्ति कहां थी। कि वह हैदर का सामना करता। अङ्गरेजों और मुहम्मद अली की सेनाओं को टीपू ने काट डाला अब आयर कूट जल सेना के साथ भेजे गये। पोर्टोनोवी के युद्ध में १७८१ ई० में भयंकर हानि उठा कर कूट महोदय को मद्रास में शरण लेनी पड़ी। परन्तु उस युद्ध में हैदर के भी बहुत से सैनिक काम आये। परन्तु १७८२ ई० में हैदर की कमर के फोड़े में विष उत्पन्न हो गया अतएव उसकी मृत्यु हो गई। अङ्गरेजों को हैदर की मृत्यु से बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु हैदर के पुत्र टीपू ने उनकी प्रसन्नता को निराशा में बदल दिया। अङ्गापट्टम में बम्बई से आने वाली सेना को पराजित कर दिया और मंगलौर वेदनूर आदि किले जो अङ्गरेजों ने अधिकार में कर लिये थे छीन लिये।

अपनी निरन्तर पराजय देख कर १७८४ ई० में वारेनहेस्टिंग्स ने मंगलौर स्थान पर टीपू से सन्धि करली।

हिन्दुओं से व्यवहार हैदर के चरित्र के सम्बन्ध में बिना कुछ कहे अंङ्गरेजों को निकालने के छल का यह अध्याय पूरा नहीं हो सकता।

हैदरअली सच्चा भारतीय राजा था। जन्म से यह मुसलमान था तथा मुसलमान धर्म का जीवन भर अनुयायी रहा परन्तु इसके अतिरिक्त उसके व्यवहार में धार्मिक अन्धता का नाम भी नहीं था। हिन्दुओं को मुख्य मन्त्री बनाना, हिन्दु मन्दिरों का निर्माण, हिन्दु साधु सन्तों का आदर और उन्हें भेंटे देना हिन्दु त्योहारों को राष्ट्रीय त्योहारों की भांति मनाना, गोवध निषेध करना उसके ऐसे काम हैं जिनसे अधिक की आशा किसी हिन्दु राजा से भी नहीं की जा सकती।

हिन्दुओंसे व्यवहार

बुढ़िया की प्रार्थना पर अपने ही जमादार हैदर शाह के उसने सौ कोड़े इसी लिये लगवाये, कि उसने बुढ़िया की अर्जी हैदर तक नहीं पहुँचाई। बुढ़िया की लड़की को उसका पहला जमादार आगा मोहम्मद भगा ले गया था उसकी गरीब प्रजा पर अत्याचार करने वाला आगा मोहम्मद मुसलमान था तो क्या हुआ? उसका सरकाट लिया गया और लड़की उसकी मां के पास भेजदी गई।

न्याय प्रियता

हैदर ने सेना को आदेश दे रखा था कि जीत के उपरान्त लूट न की जाय। इस काम के लिये पुलिस का एक विभाग था जो विजित देशों में तुरन्त पहुँच जाता था। कला और व्यापार तथा कृषि की उन्नति के लिये वह सदैव यत्नवान रहा। उसने कारीगरों को उत्तम वस्तु बनाने के लिये सदैव आर्थिक सहायता दी इस के विपरीत कम्पनी के व्यवहार को फिर देखिये।

प्रजाहित

हैदर खूब समझता था कि भारतवर्ष के शत्रु मराठे नहीं हैं। अतएव वह मराठों के युद्धों को सदैव टालता रहा। उस

उसकी बुधिमत्ता — की तीक्षण दृष्टि के सामने अङ्गरेजों का हृदय आईने की भांति स्पष्ट हो गया था। अतएव उसका सदैव यत्न उन्हें भारतवर्ष से निकालने में रहा। भारतवर्ष का दुर्भाग्य है। कि उसकी मृत्यु शीघ्र हो गई। यद्यपि नाना फड़नबीस की भांति वह चतुर नहीं था क्योंकि उसने अपनी सेना में ऊंचे पद विदेशियों को देकर अपने घर को विश्वासघात का अड्डा बना लिया किन्तु इससे उसे अपनी सेना के संगठन में अवश्य सहायता मिली। यदि जीवित रहता तो कदाचित सैन्य संगठन पूर्ण हो चुकने के उपरन्त विदेशियों को निकाल देता। परन्तु उसकी मृत्यु हो गई और टीपू की दृष्टि इस ओर नहीं गई।

तिरेपनवाँ अध्याय

अंग्रेजी राज्य

स्थिरता के लिये प्रयत्न

१७८४ ई० में० पिट का इण्डिया बिल—भारतवर्ष की कम्पनी पर लगा हुआ।

विशेषतायें—६ सदस्यों का बोर्ड आफ कण्ट्रोल (नियन्त्रण कारिणी) समिति बनी।

३ संचालकों की गुप्त समिति बनी।

नियन्त्रण समिति के हाथ में कम्पनी के सब अधिकार आ गये और गुप्त समिति सलाहकार समिति रही।

संचालक समिति के प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार ले लिये गये। शेष अधिकार रक्खे गये। सेनापति तथा गवर्नर जनरल

की नियुक्ति पार्लामेंट के प्रधान मंत्री की सम्मति से होना निश्चित हुआ।

भारतवर्ष की कौंसिल में गवर्नर जनरल को अपने मताधिकार का प्रयोग मिला। कम्पनी के नौकरों को इंग्लैण्ड पहुँचने पर अपनी आय का कुल हिसाब सरकार को देना होगा अथवा सम्पत्ति अवैध समझी जायगी और विशेष न्यायालय में मुकद्दा चलेगा।

देशी राज्यों के झगड़े में कम्पनी भाग न लेगी।

इन हिदायतों के साथ श्री कार्नवालिस भारत पधारे क्योंकि हेस्टिंग्स को सब भारतवर्ष के रुपये का हिसाब देना होता अतएव उसे अपने अन्याय से कमाये धन की रक्षा की चिन्ता थी। वह भारत से नौकरी छोड़ कर भाग गया था।

लार्ड कार्नवालिस ने भारत में आकर सबसे पहले सुधार कार्य्यों में हाथ लगाया जिससे जनता के हृदय में बैठी हुई अंग्रेजों के प्रति अश्रद्धा का भाव दूर हो जाय। सब से पहले उसने भूमि का स्थायी प्रबन्ध। (इस्तमरारी बन्दोबस्त) किया।

१. जमीदारों को स्थिर रूप में भूमि मिल गई। और लगान निश्चित हो गया। इस समय के जमींदार और आज के जमींदार में अन्तर है। इस समय का जमींदार प्रजा के स्थायी प्रबन्ध के सुख में अपना सुख समझता था अतएव उसने गुण परिश्रम करके अंग्रेजों से की लूट के कारण उजड़ी हुई भूमि को फिर कृषि के योग्य बताया फलतः फिर बंगाल में हरियाली दिखाई देने लगी।

अभी तक लगान की कोई निश्चित संख्या नहीं थी। कम्पनी के अधिकारी जितना जब चाहते थे जमींदारों से मांगते और न देने पर पीड़ित करते थे। इस प्रबन्ध के द्वारा १० वर्ष

की कुल उपज का ६० प्रतिशत वार्षिक लगान बांध दिया। लगान निश्चित हो जाने से जमींदार भी उगाना देने के लिये निश्चिन्त होकर यत्न करने लगे।

सरकार को इससे लगान की वसूली में कठिनाई नहीं रही। लगान प्रत्येक दशा में देना ही था चाहे उपज हो या न हो क्यों कि यदि समय पर लगान न जमा हो सका तो जमींदारी नीलाम हो जाने की सम्भावना थी। अतएव जमींदार उतना लगान सदैव पहुँचाते रहते थे।

इस व्यवस्था से जमींदार सन्तुष्ट हो गये तथा बंगाल में अंग्रेजी साम्राज्य में स्थिरता आ गई। जमींदारों के सन्तोष ने साधारण प्रजा को भी विद्रोह की बात सोचने की अपेक्षा अपने अपने कार्य में लगा दिया।

जमींदारों के परिश्रम से भूमि सुधरी, भूमि के सुधरने से जमींदारों की स्थिति सुधरी उन्होंने अपने बच्चों को शिक्षा में लगाया और अंग्रेजी की शिक्षा के प्रचार के साथ साथ अंग्रेजों को असंख्य शिक्षित बंगाली अपने कार्य के लिये मिलाने लगे।

वार्षिक प्रबंध में या ५ वार्षिक प्रबन्ध में कम्पनी का जो धन व्यय होता था वह सबब च गया। पटवारियों कानूनगोओं और तहसीलदारों की आवश्यकता नहीं रही। अतएव लगान प्राप्ति को व्यवस्था में कम्पनी का एक पैसा भी व्यय नहीं हुआ। हर्रे लगे न फिटकरी रंग चोखा हो गया।

इस व्यवस्था में भूमि के वास्तविक आर्यों का किसान की स्थिति पर कहीं ध्यान नहीं दिया गया। उन्हें सम्पूर्ण तया जमींदारों के आसरे तथा उनकी दया पर छोड़ दिया गया। जब तक पैसे का इतना महत्व नहीं था तब तक जमींदार और किसान का

इस व्यवस्था के कुछ दोष

सम्बन्ध इस अवस्था से भी कटु नहीं हुआ। परन्तु आगे चल कर कटुता बढ़ने के बीज इसी समय और इसी व्यवस्था से उत्पन्न हुए।

सरकार को भी लगान बढ़ाने का अधिकार नहीं रहा। इससे सरकार की आमदनी निश्चित हो गई। अतएव बंगाल पर आय की अपेक्षा व्यय अधिक होने के कारण अन्य प्रांतों पर व्यय का भार पड़ने लगा।

बंगाल में इस प्रकार अपने राज्य के स्थिर करने के बाद कम्पनी का गवर्नर जनरल उसके विस्तार की चिंता में लगा अब उसके सम्मुख दो प्रश्न थे। मराठा या टीपू किसको पहले पराजित किया जाय। मराठे उस समय तक अजेय थे। यद्यपि महादाजी सिन्धिया को मिला लिया गया था परन्तु मराठा शक्ति के विनाश में महादा जी सहायक नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त पूना के पेशवा दरबार की शक्ति भी बहुत बड़ी थी। अतः टीपू को पराजित करने का निश्चय किया गया।

परन्तु टीपू को भी अकेले पराजित करना है सो खेल नहीं था। अतएव पहले मराठों को अपनी ओर मिलाना आवश्यक था। मराठे सीमा सम्बन्धी झगड़ों के कारण टीपू से अप्रसन्न थे ही। कारर्नवालिस ने निजाम से सन्धि करके, मूदा जी भोंसले तथा सिन्धिया को फांसकर पूना दरबार से सन्धि कर ली ताकि टीपू पर आक्रमण करते समय मराठे अपनी सैनिक सहायता अंगरेजों को प्रदान करें।

अब टीपू पर आक्रमण करने के लिये बहाने की आवश्यकता भर रह गई। उस पर दोष लगाया गया कि वह भावनकोटकराना पर आक्रमण करना चाहता है। टीपू ने लाख कहा प्रमाण दिया कि उसका कोई इस प्रकार का विचार नहीं है।

परन्तु १६६० ई० में उस पर आक्रमण कर दिया गया। बंगाल और मद्रास की संयुक्त वाहिनी के सेनापति ने बड़ी चेष्टायें कीं परन्तु प्रत्येक बार निराश हो कर उसे भागना पड़ा। टीपू विजयी हुआ। अब कार्नवालिस स्वयं सेना लेकर चला मराठों और निजाम की सेनाओं ने उसका साथ दिया। कार्नवालिस को ५ लाख पौंड इस काम के लिये मिले थे। उसने थैली का का मुंह खोल दिया और टीपू की सेना के विदेशी अफसरों को फोड़कर मिला लिया। फलतः बंगलौर का किला कार्नवालिस ने जीत लिया। अब कार्नवालिस ने श्रीरंगापट्टम (मैसूर की राजधानी) पर आक्रमण किया। टीपू ने सन्धि करनी चाही। अतः सन्धि कर ली गई। १७६२ ई० का इस सन्धि के अनुसार टीपू को अपना आधा राज्य मराठे निजाम और अंगरेजों को देना पड़ा। तथा ३ करोड़ ३० हजार रुपया हर्जाने का तीन वर्ष की वार्षिक किश्तों में चुकाने का प्रण करना पड़ा जिसके लिये उसके दो पुत्र बन्धक रख लिये गये। इस स्थान पर नाना फरनवीस की दूर दर्शिता में हमें दोष दिखाई देता है। बालक नवयुवक टीपू के प्रति मराठा जाति का यह व्यवहार उनका कलङ्क है।

अब कार्नवालिस बंगाल और बिहार के सूबे स्वतन्त्र करके अंगरेजी राज्य घोषित करने के लिये दिल्ली दरबार को खिराजमांगने पर उत्तर दे दिया कि आपको इन देशों से राज कर मांगने का अधिकार नहीं है। इस प्रकार दक्षिण में मद्रास से लेकर उड़ीसा और बिहार और बंगाल तक एक में मिलाने के लिये केवल गुंटूर का प्रदेश निजाम के हाथ में रह गया था। अतः टीपू को पराजित कर चुकने पर निजाम से ले लेना कुछ ठीक न था। अचानक एक दिन अंगरेज सेनापति निजाम के पास पहुँचा और उससे कह दिया कि गुण्टूर का इलाका

अंगरेजों को दे दो। विचारा निजाम 'नहीं' कैसे करता। गुण्टूर अंगरेजी राज्य का अंग बन गया।

अंगरेज सरकार सदैव जानती रही है कि किसी देश की जनता पर यदि शासन करना है तो उसकी संस्कृतिक और सामाजिक एकता का विनाशक रहो। भारतवर्ष की ग्राम पंचायतों में उनकी संस्कृतिक और सामाजिक एकता की जड़ें पाताल तक गहरी गाड़ दी थीं अतएव जब तक इन ग्राम पञ्चायतों का विनाश न हो अंगरेज राज्य की जड़ दृढ़ता पूर्वक नहीं जम सकती। तथा भारत वासियों में फूट के बीज नहीं बोये जा सकते। कार्नवालिस ने सुधार के नाम पर अब इस ओर ध्यान दिया। पंचायतों के नाश का एक मात्र उपाय उन से मुकद्दमे का अधिकार छीन लेना है। अतएव उसने कानून की ऐक ऐसी उलझी पुस्तक का संग्रह कराया जिससे पंचायतों का यह अधिकार नष्ट हो गया। और वकीलों मुख्तारों की उत्पत्ति प्रारम्भ हुई।

अवध के नवाब ने प्रार्थना की उसके यहां से सहायक सेना हटा ली जाय परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। इतना अवश्य किया कि सेना के व्यय के लिये ७४ लाख सालाना जो अवध से लिये जाते थे उन्हें कम करके ५० लाख सालाना कर दिया। तथा अवध के राज्य में अंग्रेजों का व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त कर दिया।

अवध में सेना रखने का प्रयोजन भी भारतवर्ष में अंगरेजी राज्य की रक्षा का भाव था क्योंकि पंजाब में सिख शक्ति का विकास हो रहा था और सिन्धिया यद्यपि अंगरेजों का मित्र था। परन्तु अंगरेज किसी का विश्वास क्यों करने लगे।

१७६५ ई० में फ्रांस क्रांति से लाभ उठाकर उसने भारतवर्ष के फ्रांसीसी उपनिवेशों को भी अंगरेजी राज्य में मिला दिया।

इसी समय १७६६ ई० में कम्पनी को नवीन चार्टर प्राप्त हुआ इस चार्टर को २० वर्ष के लिये स्वीकार किया गया किन्तु भारतीय व्यापार के कम्पनी के एकाधिकार में कुछ कमी कर दी गई तथा अन्य व्यापारियों को भी भारतवर्ष में थोड़ा सा व्यापार करने की सुविधा दी गई। कम्पनी को आदेश दिया गया कि वह ईसाई धर्म का प्रचार न करे। केवल शिक्षा प्रसार में ही कुछ खर्च करे।

सरजान शोर (१७६३–६८ ई०)

सरजानशोर की नीति तटस्थता की थी परन्तु यह तटस्थता केवल दिखावे की ऊपर की थी। भीतर भीतर मराठा शक्ति के नाश के लिये कुचक्र रचे जा रहे थे। अंग्रेजों ने अहल्या-बाई की मृत्यु के उपरान्त होलकर गद्दी के अधिकारी तुकाजी-राव होलकर की सिन्धिया राज्य पर भड़का कर आक्रमण करा दिया। सिंधिया उस समय पूना में था। परन्तु सिन्धिया के सेनापति डीवायन ने होलकर को पराजित किया। यह घटना ठीक उस समय की है जब जानशोर भारत में आया था।

परन्तु जानशोर के आते ही महादाजी सिंधिया जब पूना से लौट रहा था गुप्तरीति से मरवा डाला गया। अतएव १७६४ ई० में दौलतराय सिंधिया गद्दी का अधिकारी बना।

निजाम पर मराठों का कुछ रुपया बाकी था। निजाम में अंग्रेजी सहायक सेना के बल पर उसे चुकाने से इनकार कर दिया। अतएव मराठों ने निजाम पर आक्रमण किया। सर-जानशोर इस समय कन्नोकाट गया। क्योंकि नानाफरनवीस ने अपनी चतुरता से फिर सिन्धिया और होलकर में मेल करा दिया था। अतएव निजाम की रक्षा के लिये जाने का अर्थ सीधा युद्ध करना था। कुदाला स्थान पर निजाम की भयंकर

पराजय हुई। इससे निजाम ने अंग्रेजों को अपनी सहायक सेना बुला लेने को लिखा और अपनी सेना संगठित करने लगा। परन्तु जानशोर की हस्तक्षेप न करने की नीति कमजोर निजाम को दबाने के लिये नहीं थी। राज्य में विद्रोह कराकर निजाम की बुद्धि ठिकाने कर दी गई और सेना का अधिक व्यय मढ़ दिया गया।

इसी प्रकार कर्नाटक के नवाब से कई जिले झूठे सच्चे कर्जे दिखाकर ले लिये गये। अवध के सम्बन्ध में तटस्थता की नीति अंग्रेज गवर्नर जनरल ने नहीं बरती। आसफुद्दौला की मृत्यु के उपरान्त जिस राजकुमार को गद्दी मिली था उसके विरुद्ध बनारस में रहने वाले सआदतअली खाँ को खड़ा किया गया तथा घटाई हुई सहायक सेना के व्यय के ५० लाख रुपया से ७६ लाख रुपये सालाना का व्यय उसके गले मढ़ दिया गया तथा बनारस के समीप पड़ने वाले इलाहाबाद तक के जिले जो अवध के राज्य में थे ले लिये गये। इतिहास लेखकों का मत है कि इस समय अवध से १½ करोड़ रुपया वसूल किया गया। जिसका उपयोग डच उपनिवेशों के जीतने में हुआ।

प्रश्न

(१) इस काल में अंग्रेजों को भारत से निकालने के कौन से प्रयत्न हुए। तथा उनमें असफलता के क्या क्या कारण थे।

(२) नवाब सिराजुद्दौला, तथा मीरकासिम की पराजय के कारणों पर विचार करो।

(३) अंग्रेजों ने दुहरा प्रबन्ध क्यों स्थापित किया था। देश पर इसका क्या प्रभाव पड़ा।

(ने) रेगुलेटिंग एक्ट की क्या आवश्यकता थी तथा इसका क्या प्रभाव हुआ।

(५ "इग्लैण्ड की सरकार ने पिट्स इण्डिया बिल से कम्पनी के राज कार्यों में हाथ डालना प्रारम्भ किया" क्या पिट्स-इण्डिया बिल में इस बात का परिचय मिलता है।

(६) स्थायी प्रबन्ध (इस्तमरारी बन्दोबस्त) के गुण और दोष पर विचार करो।

(७) हैदरअली और नानारड़नवीस जैसा कोई व्यक्ति उत्तर में भी होता तो भारतवर्ष में अंग्रेजों का राज्य इतनी शीघ्रता से न पनपता।" प्रमाणित करो।

(८) "टीपू पर आक्रमण नाना फरनवीस की भूल थी" इसका क्या फल हुआ। भारतीय दृष्टिकोण से इसका विचार करो।

(९) क्लाइव यदि राज्य सँस्थापक था तो कार्नवालिस उसका पुष्ट करने वाला" प्रमाणित करो।

तिथि के अनुसार विवरण

१७५१ त्रिचनापल्ली का घेरा

१७५३ क्लाइव का स्वदेश लौटना

१७५४ डूप्ले का विनाश

१७५७ लासी का युद्ध (क्लाइव सिराजुद्दीन) चन्द्रनगर विजय

१७५७-६० मीरजाफर बंगाल का नवाब

१७५८ फ्रांसीसी लैली का आगमन

१७५९ उत्तरी सरकार की विजय अङ्गरेजों द्वारा

१७६० वन्देबासा की विजय

१७६०-४४ वंसीवार्ट बंगाल का गवर्नर

१७६१ पाण्डेचरी पर अधिकार (अङ्गरेजों द्वारा) शाहआलम का बंगाल तक फेरा

१७६१ हैदरअली का मुख्य मंत्री पद पाना, पटना में [illegible] द्वारा अङ्गरेजो का बध

१७६४ बक्सर में शुजाउद्दौला की पराजय

१७६५ इलाहाबाद की सन्धि

१७६७-६६ मैसूर का युद्ध (हैदरअली और अङ्गरेज)

१७७२ वारेन हैस्टिंग्स गवर्नर

१७७३ रेगूलेटिंग एक्ट

१७७४ रुहेला युद्ध

१७७४-८५ वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल

१७७५ सूरत की सन्धि (राघोवा और अङ्गरेज)

१७७६ पुरन्दर की सन्धि

१७७६-८२ मराठा युद्ध (अङ्गरेज और पेशवा)

१७६२ सालबाई की संधि (पेशवा और अङ्गरेज)

१७८२ हैदरअली की मृत्यु

१७८४ मंगलौर की सन्धि (टीपू और अङ्गरेज), पिटस इण्डिया बिल

१७८६-६३ लार्ड कार्नवालिस

१७६०-६२ मैसूर युद्ध (टीपू और अङ्गरेज)

१७६२ श्रीरंगपट्टम की सन्धि (टीपू और अङ्गरेज),

१७६३ नया चार्टर

१७६४ महादाजी सिन्धिया की मृत्यु

१७६५ अहल्याबाई और कर्नाटक के नवाब मुहम्मद अली की मृत्यु

१७६५ कुलदा का युद्ध (निजाम मराठे)

अहल्याबाई

छल और प्रवञ्चनाओं से पूर्ण इतिहास की इस निशा का

विवरण हम कर चुके परन्तु इस काल की अपने सौन्दर्य में पूर्ण उज्जवल तारिका अहल्याबाई का दर्शन किये बिना भारतीय आत्मा को शान्ति नही मिल सकती अपनी एकान्तता से उज्जवल प्रपञ्चों के कुहासे से मुक्त भारतीय गगन की यह ज्योत्स्ना अपने एकान्त प्रकाश से सदैव महा राज्यों की ज्योति को फीका और मलिन करती रहेगी। ऐसा हमारा विश्वास है।

रानी का जन्म तुच्छ कृषक कुल में हुआ था। उसके रूप गुण पर मुग्ध होकर बारह वर्ष की किशोरी अहल्या को मल्हारराव ने उसके पिता से मांग कर अपनी पुत्र बधू बनाया। १८ वर्षों तक निस्सन्तान पति सेवा का उसे अवसर प्राप्त हुआ परन्तु १७६५ ई० में दैवदुर्विपाक से वह विधवा होगई। पुत्र के दुःख से दुःखी मल्हार राव भी चल बसा। अन्ततः इन्दौर का राज्याधिकार अहिल्या बाई को प्राप्त हुआ।

राघोवा ने उसे स्त्री जान कर जब उसका राज्य हरण करना चाहा तो वह स्वयं अस्त्र-शस्त्र से सज्जित होकर स्त्रियों की सेना लेकर युद्ध को तत्पर होगई एक भी पुरुष उसने सेना में नहीं रक्खा लज्जित राघोवा इतना पतित नहीं होगया था कि स्त्री दल से युद्ध करता। अहल्याबाई की शान्ति न भङ्ग करके वह लौट आया।

राजनीति में वह महादाजी सिंधिया की भांति अस्थिर विचार की नहीं थी। अङ्गरेजों ने उसे अपने पक्ष में करने के लाखों यत्न किए। परन्तु पत्थर के समान अटल उस भारतीय महिलाने ने अपने देश अपने संगठन के प्रति विश्वासघात नहीं किया। लेफ्टीनेंट गोडार्ड को फमूपाल तक तो मार्ग मिल गया परन्तु पेशवा पर आक्रमण करने के लिए उसे अहल्याबाई के राज्य में प्रवेश करने की आज्ञा किसी प्रकार नहीं मिली।

उसे नर्मदा अहल्या बाई की राज्य सीमा के बाहर ही पार करनी पड़ी यद्यपि अङ्गरेजों ने इस अभिमान का उद्देश्य फ्रासीसीयों पर आक्रमण करना प्रचारित किया था परन्तु मांसले को धोखा दिया जा सकता था। सिंधियां को फुसलाया जा सकता था उस चतुरा नारी को फुसला लेना अङ्गरेजों के बुद्धि कौशल से परे था।

अहल्या के राज्य काल के ३० वर्ष प्रजा की सुख शान्ति के दिन थे। हिन्दू मुसलमान दोनों प्रजायें उस निस्सन्तान माता की सन्तान थे। अपने धर्म में परायणा इस नारी की व्यवस्था उसके प्रजाप्रेम और उसकी नीति कुशलता ने ३० वर्ष लगातार इन्दौर की प्रजा को शान्ति का सुख दिया। जिसे उसके उत्तराधिकारी तुकागीराव होलकर सिंधियों से मोल लेकर नष्ट कर दिया।

चौवनवां अध्याय

भारत में अंग्रेजी राज्य की सीमा का विस्तार

वेलजली १७६६-१८०५

पिट के इण्डिया बिल से एक लाभ तो भारतवर्ष को अवश्य हुआ कि भारतवर्ष में सब रिश्वतखोर गवर्नर जनरलों की अपेक्षा रिश्वत से दूर रहने वाले उच्च वंशीय गवर्नर जनरलों को ही आने का अवसर रह गया था। इनके द्वारा कम्पनी के तुच्छ आर्थिक लाभ की अपेक्षा भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य

का विस्तार होने लगा। वेलजली का शासन काल इसका प्रमाण है।

लार्ड वेलजली भारतवर्ष में राज्य स्थापना द्वारा खोये हुये संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की कमी पूरी करने के लिये भारतवर्ष में आया था। अतएव आते ही उसने भारतीय राजाओं के पास अपनी सहायक सन्धि की शर्तें भेजीं। देशी राज्यों को पराधीन करने के लिये इस सन्धि की शर्तों की रचना की गई थी। जैसे—

१. अंग्रेज की आधीनता सब देशी राजा स्वीकार करें।

२. प्रत्येक देशी राजा अपने शासन प्रबन्ध में सहायता देने के लिये अपने यहां एक रेजीडेण्ट रखे।

३. सैनिक सुरक्षा के लिये एक निश्चित अंग्रेजी सेना अपने यहां रक्खे। जिसका व्यय देशी राजा को देना होगा तथा जिस पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार होगा वे उसे जब चाहें अपने उपयोग के लिये बाहर भी बुलालें।

४. अंग्रेजों की सम्मति के बिना कोई देशी राजा किसी अन्य से सन्धि या युद्ध नहीं कर सकता।

५. सभी विदेशी राजकर्मचारी अंग्रेजों के अतिरिक्त निकाल दिये जायें।

इन शर्तों में पहली शर्त ही इतनी अपमान जनक थी। उसे कोई स्वाभिमानी राजा स्वीकार नहीं कर सकता था। अभी तक नाना फरनवीस जीवित था। अतएव मराठा दरबार का इस प्रकार की सन्धि स्वीकार कर लेना तो सम्भव ही नहीं थी। टीपू ने भी इसे अस्वीकार कर दिया। परन्तु इस समय वेलजली ने मराठों को इस बात पर सहमत कर लिया कि वे अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध न करेंगे।

अब वेलजली ने निर्बल निजाम के मुन्शी उल्मुल्क को फोड़ लिया। तथा उसके प्रपञ्च से निजाम को सहायक सन्धि स्वीकार करने पर विवश कर दिया। इन दोनों से निश्चिन्त होकर उसने टीपू की ओर दृष्टि उठाई।

किसी को कुत्ता कहकर फिर उसे गोली मार देनी की कहावत अंग्रेजी की प्रसिद्ध कहावत है अतएव टीपू पर फ्रांसीसियों का सहायक, युद्ध की तैयारी करने वाला आदि दोष लगाकर १७६६ ई० में आक्रमण कर दिया गया। टीपू ने अपनी अदूरदर्शिता से अपनी सेना में अनेक देशी लोगों को ऊंचे ऊंचे पद दे रखे थे। उन्होंने टीपू के साथ छल किया। चारों ओर विश्वासघातियों से घिरा हुआ टीपू मातावली में परास्त हुआ यदि हम इस पराजय के कारणों पर विचार करें तो पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जायगा। केवल इतना संकेत कर देना पर्याप्त है कि क्या टीपू क्या मराठे कोई भी धर्म युद्ध में पराजित नहीं हुये। सदैव अंग्रेजों की कूटनीति के जाल में फंसे हुए अपने ही आदमियों के धोखा देने से परास्त हुये। टीपू ने भागकर किले में शरण ली परन्तु किला वा द्वार भी धोकेबाजों की कृपा से शीघ्र टूट गया। अंग्रेजी सेना अन्दर घुस आई परन्तु टीपू ने वीर धर्म का पालन किया। अपने दरवाजे पर वीरों की भांति लड़ता हुआ मारा गया।

टीपू के साथ दक्षिण की ज्योति बुझ गई तथा बुझ गया एक
चरित्रवान उदार, विद्वान हिन्दू मुस्लिम प्रजा
टीपू का पिता के समान पालन करने वाला एक
भारतीय नरेश का जीवन प्रदीप।

मैसूर पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। पिट के इण्डिया बिल का पालन किया गया उसका बहुत सा राज्य अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। थोड़ा सा भाग संसार को धोखा देने के

लिये प्राचीन हिन्दू राजा के वंश बालक कृष्ण को देकर अंग्रेज उसके अभिभावक हो गये।

अब राज्यों का दोष पूर्ण ठहराने का अवसर आया तंजौर और सूरत के राजा अन्यायी हो गये उनके राज्य कम्पनी की सरकार के हाथ में आ गये। निजाम को मैसूर के युद्ध मे मराठों का साथ देने के कारण कुछ जिले मिल गये थे। अब मराठे प्रतिकूल थे। अतएव निजाम का भी इन जिलों को रखने का अधिकार नहीं था। इससे १८०० ई० में दूसरी सहायक सन्धि करके वे जिले छीन लिये गये।

अवध के नवाब को कहेलों के युद्ध में अंग्रेजों ने सहायता देकर रुहेलखण्ड का कुछ अधिकांश भाग दिलवा दिया था। अवध के नवाब पहले से ही सहायक सन्धि के बन्धन में बन्धे थे परन्तु रुहेल खण्ड के वे जिले उनके पास आवश्यकता से अधिक थे। अतएव १८०१ ई० में दूसरी सहायक सन्धि आवश्यक थी। रुहेल खण्ड के जिले लेकर वह भी पूरी हो गई।

कर्नाटक के नवाब से कर्जे की मद में कई जिले लिये जा चुके थे परन्तु वे जिले कर्ज रक्तबीज की भांति जितना ही नवाब देता था उतना ही बढ़ जाता था। साथ ही वह टीपू सुल्तान से मेल करने की बात भी सोच रहा था। इस प्रकार की खबर वेलजली को लग गई थी। अतएव इन दोनों चिन्ताओं से उसे मुक्त कर देने के लिये १८०१ ई० में उसका राज्य कम्पनी से मिला लिया गया।

वेलजली के सौभाग्य से नाना फरनवीस अंग्रेजी चालों को काटने वाला चतुर राजनीतिज्ञ भी १८०० ई० में भारतवर्ष को अनाथ छोड़ कर स्वर्ग चला गया। अतएव महाराष्ट्र मण्डल को एकता में बांधने वाला सूत्र कट गया। पेशवा की

गद्दी पर भी इस समय प्रसिद्ध देश द्रोही राघोवा का भतीजा बाजीराव था। अतएव वेलजली को अवसर मिल गया। अपने भाई आर्थर वेलजली को डाकू का पीछा करने के बहाने उसने पेशवा के राज्य में जाने की आज्ञा दिला दी। इस अभिमान में आकर वेलजली ने पेशवा राज्य के निर्बल स्थानों को देख लिया। पेशवा निबल था अतएव दौलतराव सिन्धिया ने उसकी सहायता के लिये एक सेना पूना में छोड़ दी थी। अतएव अंग्रेजों ने कांटे से कांटा निकालने का उपाय किया। जसवन्तराय होलकर को उकसाया कि वह पेशवा पर आक्रमण करे। जसवन्तराव ने राघोवा के गोद लिये पुत्र अमृतराव को पेशवा घोषित करके बाजीराव पर चढ़ाई कर दी। पेशवा और सिन्धिया की सेना पराजित हुई। परन्तु पेशवा बाजीराव सिन्धिया के पास जाने की अपेक्षा बसई पहुंचा और सहायक सन्धि स्वीकार कर ली।

होलकर सिन्धिया का शत्रु था। गायकवाड़ अंग्रेजों से पहले ही मिल गया था। पेशवा ने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली। अतएव सिन्धिया और भोंसले दो ऐसी शक्ति और रह गईं जिनको पराजित करने से समस्त मराठा शक्ति नष्ट हो सकती थी। अतएव १८०३ ई० में इन पर आक्रमण किया गया। असाई स्थान पर सिन्धिया की सेना से अंग्रेजी सेना की मुठभेड़ हुई। सिन्धिया के विदेशी अफसरों ने धोखा दिया। अतएव सिन्धिया पराजित हुआ। इसी प्रकार अरगाँव और ग्वालीगढ़ के दुर्गों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। फलतः उड़ीसा देकर भोंसले ने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली। नर्मदा, गोदावरी और ताप्ती को इस प्रकार निष्कण्टक करके वेलजली ने उत्तर में भी सिन्धिया की शक्ति तोड़ने का निश्चय किया। अलीगढ़ और दिल्ली की पराजय, आगरे का तोपखाना धोखेबाजी से खोने, सूरत और भड़ौच में विश्वासघात के कारण सिन्धिया

का साहस भी छूट गया। अतएव दोआबा, यमुना का दक्षिण भाग, भड़ौच अहमदनगर अंग्रेजों को देकर १८०३ ई० में उसने सहायक सन्धि स्वीकार कर ली।

मूर्ख होलकर समझता था कि अंग्रेज उसे छोड़ देंगे। परन्तु जब मालकम सर पर आ गया तो उसे होश आया। परन्तु होलकर की सेना में विश्वासघातियों की संख्या अभी नहीं थी। अतएव १८०४ ई० में काटा से तीस मील दक्षिण मुकुन्दा के मैदान में अंग्रेजों की भयंकर पराजय हुई।

इधर भरतपुर राज्य ने भी सन्धि स्वीकार नहीं की थी। जब वेलजली ने उसे आंखें दिखाईं तो वह युद्ध के लिए प्रस्तुत हो गया। अनेक स्थानों पर अंग्रेजी सेना पराजित करके वह दिल्ली तक बढ़ गया। परन्तु अन्त में अंग्रेजों की होलकर युद्ध से बची सेना भी जब पीछे से आ पहुँची तो उसे भाग कर किले में शरण लेनी पड़ी। यह किला कच्ची मिट्टी का बना था। उसे तोड़ सकना सरल न था। दूसरी ओर भरतपुर के सैनिक छापा मार युद्ध करने लगे। अंग्रेजों को बड़ी हानि उठानी पड़ी और भरतपुर का घेरा उठा लेना पड़ा।

इंगलैंड में युद्ध चल रहा था अतएव इंगलैंड आर्थिक सहायता न दे सकता था। उधर कम्पनी की विजयों का क्रम बन्द होकर पराजयों का क्रम चालू हो गया था। अतएव कम्पनी के संञ्चालकों ने वेलजली को गवर्नर जनरली के पद से उतार कर ऐसे व्यक्ति को भारत भेजा जिसने भारतीयों के इस नये घाव को चूहा मार कर गोबर सुंघाने की नीति से भरने का प्रयास किया।

इसमें सन्देह नहीं कि वेलजली वीर और महत्वाकांक्षी था। अंग्रेज साम्राज्य का विस्तार चाहता था परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से उसे यदि हम अत्याचारी और आततायी कहें तो अनु-

चित नहीं। टीपू मराठे कोई उसके शत्रु नहीं थे। उसे बलपूर्वक सहायक सन्धि मनवाने का कोई अधिकार नहीं था। दूसरों की रियासतें बिना कारण छीनना उसका दूसरा अत्याचार था। अवध और निजाम से रुहेलखण्ड की भूमि छीन कर 'मरे पर सौ दुर्रे' की कहावत चरितार्थ कर दी।

यहां वेलजली की शासन योजनाओं पर भी विचार कर लेना चाहिए। वेलजली स्वेच्छाचारी शासक था न तो वह कम्पनी के डाइरेक्टरों की चिन्ता करता था न अपनी कौसिल की। अपने सम्बन्धियों को नियुक्त करना, उनकी पद वृद्धि करते जाना उसकी मुख्य नीति थी। परन्तु शासन प्रबन्ध के बढ़े हुए व्यय तथा युद्धों के लिये रुपया निकालने के प्रयोजन से उसने अपने आय व्यय पत्र (बजट) को ठीक करने की चेष्टा की। नये राज्य मिला कर उसने कम्पनी की आय बढ़ाई और कम्पनी के कर्मचारियों के बच्चों आदि की शिक्षा के लिये कलकत्ते में एक कालेज की स्थापना की।

पचपनवाँ अध्याय

कुछ अंग्रेजी गवर्नरों का विवेचना

लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल होकर जब १८०५ ई० में आया तो उसने पहले की भांति युद्धों से तटस्थ रहकर जनता में बढ़े हुए असन्तोष को शान्त करके कम्पनी के शासन सुदृढ़ करने की योजना बनाई परन्तु १८०६ ई० में गाज़ीपुर के समीप उसका देहान्त हो गया अतः सर जार्ज बार्लो गवर्नर जनरल बनाया गया।

दक्षिण की राज्य क्रान्ति वेलजली ने आज्ञा निकाली थी कि हिन्दू अपनी पगड़ी इस प्रकार बांधें कि वह टोप सा जान पड़े। मत्थे पर तिलक न लगाएँ परन्तु युद्धों में व्यस्त रहने के कारण उसे इस बात पर आग्रह

वेलेजली के समय
में
ब्रिटिश भारत।
सन १८०५ ई०
नेपाल
अवध
भोंसला
अंग्रेज़ी राज्य
अंग्रेज़ी संरक्षता में
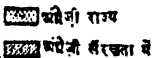
डेलहौज़ी के समय
में
ब्रिटिश भारत
सन् १८५६ ई०
कश्मीर
राजपूताना
नेपाल
निज़ाम का राज्य
मैसूर
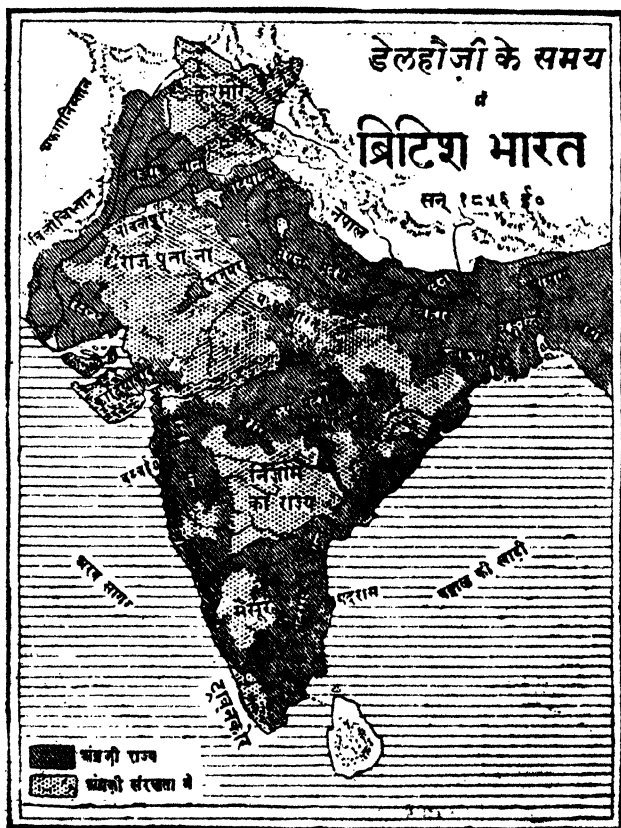
करने का अवसर न मिला। अब मद्रास के सेनापति ने आज्ञा का कड़ाई से पालन करना चाहा। अतएव विद्रोह की जो भावना अभी भीतर भीतर बह रही थी ऊपर उभरने का अवसर मिल गया। १८०६ ई० में क्रान्ति का झगड़ा खड़ा किया गया और बंलौर की दो अंगरेजी पल्टनें साफ कर दी गई। यह क्रांति स्थानीय थी इसका कोई देश व्यापी संगठन नहीं था। अतएव क्रांति विफल हुई। विद्रोह करने वालों को कठोर दण्ड दिया गया। सरजार्जवार्लो ने अपने अनाचार का कारण टीपू के पुत्रों को ठहराना चाहा और कलकत्ते भेज दिया। परन्तु अब यह निश्चित हो गया है कि इस क्रान्ति का कारण वार्लो की अविवेक पूर्ण नीति ही थी। कम से कम कम्पनी के संचालकों ने इससे वार्लो की अयोग्यता जान ली। और लार्ड मिण्टो भारतवर्ष का गवर्नर जनरल बना।

मिण्टों (१८०७-१३) यहां यह कह देना आवश्वक है कि मिण्टो भारतवर्ष के साम्राज्य की सुरक्षा का आधार बन कर आया था। उस समय उसके सम्मुख तीन कठिनाइयां थी जनता में बढ़ते हुये विद्रोह की भावना शान्त करना, दूसरे अंगरेजी राज्य की सीमा रक्षा करना, तीसरा विदेशी शक्तियों को भारत के आक्रमण से रोक देना। इसी नीति को पुष्ट करने के लिये सबसे पहले उसने फ्रांस से भारत की सुरक्षा का विचार किया। अतएव हिन्द महा सागर में स्थित फ्रांस और हालैण्ड के सब द्वीपों पर उसने अधिकार कर लिया तथा एक सुदृढ़ सैनिक शक्ति को इन द्वीपों में स्थापना कर दी। नैपोलियन की महत्त्वाकांक्षा से इंग्लैण्ड भयभीत था। अतएव मिन्टों ने प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञों मालिकम और एलफिस्टन को अफगानिस्तान भेज कर अफगानिस्तान से मित्रता का सम्बन्ध बना लिया। अब उसने पंजाब के महाराज रणजीतसिंह पर दृष्टि दौड़ाई। अत-

एव चार्ल्स मैटकाफ रणजीतसिंह के दरबार में भेजे गये। अगरेजों का उद्देश्य दोआबा पर अधिकार करना था। एक ओर तो मैटकाफ रणजोतसिंह से बातचीत करता रहा दूसरी ओर सरहिन्द और दुआबा के सरदारों को अँगरेजों के अनुकूल करने के लिये रिश्वतें और समझाने की नीति से काम करता रहा। महाराजा रणजीतसिंह तो मैटकाफ की बातों में न आये परन्तु वे सिक्ख सरदार पूर्णतया अगरेजों की मुट्ठी में आ गये। रणजीतसिंह को इस विश्वासघात की सूचना तब मिली जब अगरेजी सेना दोआवा पार करके लुधियाना पहुंच गई। रणजीतसिंह को स्वप्न में भी युद्ध का विचार न आया था। अतएव विवश हो।र उन्होंने दोआबे के सिख सरदारों को अगरेजों के आधीन करने तथा अनाक्रामक सन्धि करने पर विवश होना पड़ा।

लार्ड बेलजली की नीति ने तथा दोआबे पर इस प्रकार अधिकार करने को मिण्टो की नीति ने भारतवर्ष में एक भीषण क्रांति की भावना उत्पन्न कर दी थी। इस क्रांति का केन्द्र इन्दौर का राज्य था। उसका नेता होलकर का प्रधान मन्त्री सेनापति अमीरखां था। इस समय तक भारतीय शुद्ध सैनिक का कर्तव्य जानते थे। उन्हें छल और प्रपंच से घृणा थी। परन्तु बावन बार ठगाये जाकर भारतीय गप्पूनाथ नहीं रह गये थे अब वे भी बावन वीर बनने की बात सोच रहे थे। अतएव एक नवीन संगठन की आयोजना का सत्रपात हुआ इस संगठन की मुख्य विशेषतायें नीचे लिखी जातो हैं। संगठन का प्रत्येक सदस्य शुद्ध गृहस्थ था। उनका मुख्य व्यवसाय खेती करना तथा कोई अन्य उद्यम करना था।

प्रत्येक को कम से कम एक छोटा टट्टू परन्तु तेज चलने

वाला अवश्य रखना होगा। तथा कुछ सफरी सामान प्रत्येक समय प्रस्तुत रखना होगा।

प्रत्येक सदस्य का चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान एक ही धर्म होगा। और वह धर्म अपनी मातृ भूमि की रक्षा के लिये सदैव प्राण विसर्जित करने के लिये उद्यत रहना। अतएव मातृ भूमि की रक्षा के लिये) अटल रहने की प्रतिज्ञा करना।

प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होगा कि वह अकेले या सामूहिक रूप में देश द्रोहियों को दण्ड दे उनका धन लूटले यातायात के मार्गों को संकटमय बना दे। परन्तु लूट के धन को दीन दरिद्र प्रजा तथा धर्म की पुकार जनता के कानों तक पहुँचाने के लिये बांट दे। अपनी आजीविका अपने उद्यम से चलाता रहे।

प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होगा कि धर्म में दीक्षित होने वाले प्रत्येक सदस्य को चाहे वह किसी धर्म (हिन्दू या मुसलमान) का हो अपना बन्धु और अपना सहधर्मी समझे पर परस्पर घृणा या विद्वेष फैलाने वाले को मृत्यु दण्ड दिया जायगा।

इस प्रकार पहली बार एक संगठित योजना राष्ट्र उद्धार के लिये बनाई गई और उस पर कार्य किया जाने लगा। मध्य प्रदेश संयुक्त प्रांत और मालवा में इस धर्म का प्रचार फूस की आग की भांति हो गया परन्तु अभी इस धर्म का शैशव था। कि अमीरखां ने १८०६ ई० में भोंसला राज्य पर आक्रमण कर दिया। भोंसला अंगरेजों की शरण में था। अतएव अँगरेज उसकी रक्षा के लिये पहुंच गये। अमीरखां को कुछ विशेष सफलता न मिली किन्तु उस युद्ध में अंगरेजों को अपने वास्तविक सँकट का पता चल गया।

१८१० ई० उदयपुर की राजकुमारी से विवाह करने के लिये जयपुर और जोधपुर के राजा उदयपुर पर चढ़ आवे। वह

समय ऐसा नहीं था कि परस्पर युद्ध का होता। राजकुमारी ने इस संकट को अनुभव किया। उसने स्वयं विष पान करके प्राण देने चाहे परन्तु कुमारी का प्राणदान पिता के असीम कष्ट का कारण था। ऐसे समय पर भारतीय राष्ट्र की पुनः स्थापना की कल्पनाओं में मग्न अमीरखां उदयपुर पहुंच गया। उसने पिता को परस्परिक युद्ध की अपेक्षा कुमारी के बलिदान को सराहनीय बता कर कुमारी के साहस और त्याग की प्रशंसा करते हुये महाराज को सहमत कर लिया। कृष्णा कुमारी ने स्वदेश हित की साधना का विचार करके विष का प्याला पीकर अपने को प्रभु की असीम स्नेहमयी गोद में पहुंचा दिया। कहीं ऐसा ही स्वदेश का प्रेम हमारे राजाओं में भी रहा होता, अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये वे अँगरेजों के हाथ की कटपुतली न बने होते तो भारतवर्ष को दीनता और पतन के ये दिन न देखने पड़ते।

भोले इतिहासकार इस घटना को दुःखद कहते हैं। मेरा मत है कि भारतीय आत्मा को ऊँचा उठाने वाली इससे ऊंची घटना भारतवर्ष क्या संसार के इतिहास में मिलना दुर्लभ है।

१८१३ ई० में कम्पनी के चार्टर बदलने का अवसर आया क्योंकि चार्टर बदलने का नियम २० वर्ष का था। इस बार चार्टर में निम्नलिखित परिवर्तन किये गये।

कम्पनी को नवीन चार्टर की भी २० वर्ष के लिये स्वीकृति दे दी गई।

कम्पनी को द्वारा पाये जानेवाले नामको देखकर अंग्रेज व्यापारी भारतवर्ष से व्यापार करने के लिये उत्सुक हो रहे थे। अतएव उसके एकाधिकार को नष्ट करने के लिये आन्दोलन चल रहा था। इस आन्दोलन का एक कारण और था। कम्पनी के व्यापारी अब भी भारत का कपड़ा विलायत में बेचते थे। यद्यपि इसके लाभ का अंश भारतवर्ष को नहीं मिलता था

परन्तु कुछ-न-कुछ रुपया तो इंग्लैण्ड से भारत आता ही था। इंग्लैण्ड के रद्दी कपड़े की पूछ वहां नहीं होती थी और स्वदेश का कला-कौशल ठप पड़ा हुआ था। अतएव इन उद्योगों के स्वामी अपने कपड़े की खपत का बाजार भारतवर्ष को बनाना चाहते थे जिसमें कम्पनी के एकाधिकार से बाधा पड़ती थी। अतएव इस चार्टर में स्वदेश हित का विचार करके यह नियम बना दिया गया कि प्रत्येक अंग्रेज व्यापारी जितना चाहे भारतवर्ष में अपना व्यापार फैला सकता है। राजनैतिक अधिकार कम्पनी के ज्यों-के-त्यों रक्खे गये। इससे नवीन व्यापारियों को बार्डस आफ कण्ट्रोल (नियंत्रण समिति) से लाइसेंस लेनी की आवश्यकता बनी रही।

अंग्रेजों को भारतवर्ष में बसने का अधिकार प्राप्त हो गया।

ईसाई धर्म के प्रचार की भी सुविधा पादरियों को दे दी गई।

भारतीय शिक्षा पद्धति को दोष पूर्ण बतलाकर नवीन शिक्षा प्रसार के लिये १ लाख रुपया वार्षिक स्वीकृत किया गया। तथा उसके व्यय का ढंग कम्पनी के अधिकार में छोड़ दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय संस्कृति पर भी सीधा आघात करने का साधन अंग्रेजों ने प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि बिना इसके दासता की मनोवृत्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती।

मराठों का जो अपमान बेलजली ने किया था तथा उसके फलस्वरूप जो विप्लव की आग दौड़ रही थी लार्ड मिण्टों की निर्हस्ताक्षेप की नीति ने उसमें सहायता दी यदि जिस सङ्गठन को हमने पहले कहा है उसको थोड़ा विकास का समय इस प्रकार और मिल जाता तो सम्भवतः भारतवर्ष का इतिहास

बदल जाता परन्तु अंग्रेजों को यह कैसे सहन होता। उन्होंने लार्ड मिण्टो को पदच्युत करके उसके स्थान पर लार्ड हेस्टिंग्स को स्पष्ट आज्ञा के साथ क्रान्ति की भावना को कुचल देने के लिये भेजा।

छप्पनवां अध्याय

लार्ड हेस्टिंग्स १८१३-११८८

हेस्टिंग्स ने आते ही मिण्टो की निर्हस्तक्षेप नीति को तह कर धर दिया। उसने १८१४ ई० में नैपाल पर केवल इसलिये आक्रमण कर दिया कि वे गढ़वाल और कुमायूं के पर्वतीय सूबेदार को गद्दी से उतार कर दूसरा सूबेदार भेजना चाहते थे। परन्तु गोरखों में अभी फूट नहीं पड़ी थी अतएव तीन चार बार कठिन पराजय के उपरान्त अंगेज नैपाल में प्रवेश पा सके। कुछ दब कर कुछ खुशामद करके, कुछ वार्षिक देने का वचन देकर १८१६ इ० में सिगोली की सन्धि हुई। नैपाल सरकार ने संयुक्त प्रान्त के उत्तरी जिलों का पहाड़ी प्रदेश अंग्रेजों को दे दिया और अपने यहां रेजीडेन्ट रखना स्वीकार किया।

जिस राजनैतिक संगठन की ऊपर रूपरेखा खींची गई है यद्यपि उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अंग्रेजी विद्वानों का मत यह है कि उनकी उत्पत्ति गोल कुण्डा और बीजापुर राज्यों के औरंगजेब द्वारा विजित किये जाने पर हुई थी। और उनके सम्बन्ध में अत्यन्त घृणित प्रचार इन अंग्रेज लेखकों ने किया है। परन्तु उनका राजनैतिक संगठन अवश्य वेलज़ली की अत्याचार पूर्ण नीति के कारण हुआ। इसमें सन्देह नहीं

पिण्डारियों का दमन

हैं। क्योंकि पिंडारी सरदार चोर डाकू नहीं थे न पिण्डारी प्रजा और सैनिक चोर डाकू थे। जैसा ऊपर वर्णन किया गया है। पिण्डारी सदैव लूटने में इस बात का ध्यान रखते रहे कि उनके शिकार वे ही लोग या व्यापारी बने जो अंगरेजी सरकार के कठपुतले हैं।

परन्तु अंग्रेजी राज्य की स्थापना इस प्रकार के संगठन के रहते तो सम्भव नहीं थी। अतएव लार्ड हेस्टिंग्स ने एक विशाल सेना का संगठन किया तथा इनके सरदारों में फूट डालने के लिये गाँव-गाँव में रुपया बांटना प्रारम्भ कर दिया। चारों ओर से घेरकर उनपर आक्रमण की योजना बनाई गई। परन्तु चारों ओर से घेरने के लिये सिन्धिया से सन्धि आवश्यक थी। अतएव १८१७ ई० में सिन्धिया से थोड़े काल के लिये सन्धि करके उसकी सेनाओं से सहायता ली गई।

सब मालवा घेर लिया गया। इसमें सिन्धियाशाही पिण्डारियों का नेता वासिल मुहम्मद अंगरेजों से मिल गया अतएव भयंकर नर-संहार के उपरान्त अमीर खां और करीम खां ने सन्धि करने का प्रस्ताव किया। चीतू ने उसे फिर भी स्वीकार न किया। पुनः संगठन करने के विचार से वह जंगल में भाग गया। भारतवर्ष का दुर्भाग्य कि उसे चीते ने घायल कर दिया और वह मर गया। अमीर खां को टोंक का राज्य तथा करीम खां को बस्ती जिले में कर जोशपुर की रियासत दे दी गई।

इस युद्ध में अंग्रेजों ने मालवा तथा बुन्देलखण्ड के सैकड़ों गावों की निशस्त्र और निरीह प्रजा का अकारण केवल सन्देह पर विनाश कर दिया। सैकड़ों गांव लूट लिये गये और जला दिये गये इस प्रकार राज्य क्रान्ति का संगठन अपने बाल्य-काल में ही कुचल दिया गया।

सिन्धिया ने अंग्रेजों से सन्धि कर ली थी। पिण्डारी युद्ध में सिन्धिया सेना का उपयोग भी अंग्रेजों ने किया था परन्तु पिण्डारियों में कुछ सिन्धिया शाही भी थे। अतएव १८१७ की सन्धि रद्द करके १८१८ में सिन्धिया से फिर सन्धि की गई। होलकर राज्य और राजपूताना के राजाओं का दमन करने के लिये राजपूताना के मध्य में जब तक अंग्रेजों का सुदृढ़ स्थान नहीं तब तक उधर से निश्चिन्तता सम्भव नहीं थी। तथा ऐसा स्थान अजमेर ही था जो राजपूताना के केन्द्र में होने के कारण सामरिक महत्त्व का था। अतः सिन्धिया को अजमेर देना पड़ा।

अंग्रेजों का दूसरा मराठा मित्र गायकवाड़ भी बहुत दिनों से कुछ अधिक न दे सका था। अतएव अंग्रेजी की प्यारी मित्रता के लिये उसे भी सहायक सेना बढ़ानी पड़ी तथा उसके व्यय के लिये अहमदाबाद का क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप देना पड़ा। किस न्याय के आधार पर हम अंग्रेजों के इन कृत्यों का समर्थन करेंगे। तथा वे कौन से गुण हैं जिनके कारण अंग्रेज जाति मानवता के सामने अपना शिर ऊँचा उठा सकती है। गायकवाड़ और सिंधिया की शक्ति नष्ट करके केवल होलकर भोंसला और पेशवा का संगठन शेष रह गया था। विजयी जसवन्तराय पागल होकर मर चुका था। सेनापति अमीरखाँ पिण्डारी कह कर परास्त किया जा चुका था उसे टोंक का राज्य दे दिया गया था। अब केवल होलकर राज्य का वृद्ध ब्राह्मण मन्त्री गंगाधर शास्त्री था जो मराठा संगठन का सूत्रधार था अतएव बड़ी कुशलता से उसका वध करा दिया गया। इस वध का समस्त उत्तरदायित्व अंग्रेजों पर था। परन्तु धूर्त अंग्रेजों ने पेशवा के मंत्री त्र्यम्बक शास्त्री पर उसका दोष मढ़ना चाहा।

पेशवा पर एलिफिन्स्टन रेजीडेण्ट ने दबाव डालकर त्र्यम्बक

को बन्दी करा दिया और १८१७ ई० में नवीन सन्धि करके पेशवा से मराठा सेना प्रतिनिधित्त्व का अधि-

पेशवा सन्धि और उसका तोड़ा जाना

कार मिटा दिया। इस अपमान को दुर्बल पेशवा सहन न कर सका। उधर त्र्यम्बक भी अवसर पाकर भाग निकला और उसने भोंसला राजमंत्री अप्पाजी को भी फोड़ कर अंग्रेजों को निकालने की योजना बनाई। इधर एल्फिस्टन ने राजदरबार में अनेक सरदारों को पेशवा से फाड़ने का यत्न किया।

अपनी सभा में एल्फिस्ट के कुचक्रों को चलते देखकर पेशवा ने एल्फिंस्टन को अपनी रेजीडेंसी हटा लेने की आज्ञा दी। परन्तु एल्फिस्टन के कुचक्रमें पेशवा पूरी तरह फँस गया था, अतएव उसने अस्वीकार कर दिया। फलतः पेशवा ने रेजीडेंसी पर आक्रमण किया। परन्तु अपने ही सरदारों के विश्वासघात से पराजित हुआ अनेक युद्ध में इसी प्रकार के षड़यन्त्रों के कारण बाजीराव की पराजय पर पराजय होती रही। परन्तु विजय की आशा न देखकर उसने आत्म समर्पण कर दिया। १८१८ ई० में पेशवा का पद ही तोड़ दिया गया उसे ८ लाख रुपये की पेंशन देकर विहार भेज दिया गया।

अप्पा जी ने त्र्यम्बक शास्त्री से मिलकर अपने संगठन की रक्षा में युद्ध में साथ दिया। परन्तु उसकी सेनायें उतनी शीघ्रता से चलकर पेशवा की सहायता को उचित अवसर पर न पहुँच सकी। अनेक स्थानों पर पराजित होने वाली अंग्रेज सेना ने अन्तिम बार नागपुर में अप्पा जी को पराजित किया। राज्य का उत्तरीय भाग अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया तथा एक छोटी सी रियासत राघोजी भोंसले के वंशज को दे दी गई।

इसी प्रकार होल्कर राज्य की दुर्दशा की गई। चतुरा

तुलसीबाई गंगाधर शास्त्री की नीति का अनुकरण कर रही थी। अतएव उसकी संगठित शक्ति से अंग्रेजों का साहस उस ओर नहीं होता था। अतएव अंग्रेजोंने होल्कर के मुसलमान अफगानों को फोड़कर मिला लिया। ये वही लोग थे जिनके द्वारा गंगाधर शास्त्रि का वध कराया गया था। इस बार उन्हीं का उपयोग तुलसीबाई के वध में किया गया। फिर होल्कर राज्य पर आक्रमण किया गया। इस दशा में मल्हारराव होलकर के लिये विजय सम्भव नहीं थी अतएव मन्द सोर के स्थान पर सन्धि हो गई और होलकर का अधिकांश राज्य अंगरेजों ने अपने आधीन कर लिया।

मराठा के इस युद्ध का परिणाम

१७५७ ई० में जो मराठा शक्ति अजमेर और भारतवर्ष में सब से स्थिर शक्ति थी इस युद्ध के उपरान्त उसका सम्पूर्ण विनाश हो गया। शक्ति का हृदय पेशवा था वहाँ से हो मराठा शरीर के सम्पूर्ण अंगों में रक्त का संचार होता था। अथवा पेशवा मराठों का मस्तिष्क था शेष चारों भाग उसकी चार भुजायें थी। इस चतुर्भुज शक्ति से सम्पन्न मराठा सचमुच अजीव थे। सब से पहले गायकवाड़ और सिन्धिया ने मस्तिष्क की आज्ञा पर चलना बन्द कर दिया फलतः वह शक्ति क्षीण हो चली थी। इस युद्ध में वह मस्तिष्क ही कटा दिया गया अतएव शेष दो हाथ होलकर और सिन्धिया अब भी मृतवत जीवित हैं। सतारा की छोटी सी शिवाजी के वशधरों की रियासत उस प्राचीन मराठा गौरव शिवाजी की स्मारक के रूप में है। परन्तु अब वह भी केवल निर्जीव स्मारक ही है। न उनमें गति है न चेतनता। संक्षेप में मराठा युद्ध का यही परिणाम हुआ।

हेस्टिंग्स ने अपने देश की सेवा की अतएव इंग्लैण्ड के इति-

हास में उसका स्थान क्लाइव वेलजली और डलहौजी की पंक्ति में है। परन्तु भारत में उसने क्या किया। इसका एक उदाहरण और दिये बिना हेस्टिंग्स का वर्णन समाप्त नहीं हो सकता। उसने भारतवर्ष में इंग्लैण्ड पर बने हुए माल की चुङ्गी माफ़ कर दी। अर्थात् इङ्गलैण्ड के माल की खपत के लिये भारतवर्ष का बाजार खोल दिया। भारतवर्ष के माल पर ६०० प्रतिशत चुङ्गी इङ्गलैण्ड में लगी हुई थी अतएव भारत का विदेशी व्यापार चौपट हो गया। भारत का कला-कौशल नष्ट हो गया।

इससे अधिक हानि भारतवर्ष की और क्या की जा सकती थी। लार्डहेस्टिंग्स की स्वदेश सेवा की हम प्रशंसा करते हैं परन्तु इस नीति की उतने ही कठोर शब्दों में निन्दा का भाव भी भारतीय राष्ट्र के हृदय में अङ्कित होने की आवश्यकता है।

अब नवीन जीते हुए प्रदेश की संस्कृति और शासन एकता को तोड़ने का प्रबन्ध किया। उसने जो कुछ किया उसे समझने के लिये मराठा व्यवस्था समझना आवश्यक है।

मराठा शासन प्रबन्ध

प्रबन्ध की इकाई ग्राम था जिसका प्रधान अधिकारी पटेल था जिसका पद वंश परम्परा से था। पटेल ही ग्राम की सारी मालगुजारी तथा शासन व्यवस्था का उत्तरदायी था। उसकी सम्मति के लिये विद्वान् ब्राह्मण रहता था जिसे कुलकर्णी कहते थे। ग्राम पञ्चायतें सब विषयों से सम्बन्ध रखने वाले झगड़ों का निर्णय करती थीं। परन्तु दीवानी सम्बन्धी झगड़ों का अन्तिम निर्णायक पटेल था। कुलकर्मी शान्ति व्यवस्था का अधिकारी था। वह पञ्चायतों में सरपंच का काम भी करता था। पटेल को अपने कार्य्य का वेतन ग्राम से मिलता था। अनेक ग्रामों का प्रबन्ध कामविसदार के आधीन था। कामविसदार

अपने परगने में पड़ने वाले समस्त ग्रामों के प्रबन्ध का अधिकारी था। वह पटेलों पर नियन्त्रण रखता था तथा उनको अन्याय करने से रोकता था।

कामविसदार सूबों के अधिकारी मामलतदार के आधीन जिन्हें सब प्रकार की अपीलें सुनने का अधिकार था। देशमुख और देशपाण्डे इन अधिकारियों के साथ भी उसी प्रकार रहते थे जैसे पटेल के साथ कुलकर्णी। मामलतदार प्रत्येक बात के लिये पेशवा के प्रति उत्तरदायी भी थे। पेशवा ने समस्त देश में चर विभाग और सूचना विभाग की स्थापना भी की थी। प्रत्येक मामलतदार के सूबे में आठ आठ सूचना देने वाले रहते थे। जिनका कर्तव्य प्रत्येक दिन का आवश्यक सूचनाएं पहुँचाते रहना था।

राज्य की आय के साधन चौथ, सरदेशमुखी लगान, चुंगी तथा घाट की उतराई से होती थी। इनके अतिरिक्त धर्मादा (जकात) प्रत्येक हिन्दू मुसलमान को देनी पड़ती थी।

मराठा राज्य में प्रजा सुखी थी। विद्रोहों का नाम भी नहीं परन्तु चोर डाकुओं पर नियन्त्रण कम था। ग्रामों में चोरी नहीं होती थीं परन्तु यातायात के मार्ग सुरक्षित नहीं थे।

हेस्टिंग्स के कार्य्य हेस्टिंग्स ने किसानों से सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उसने मद्रास तक बम्बई प्रदेश में रैयतवाड़ी प्रथा बन्द कर दी। तथा बीच के सब अधिकारियों की सैनिक शक्ति नष्ट करके देशको निर्जीव करने की योजना पूर्ण की। पंचायतों के हाथ से न्याय विभाग दीवानी और फौजदारी दोनों निकालकर सरकारी अदालतों की स्थापना कर दी।

भारतीय शिक्षा प्रचार में अंग्रेजी पत्रों के प्रचार को प्रोत्साहन दिया। तथा सीरामपुर के पादरियों को अपने धर्म प्रचार

के लिये देशी भाषा में समाचार पत्र निकालने की आज्ञा दे दी यदि उस काल के इस देशी भाषा के पत्रों की प्रतियाँ पढ़ी जाँय तो उसमें हिन्दू देवी, देवताओं और मुसलमानों के चरित्रों पर घृणित आक्षेप किये गये हैं जिन्हें पढ़ कर क्रोध से भयङ्कर प्रतिकार की भावना का उदय होता है। परन्तु उस समय के भूखे पादरियों के धर्मोन्माद का विचार करना चाहिये तथा बातों को भुला देना ही अच्छा है।

सत्तावनवां अध्याय

लार्ड एमहर्स्ट

(१८२३-१८२८)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के छिन जाने के उपरान्त अंग्रेजों को एशिया में अपने राज्य विस्तार की चिन्ता थी। अतएव १७६१ के उपरान्त उन्होंने इस दिशा में भगीरथ-प्रयत्न प्रारम्भ किया। यदि किसी स्थान पर वे रुके तो अपनी निर्हस्तक्षेप नीति के कारण नहीं। केवल जीते प्रदेशः पर अधिकार सुदृढ़ करने के लिये अथवा संसार को अपनी न्यायप्रियता के झूठे जाल से धोखा देने के लिये। लार्ड एमहर्स्ट उसका अपवाद नहीं था।

१८१३ में ब्रह्मा के राजा ने मनीपुर पर अधिकार कर लिया १८२२ ई० में आसाम ब्रह्मा के अधिकार में आ गया। चटगाँव के निकट शाहपुरी टापू पर अधिकार कर लिया। इससे अंग्रेजों का चटगांव व्यापार संकट में पड़ गया। अतः एमहर्स्ट ने ब्रह्मा पर आक्रमण कर दिया।

ब्रह्मा का सेनानायक महाबुन्देला क्षत्रिय रक्त से तेजवान था। उसने ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि छः बार अपनी जलसेना

से आक्रमण करके भी अंग्रेज सेना रंगून में न उतर सकी। इसी बीच महाबुन्देला उत्तर से आने वाली अंग्रेजी सेना का सामना करने चला गया। उत्तर की सेना को ठिकाने लगा कर जब तक वह दक्षिण पहुँचे तब तक अंग्रेज रंगून पर अधिकार कर चुके थे। अतएव वह अपनी सेना के साथ आगे बढ़ा। जब तक वर्षा ऋतु रही। प्रकृति अनुकूल थी। अतएव अंग्रेज पराजित होते रहे। परन्तु वर्षा के अन्त में अंग्रेजों ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से ब्रह्मा पर आक्रमण किया। निर्णायक युद्ध हो रहा था। ब्रह्मा वासी इतनी वीरता दिखा रहे थे कि अंग्रेजों की पराजय होती दिखाई दी। परन्तु अकस्मात् बुन्देला के शिर में गोली लगी और उसका शरीर छूट गया। सेनापति के मरते ही सेना में गड़बड़ी फैल गई तथा विजय पराजय में परिवर्तित हो गई।

१८२६ ई० में यन्दबू की सन्धि हुई। आसाम, अराकान और टनासरम प्रदेश के साथ अंग्रेजों को १ करोड़ रुपया मिला। परन्तु उनकी जितनी दुर्गति इस युद्ध में हुई तथा जितनी हानि हुई वह भी बहुत अधिक थी। सैनिक हानि की अपेक्षा कम्पनी पर १ करोड़ पौण्ड ऋण हो गया।

भरतपुर

हम आरम्भ से देखते आये हैं कि जब जब देशी नवाब या राजा मरा अंग्रेजों को सर्वत्र वही अवसर स्वर्ण अवसर सिद्ध हुआ। यहां भी वही बात उपस्थित हो गई। भरतपुर नरेश की मृत्यु हो गई। अब अंग्रेजों को बन्दर-बांट करने का अवसर प्राप्त हुआ। भरतपुर नरेश का राजकुमार बालक था। अतएव उसके सगे चाचा राव दुर्जनशाह को राज्य का अधिकार प्रजा देना चाहती थी। अंग्रेजों का छोटे राजकुमार के पक्ष में जाना इस

लिये नहीं स्वाभाविक था वरन् इस लिये कि वह छोटा है। उसके नाम पर भरतपुर के सरदारों में फूट डाली जा सकती है और स्वयं अभिभावक बनाया जा सकता है। १८२६ ई० में भरतपुर पर आक्रमण किया गया। भरतपुर दरबार के भेदियों द्वारा सुरंग बनवाकर किले का निर्बल भाग उड़ा दिया गया। और भरतपुर अंग्रेजों के आधीन करके राज कुमार को गद्दी पर बिठाया गया।

परन्तु युद्ध से कम्पनी का ऋण बढ़ गया था। अतएव कम्पनी ने अमहर्स्ट को बुला कर सन १९२८ ई० में उसके स्थान पर लार्ड विलियम बेंटिङ्क को भेजा।

अट्ठावनवां अध्याय

विलियम बेंटिंक

१८२५-३५ ई० तक

नीति फिर वही है राज्य जीतो थोड़े दिन उन्हें संभालने का यत्न करो फिर नवीन राज्यों पर अधिकार करो बेंटिंक ने इसी नीति पर कार्य्य किया। प्रारम्भिक चार वर्ष उसने सम्पूर्ण-तथा सुधार में व्यय किये और अन्तिम चार वर्षों में देशी राज्यों को निर्बल बनाने में भी लगाये।

मैसूर का राज्य प्रबन्ध बिगड़ रहा था अथवा यों कहिये कि उससे अंग्रेजों को सीधा लाभ नहीं हो रहा था। अतएव राजा को गद्दी से उतारकर शासन प्रबन्ध का कार्य्य एक कमीशन और उसके सहायक चार अफसरों को सौंप दिया गया।

१८३१ ई० मैसूर का राज्य

१८२१ ई०—ब्रह्मा के राजा से सन्धि हो चुकी थी परन्तु
कछारपर विजय कछार प्रदेश अंग्रेजी राज्य के निकट चावल
और तम्बाकू की उपज का केन्द्र था। अतएव
कछार अंग्रेजी राज्यमें मिला लिया गया।

सिंध पर अंग्रेज की बहुत समय से दृष्टि थी उनके कपड़े का
व्यापार बहुत उन्नति पर था। अतएव सिन्ध को अधिकार में
लाना आवश्यक था। वे कम्पनी के व्यवहार
१८३२ ई० सिन्ध और चरित्र से परिचित थे परन्तु जिस नीति
कुशलता से उन्हें सन्धि करने के लिये सहमत
होना पड़ा उसकी सराहना करनी चाहिये।

अभी तक दक्षिण भारत में स्वास्थ्यप्रद स्थान अंग्रेजों के
पास नहीं था। अतएव कुर्ग के राजा के व्यवहार से प्रजा
की शिकायतें मिलने लगीं। राजा के निकट
१८३४ ई० कुर्ग सम्बन्धी ही पैसे के बल से मोल ले लिये गये
और उन्होंने अपने राजा की शिकायतें कीं
फलतः इस छोटे से राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला
लिया गया।

इसी प्रकार तुलसी बाई का उत्तराधिकारी मल्हार राव इन्दौर
की गद्दी का अधिकारी था। यह वही था जिसने अंग्रेजों को
मराठों के अन्तिम युद्ध में पराजित किया था।
इन्दौर १८३४ अतएव अंग्रेजों ने उसके विरुद्ध हरी होल्कर
को खड़ा कर दिया। शक्ति के बल से हरी
होल्कर को राजा तो बना दिया गया परन्तु प्रजा को व्यापा-
रियों और डाकुओं द्वारा लूटे जाने की व्यवस्था हो गई।

दौलतराव सिन्धिया की विधवा बीजाबाई बड़ी कुशल

रानी थी। जब अंग्रेजों के हाथ का खिलौना जनको जी वयः प्राप्त हुआ तो उसने उसकी माता का विचार करके गद्दी सौंपना अस्वीकार कर दिया। परन्तु पंचों की सहायक सेना और रेजीडैएट तो पहले से ही उपस्थित थे अतएव बीजाबाई को गद्दी छोड़नी पड़ी इसी प्रकार गायक वाड़ राज्य में भी बेंटिक ने हस्तक्षेप करके उस की शक्ति को भी निर्बल किया।

१८३४ ई०
सिन्धिया

अब देशी राजाओं की शक्ति टूट चुकी थी। उस समय यदि पंजाबमें कोई निर्बल शासक होता तो निश्चित रूपसे यही बेंटिक उस ओर भी हाथ बढ़ाता। परन्तु पंजाब केसरी रणजीतसिंह की विजयों का वर्णन सुन कर उसने बल प्रदर्शन की अपेक्षा लोमड़ी की नीति से काम लेना उचित समझा। रूपर स्थान पर १८३० ई० मैं रणजीतसिंह को सलाम बजाकर गवर्नर जनरल बेंटिक सन्धि करने में सफल हो गया। इस सन्धि का परिणाभ भुगतने के लिये उसे रणजीतसिंह की दुर्बलताओं का अध्ययन करने में भी इस समय बड़ी सहायता मिली।

सिक्खों की बारह मिसलों में से सुखेर कुचिया मिसील के नेता चरतसिंह के पुत्र महासिंह का पुत्र रणजीतसिंह १७९२ ई० में १२ वर्ष की आयु में ही अपने पिता का उत्तराधिकरी हुआ था। उसने जमान शाह से लाहौर छीन लिया और १८०२ ई० में अमृतसर पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों से उसकी अनाक्रामक सन्धि १८०९ से हो चुकी थी। उसका हम वर्णन कर आये हैं। उसने उसी समय से अपनी सैनिक शक्ति का संगठन आरम्भ कर दिया। सेना की शिक्षा के लिये विदेशी सैनिक रख कर उसने सिक्खों को अजेय बना दिया। सम्पूर्ण पंजाब

रणजीतसिंह

विजय करके १८१८ ई० में उसने मुलतान पर भी अधिकार कर लिया। १८२३ ई० में उसने काबुल के बादशाह से पेशावर का किला छीन लिया और सारे काबुल को कुचल दिया।

अंग्रेजों से उसने सदैव मैत्री सम्बन्ध बनाए रक्खा।

इस प्रकार उसके राजनैतिक कार्य्यों पर विचार करके हम उनके उन कार्य्यों पर आते हैं जिनका सुधार करा जाता है।

पहले हम उनके सामाजिक सुधारों पर विचार करेंगे। इन में कुछ सुधार ऐसे हैं जिन्हें वस्तुतः सुधार कहा जा सकता है जैसे बंगाल में विधवा स्त्रियों को बलपूर्वक पति के साथ जला दिया जाता था। राजा राम मोहन राय आदि भारतीय विद्वानों की सम्मति से १८२६ ई० में सती प्रथा का विरोध करने के लिये कानून बन गया।

उड़ीसा में नरबलि की प्रथा कुछ जातियों में थी उसने इस के विरुद्ध कठोर कार्रवाईयां कीं।

राजपूताना तथा काठियावाड़ में शिशुहत्या और स्त्री विक्रय की प्रथा को रोकने का यत्न किया।

इस समय ठगों का बल भी बढ़ गया था। ठगों में हिन्दू मुसलमान दोनों थे। सम्भवतः; पराजित और पीड़ित पिण्डारी लोगों ने अब यह व्यवसाय प्रारम्भ कर दिया था। वे काली की पूजा करते तथा गुप्त भाषा में परस्पर वार्त्तालाप करते थे। रूमाल का फन्दा डालकर वे यात्रियों को मार डालते थे। वेंटिंक ने ठगों के दमन के लिए अलग विभाग खोला। इस विभाग ने पुलिस और सेना की सहायता से हजारों ठगों को फांसी पर लटका दिया। पता नहीं उनमें कितने वास्तविक ठग थे। उनके बच्चों के लिये स्कूल खोला गया।

अब उसके उस सुधार पर विचार करना है। जिसके कारण बेंटिंक की समस्त कीर्ति गाथा इतिहासों में गाई गई है वह है।

बेंटिंक से पूर्व तक भारतीय पाठशाला में जीते मरते चली आती थी। तथा उनके द्वारा घरेलू शिक्षा का प्रचार भी प्राप्त था स्त्रियों तथा निम्न जातियों को छोड़कर लग भग सभी को शिक्षा के साधन मिल जाते थे इस प्रकार भारतीय संस्कृति भी जीते मरते चल ही रही थी। परन्तु किसी देश पर शासन करने के लिये उसकी संस्कृति का विकास आवश्यक है।

शिक्षा में सुधार

शिक्षा पर विचार करने के लिये समिति बनी। लार्ड मैकाले उसका प्रधान था। तीन मत भी थे। शिक्षा का माध्यम प्राच्य भाषा में हो, वर्त्तमान प्रान्तीय भाषा में हो अथवा अंग्रेजी। यदि सचमुच शिक्षा का प्रसार उद्दिष्ट था तो प्रान्तीय भाषायें उसके लिये सर्वोत्तम उपकरण थी। याने घरेलू पाठशालायें थोड़ी सहायता पाकर चमक उठतीं उन्हें ये पाठ्यक्रम निश्चित किया जा सकता था। दो चार वर्ष में उसके शिक्षकों की भी संख्या इतनी बढ़ जाती कि शिक्षा प्रसार का कार्य जो आज समस्या बना हुआ है १६ वीं शताब्दी के मध्य तक ही पूरा हो जाता। परन्तु इससे भारतीय शिक्षा प्रणाली और संस्कृति के नाश की सम्भावना नहीं थी। अपितु उसकी और अधिक उन्नति होती जिसे अंग्रेजी सरकार भूल कर भी नहीं चाह सकती थी। अतएव निश्चय हुआ कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होगा। १८३३ ई० के एक दिन के निर्णय से भारतवर्ष के सभी शिक्षित अशिक्षित हो गये। समस्त घरेलू पाठशालायें व्यर्थ हो गई और समस्त भारतीय संस्कृति उल्लू और गधों की करानी हो गई।

लोग इस सुधार की प्रशंसा करते हैं कहते हैं कि अंग्रेजी का प्रचार होने से ही हमें राष्ट्रीय भावनायें प्राप्त हो गई। नवीन ज्ञान प्राप्त हो गया। वे ऐतिहासिक सत्य के प्रति उसी लिये उपेक्षा करने की दृष्टि से देखते हैं कि उनकी आंखों की तारिकाओं पर अंग्रेजी शिक्षा का दूषित जाला है। संसार के इतिहास में इस प्रकार की उससे किसी राष्ट्र ने अपनी उन्नति और राष्ट्रयता की प्राप्ति के लिये नहीं दी। और उन्होंने माध्यम के रूप में अंग्रेजों को कभी अपने गले की जंजीर नहीं बनाया। टर्की ने भी केवल रोमनलिपि स्वीकार की। क्या मातृभाषा के माध्यम द्वारा अंग्रेजी की शिक्षा नहीं सम्भव थी अथवा ११५ वर्ष के इस काल तक संसार की भाषाओं का साहित्य हमारी मातृभाषाओं में नहीं पहुँच जाता। यदि इस दृष्टिकोण को छोड़ कर भी दे तो भी अंग्रेजो शिक्षा के फलस्वरूप अंग्रेजों की महत्ता अपनीं दुर्बलता की मानसिक प्रेरणा से हमारा जितना मानसिक पतन हुआ है हमारी संस्कृति और चरित्र का जितना विनाश हुआ है सम्भवत मुसलमानों की सुदृढ़ ८०० वर्ष की सल्तनत भी उतना नहीं कर सकती।

मैं विकास का विरोधी नहीं। समाजों की संस्कृतियों में भी परिवर्त्तन होता है। परन्तु संस्कृति में परिवर्त्तन जब स्वाभाविक प्रेरणा से होता है तब उससे विकास होता है। परन्तु चरित्रिक पतन के द्वारा होने वाला परिवर्त्तन विनाश की ओर ले जाता है। म आज उसी विनाश की कगार पर पहुंचा कर छोड़ दिये गये हैं। देखना यह है कि हमारे बन्धु अब हमें किस ओर ले जाते हैं। लक्षण शुभ दिखाई देते हैं। भगवान् से प्रार्थना है कि वे हमारे कर्मचारी के हाथों में शक्ति तथा उन्हें मस्तिष्क में सुबुद्धि दें।

आर्थिक सुधार - दोहरा भत्ता कम कर दिया तथा जो सैनिक

कलकत्ते से दूर थे उनका भत्ता आधा कर दिया सिविल सर्विस का व्यय करके तथा बंगाल की बकाया मालगुजारी लेकर उसने २ लाख रुपये की बचत की।

मालवा की अफीम का व्यापार अभी तक मुक्त था। उसने लाइसंस लेकर अफीम की खेती की प्रथा को जन्म दिया। इस प्रकार भारतीय अफीम के व्यापार पर रोक लगादी और सरकारी आय का साधन बना दिया।

दौरे की अदालतें तोड़कर, दीवानी के अधिकार सदर अदालत को देकर फौजदारी के अधिकार कमिश्नर को देकर न्याय व्यवस्था में सुधार करने की चेष्टा की। अदालतों की भाषा उर्दू कर दी और हिन्दुस्तानी जजों का वेतन घटा दिया।

वर्त्तमान युक्तप्रान्त के बन्दोबस्त का काम पूरा करा कर ३० वर्ष के लिये स्थिर कर दिया।

१८३३ ई० में कम्पनी का नया चार्टर फिर २० साल के लिये हुआ। इससे चीन के व्यापार का ठेका कम्पनी से ले लिया गया भारत में व्यापार की सम्पूर्ण स्वतंत्रता अंग्रेजों को मिल गई अतः कम्पनी केवल शासक सत्ता रह गई। गवर्नर जनरल को समस्त भारत के लिये कानून बनाने की आज्ञा मिल गई। तथा उसकी कौंसिल के सदस्यों की संख्या में एक कानून का मेम्बर और बढ़ा दिया गया। पहला मेम्बर मैकाले था। धर्म जाति के विचार से कम्पनी की सेवा करने के लिये सारे भेद दूर करने की कागजी प्रथा भी हो गई।

उनसठवां अध्याय

लार्ड आकलैण्ड

पैरिक अकस्मात त्याग पत्र देकर चला गया था अतएव १८३५ से ३६ तक चार्ल्स या मटकाफ गवर्नर जनरल का कार्य्य करता रहा उसने भारतवर्ष में प्रैस स्वतंत्रता दी। इस स्वतंत्रता के कारण विभिन्न दलों को अपने विचारों का प्रचार करने को सुविधा हो गई। इसका उन्होंने १५७८ ई० तक उपयोग किया १८३६ ई० में लार्ड आक लैण्ड ने आकर कार्य भार सम्भाला उसने वस्तुतः सुधार का काम किया। परन्तु अंग्रेज दृष्टिकोण अंग्रेजी डाक्टरी प्रणाली की शिक्षा उसने भारतीयों के लिये सुलभ कर दी। परन्तु भारतीय औषधि विज्ञान पर अंग्रेजी सरकार की दृष्टि आजतक नहीं पड़ी। यद्यपि अनेक अवसरों पर विभिन्न विद्वानों ने उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की है।

अब उसके काल की विशेष घटना पर विचार कर लिया गया।

अफ़गान युद्ध पंजाब की सिक्खों से पराजय होने के उपरान्त अफ़गानिस्तान के अमरीज़मान शाह ने अफ़गान अमीरों का बड़ा अपमान किया। अतएव वे सब संगठित हो गये हैं। उन्होंने ज़मान शाह को मार डाला। उसके छोटे भाई शाह शुजा ने अपनी जीत न देखकर भारतवर्ष में शरणली। बार कज़ाई वंश का नेता फ़तह खां अफ़गानिस्तान का अमीर हो गया। १८२६ ई० में फतह खां की मृत्यु हो गई। दोस्त मुहम्मद अफ़गानिस्तान का अमीर बना।

शाहशुजा ने १८३५ ई० में रणजीत सिंह को कोहनूर हीरा देकर अफ़गानिस्तान पर आक्रमण कराया परन्तु हीरा देकर भी उसे काबुल की गद्दी न मिली।

तब वह अंग्रेजों की शरण आया । अंग्रेजों ने दाल भात में मूसरचन्द बनकर ही भारतवर्ष का साम्राज्य पाया था । अफ़गानों को भी उन्होंने भारतीय समझ कर १८३९ ई० में आक्रमण कर दिया। अफ़गान इस समय युद्ध के लिये प्रस्तुत ही थे। कन्धार और गज़नी तथा काबुल सहज ही अंग्रेजों के हाथ आ गया। तथा शाहशुजा को गद्दी पर बिठा दिया गया। तथा दोस्त मुहम्मद बन्दी होगया। अब अंग्रेजों ने अपने चरित्र का परिचय दिया । अफ़गान सुन्दरियों के सतीत्व पर भी आक्रमण प्रारम्भ हुआ । अतएव स्वाभिमानी अफ़गान जाति का खून खौल उठा। अकबर खाँ के नेतृत्व में संगठित अफ़गान सेना ने अंग्रेजों की बोटी-बोटी काट डाली। अब पराजय होते देखकर अंग्रेजों ने सन्धि करनी चाही । दोस्त मोहम्मद छोड़ दिया गया परन्तु लौटते समय सीमान्त जातियों ने समस्त अंग्रेजी सेना का वध कर दिया । अकेला डा० ब्राइडन इस दुर्घटना का समाचार देने के लिये बच रहा।

लार्ड एलनबरा ने आते ही स्थिति को संभालने की चेष्टा की। जनरल पोलक और सेल तथा पामर की सेनायें अब भी काबुल में फंसी थी । उनमें पामर की सेना नष्ट होगई और पोलक और सेल अपनी जान बचा कर भाग आये । लज्जा मिटाने के लिये कहीं से दो जोड़ी किवाड़ उखाड़ लाये और सोमनाथ के मन्दिर के किवाड़ कह हिन्दुओं को धोखा देने के लिये जलूस निकाला गया । आगरे के किले तक तो शान बनी रही परन्तु जब भेद खुला तब कुछ नहीं। न वे चन्दन के किवाड़ थे और न सोमनाथ मन्दिर के। इतने बड़े मिथ्या के प्रचार के कारण गवर्नर जनरल को अर्ल की उपाधि प्राप्त हुई।

अब भारत वर्षीय सीमा में लाभप्रद स्थान पंजाब को छोड़ कर केवल सिन्ध रह गया था । पंजाब को घेरने तथा

काबुल पर आक्रमण करने के लिये सिन्ध पर अधिकार करना आवश्यक था। सिन्ध की शासन प्रणाली विचित्र थी। उसमें कई भाई एक साथ शासन करते थे। यद्यपि उनसे बेंटिंक के काल में सन्धि हो चुकी थी। तथा शाह शुजा के साथ काबुल पर आक्रमण करते समय १८३८ ई में भी सन्धि हो चुकी थी और सिन्ध के अमीरों ने इस युद्ध में धन से भी अंग्रेजों की सहायता की थी। अतएव सिन्ध पर आक्रमण करने का कोई कारण नहीं था। परन्तु अंग्रेजी साम्राज्य लिप्सा ने उचित अनुचित का विवेक भारतवर्ष में कभी नहीं किया। तब लाख सन्धि हों वे केवल रद्दी कागज के टुकड़े थे। सिन्ध पर प्रपंचो के जाल बिछा दिये गये। मीरअली मुराद को अपने बड़े भाई रुस्तम खां से फोड़ लिया गया। फिर अमीरों पर बे सिर पैर के इलजाम लगा कर १८४२ ई० लार्ड एलनबरा की आज्ञा से चार्ल्स वियर ने आक्रमण कर दिया। निरन्तर धोखे में रक्खे गये हैदराबाद के अमीरों से बच कर नेपियर ऊपर पहुँच गया और खैरपुर को लूट लिया। फिर भी बराबर हैदराबाद दरबार को धोखा देकर जब वह निकट आ गया तो लूट मार करनी आरम्भ कर दी। १८४३ ई० में बल्लोची सरदारों ने बड़ी भयंकरता से युद्ध किया। परन्तु पराजित हुये। मीरअली मुराद को भी अंगूठा दिखाकर सिन्ध अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। हैदराबाद को लूटा गया, अमीरों की बेगमों को पानी के लिये तड़पा कर उनका जेवर और रुपया छीन लिया गया जिनको एक दिन पहले तक अंग्रेज मित्र कहते रहे जिनके घर दोस्ती का दम भरने वाला नेपियर का साथी उटरम एक दिन पहले तक मेहमान बन कर दावतें खाता रहा उन्हें दूसरे दिन गद्दी से उतार देना केवल अंग्रेजी

राज्य में ही भारतवर्ष में हुआ। १८ करोड़ के लगभग लूट का माल मिला।

ग्वालियर के दरबार के साथ भी इसी प्रकार का खेल किया गया। जनको जी सिन्धिया की अकस्मात् मृत्यु हो गई। उसकी रानी भी केवल १२ वर्ष की थी। ग्वालियर दरबार ने निश्चय किया कि रानी एक लड़के को गोद ले ले तथा तब तक दरबार के वृद्ध दादा खास जी वाला संरक्षक रूप में प्रबन्ध करें।

दादा खास जी वाला विद्वान चतुर और राजनीति पटु व्यक्ति था। लार्ड एलनबरा को इस समय ग्वालियर राज्य पर ऐसे व्यक्ति के प्रभुत्त्वव की आवश्यकता जान पड़ी जो अंग्रेजों का हित साधक हो। अतः मामा साहब को रानी का संरक्षक नियुक्त किया गया। मामा साहब के अत्याचारों से पीडित प्रजा की प्रार्थना पर रानी ने मामा साहब को निकाल दिया अब एलनबरा को बहाना मिल गया। शान्त ग्वालियर राज्य जो सहायक सन्धि के बन्धन से अंग्रेजों के आधीन था, डाकू लुटेरों का अड्डा कह दिया गया फिर सेना भेजी गई। ग्वालियर दरबार ने युद्ध टालने के लिये दादा खास जी वाला को अंग्रेजों के हाथ बन्दी करा दिया। परन्तु लार्ड एलनबरो की इच्छा तो वस्तुतः ग्वालियर पर अधिकार करने की उसने बालका जिसे रानी ने गोद लिया था) की रक्षा का भार अपने सर लेने के लिये सेना भेज कर आक्रमण कर दिया। बिना नेता की ग्वालियर सेना को पराजय में देर क्या थी। ग्वालियर पर अधिकार कर लिया गया और जयाजी राव सिन्धिया का संरक्षक अंग्रेज बना दिया गया।

ग्वालियर और सिन्ध पर अधिकार करने का प्रयोजन

केवल यही था कि आगे आने वाले सिख युद्ध की पृष्ठ भूमि को पुष्ट कर लिया जाय।

अंग्रेजों के सौभाग्य से १८३९ ई० में रणजीतसिंह की मृत्यु हो चुकी थी तथा पंजाब में रणजीतसिंह का पुत्र खड्गसिंह राजा था। कम्पनी की थैली वहाँ भी काम कर गई। राज्य भर में विद्रोह मच गया। इस विद्रोह से लाभ उठाने के लिये सतलज के इस पार पड़ने वाली सिख रियासत "कैथल पर" अकस्मात् आक्रमण करके अंग्रेजों ने १९४३ ई० में अधिकार कर लिया। महाराज रणजीतसिंह का वैध पुत्र शेरशाह १८४३ ई० में मार डाला गया। खड्गसिंह को भी गद्दी से उतार दिया गया।

अब उसने लाहौर की गद्दी पर बैठे हुये बालक दिलीपसिंह के मंत्री हीरासिंह को निकलवाने के लिये सिक्खों के तीन सरदारों को फोड़ लिया तथा उन्हें सेना देकर लाहौर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। परन्तु हीरासिंह ने इन तीनों को पराजित किया। इस युद्ध में तीनों विद्रोही सिख मारे डाले गये।

बुन्देलखण्ड की एक छोटी रियासत जैनपुर के राजा को उतार कर उसने अपने सेवक एक दूसरे राजा को दे दी। अवध के नवाब से खूब कर्जा के नाम पर धन लिया। मुगल बादशाह को नजर बन्द कर दिया और अन्त में नमक पर कर बढ़ा कर एलन ब्रो चला गया।

साठवां अध्याय

लार्ड हार्डिङ्ग १८४४-४८

लार्ड हार्डिंग ने अपने पूर्वाधिकारी के किये हुए अधूरे कार्य्यों को पूर्ण करने के लिये पञ्जाब के समीप की फीरोजपुर

लुधियाना, अम्बाला और मेरठ की छावनियों को अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया। फिर कूट नीति द्वारा लालसिंह प्रधान मंत्री, तेजसिंह प्रधान सेनापति और गुलाबसिंह जम्मू के राजा को अपनी ओर मिला लिया। सब कार्य्य ठीक हो जाने पर बहाना ढूढ़ा जाने लगा। इसी समय सिख सेना अपने ही इलाके तलवण्डी में आई' क्योंकि फीरोज़पुर के निकट अंग्रेज सतलज पर पुल बाँधने का यत्न कर रहे थे। इससे लाहौर दरबार को सन्देह हो गया था कि अंग्रेजों की नियत ठीक नह है। इसका पता इस बात से भी चल गया कि अंग्रेजों के कहने से तलवण्डी में आई हुई सेना जब लौट रही थी तब उस पर गोली चला दी गई। वस्तुतः अंग्रेजों में यहीं से युद्ध आरम्भ कर दिया।

अब लालसिंह ने अंग्रेजों की इच्छा पूरी की, सिख सेना को इस अपमान का बदला लेने के लिये भेज कर नियमित युद्ध घोषणा कर दी गई। लालसिंह अंग्रजों का मित्र था अतएव उसके द्वारा की गई युद्ध घोषणा का अर्थ केवल अंग्रजों की इच्छा पूर्त्ति था।

लालसिंह ने सेना फीरोजपुर की अंग्रेजी छावनी की ओर न भेज कर अंग्रेजों की इच्छानुसार मुदकी में भेज दी। युद्ध में सिक्खों की पराजय निश्चित थी। परन्तु सिख अपने अधिनायक के रोकने पर भी फीरोजपुर की ओर मुड़ गये उन्होंने फिरोजपुर में अंग्रेजों को पराजित किया परन्तु लालसिंह की धूर्त्तता दूसरे दिन जब अंग्रेजों को मुदकी की सेना भी आ गई तब फीरोजपुर में भी सिक्खों की पराजय हुई। अब अंग्रेजों ने पटियाला के राजा को भी फोड़ लिया। अलीवाल और सुभराँव की लड़ाई में अपने ही नेता की प्रवंचना के कारण सिख सेना नष्ट हो गई।

अब हार्डिङ्ग ने तीसरे विद्रोही से सहायता ली। गुलाब सिंह जो इस समय राजधानी में था उसके प्रबन्ध से हार्डिङ्ग को अपनी सेना बढ़ाने में कोई कठिनता न हुई। १८४६ ई० में भैरोवाल स्थान पर सन्धि हुई। रानी झीन्द को गद्दी से उतार दिया गया। गुलाबसिंह को काश्मीर का राज्य मिला और लाल सिंह को उसके विश्वासघात का पुरस्कार कारावास। क्योंकि सेना में लालसिंह का आदर था अतएव किसी समय भी लालसिंह संकट का कारण बन सकता था। दिलीपसिंह के राज्य का कुछ भाग अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। तथा उसे सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिये विवश करके तेज-सिंह के नेतृत्व में ८ सरदारों की कौंसिल के आधीन कर दिया गया। तथा लगभग २ करोड़ रुपये की राशि लाहौर दरबार से ली गई।

अब हार्डिङ्ग ने सतारा के हिन्दू राजा शिवाजी के वंशज प्रतापसिंह को गद्दी से उतार कर बनारस में बिना अपराध कैद कर दिया गया।

इकसठवां अध्याय

डलहौजी १८४८–१८५६

एलनब्रो के चलाये हुये राज्य विस्तार के क्रम में विराम नहीं विश्राम नहीं, एक एक करके भारतीय राज्य अंग्रेजी राज्य के विशाल उदर में समाते जा रहे थे जो कुछ शेष रह गया था उसे पूर्ण करने के लिये डलहौजी आ गया।

डलहौजी निश्चय करके आया था भारतवर्ष के मानचित्र को लाल रंग से रंग देगा। अतएव आते ही उसने सिख

दरबार से बिगाड़ करने के लिये मुल्तान के सर्वप्रिय दीवान को पदच्युत कर दिया तथा उसके सिख सिपाहियों को निकाल दिया। सिपाहियों ने मुल्तान में भेजी जाने वाली अंग्रेज सेना के सेनापति को मार डाला। इस पर उसने महाराजा की रानी पर झूठा दोष मढ़ कर कैद करके बनारस भिजवा दिया जिससे असन्तोष की आग भड़क उठी। हजारा प्रान्त के सरदार चतरसिंह अटारी वाले की लड़की की सगाई दिलीपसिंह से ठहर चुकी थी। उसे रुकवा दिया तथा चतरसिंह को तंग कराने लगा। पंजाब में सिख मुसलमान का विरोध भड़काया जाने लगा।

उधर मुल्तान का विद्रोह चल ही रहा था। समस्त पंजाब में असन्तोष की लहर थी ही। सरदार शेरसिंह के नेतृत्त्व में युद्ध होने लगा। चिलियान वाला युद्ध में अंग्रेजों की भयङ्कर पराजय हुई। परन्तु गुजरात में इस सेना की अन्तिम पराजय पंजाब के मुसलमानों के देश द्रोह से हुई और दिलीपसिंह को गद्दी से उतार कर १८४६ ई० में अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

अब केवल वर्मा का राज्य स्वतन्त्र रह गया था। अतएव उसे भी अधिकार में करने के लिये बहाना ढूंढ़ा गया। रंगून दरबार ने नर हत्या के अपराध में दो अंग्रेजी जहाज के कप्तानों पर २०० पौण्ड का जुर्माना कर दिया था। उसके बदले में ब्रह्मा देश से लड़ाई की घोषणा कर दी गई। ब्रह्मा की सरकार युद्ध के लिये प्रस्तुत न थी। उसने हर्जाना देना भी स्वीकार कर लिया था परन्तु लोअर ब्रह्मा जीत कर १८५२ ई० में अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। अंग्रेजों की साम्राज्य लिप्सा हम कहें या ब्रह्मा दरबार का अपराध।

अब भारतवर्ष के आधीन राज्यों को हड़पने के लिये उसने

एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना की। उसका उद्देश्य कोई सिद्धान्त बनाकर उस पर चलने का नहीं था वरन् अङ्गरेजी राज्य को विस्तार देना था। उसने सम्पूर्ण देशी राज्यों को दो भागों में बांट दिया। पहला जिन्हें उत्तराधिकार के लिये गोद लेने का अधिकार था तथा दूसरा जिन्हें यह अधिकार नहीं था। गोद लेने का अधिकार रखने वाले दो प्रकार के राज्य थे। एक पूर्ण स्वतन्त्र जैसे नैपाल दूसरे अर्द्ध स्वतन्त्र जिन्हें मुगल दरबार या पेशवा के आधीन राजा होने की सनदें प्राप्त थीं।

इस सिद्धान्त के गुण दोषों की विवेचना हम आगे करेंगे। परन्तु यहाँ उसका किन किन राज्यों पर प्रयोग किया गया उसे संक्षेप में लिखा जाता है।

कोलावा माण्डवी और अम्बाला के राज्य डलहौजी के पूर्व ही इसी नीति के सहारे अंग्रेजी राज्यमें मिलाये गये थे। परन्तु अब डलहौजी ने इस नीति के अनुसार सतारा राज्य को मिला लिया। भोंसले के नागपुर राज्य का अन्त कर दिया। झांसी का राज्य रानी से छिन गया। सम्भलपुर, बिहार उड़ीसा का मध्यवर्ती छोटा राज्य) अङ्गरेजी राज्य में मिला लिया गया। सहायक सेना के व्यय के मद्धे ऋण के भार से दबे निजाम से बराबर का उपजाऊ सूबा छीन लिया गया। अब अन्तिम चोट अवध के नवाब पर करनी थी। अतएव उसका प्रबन्ध किया गया।

अवध का अपहरण

कहानी दुःखद है परन्तु इतिहास के विद्यार्थीको दुःख सुख से ऊपर उठ कर देखना पड़ता है। अतएव उसे सन्तोष करके सब सह लेना और अपनी निष्पक्ष धारणा बनानी होती है।

अवध का राजकुमार अभी राजकुमार है। मन्त्रियांव

छावनी में अंग्रेजों की सहायक सेना का पड़ाव है। मंडियाव के आस पास के गांव उजड़ चुके हैं। खेतों के स्थान पर जंगल उग आये हैं। उनमें गरीब घसियारिनें घास छील ले जाती हैं।

एक दिन किसी अंग्रेज को राजकुमार ने किसी घसियारिन के साथ बलात्कार की चेष्टा करते समय सैर को जाते हुए देख लिया। भारतीय राजा कुमार की अन्तरात्मा विकल हो उठी। उसने गोरे को गोली मार दी।

यही राजकुमार १८४६ ई० में गद्दी का अधिकारी हुआ। उसे अपने देश के रोग का ज्ञान था अतएव उसने उसकी चिकित्सा करने का विचार किया। नित्य सेना को कवाइद दी जाने लगी। परन्तु अङ्गरेज रेजीडेंण्ट के हृदय पर गोरे के वध का चित्र अङ्कित था। वह इस कवायद के भीतर की बात समझता था। अतएव उसे यह कैसे सहन होता। कवायद शक्ति प्रयोग द्वारा बन्द करा दी गई।

राजकुमार के खानसामा को मिला लिया गया। अब राजकुमार के भोजन में काले विषैले सर्प के मांस की मात्रा का प्रयोग होने लगा। बादशाह का शरीर गर्मी से फुकने लगा। हकीम ने अंगरेजी सरकार की सम्मति से बादशाह को विलासिता का नुस्खा लिखा। अवध का उपजाऊ सूबा, धन की कमी नहीं। बादशाह विलासी हो गया। परन्तु अब भी वह अपने राज्य के प्रबन्ध से उदासीन नहीं था। प्रजा सुखी और शान्त थी। परन्तु उसका राज्य छीनने के लिये उसका विलासी होना पर्याप्त था।

अंगरेजों की अतिरिक्त सेना आ रही है। कुमांऊ पर चढ़ाई करने के लिये दरबार का मुसलमान प्रधान मन्त्री मिला लिया गया है। बादशाह धोखे में रक्खा गया है। रेजी-

डेण्ट उटरम बादशाह से अपनी सेना अवध राज्य से निकल जाने देने की आज्ञा लेने गया। परन्तु नवाबी त्याग का स्वीकार पत्र उसके सम्मुख रख दिया गया। कहानी जान पड़ती है। हो सकता है कि कहानी ही हो। और आज यदि यह कहानी सिद्ध हो जाय तो लेखक को प्रसन्नता होगी। परन्तु लेखक ने कहानी ऐसे मुंह से सुनी है जो उस समय युवक था वे लखनऊ की उसी सेना का नायक था जिसकी नित्य क़वायद होती थी। अन्त में फकीर का जीवन बिता रहा था। उसकी जीवन की सरलता ने लेखक को कहानी की सत्यता का विश्वास दिला दिया। अवध का राज्य अंग्रेजी राज्य का अंग हो गया। वह राज्य जिसका अङ्गरेजों पर लाखों नहीं करोड़ों रुपए का कर्जा था। जिसने अङ्गरेजों को प्रत्येक गाढ़े अवसर पर आर्थिक सहायता दी थी।

लार्ड डलहौजी के शासन सम्बन्धी कार्य्य

१. उसने प्रान्तों की व्यवस्था को ठीक किया और नव निर्मित राज्य को भिन्न प्रकार के सूबे (नान रेगुलेशन सूबे) का नाम दिया। इन प्रान्तों में स्थानीय स्वतंत्रता अधिक थी।

२. सार्वजनीन विभाग की स्थापना की यही अजकल पो० डब्ल्यू० डी० के नाम से प्रसिद्ध है।

३. चार्ल्स बुड़की प्रारम्भिक योजना को उसने कार्य्यान्वित किया।

४. इञ्जीनियरिंग (यान्त्रिक कला) की शिक्षा के लिए तीन विद्यालय मद्रास, बंगाल और बम्बई प्रान्तों में कालेज खोले।

५. डाक व्यवस्था में २ पैसे की चिट्ठी का डाक द्वारा दूर-दूर तक भेजा जाना प्रचलित किया।

६. सबसे पहली रेल इसी ने बनवाई।

७. सड़कों का सुधार कराया।

८. न्यायालय, पुलिस और कारागारों के प्रबन्धों में सुधार किया।

६. सिक्खों और गोरखों की पलटनें बनाईं।

१०. अवध से आने वाली सेना की संख्या कम की।

११. बन्दरगाहों को सुदृढ़ कराया। स्थान स्थान पर प्रकाश स्तम्भों का प्रबन्ध किया।

१२. धार्मिक निर्हस्तक्षेप की नीति की घोषणा की।

इसी के समय १८५३ ई० का चार्टर आया। उस चार्टर के अनुसार प्रारम्भिक शिक्षा माध्यम प्रान्तीय भाषाऐं स्वीकार की गईं। अतएव रही सही भी घरेलू पाठशालायें बन्द हो गईं।

बंगाल में लेफ्टीनेंट गवर्नर की स्थापना हुई।

शिमला भी गर्मी की राजधानी बन गया।

कम्पनी के व्यापार का अधिकार पूर्णतया समाप्त कर दिया गया।

डायरेक्टरों की संख्या २४ से १८ करदी गई तथा ब्रिटिश सरकार के ६ नियुक्त संचालक इसी संचालक समिति में आने लगे।

नियंत्रण समिति को सम्पूर्ण अधिकार दे दिए गए।

विधान परिषद में सदस्यों की संख्या बढ़ादी गई। न्याय विभाग का सदस्य गवर्नर सभा का सदस्य बना दिया गया।

नौकरी के लिए सिविल सर्विस परीक्षा का नियम रक्खा गया परन्तु उसमें इंग्लैण्ड में उत्पन्न नागरिक को ही बैठने का अधिकार दिया गया।

बासठवाँ अध्याय

कम्पनी के इस काल पर

(सिंहावलोकन)

प्रारम्भ से ही मेरा निश्चिय था कि मैं भारतीय इतिहास के उज्जवल पक्ष पर विशेष ध्यान दूंगा और उसके मलिन पक्ष पर केवल आवश्यकता भर का ही विचार करूंगा। कारण स्पष्ट है। यह पुस्तक जिनके हाथों में समर्पित है वे अभी कोमल और सुकुमार बुद्धि के भारतीय नागरिक हैं। उनके शुद्ध और स्वतंत्र पवित्र मानसिक विकास के लिये प्रत्येक इतिहास लेखक का दृष्टिकोण यही होना भी चाहिए। परन्तु सत्य के अनुरोध के समक्ष इतिहासकार का कठोर कर्त्तव्य उसे पग पग पर अपनी धारणाओं, निश्चयों को मिटा देने की प्रेरणा देता है। अतएव सत्य की रक्षा करते हुए जहां तक हो सका मैं हिन्दू और मुसमान काल के विवेचन में सफल हुआ।

मैंने अनुभव किया कि मेरी धारणाऐं या निश्चय कम्पनियों के प्रारम्भ के साथ ही जड़ मूल से कटे जा रहे हैं सिराजुद्दौला के राजसिंहासन से आज भी टपकने वाले रुधिर के आंसू मेरे हृदय को मथने लगे। वैज्ञानिक द्वारा दिया हुआ उसका समाधान मुझे सन्तोष न दे सका। अतएव मुझे अंगरेज इतिहास लेखकों की शरण लेनी पड़ी। परन्तु उन पुस्तकों में सत्य के स्थान पर असत्य का प्रचार देखकर मैं द्वन्द्व में फंस गया कि क्या मैं अपने निश्चय की सफ़लता के लिए सत्य पर आधारित इतिहास को उसी प्रकार असत्य लिखूं जैसा हमारे प्रभुओं ने किया है। परन्तु उन्हीं अंगरेजों में मुझे सत्य भी मिल गया। अतएव मुझे अपने निश्चय के साथ ही अत्याचार

करना पड़ा। जहां तक हो सका सत्य की रक्षा करते हुए मैं इस काल तक अपने निश्चय को भी खींच लिया। परन्तु देखता हूं तो मुझे अपनी निर्बलता और सत्य की बलवत्ता तथा विजय ही दिखाई दी।

इस काल का सिंहावलोकन भी उसी का परिणाम है अतएव अपनी स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक था।

बंगाल की विजय में जिस नीति का सहारा लिया गया था वही नीति निरन्तर इस काल में भी चालू रही। डलहौजी को छोड़कर शेष सब गवर्नर जनरलों ने देशी नरेशों की मृत्यु पर दरबारों में फूट उत्पन्न की और स्वयं निर्णायक बनकर राज्य का भाग लेते रहे। डलहौजी ने केवल इतना अन्तर कर दिया कि स्वयं निर्णायक बनकर भाग की अपेक्षा सम्पूर्ण राज्य ही ले लिया।

इसी प्रकार इस इतिहास में हम यह भी देखते हैं कि युद्ध घोषणा में कोई ऐसी नहीं थी जिनमें कम्पनी को ऐसे कारण मिले हैं। जो वस्तुतः युद्ध के कारण थे। मुसलमान शासकों पर अकारण दूसरे राज्यों पर आक्रमण करने का दोष लगाया जाता है परन्तु उन्होंने यदि आक्रमण किये तो ऐसे समय जब दूसरे राज्य भी युद्ध के लिये प्रस्तुत थे। कम्पनी के अधिकारियों ने उस समय आक्रमण किये जब वे अन्य राज्य अपने घरेलू झगड़ों में उलझे थे और बाहरी शक्ति से युद्ध करने के योग्य न थे।

राज्य व्यवस्था में जिन बातों को सुधार कहा जाता है उनमें सदैव इस भावना ने काम किया जिससे भारतवर्ष में अंग्रेजी राज्य सुदृढ़ हो सके। फिर चाहे शिक्षा हो, चाहे पुलिस, चाहे न्याय विभाग हो चाहे भूमि प्रबन्ध, भारतवर्ष की शारीरिक

स्वतन्त्रता छीनकर, इन सुधारों द्वारा मानसिक स्वतन्त्रता पर भी आघात किया गया। गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ का कथन कितना सत्य है कि मुसलमानों की विजय केवल तलवार की विजय थी परन्तु अङ्गरेजों की विजय हमारी संस्कृति की पराजय है। वस्तुतः आज जो भारतीय चरित्र में दुर्बलता दिखाई पड़ती है वह हमारी स्वाभाविक निर्बलताओं का परिणाम नहीं है न उसमें वर्त्तमान जाति भेद ही पूर्णतया उत्तरदायी है न हमारी संस्कृति वरन् इसका सुसंगठित प्रयत्न कम्पनी के सुधारों के नाम पर हुआ है।

कम्पनी के काल में भारतवर्ष का आर्थिक सन्तुलन भी नष्ट हो गया किस प्रकार हमारा समुद्री व्यवसाय समाप्त हुआ तथा किस प्रकार निर्यात प्रधान देश से आयात प्रधान हमारा देश बन गया इसका विवरण हम समय समय पर करते आये हैं।

परन्तु कम्पनी के काल ने हमें एक वस्तु दी। कम्पनी ने हम में एक राजनैतिक चेतना अवश्य दी। लगातार ठोकरें खाते खाते भारतवर्ष के हिन्दू मुसलमान दोनों १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही समझने लगे थे कि अंग्रेज भारतवासी का हित चिन्तक नहीं है। उसी उद्देश्य से पिण्डारी राज्य क्रान्ति का जन्म हुआ था।

डलहौजी की नीति ने दमन के द्वारा शान्त उस भारतीय भावना को फिर जगा दिया था। यहां अवसर आ गया है कि हम डलहौजी की लैप्स पालिसी (उत्तराधिकार समाप्ति नीति) पर विचार करलें।

उत्तराधिकार समाप्ति नीति की आलोचना हिन्दू समाज में उत्तराधिकार नियम पत्नी या पुत्र को देता है। पुत्र के होते हुये पत्नी को भी उत्तराधिकार प्राप्त नहीं होता। साथ ही विधवा

विवाह को स्वीकार नहीं करता एक पत्नी से सन्तान न होने पर इस प्रकार पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं रहता। अतएव बहु विवाह की भी आज्ञा देता है। परन्तु बहु विवाह को हिन्दू आवश्यक धर्म नहीं मानता। अतएव एक पत्नीव्रती को दत्तक पुत्र गोद लेने का भी अधिकार देता है। उस पुत्र को श्राद्ध कर्म का अधिकार देता है। अतएव दत्तक पुत्र को न स्वीकार करना उस नीति की सबसे बड़ी अनौचित्य है। कम्पनी के इस अन्याय की कालिमा धोई नहीं जा सकती।

उसमें प्रतापसिंह का राज्य भोंसले का राज्य, रानी लक्ष्मी बाई का राज्य यद्यपि अंग्रेजों के सहायक राज्य थे परन्तु वे अंग्रेजों के दिये हुए राज्य नहीं थे। यह ठीक है कि अंग्रेजों ने इन शक्तियों को पराजित करके भी जीवित रख छोड़ा था परन्तु डलहौजी की न्याय संगत परिभाषा में ये राज्य नहीं आते थे साथ ही उत्तराधिकारी होते हुये भी अवध के राज्य को छीन लेना खुलीलूट के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। कम्पनी के इस काल में साम्राज्य लिप्सा की प्रवृत्ति ने ही उसके विरोधी तत्वों की न केवल भारतवर्ष में ही वरन् इंगलैण्ड में भी उत्पन्न करदी थी। यह समझना भूल होगी कि केवल १८५७ ई० की राज क्रान्तिने ही कम्पनी से राज्य छिनवा दिया। गवर्नर जनरलों के काले कारखानों में की सूचना उन्हीं के भाई बन्द पार्लियामेण्ट को बराबर देते रहे हैं। और इस पुस्तक में उन सूचनाओं से बड़ी सहायता ली गई है। अतएव कम्पनी का अस्तित्व मिटने वाला ही था राजक्रान्ति तो केवल एक बहाना हो गई।

यह भी ठीक है कि इस काल में कम्पनी अपनी व्यापारिक सत्ता समाप्त कर चुकी थी। कम्पनी के १८१३-३३-५३ के चार्टरों

(आभा पत्रों) में बराबर वे अधिकार कम किये गये। और वस्तुतः अब भारतीय व्यापार में रक्खा भी क्या था।

हम वेलजली से ही इस काल को इसलिये आरम्भ करते हैं कि इससे पूर्व तक कम्पनी को जितना साम्राज्य लाभ हुआ उसकी गति इस काल में अत्यधिक गति हो गई। इस गति को देखते हुये यह कहना पड़ता है कि इससे पूर्व कम्पनी का उद्देश्य व्यापारिक लाभ के लिये देश जीतना था परन्तु इस काल में साम्राज्य लाभ उसका लक्ष्य हो गया था।

इस काल का तिथि क्रम से वर्णन

१७६८-१८०५ वेलेजली

१७६८ निजाम से सहायक सन्धि

१७६६ में तंजौर का अंग्रेजी राज्य में मिलाया जाना, मैसूर युद्ध और टीपू की मृत्यु

१८००० ई० सूरत पर अंग्रेजी अधिकार, नाना फरनवीस की मृत्यु-निजाम से दूसरी सन्धि

१८०१ ई० अवध के नवाब से सहायक सन्धि, कर्नाटक अंग्रेजी राज्य में

१८०२ ई० वसई की सन्धि होल्कर और पेशावर की पराजय

१८०३ ई० मराठा युद्ध अहमद नगर अंग्रेजी राज्य में।

१८०४ ई० मराठा युद्ध

१८०५ ई० भरतपुर का घेरा कार्नवालिस की मृत्यु देव गांव और अर्जुन गांव की सन्धि सिन्धिया और भोंसला से

१८०५-७ सरजार्ज वार्लो

१८०६ वैलोर का विद्रोह

१८०७-१३- लार्ड मिण्टो
१८०८ अफ़गानिस्तान से मित्रता
१८०९ अमृतसर की सन्धि (अंग्रेज रणजीतसिंह)
१८१३—कम्पनी का नवीन आज्ञा पत्र
१८१३-२३ लार्ड हेस्टिंग्स
१८१४-१६ नेपाल युद्ध
१८१५-गंगाधर शास्त्री का वध
१८१६ सिगौली की सन्धि (नैपाल अंग्रेज)
४८१७-१९ पिण्डारी राज्य क्रान्ति का दमन
१८२० रणजीतसिंह के पंजाब राजा स्वीकृत
१८२३-२८-लार्ड अमहर्स्ट
१८२४-२६-ब्रह्मा का युद्ध
१२२६-यन्दबू की सन्धि (ब्रह्मा और अंग्रेज)
१८२८-३५-विलियम वेंटिंग
१८२८ सती प्रथा का अन्त
१८२९ ठगों का दमन
१८३३ कम्पनी का नवीन आज्ञा पत्र
१८३५ अंग्रेजी भारत की शिक्षा का मध्यम (लार्ड मेंकाले)
१८३५-३६ चार्ल्स मैटकाफ
१८३३ प्रेस स्वतन्त्रता
१८३२ कछार अंग्रेजी राज्य में
१८३५ रणजीतसिंह द्वारा पेशावर विजय
१८३६-४२ लार्ड आकलैण्ड
१८३९ रणजीतसिंह की मृत्यु
१८३९-४२ अफ़गान युद्ध में अंग्रेजों की पराजय
१८४२-४४ लार्ड एलनबरा
१८४२ अकबरखां (दोस्त मोहम्मद के पुत्र से सन्धि)

१८४३ सिन्ध के अमीरों पर विजय, सिन्ध राज्य में मिलाया गया

१८४४-४८ लार्ड हार्डिङ्ग

१८४५-४६ सिक्ख युद्ध

१८४८ लाहौर की सन्धि सिक्खों की पराजय।

१८४८-५६ लार्ड डलहौजी।

१८४८-४६ सिक्ख युद्ध पंजाब अंग्रेजी राज्य में।

१८४६ सितारा अंग्रेजी राज्य में।

१८५२ ब्रह्मा युद्ध (अंग्रेज और ब्रह्मा)

१८५३ झांसी पर अधिकार, बरार अंग्रेजों के अधिकार में।

१८५४ नागपुर अंग्रेजी राज्य में

१८५६ नवाब वाजिदअली शाह का गद्दी से उतारा जाना।

प्रश्न

१—वेलजली से पूर्व और वेलजली के पश्चात् के कम्पनी के उद्देश्यों के अन्तर को उदाहरण देकर समझाओ।

२—उन सुधारों का वर्णन करो जिनसे भारतवर्ष को आर्थिक, अथवा सांस्कृतिक हानि हुई। उत्तर को उदाहरणों से पुष्ट करो।

३—वेलजली और डलहौजी की नीतियों की तुलना करके समझाओ कि दोनों का उद्देश्य एक ही था परन्तु कार्य्य शैली में अन्तर।

४—इस काल में अंग्रेजी राज्य का विस्तार क्यों इतना शीघ्र हुआ। भारतवर्ष की उन परिस्थितियों पर प्रकाश डालो जो इस समय अंग्रेजों के अनुकूल थीं।

५—ठगों और पिण्डारियों के अन्तर को स्पष्ट करो।

६—वे कौन से सुधार इस काल में हुये जिनका हमारे वर्त्तमान संस्कृतिक जीवन पर विकास की ओर ले जाने वाला प्रभाव पड़ा।

७ —रणजोतसिंह, अहल्या बाई, महारानी सिन्धिया और नाना फरनवीस पर नोट लिखो।

तिरसठवां अध्याय

भारत में स्वतंत्रता के लिये सशस्त्र क्रांति

दोनों शब्द परस्पर पर्य्याय से लगते हैं। परन्तु दोनों में के मूल में जो अन्तर है उसे अवश्य समझ लेना चाहिए। विद्रोह का अर्थ समाज विशेष का कारण विशेष से असन्तोष प्रदर्शन करना होता है। उस विशेष कारण में राज्य सत्ता से विरोध नहीं होता वरन उन विशेष परिस्थितियां से पीड़ित समाज उन कारणों से त्राण पाने के लिये उत्तेजित हो उठरा है जो उसकी पीड़ा और कष्ट का मूल होते हैं। यदि राज्य सत्ता बुद्धि से काम ले तो उन कारणों को दूर करके विद्रोह को बिना दमन का आश्रय लिये शान्त कर सकतो है।

विद्रोह और क्रान्ति

परन्तु क्रान्ति का उद्देश्य केवल परिस्थितियों को बदलना नहीं होता वरन् राज्य सत्ता का ही अथवा किसी व्यवस्था का ही विनाश कर देना होता है। उत्तेजना इसमें भी होती है। क्रान्तिकारी का हृदय पीड़ित होकर ही क्रान्ति की ओर प्रवृत्त होता है। परन्तु क्रान्तिकारी पीड़न के साधनों की अपेक्षा उसके

मूल को नष्ट करके अपनी रुचि के अनुकूल किसी नवीन व्यवस्था के प्रचलन अथवा प्राचीन व्यवस्था के पुनः स्थापन के लिये यत्नवान होता है ।

विद्रोह और क्रान्ति में एक अन्तर और भी है। विद्रोह समुदाय विशेष के द्वारा अपने विशेष हितों के लिये हुआ करते हैं। परन्तु क्रान्ति का उद्देश्य समुदाय विशेष की अपेक्षा अधिक व्यापक तथा अधिक सार्वजनीन होता है। समुदाय विशेष का हिताहित साधारण जनता के हिताहित में लीन हो जाता है। जिस क्रान्ति का आधार यह नहीं होता उसे क्रान्ति नहीं कहा जा सकता।

किसी देश में क्रान्ति का कार्य्य सब वर्ग के लोग नहीं करते इसमें वर्ग विशेष अपने हितों का ध्यान रख कर क्रान्ति के विरोध में भी खड़े हो जाते हैं। परन्तु विद्रोह में ऐसा नहीं होता अतएव विद्रोही की विरोध करने वाली केवल राज सत्ता ही होती है। साधारण जनता का उससे विशेष विरोध नहीं हो जाता ।

विद्रोह और क्रान्ति के उद्देश्य और साधनों में इस प्रकार एकता का एक अंश होता है, उत्तेजना। परन्तु इस उत्तेजना के उपयोग में दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। विद्रोह की उत्तेजना की मस्ती उन व्यक्तियों की भी शत्रु हो जाती है जो उसे पीड़ित करते रहते हैं। परन्तु क्रान्ति भी उत्तेजना में मौलिक रूप से व्यक्तिगत शत्रुता का भाव कदापि नहीं होता यद्यपि क्रान्ति में ऐसे अवसर आ जाते हैं जब जब क्रान्ति कारी के मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ जाता है और नृशंस हत्या भी होती है ।

वर्त्तमान अध्याय के प्रारम्भ से पूर्व क्रान्ति और विद्रोह

का परिभाषिक अन्तर समझ लेना आवश्यक था क्योंकि अभी हम से यही कहा जाता रहा है कि १८५७ ई० में सिपाही विद्रोह के अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ था। अब हम इसी पर विचार करेंगे।

सिपाही विद्रोह ही यदि होता तो हम उसे क्रान्ति न कहते विद्रोह के संगठन का जन्म सिपाहियों में नहीं हुआ। वरन् इंग्लैण्ड की राजधानी लन्दन में सतारा के पदच्युत राजा प्रतापसिंह के वकील रंगोजीबापू तथा पेशवा के वकील अजीमुल्ला के द्वारा क्रांति की रूप रेखा बना गई थी। अजीमुल्ला ने इसीलिये फ्रांस रूस इटली और तुर्की का भ्रमण किया था। और एक निश्चित कार्य क्रम लाया था जिसके अनुसार देश व्यापी संगठन की आयोजना बनी थी।

यह ठीक है कि सैनिकों के द्वारा क्रान्ति का प्रारम्भ हुआ। क्या सैनिक न प्रारम्भ करते तो निरीह जनता क्रान्ति का प्रारम्भ करती। क्या भारतवर्ष के अतिरिक्त संसार के किसी इतिहास में क्रान्ति सेना के अतिरिक्त किसी अन्य शक्ति द्वारा संगठित हुई। अतएव क्रान्ति का प्रारम्भ भी सेना से ही यदि हुआ तो उसे केवल सिपाही विद्रोह कह कर अनाचार समझना भारतीय चरित्र को कलङ्कित करना है।

परन्तु यदि प्रजा ने इन क्रान्तिकारियों का साथ न दिया होता तो अवश्य हम इसे सिपाही विद्रोह स्वीकार कर लेते। बनारस अंग्रेजों के हाथ में था परन्तु जनता विद्रोहियों के साथ थी। सिन्धिया अंग्रेजों का मित्र था परन्तु ग्वालियर की प्रजा क्रान्तिकारिणी थी दिल्ली की इंच इंच भूमि को रक्त से लाल करके ही क्रान्ति का दमन हो सका। लखनऊ का सआदतगंज मोहल्ला जनता की क्रान्ति की साक्षी है। बशीरतगंज हैवलाक की तीन बार पराजय जनता को क्रान्ति

से हुई। रुइयां, शाहजहां पुर बरेली, कानपुर जनता के द्वारा ही क्रान्तिकारियों के हाथ में आये। नवाब चरखारी अंग्रेजों का मित्र था परन्तु झांसी की रानी के आक्रमण के समय नवाब के सिपाही दुर्ग की रक्षा के लिये युद्ध करते थे जनता को क्रांतिकारियों की सहायक थी। इलाहाबाद के बच्चे इस लिये गोली से उड़ा दिये गये थे उन्होंने बादशाह के झण्डे अपने हाथ से नहीं फेक दिये। क्या यह केवल सिपाही विद्रोह था। यदि यह केवल सिपाही विद्रोह था तो बनारस के जिले में तीन महीनों तक आठ २ गाड़ियां क्या रात दिन सिपाहियों की लाशें ढूढ़ती रहीं। न ही सामान्य जनता का आत्म सम्मान उस समय तक मरा था उनमें स्वाधोनता की इच्छा थी अतएव जन क्रान्ति हुई थी।

जब क्रांति का एक दूसरा लक्षण यह भी था कि जिन जिन भागों पर क्रांतिकारियों ने अधिकार कर लिया वहाँ की जनता ने क्रांति की सहायता के लिये अपना सर्वस्व प्रसन्नता से अर्पण कर दिया। अपने आप गाँव में क्रांति के सचालक नेता निकल आये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि १८५७ ई० में वस्तुत: एक क्रांति हुई। ऐसी क्रांति जिसका उद्देश्य अंग्रेजी राजसत्ता की स्थापना थी। किसी सेना अथवा समुद्राय के विशेष हित उसमें निहित नहीं थे। इतिहास साक्षी है। बहादुरशाह ने सेनाओं से विद्रोह करने के लिये नहीं कहा वरन् सेनाओंने बहादुरशाह के शिर पर फिर भारत के सम्राट का मुकुट पहनाया। उसके भाग्य में लिखा था कि उस मुकुट को फिर अंग्रेजों के पैरोंसे रौंदा जाय इसीलिये अंग्रेजों को सिक्खों और गोरखों की सहायता मिल गई। अन्यथा अपनी वीरता की डींग हांकने वाले अँगरेजों की राज सत्ता एक बार दिल्ली से लेकर बिहार तक के प्रदेश से तो उठ

हो गई थी। अब हम उन कारणों पर संक्षेप में विचार करेंगे जिनका कारण इस क्रांति का संगठन किया गया था।

चौंसठवां अध्याय

इस क्रांति के मूल कारणों को हम निम्न लिखित भागों में बाँट सकते हैं।

१—देश की आर्थिक दुरवस्था।
२—धार्मिक भावनाओं पर आघात।
३—सेना में पक्षपात।
४—शुद्ध राजनैतिक।

आर्थिक दुरवस्था—हम पहले कह आये हैं कि कम्पनी के शासन काल में भारतवर्ष का आयात प्रधान हो गया था। भारववर्ष के निर्यात में कच्चा माल था। अतएव भारतीय कारीगरों को अपने उद्यम के लिये कच्चा माल मिलना कठिन हो गया। साथ ही कम्पनी के प्रारम्भिक काल में किस प्रकार भारतीय कला का विनाश किया गया था उसका विवरण हम दे चुके हैं। नमक जैसी आवश्यक वस्तु पर भी भारी से भारी कर लगा दिया गया था। जमींदारों तथा कम्पनी के व्यापारियों और अधिकारियों द्वारा भारतवर्ष की चाँदी इंग्लैण्ड भेजी ही जा रही थी। अतएव दरिद्रता बढ़ने लगी थो भारतीय शिक्षा का बहिष्कार करके भारतीय शिक्षितों के लिये राज सेवा का सरल मार्ग बन्द हो चुका था। राज्यों की लूट में भी कोई कमी नहीं छोड़ी गई थी। अतएव निर्धनता और बेकारी दोनों ने मिल कर भारतीय जनता की आर्थिक व्यवस्था को बिगाड़ दिया था। यातायात के नित्य बढ़ते हुये साधनों के कारण जब देश के कोने कोने से धन और अन्न भी खींचा जाने लगा तो

सामान्य जनता के कष्टों की सीमा नहीं रही। कोई व्यवसाय नहीं उद्यम नहीं, पेट भरने का साधन नहीं ऐसे राज्य के प्रति क्रान्ति की भावनायें पनपती ही हैं।

ईसाई धर्म का प्रचार के लिए कम्पनी पूरी सहायता दे रही थी ईसाई बन जाने वालों की सुख सुविधा का प्रबन्ध किया जाता था। यहां तक तो सही था। परन्तु जब

धार्मिक कारण

खुली सड़क पर मुहम्मद, राम और कृष्ण को गालियां दी जाने लगीं। मुहम्मद को दोजखी कहकर प्रचार किया जाने लगा सीरामपुर त्रिपादरी समुदाय ने पत्रों के द्वारा हिन्दू और मुसलमान धर्म पर सीधे आघात प्रारम्भ कर दिये। सती प्रथा को बलपूर्वक बन्द किया गया विधवा विवाह को कानून के द्वारा प्रश्रय दिया। सहारनपुर में अस्पताल खोला गया तथा जनता को हिन्दू मुसलमान वैद्य हकीमों की दवा के लिए निषेध करके बलपूर्वक अङ्गरेजी अस्पताल में दवा लेने के लिए वाध्य किया जाने लगा। रेल, तार और डाक द्वारा ईसाई साहित्य और मत प्रचारक गांव-गांव से पहुंच कर कल-बल-छल से भोले हिन्दू मुसलमानों को धर्म की दीक्षा देने लगे। तब धर्म प्रधान भारतवर्ष की सामान्य जनता की भावनाएँ उत्तेजित हो गईं। मुसलमानों के काल में भी इस प्रकार के संगठित यत्न धर्म प्रचार के लिये नहीं हुये थे। उन्होंने सामान्य जनता को धोखा देकर या तलवार का भय दिखाकर मुसलमान बनाने की चेष्टा नहीं की। कुछ मन्दिर तोड़े, कुछ भक्तिधारी व्यक्तियों पर बल प्रयोग किया तथा कुछ वैसे ही आदमियों को प्रलोभन देकर मुसलमान बनाया गया था। हिन्दुओं से कुछ जातियां सामाजिक तिरस्कार से भी मुसलमान न हुई थीं परन्तु इस धर्म प्रचार ने नीचता का ढंग ले लिया था।

अङ्गरेज भारतवर्ष का राजा हो चुका था। अतएव उसने अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि समझना प्रारम्भ कर दिया था।

साधारण से साधारण अङ्गरेज को भी यह

सैना में पक्षपात अधिकार मिल गया था वह किसी का अपमान कर दे। परन्तु सेना के उच्छृङ्खल मूर्ख गोरे हिन्दू मुसलमान सैनिकों का निरन्तर अपमान करते थे। हिन्दू ऊँचे अफसर अपने गोरे सिपाहियों का पक्ष लेते थे। अतएव देशी सैनिकों में सामाजिक असंतोष था।

हिन्दू सिपाहियों से ६ गुना बेतन तथा भत्ते के नाम पर भी अंगरेजों को जो मिलता था उतना बेतन तो क्या देशी किरोनी लोगोंको भी उचित अनुचित सबको प्रर्याप्त हीं होती थी। हिन्दू से मुलमान सैनिकों के बाड़े मुर्गी बन्द करने के दावें के समान थे। अतएव देशी सिपाहियों में आर्थिक असन्तोष था

अब देशी सैनिकों को कानून दिये गये। इन कारतूसों को चिकना करने के लिए दान्तों से काटना पड़ता था, एक ब्राह्मण कुएं पर पानी लेने गया, कारखाने में काम करने वाले मेंहतर ने उसे लोटा मांजते देख कर ताना दियां। "गाय की चर्बी मुंह में रखते हो और पण्डित बनते हो" सिपाहियों में खलबली मच गई गुप्तरूप से जांच करने पर उक्त बात की सचाई प्रमाणित हो गई। अंगरेज अफसर जान बूझ कर चर्बी के ठेके उसो व्यक्ति को देते थे जो गाय और सुअर की चर्बी दे सके। फलतः सेना में धार्मिक असन्तोष उत्पन्न हुआ।

अंगरेजों की ओर से देशी सैनिक लड़े थे। भारतीय राजाओं की पराजय में उनका बड़ा हाथ था डलहौजी ने यदि युद्ध नीति से काम लिया होता और उन्हीं सैनिकों को लड़ाकर सतारा, झांसी अवध आदि राज्य छीन लिये होते तो उन्हें

दुःख न होता। परन्तु बिना युद्ध किये देशी राज्यों का विनाश होते देख कर स्वाभाविक सैनिकों की धमनियों का रक्त उबलने लगा था। उन में स्वदेश रक्षा का भाव उत्पन्न होने हगा था इस प्रकार सैनिकों में राजनीतिक असन्तोष था।

प्रजा तथा शुद्ध राजनैतिक कारण भी उपस्थित थे अवध, झांसी और सतारा की गद्दी छीनी जा चुकी थी। इन राज्यों के सैनिक अपने अपने राजाओं की सुव्यवस्था से प्रसन्न थे। अंग्रेजी राज्यों की दुर्दशा भी देख रहे थे। उनमें से अनेक सैनिकों की आजीविका नष्ट हो चुकी थी अतएव वे अपने स्वामियों को फिर राज्य पर बिठाना चाहते थे।

दिल्ली का बादशाह यद्यपि शक्ति हीन था परन्तु समस्त भारतवर्ष में दिल्ली की गद्दी का सत्कार था। उसके लिये भारतीय शक्ति सदैव श्रद्धा से नत रहती थी। गबन कम्पनी भी उसी के प्रतिनिधित्व को मानती थी। गवर्नर जनरल की मुहर में "दिल्ली बादशाह का फिदवी खास" लिखा रहता था। सिन्धिया राजा को बादशाह अपना "फरजन्द जिगरमन्द" मानते थे। अङ्गरेजों ने शाहआलम के परम हितैषी सिन्धिया को दिल्ली से निकाल दिया गया। बादशाह को १२ लाख रुपया देना स्वीकार किया था। वेलजली ने दिल्ली की गद्दी बन्द करने के लिये शाहआलम को मुंगेर रखना चाहा था। उन्होंने बादशाह के दो बड़े पुत्रों को जिन्हें प्रजा चाहती थी युवराज नहीं बनने दिया। शाहआलम के उत्तराधिकारी से कहा कि वह भारत के बादशाह की पदवी का त्याग कर दे। बहादुरशाह के लड़कों में फूट के बीज बोये। इन सब बातों को देशी राजा देख रहे थे अपने बादशाह के प्रति उनका सम्मान उन्हें क्रान्ति की प्रेरणा दे रहा था। केवल एक संगठन की आवश्यकता थी।

सेना के जिस असन्तोष का ऊपर वर्णन किया गया है उसी ने संगठन में भी सहायता दी। बिठूर केन्द्र बना अजीमुल्ला और नाना साहब की चतुरता से लालकमल और चपातियां क्रान्ति की प्रतीक बनी। कलकत्ते की छावनी से कमल का फूल चलकर फीरोजपुर (पंजाब) तक घूम गया। बिठूर से चलने वाली दो चपातियां गांव गांव के चौकीदारों को भोजन बनती हुई भी समाप्त न हुई। परन्तु रंगोजी बापू अपना संगठन करने में उतना सफल न हुआ। अब गोला बारूद तैयार थी कि बल चिनगारी की आवश्यकता थी। ३० मई का दिन क्रान्ति के लिये निश्चित था। लखनऊ की बेगम के भेजे हुये फकीरों और साधुओं ने भी संगठन में बड़ा भाग लिया।

संगठन

परन्तु जल्दी हो गई। वे (बैर कपुर की परेड में मंगलपाण्डे से कारतूस काटने को कह गया। पांडें ने अस्वीकार कर दिया। उसे दण्ड देने के लिये सिपाहियों से कहा गया सिपाही चुप हो गये। कम्पनी कमाण्डर उसे बन्दी करने के लिये आगे बढ़ा परन्तु मंगल पाण्डे की गोली ने उसका भेजा खोल दिया। दूसरा अफसर आया। उसकी भी वही गति हुई। अन्त में आत्महत्या की चेष्टा करके भी जब उसके प्राण न निकले तो उसे बन्दी करके कोर्ट मार्शल किया गया। उसे फांसी देने वाले अधिक कलकत्ते से बुलाये गये और दूसरे दिन उस सेना के सूबेदार को भी फांसी दे दी गई। मंगल पाण्डे का पहला बलिदान था जो एक स्वदेशी ब्राह्मण सैनिक के द्वारा स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये भूमि की बलिवेदी पर अर्पित हुआ। मंगल तुम धन्य हो तुम्हारे ऐसे वीरों को जन्म देने वाली जन्म भूमि चिर काल तक पराधीन नहीं रह सकती थी तुम्हारे ही रक्त दान से इस क्रान्ति को प्राण मिला था और तुम्हारे

ही रक्त की धारा विगत सौ वर्ष से दबी छिपी भारतीय बलिदानों की परम्परा बनाये रख सकी। जिसका फल हमें स्वतंत्रता के रूप में प्राप्त हुआ। मंगल तुमने समय से पहले काम करने की भूल की और यही भूल मेरठ ने की। ३० मई तक प्रतीक्षा करनी चाहिये था यदि उस दिन एक साथ बंगाल से फीरोजपुर तक क्रान्ति होती तो कदाचित कुछ और परिणाम होता। तुम्हारी इस भूल से अंग्रेज सावधान हो गये और क्रान्ति का पूर्वीय केन्द्र निर्बल हो गया।

पैंसठवां अध्याय

९ मई को मेरठ में ९० सवारों को वही चर्बी लगे कारतूस दिये गये। ८५ ने काटने से इनकार कर दिया। उन्हें कोर्ट मार्शल के लिये जेल में बन्द कर दिया गया।

आग लगाई

अब देशी सैनिकों को नगर से निकलना कठिन हो गया जिधर जाते थे उन पर कायरता के लिये व्यंग और फटकार पड़ती थी। जनता द्वारा यह अपमान उन्हें सहन न हो सका। १० मई रविवार के दिन क्रांति का प्रारम्भ हो गया।

६ दिन में दिल्ली, ११ दिन में रुहेलखण्ड एक महीने में कानपुर झांसो, पूना अवध राज्य और बिहार का पश्चिमी भाग स्वतन्त्र हो गया। इस स्वतन्त्रता के नायक रुहेलखण्ड में और दिल्ली में मुहम्मद बख्त, अवध में राजा बालकृष्ण और मुहम्मद शाह, कानपुर में नाना साहब, बुंदेलखण्ड में झांसी की रानी और तांतियां विहार के पश्चिमी भाग में कुंवरसिंह थे।

अब अंग्रेजों को क्रान्ति की भयंकरता का अनुभव हुआ। जिन सेनाओं में विद्रोह नहीं हुआ था उन सेनाओं से हिन्दू

राजाराम मोहन राय

विक्टोरिया

रणजीतसिंह
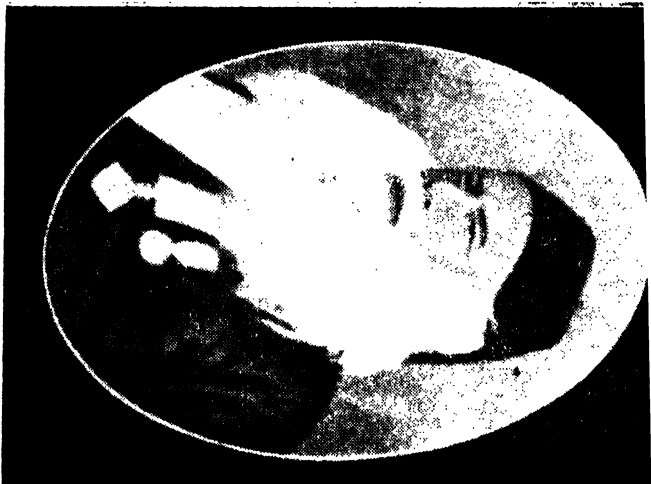
सर सैयद अहमद खाँ
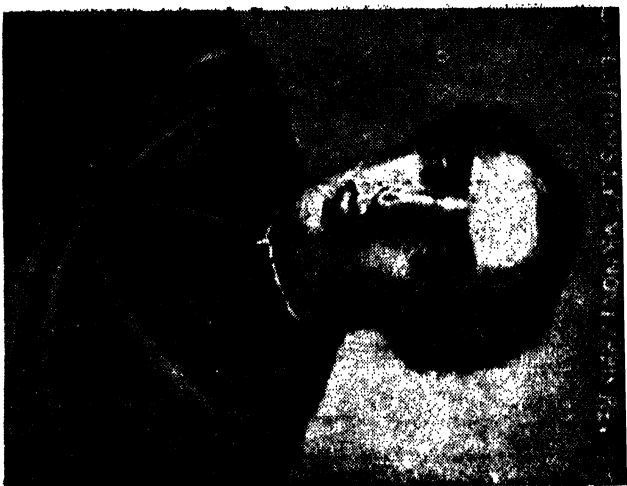
ईश्वरचंद्र विद्यासागर

और मुसलमान सैनिकों से चारों ओर तोप के घेरे में खड़े करके हथियार रखवा लिये गये। लाहौर की एक पलटन जब हथियार रखकर निशस्त्र हो गई तो अपने को नौकरी से छुटा समझ कर चल दी। परन्तु अंग्रेजों को सैनिकों से इतना भय हो गया था कि वे उन्हें निःशस्त्र भी स्वतन्त्र नहीं देख सकते थे। ६०० के लगभग सैनिक जब सतलज पार कर रहे थे तो उन पर गोली की वर्षा कर दी गई। २५२ शेष बचे अन्य या तो डूब कर मर गये या गोली के शिकार हुये। इन दो सौ बावन सिपाहियों को अजनाले की एक तंग इमारत में बन्द कर दिया गया। कलकत्ते की ब्लैक हौल घटना की सभ्य सरकार द्वारा आवृत्ति की गई। सबेरे तक ४५ तो वैसे ही मर गये। शेष को फांसी लगा दी गई तथा उनकी लाशें अजनाले के पास कुएं में डाल दी गई।

अब अंगरेजों ने पटियाला, झींद और नाभा के राजओं को फोड़ लिया। पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि सिख सेना का यह गुण है कि उनका नायक यदि उन्हें आग में भी झोंक दे तो वे उन में चले जायेंगे। लालासिंह ने किस प्रकार अपनी ही सेना का बध करा डाला था। फिर इस क्रान्ति के अवसर पर तो अनेक तीन राजा अंग्रेजों की ओर थे भारतीय सम्मान के विवेक से शून्य सिख सेना के साथ दिल्ली पर चढ़ाई की गई। मुहम्मद बख्त के सेनापतित्त्व में भारतीय सेना ने दो अंग्रेज सेनापतियों को मारकर हरा दिया। तीसरे ने यम से छुट्टी ले ली परन्तु सिक्खों की सेना साथ थी। अङ्गरेजों ने बहादुर शाह के समधी इलाही बख्श को फोड़ लिया। दिल्ली की एक-एक इंच भूमि में युद्ध तो हुआ परन्तु मुहम्मद बख्त के विचार के विरुद्ध इलाहीबख्श के कहने से बहादुर शाह ने आत्म समर्पण कर दिया। ११ दिन तक के इस नर संहार में दिल्ली उजाड़ हो

गई। सड़कों पर घरों में लाशें सड़ने लगीं फिर भी सभ्य अङ्ग-रेजों की रक्त पिपासा शान्त न हुई। बादशाह के तीन लड़कों को इलाहीबख्श द्वारा फुसला कर बुलवा लिया गया। उन्हें गोली से मारकर उनका कटा हुआ सिर बहादुरशाह के सामने उप-स्थित करके बादशाह के फिदवी खास ने नज़र पेश की। बूढ़ा बहादुर शाह विचलित न हुआ। उसने कहा ठीक है। मुग़ल वंश के शाहजादे इसी प्रकार सुर्खरू होकर अपने बाप को मुंह दिखाते हैं। फटकार है ऐसे भेंट देने वाले पर और धन्य है ऐसे वीर हृदय बादशाह पर।

शाह आलम के पुत्र मिरजा कैसर बूढ़े और असमर्थ थे बहादुर शाह के कुटुम्बी मिरजा मोहम्मदशाह गठिया से पीड़ित थे। उन्हें बाजार में घसीट कर ले जाया गया और फांसी दे दी गई। दिल्ली में जो अत्याचार हुआ उसका कुछ चित्र और देख लेना है।

दिल्ली में घायलों के लिए अस्पताल की व्यवस्था थी। दिल्ली विजय के उपरान्त उसके सब मरीज़ मार डाले गये। आक्रमण के काल में ही अधिकांश हिन्दू मुसलमान तलवार के घाट उतार दिये जा चुके थे अब जो मिल गया उसे संगीनों से भोंक डाला गया। अध मरा हो जाने पर जीवित जला दिया गया, स्त्रियों के सतीत्व पर भयंकर अत्याचार किये गये। असंख्य भले घरों की स्त्रियां अपनी धर्म रक्षा के लिये कुयें में कूद पड़ीं।

जगदीश पुर के छोटे से ज़मीन्दार वृद्ध कुवरसिंह ने तीन चार बार अंगरेजों को पराजित करके आरा शाहाबाद के जिले

पूर्व में

स्वतंत्र कर दिये परन्तु असंख्य सैन्यबल के आगे उसका युद्ध कौशल कब तक काम करता। एक बार युद्ध में उनकी दाहिनी कोहनी में गोली लग गई। वीर-वर जानता था कि अङ्गरेजों की गोली

शरीर में विष फैला देती है। उसने तलवार से अपनी बांह कुहनी के नीचे से काट डाली और लेगर्ड महोदय की ऐसी गत बनादी की उन्हें भागकर बनारस में शरण लेनी पड़ी। परन्तु उसी घाव से कुवरसिंह का शरीरान्त १८५८ ई० में हो गया। उनके भाई अमरसिंह ने कुछ दिनों तक क्रान्ति सेना का नेतृत्त्य किया परन्तु अवध में उसकी पराजय राजयप हो जाने पर वे युद्ध छोड़ कर चले गये।

बनारस के भयंङ्कर नर संहार की बात कहना व्यर्थ है।

बनारस विजय करने के उपरान्त अङ्गरेजी सेना इलाहाबाद की ओर बढ़ी। इससे इलाहाबाद में घिरे अङ्गरेजों के मुक्त होने पर मोलवी लियाक़त अली की क्रांन्तिकारिणी सेना पर आक्रमण किया गया। भयंकर संग्राम के उपरान्त क्रान्तिकारी पराजित हुये। अब इलाहाबाद में भी वैसा ही नर संहार किया गया जैसा दिल्ली और बनारस में हो चुका था।

३० मई से क्रान्ति प्रारम्भ हुई। नाना साहब इस सेना के नेतृत्त्व में थे। कानपुर स्वतंत्र हो गया और १२५ अङ्गरेज स्त्री और बच्चे बन्दी किये गये। इलाहाबाद और बनारस के नरसंहार की सूचना जब कानपुर पहुंची तो सतीचौरा घाट पर इलाहाबाद के लिये प्रस्तुत नावों में बैठे हुये इन अङ्गरेजों पर भीड़ ने आक्रमण कर दिया। नाना साहब को इसकी सूचना बाद में मिली। वे सब मार डाले गये परन्तु नाना की पालिता कन्या ने कुछ अंगरेज स्त्रियों और बच्चों की रक्षा की थी। वे अब भी बीबीगढ़ में थे। अतएव जब कानपुर पर अंगरेजों का अधिकार हो गया और नाना साहब ने बिठूर की ओर जाने का निश्चय किया तो वीर बालिका उन अंगरेजी स्त्री बच्चों की रक्षा के लिये रह गई। अंगरेजों ने उसे भी बन्दी बना लिया। कानपुर के

कानपुर

सतीचौरे के निकट रक्त का एक बड़ा सा धब्बा था। अंगरेजों ने भागवत घाट के निकट रहने वाले ब्राह्मणों से वह धब्बा चटवाया, झाडू से धुलाकर साफ़ करवाया और फिर उन ब्राह्मणों की हत्या करवा दी। मैंना को परेट के मैदान में खम्मे से बांध कर जीवित गला दिया। फ्रांस की देवी जोन को अङ्गरेजों के साथ युद्ध करने के लिये जलाया गया था परन्तु मैंना को उनकी रक्षा करके बन्दिनी बन जाने के कारण।

यहां का नेतृत्व अहमद शाह और जीनत महल बेगम के हाथ में था। इसके अतिरिक्त अनेक हिन्दू राजा भी सम्मिलित थे। ३, ४ मास रेजीडेंसी में घिरे रहने के उपरान्त कानपुर से आने वाली सेना द्वारा इन्हें मुक्ति मिली। कानपुर से सेना आने में देर इसी लिये हुई थी कि अवध के सूबे में स्वतंत्रता के भाव अभी शेष थे। उन्हें गांव-गांव में युद्ध करने पड़े। वशीरत गंज में तीन बार पराजित होना पड़ा। अन्त में कानपुर से अधिक सेना की सहायता लेकर ही वे लखनऊ पहुँच सके थे। लखनऊ का अधिकार भी अङ्गरेजों के बस की बात नहीं थी यदि समय पर गोरखा सेना न आजाती। अहमदशाह लखनऊ से रुहेलखण्ड की ओर बढ़ा। परन्तु पवायां के राजा ने विश्वासघात करके उसका सिर काट कर अङ्गरेजों के पास भेज दिया। हरदोई जिले में भी रुइया के राजा नरपतिसिंह ने अपनी थोड़ी सेना से ही अङ्गरेजों को बहुत दिन उलझाये रक्खा।

लखनऊ

क्रान्ति के प्रारम्भ में झांसी का प्रबन्ध रानी लक्ष्मीबाई को सौंप दिया था उन्हें विश्वास था कि इस प्रकार क्रान्ति समाप्त हो जायगी। किन्तु क्रान्ति तो केवल राजाओं की नहीं थी वरन् प्रजा और सेना सब की थी। अतएव झांसी रानी क्रान्ति की भावनाओं का दमन न कर सकी।

झांसी

फलतः झांसी को घेर लिया गया और रानी को क्रान्ति में विवश होकर भाग लेना पड़ा। झांसी के पतन के उपरान्त रानी अपनी सखी काशी बाई और मुन्दरा के साथ कालपी की ओर चली गई। झांसी के अत्याचारों का विवरण हम कहीं कर आये हैं। परन्तु कालपी में नेतृत्व के अभाव में फिर पराजय हुई क्योंकि तांतिया निम्न जाति का था। झांसी की रानी स्त्री थी। अतएव सैनिक अनुशासन न रह सका। अब तांतिया ग्वालियर की ओर बढ़े। ग्वालियर की सहायक सेना में क्रान्ति के भाव थे सिन्धया जिस समय तांतियां का दमन करने में रत था उस समय उसी सहायक सेना के द्वारा रानी ने ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। परन्तु सिक्खों और सिन्धिया और अङ्गरेजों की सेना के द्वारा चारों ओर से घिर जाने पर रानी को फिर भागना पड़ा। मन्दरा इस युद्ध में मारी गई। अकेली रानी चल दी परन्तु दो अङ्गरेजों ने रानी का पीछा किया। नाले के निकट पहुँच कर रानी का घोड़ा रुक गया। घोड़े की एक छलांग की कमी से यम दूत उसके पास आ गये। उनमें से एक ने आगे बढ़कर पीछे से तलवार का वार किया। दाहिनी ओर से रानी का शिर कट गया और आंख निकल आई। रानी ने घूम कर एक ही वार में उसे भूमि पर सुला दिया। अब दूसरे ने रानी की छाती में तलवार भोंक दी। परन्तु रानी ने अपने दूसरे वार से उसे भी यमधाम भेज दिया। अवसर आगया था। रानी मूर्छित हो रही थी। रामचन्द्र राव मराठा आ गया उसने रानी को संभालकर गंगा दास साधु की कुटिया में पहुँचाया। सन्त की उस पतिव्रता नारी भारतीय कुला का की अन्तिम सेवा का सौभाग्य प्राप्त हो गा। वीर कन्या वीर पत्नी वीर माता हमारी माताओं और बहिनों की आदर्श रानी भौतिक शरीर के भी बन्धन तोड़कर

परम स्वतन्त्र हो गई। स्वतन्त्रता की बेदी पर प्राण निछावर करके हमें प्राण दे गई। कोल्हापुर व लगौंवधा खण्ड में भी क्रान्ति हुई। परन्तु उसका शीघ्रता से दमन कर लिया गया। जबलपुर के राजा शंकरसिंह को तोप से उड़वा दिया गया। जा· रागढ़ के बालक राजा को नेताओं का पता न बताने के कारण अण्डमन भेजा जा रहा था परन्तु उस वीर बालक ने जहाज पर चढ़ते चढ़ते आत्महत्या करली।

क्रांति लगभग शमन की जा चुकी थी। नानासाहब और तांतिया पराजित हो चुके थे। नाना के भविष्य जीवन के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। तांतिया को फांसी दे दी गई।

क्रान्ति की असफलता के कारण हम ऊपर कह चुके हैं कि क्रान्ति की असफ़लता का कारण मंगल पांडेय की जल्दी करना था। हम उसे दोष नहीं दे सकते। वह समय ही ऐसा था कि अंग्रेजों के प्रति घृणा का विचार दबा सकना साधारण वीर पुरुष के लिए असम्भव था। परन्तु उस घटना से पूर्वी भाग के अंगरेज सावधान हो गये।

संगठन को देश व्यापी बनाने में कमी रह गई। यदि सिक्ख भी इस ओर आ गये होते तो निश्चय ही क्रान्ति सफल हो जाती।

सैनिक नेतृत्व की योग्यता केवल चार पांच व्यक्तियों में थी। उन में कुवरसिंह पूर्व में अकेला था। अहमदशाह केवल मौलवी था अतएव सेना पर उनका दबाव नहीं था, मुहम्मद बख्त की इलाहीबख्श के कारण नहीं चली। तांतिया निम्न श्रेणी का था और रानी लक्ष्मी बाई स्त्री थी। बादशाह बहादुर-शाह अपनी वृद्धता के कारण नेतृत्व शक्ति से रहित था अकेला नाना साहब स्वयं इस योग्य नहीं था कि सब ओर संभाल सकता।

सैनिक सहायता का परस्पर प्रबन्ध पहले से कुछ नहीं किया गया। दिल्ली की सेना अकेले पीट ली गई। कानपुर, झांसी, इलाहाबाद, लखनऊ, शाहजहांपुर और बनारसकी अलग अलग। यदि पारस्परिक सैनिक सहायता का प्रबन्ध कर लिया जा सकता तो सम्भवता असफलता न मिलती।

भारतीय सैनिक चरित्र का दोष है कि उन में एक नेतृत्व की भावना का पुष्ट विकास नहीं हुआ। दिल्ली में मुहम्मदबख्त की पराजय का यही कारण था इसी प्रकार कालपी में झांसी की रानी की पराजय का।

परन्तु क्रान्ति अपने उद्देश्य में सर्वथा असफल हो गई यह भी नहीं कहा जा सकता। क्रान्ति की सफलतायें इस प्रकार हैं।

१—इंगलैण्ड की सरकार को विदित हो गया कि अब राज्य हड़पने की नीति अपनी सीमा से बाहर जा चुकी है। अतएव आगे के लिये उस नीति का बहिष्कार कर दिया गया। यदि क्रांति न हुई होती तो आज की देशी रियासतें भी धीरे २ सीधे अंगरेजी शासन में मिला ली गई होतीं।

२—अंगरेजी सरकार को विदित हो गया कि कम्पनी के शासन के प्रति घृणाभाव इतना अधिक है कि कम्पनी अब सहज में भारतीय भावनाओं को दबा न सकेगी। यदि सिक्ख भी आगे आनेवाली क्रांति में सम्मिलित होंगे तो साम्राज्य रक्षा चिन्ता का विषय बन जायगी। अतएव कम्पनी से राज्य शासन लेकर क्रांति के मूल उद्देश्य राज्यव्यवस्था को बदल दिया गया। भले ही उससे उतना भला न हुआ हो जितना स्वदेशी राज्य स्थापन से होता।

३—अंगरेज सरकार को विदित हो गया कि केवल सैनिक शासन द्वारा भारतवर्ष पर साम्राज्य स्थापित नहीं किया जा

सकता। अतएव वैधानिक शासन की योजनाएं बनाई गई।

४—कारतूस को दांत से काटने की प्रणाली में सुधार किया गया। ईसाई प्रचारकों पर नियन्त्रण आरम्भ हुआ। इसी समय से धार्मिक तटस्थता की नीति को सरकारी ढंग से दृढ़ता के साथ स्थापित कर दिया गया।

५—वैधानिक शासन मे कम्पनी का सीधा शोषण रुक गया। अब सरकार को अप्रत्यक्ष शोषण के अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहा।

६—चीन पर आक्रमण करने की अंगरेजी सरकार की नीति को रोक देना पड़ा। कौन जानता है कि यदि भारतवर्ष में क्रांति हुई होती तो चीन भी भारतवर्ष की भांति परतंत्र देश हो गया होता।

छाँछटवाँ अध्याय

कम्पनी के काल में शासन प्रबंध का विकास

चार्टर, कम्पनी के लिये समय समय पर मिले हुए चार्टरों का हम वर्णन स्थान स्थान पर कर चुके हैं। उनका सम्बन्ध केवल कम्पनी के प्रबन्ध की नीति से है अतएव यहाँ उन्हें दुहराया नहीं जाता।

रावर्ट क्लाइव के दोहरे प्रबन्ध से कम्पनी के शासन की नींव पड़ी थी। इसमें फौजदारी का काम बंगाल के नवाब के हाथ में था और दोवानी अङ्गरेजों के हाथ में।

भूमि व्यवस्था

यह प्रबन्ध सदोष था। अतएव वारेन हेस्टिंग्स ने इस प्रबन्ध को समाप्त करके सैंट्रल बोर्ड

आफ रेवेन्यू(केन्द्रीय कर समिति)की स्थापना की और भूमि को ५ वर्ष के लिए ठेकेपर देने की प्रथा चालू की परन्तु कार्नवालिस ने उससे जमीन्दारों में असन्तोष फैलते देख कर स्थायी प्रबन्ध कर दिया इसका विस्तृत विचार हम वहां कर चुके हैं इसके उपरान्त लार्ड हेस्टिंग्स के काल में मद्रास और बम्बई के नवीन प्रदेशों में रैयत बाड़ी प्रबन्ध किया गया तथा इन प्रान्तों में ज़मींदारी समाप्त कर दी गई। इस्तमरारी प्रबन्ध में जो किसानों का विचार न रहने का दोष रह गया था उसे दूर करके बेदखली के अधिकार को कम कर दिया गया। लार्ड विलियम वेंटिंक के काल में संयुक्त प्रदेश में ३० साला बन्दोबस्त का नियम बना। और लार्ड डलहौजी के काल में नव विजित प्रदेशों के लिये नानरेग्यूलेशंस प्रान्त का नियम बना।

न्याय विभाग

वारेन हेस्टिंग से इस विभाग का भी सङ्गठन प्रारम्भ हुआ। उसने कलकत्ते में सदर निज़ामत और सदर दीवानी अदालतें स्थापित करके प्रत्येक जिले में कलक्टरों के आधीन शासन और न्याय व्यवस्था दोनों करदी थीं। सदर दोवानी अदालत में वह स्वयं बैठता था और सदर निजामत अदालत में मुसलमान जज़ नियुक्त कर दिया गया। उसने हिन्दू धर्मशास्त्र का अङ्गरेजी में अनुवाद करा दिया था जिससे हिन्दुओं के झगड़ों का निर्णय होने में सुविधा होगई। लार्ड कार्नवालिस ने फिर न्याय विभाग में सुधार किया। उससे शासन विभाग से न्याय विभाग को अलग कर दिया। न्याय विभाग का अधिकार कलक्टरों से लेकर मुंसिफ और अमीनों के हाथ दे दिया गया। दीवानी के जज दौरे भी करने लगे। इस प्रकार उसने कई प्रकार की अदालतों का संगठन किया। परन्तु लार्ड कार्नवालिस ने जजों का अधिकार केवल अङ्गरेजों को

दिया। वह भारतीयों को उस पद के योग्य नहीं समझता था। मुकद्दमों में लगने वाली फ़ीस को उसने बन्द करके भारतवर्ष के साधारण किसान जमींदारों को परस्पर मुकद्दमेंबाजी की सुविधा भी प्रदान करदी। लार्ड कार्नवालिस तक कलक्टर अपने सम्बन्धियों द्वारा व्यापार भी कर सकता था परन्तु उसने इस प्रथा को बन्द कर दिया लार्ड हेस्टिंग्स के काल तक पञ्चायतों को भी अपने-अपने ग्रामों में न्याय का अधिकार किसी न किसी प्रकार चलता रहा था। हम पिछले पत्रों में देख चुके हैं कि पञ्चायत न्याय विभाग और शासन प्रबन्ध में सहायता देने वाली सबसे प्राचीन संस्था थी। परन्तु हेस्टिंग्स ने पंचायतों से न्याय का अधिकार ले लिया। और इस प्रकार भारतीय न्याय विधान की इस सरल व्यवस्था का विनाश कर दिया। लार्ड विलियम बेंटिक ने लार्ड कार्नवालिस द्वारा स्थापित दौरा अदालतें समाप्त कर दीं। तथा दीवानी अदालतों का प्रबन्ध प्रत्येक जिले के मुख्य स्थान से ही होने लगा। फौजदारी कमिश्नरों के आधीन कर दी गई। लार्ड विलियन बैंटिक के ही समय अदालतों की भाषा फारसी से उर्दू निश्चित हुई।

अन्य विशेषतायें

१८१३ ई० में भारत सरकार में शिक्षा प्रसार के लिये कम्पनी ने एक लाख रुपया स्वीकार किया। अर्थात् कम्पनी पर शिक्षा प्रचार का दायित्व आ गया। इससे पहले शिक्षा प्रचार का (दिल्ली और कलकत्ता मदरसों को छोड़ कर) मुख्य संस्था ईसाई मिश्नरी थी। परन्तु वास्तविक शिक्षा प्रसार का कार्य्य १८३३ ई० से ही अङ्गरेजों ने हाथ में लिया। इस समय बम्बई मातृ भाषा में शिक्षा देने के पक्ष में था। पूर्वी भागों में प्राच्य (संस्कृत और अरबी) भाषाओं के माध्यम बनाने की व्यवस्था पर बल दिया जा रहा था परन्तु राजा राममोहनराय तथा मैकाले के प्रयत्नों

से अङ्गरेजी माध्यम स्वीकार हो गई इसी समय कलकत्ता में हिन्दू कालेज की स्थापना हुई।

संक्षेप में यही इस काल की मुख्य विशेषताऐं थीं। इनके सम्बन्ध में विस्तृत विचार हम स्थान स्थान पर करते आये हैं। अतएव सबको दुहराने की आवश्यकता नहीं।

सड़सठवाँ अध्याय

वैधानिक शासन व्यवस्था का विकास

१८५७—से १९४७ तक

१७५८ ई० में कम्पनी से पार्लियामैंट की सरकार ने राज्य का अधिकार ले लिया वैसे इस विषय में आंदोलन चल ही रहा था। राज्य क्रान्ति ने उसे निकट ला दिया। महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा पत्र प्रकाशित करके भारत को साम्राज्य का अंग बनाकर कम्पनी की सत्ता का अन्त कर दिया।

विक्टोरिया का घोषणा पत्र

इस घोषणा पत्र की मुख्य बातें निम्न लिखित हैं।

१. साम्राज्य में मिलाते हुये जा से राजभक्ति तथा सहयोग की प्रार्थना की गई।

२. इंगलैण्ड में साम्राज्य मंत्री गणों के द्वारा प्राप्त आदेशों के आधार पर वाइसराय की शासन प्रबन्ध के लिये नियुक्ति करना।

३. देशी राजाओं से पूर्व कृत सन्धियों का स्वीकार करना तथा इनके सम्मान रीति नीतियों की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा।

४. साम्राज्य वृद्धि की कदापि इच्छा न रखने की प्रतिज्ञा।

५. अन्य राज्यों की भांति ही भारतीय प्रजा के पालन की प्रतिज्ञा।

६. अपने विश्वास को दूसरे पर न लादने की, धर्म विचार या आचार की भिन्नता के कारण अत्याचार न करने की, कानून के अनुसार सब की समान रूप से रक्षा करने की तथा सब को बिना जाति पाँति विचार विश्वास के विचार को हटा कर राज्य प्रबन्ध में नौकरी देने की प्रतिज्ञा तथा एतदर्थ अधिकारियों को आज्ञा देना।

७. कानून बनाने में प्रत्येक को अपनी पैतृक सम्पत्ति प्राप्त करने के लिये भारतीय रीति नीति और विचारों का ध्यान रखा जायगा तथा उसके उत्तराधिकारी को उसकी सम्पत्ति का अधिकार देने की प्रतिज्ञा।

८. महत्त्वाकांक्षियों द्वारा विद्रोह करने पर क्षोभ प्रकट किया गया। तथा सीधे अंगरेजों की हत्या करने वालों अथवा हत्या की प्रेरणा देने वालों के अतिरिक्त शेष सब की प्राण रक्षा और क्षमा दान की प्रतिज्ञा।

९. शान्ति स्थापित हो जाने पर उद्योग धन्धों के विकास और जनोपयोगी कार्य्यों में लगने की प्रतिज्ञा।

इस प्रकार महारानी विक्टोरिया ने यथा सम्भव राज्य क्रान्ति के मूल कारणों में से प्रत्येक कारण को दूर करने की कम से कम कागजी प्रतिज्ञा की थी। यद्यपि अवध की जनता ने इस पर विश्वास नहीं किया वहां लगभग क्रान्ति दो वर्ष तक चलती रही परन्तु युद्ध साधनों से शून्य सामान्य जानता अधिक क्या कर सकती थी बेगम जीनत महलने उक्त घोषणा की प्रत्येक दृष्टिकोण से जो आलोचना की थी दण्ड देने के अतिरिक्त

शेष सब बातों में आगे चलकर वही हुआ जो उस विदुषी मिहि-ला ने अपनी घोषणा में कहा था। भारत की दरिद्रता उसकी संस्कृति का विनाश नाम के लिये धर्म में निर्हस्तक्षेप की नीति स्वीकृत होते हुये भी इसाइयों की गुप्त अभिसन्धियों से शिक्षा प्रचार के द्वारा धर्म में हस्तक्षेप बहुत काल तक चलता रहा। और अन्त में हमें अपनी संस्कृति के प्रति, इतिहास और विज्ञान की शिक्षा के द्वारा कम से कम उदासीन अवश्य बना दिया गया। अगले अध्यायों में हम इसका वर्णन करेंगे। यह काल वैधानिक विकास का काल है अतएव इसका विवरण हम विभिन्न दृष्टि कोण से करेंगे।

अड़सठवाँ अध्याय

वैदेशिक नीति

विक्टोरिया की घोषणा के उपरान्त भारतवर्ष में राज्य विस्तार का अवकाश नहीं रहा था और होता भी तो किस प्रकार। भारतवर्ष के राज्य करने योग्य भागमें ऐसा कोई नरेश नहीं था जिस पर अंगरेजों का प्रभुत्व न हो अथवा जहां रेजी-डेण्ट राजा के नाम पर वास्तविक अधिकार न हो। केवल नैपाल, भूटान, तिब्बत और काश्मीर की दो एक छोटी मोटी रियासतें ही ऐसी थीं जो पूर्ण स्वतन्त्र थीं। परन्तु उत्तरीय पश्चिमी सीमा पर अभी सुरक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं था। रूस और इंगलैंड के सम्बन्ध अधिक प्रिय नहीं थे अतएव इस सभी की रक्षा आवश्यक थी। लार्ड कैनिंग को भारत की क्रान्ति की प्रवृत्ति को शान्त करना था अतएव उसने उस ओर ध्यान नहीं दिया। परन्तु लार्ड एलगिन ने १८६२ ई० में उस

ओर ध्यान नहीं दिया। सीमान्त प्रदेश पर बसने वाली पठान जातियां यदि किसी प्रकार वश में करली जांय तो इस ओर से आशंका समाप्त हो सकती थी। अतएव सेना संगठित करके इन क़बीलों पर दमन और दान की नीति का प्रयोग किया गया। १८६२ ई० तक क़बीलों के सरदारों की पेंशनें नियत करके उन्हें अपनी ओर मिला लिया गया शेष का दमन कर दिया गया।

अफगानिस्तान

१८६३ ई० में इतिहास में प्रसिद्ध दोस्त मोहम्मद की मृत्यु हो गई। उसके बड़े पुत्र शेरअली ने अपने भाइयों के विरोध के कारण अंग्रेजों से सहायता चाही। परन्तु लारेंस ने कुछ नहीं किया। वह इसी प्रतीक्षा में रहा कि इन भाइयों के पारस्परिक युद्ध में विजयी होकर जो अमीर बन जाय उसी को अमीर स्वीकार कर लिया जाय। राजनीतिक दृष्टि से उस समय शेरअली सहायता देकर अपनी ओर मिला लेना चाहिये था। परन्तु जब उसने कुछ नहीं किया तो स्वभवतः उसके रुपये में अंग्रेजों के प्रति श्रद्धा हो गई। उसका झुकाव रूस की ओर होने लगा।

भूटान

१८६४ ई० में भूटान के राजा ने अङ्गरेज राजदूत का अपमान किया। उससे कुछ ऐसी बातें सन्धिपत्र पर लिखवा लीं जो अंग्रेजी मर्य्यादा के प्रतिकूल थी। फलतः सैनिक संघर्ष अनिवार्य हो गया। परन्तु पहाड़ी मार्गों की दुर्गमता का विचार करके लारेंस ने सन्धि कर लेना ही उचित समझा। तराई के कुछ जिले अंङ्गरेजी साम्राज्य को मिल गये और बदले में अङ्गरेज सरकार ने ५ हजार पौंड वार्षिक देना स्वीकार कर लिया।

शेरअली अङ्गरेजों से अप्रसन्न हो ही चुका था। परन्तु लार्ड मेयो ने अम्बाला दरबार में १८६६ ई० में उसे बुलाया मेयो के पारस्परिक स्नेह प्रदर्शन से शेरअली

अफगानिस्तान युद्ध

सन्तुष्ट हो गया। उसने वाइसराय से प्रेम की नीति बर्तने का प्रण किया। वाइसराय ने भी वार्षिक धन देना तथा समय पर सैनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया। परन्तु जब रूसियों ने जेहूँ नदी के तट-वर्त्ती छोटे छोटे राज्यों को जीतकर रूसी तुर्किस्तान को अधीन कर दिया तो अफ़गानिस्तानके लिये आशंका उत्पन्न हो गई। अत-एव उसने दिल्ली दरबार से सहायता माँगी। इङ्गलैण्ड सरकार का वैदेशिक मंत्री इस समय चाहता था कि शेरअली को सैनिक सहायता देकर अफ़गानिस्तान में रेंजीडेंसी स्थापित कर दी जाय। परन्तु तत्कालीन वाइसराय नार्थब्रुक इसमें युद्ध की आशंका समझता था। उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। सैलसबरी ने अपनी नोति के समर्थक लार्ड लिटन को भारत का वाइसराय बनाकर भेजा। लार्ड लिटन ने जो शर्तें शेरअली के सम्मुख रक्खीं वे उसी प्रकार की अपमान जनकथी जैसी वेलजली ने भारतीय राजाओं के सामने रक्खी थीं। स्वा-भिमानी पठान तन गया। उसने सन्धि अस्वीकार कर दी। इसी समय शेरअली का प्रियपुत्र अब्दुलाजान मर गया जिसे वह उत्तराधिकारी बनाना चाहता था और अंग्रेज सरकार अब्दुल्लाजान को युवराज स्वीकार करना नहीं चाहती थी। उधर १८७६ में रूस और इङ्गलैण्ड में बर्लिन की सन्धि हो गई। अतएव अब अफ़गानिस्तान पर प्रभुत्व जमाने की विशेष आवश्यकता भी नहीं थी। परन्तु हठी लार्ड लिटन तो युद्ध चाहता था अतएव उसने अपना राजदूत फिर भेजा। शेरअली ने इस समय रूस से मित्रता उत्पन्न करने की चेष्टा कर ली

थी अतएव अंग्रेज राजदूत को अफ़गानिस्तान में आने की आज्ञा नहीं मिली। फलतः १८७८ ई० में सेना भेज दी गई। खैबर, कुर्रम और बोलनदर्रों से सेना में अफ़गानिस्तान में प्रवेश करके बिना विरोध कन्धार और काबुल पर अधिकार कर लिया। शेरअली रूस की ओर भाग गया वहीं उसकी मृत्यु हो गई। १८७९ ई० में गण्डमक स्थान पर शेरअली के पुत्र याकूबखाँ से सन्धि हो गई। तथा ब्रिटिश सरकार को इस सन्धि के अनुसार अफ़गानिस्तान की वैदेशिक नीति पर नियंत्रण प्राप्त हो गया तथा कुर्रम घाटी अंगरेजी अधिकार में आ गये ब्रिटिश सरकार ने ६ लाख रुपया वार्षिक भेंट याकूबअली को अमीर मानकर चालू रक्खी।

अफ़गानियों की स्वतन्त्र प्रकृति इस प्रकार की कायरता पूर्ण सन्धि करने वाले अमीर के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये उकसाने लगी। एक दिन थोड़े से अफ़गानों ने अङ्गरक्षकों समेत रेजीडेण्ट का वध कर दिया। अंग्रेजी सेना फिर भेजी गई। उसने विद्रोहियों को कठोर दण्ड देकर याकूबखाँ की रक्षा की। परन्तु याकूब को अपने प्राणों की चिन्ता थी। अफ़गान उसे अपनी पराधीन का कारण समझते थे। अतएव उसने अफ़गानिस्तान की गद्दी छोड़ दी और पेनशन लेकर भारतवर्ष में रहना स्वीकार कर लिया। इसी समय इङ्गलैण्ड के चुनाव में लिबरल की विजय हुई अतएव लिटन का जो विरोधी दल था उसको त्याग पत्र देना पड़ा।

याकूबखाँ के उपरान्त अब्दुलरहमान अफ़गानिस्तान का अमीर हो गया था। अँगरेजों का अफ़गानिस्तान पर प्रभुत्व देख कर रूस के दक्षिणी प्रदेश को फिर आशंका उत्पन्न हो गई थी अतएव रूसियों ने ही पहल की। उन्होंने अफगानिस्तान के समीप वर्ती मरव प्रदेश पर अधिकार कर

नाना फड़नवीस

महादाजी सिंधिया

टीपू

मरहठा राज्य
१७९५ ई०
अवध
मैसूर
मदरास
अङ्गरेजी राज्य
मरहठा राज्य
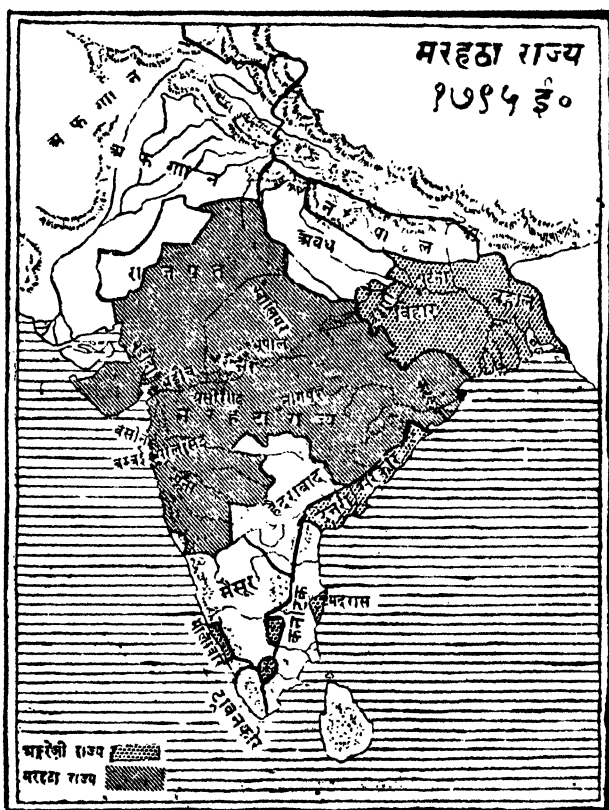
लिया। और अफगानिस्तान की सीमा के निकट पंजदह् की ओर बढ़े। अफगानों ने रूसियों को खदेड़ दिया। अब रूस और अफगानिस्तान के युद्ध के नक्षत्र दिखाई देने लगे जिससे अफगानिस्तान के सहायक अङ्गरेजों का उलझ जाना भी अनिवार्य था। परन्तु अमीर अब्दुर्रहमान ने बुद्धिमत्ता से झगड़े का हाल दिया तथा रूसियों के अधिकार को स्वीकार करते हुये एक विशेष समिति द्वारा सीमारेखां का निश्चय कराना चाहा रूसियों ने उसे स्वीकार कर लिया। लार्ड डफरिन ने प्रत्येक कार्य में अब्दुर्रहमान का साथ दिया अतएव अफगान और अङ्गरेज सरकार में पुनः सन्धि हो गई। परन्तु अब अफगानिस्तान और भारतवर्ष की सीमा रेखा के निर्णय में उलझाव उत्पन्न हो गया और ऐसा जान पड़ा कि फिर युद्ध हो जायगा। परन्तु फिर वाइसराय ने युद्ध की अपेक्षा प्रेम से काम लिया और ड्यूरैण्ड रेखा सीमा रेखा निश्चित हो गई चमन भी अंग्रेजों के अधिकार में दे दिया गया तथा अमीर की भेंट १८ लाख रुपया वार्षिक कर दी गई इस प्रकार अफगानिस्तान का झगड़ा १८९३ ई० में सम्पूर्णतया निपट गया।

सिन्धियां—अंगरेजों की सहायता करने पर भी सिन्धिया का राज्य भारतीय राज्य क्रान्ति के समय छीन लिया गया था। १८८६ ई० में वह उसे लौटा दिया गया।

पहली ब्रह्मा की लड़ाई में नर-हत्या के अपराध में दो अंगरेज कप्तानों को दण्ड देकर पश्चिमी ब्रह्मा अंग्रेजों को राजा दे चुका था।

ब्रह्मा

अब की बार ब्रह्मा सरकार के व्यापारी जहाज को लूटने के अपराध में उसने फिर १८८६ ई० में अंग्रेजी जहाज पर भारी अर्थ दण्ड लगा दिया। अतएव उसके सम्मुख भी अपमान जनक सन्धिय

रक्खी गई कि वह पने अयहाँ अंग्रेज-रेजीडेण्ट रक्खे और फांसीसी राजदूत को निकाल दे। अंग्रेजी व्यापारिक कम्पनियों के जहाजों से छेड़छाड़ करे। उसने स्वीकार नहीं किया। अतएव सेना भेज कर राजा थीवा को बन्दी कर लिया गया तथा ब्रह्मा अंग्रेजी राज्य का अंग हो गया।

भारतवर्ष की प्राकृतिक सीमा पूरी करने में केवल बिलोचिस्तान का प्रदेश रह गया था अतएव लैंस डाउन ने सेना भेज कर बलोंची सरदारों को पराजित किया।

बिलोचिस्तान उजाड़ मरुस्थलीय प्रदेश को एक बिलोची सरदार को दे कर कन्धार की रक्षा करने वाला भाग पूरा अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया।

मनीपुर—इसी समय मनीपुर राज्य का सेनापति अंग्रेजों से जलता था। अगाध सेना भेज कर उसे पराजित कर के प्राण दण्ड दे दिया गया। तथा एक नवयुवक राजा को मनीपुर का राज्य दे दिया गया।

देशी राज्यों से सम्बन्ध वस्तुतः अधिकारी कौन था। इस बात को निदर्शन कराने के लिये दो चार उदाहरण दिये जाते हैं।। अङ्गजी सरकार जब किसी राजा को तनिक भी स्वतंत्र होते या स्वतंत्र आचरण करते देखते थे झट एक न एक अपराध लगा कर उसे गद्दी से उतारे जाने के लिये कोई न कोई बहाना ढूँढ़ लिया जाता था।

१८६० ई० में टोंक के नवाब को किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की हत्या के अपराध में गद्दी से उतार दिया गया। ६० हजार रुपये वार्षिक की पेंशन दे कर उसे बनारस भेज दिया गया उसके अल्पायु बालक को राज गद्दी दी गई और राज्य के प्रबन्ध के लिये अङ्गरेज अफसरों के आधीन एक समिति बना दी गई।

इसी प्रकार अलवर का नवयुवक बालक सम्पत्ति उड़ाने वाला सिद्ध हो गया। उसे गद्दी से उतार कर प्रबन्ध अङ्गरेजों के आधीन समिति को सौंप दिया गया।

१८७५ ई० में अङ्गरेजों का पुराना मित्र मराठा शक्ति के पतन का कारण गायकवाड़ राजा अपराधी बनाया गया। उस पर रेजीडेण्ट को विष देने का अपराध लगा कर उसे बन्दी कर लिया गया। तीन अङ्गरेज और तीन भारतीयों के कमीशन के समक्ष अभियोग की जाँच हुई। भारतीयों ने उसे सर्वथा निर्दोष ठहराया परन्तु अङ्गरेजों ने दोषी। फलतः अभियोग समाप्त हो गया। परन्तु उसे तो गद्दी से उतारना ही था। कुशासन का अपराध लगा कर उसे मद्रास भेज दिया गया। तथा उसके वंशज एक बालक को राजा बना कर उसकी सहायता के लिये उसी प्रकार की समिति अङ्गरेज की प्रधानता में बना दी गई।

१९०३ ई० में होल्कर राजा को गद्दी से उतार कर उसके पुत्र को बिठाया गया तथा इसी समय कश्मीर के राजा को उतार कर दो वर्ष पश्चात् उसे उसका राज्य लौटा दिया गया।

कश्मीर राज्य के अन्तर्गत हिन्दूकुश के समीप चितराल एक छोटी सी रियासत है। चितराल ड्यूरैण्ड रेखा के पश्चिम में था। अतएव चितराल पर अंग्रेजों का अधिकार १८९३ में ही हो गया था। १८९५ ई० में चितराल के मेहतर की हत्या कर दी गई और विद्रोह का प्रारम्भ हो गया। विद्रोहियों ने रेजीडेण्ट को घेर लिया। अतएव सेना भेज कर विद्रोहियों का दमन किया। इस दमन का प्रभाव सीमावर्ती पठानों पर पड़ा अतएव वे भी विद्रोही हो गये। मोहम्मद और अफरीदी कबीलों ने १८९८ ई०

चितराल

में पेशवा पर आक्रमण कर दिया। परन्तु भयङ्कर युद्धों के उपरान्त उन्हें दबा दिया गया। रूस की सीमा से मिले होने के कारण चितराल का सैनिक महत्व है। इसी बात को ध्यान में रखकर अंग्रेजी राज्य में सेना संचालन के लिये एक सड़क बनाई गई। चितराल की छावनी को सुदृढ़ किया गया तथा सड़क पर भी अनेक छावनियां बना दी गईं।

यूरोपीय युद्ध

सन् १६१४ ई० में योरोप में महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष को अङ्गरेजी राज्य में होने के कारण युद्ध में भाग लेना पड़ा। भारतीय सेनायें तुर्की, वल्गेरिया तथा जर्मनी से सफलता लेनी पड़ी। युद्ध में अङ्गरेजों की विजय हुई।

अफगान युद्ध

१६२१ ई० जलियान वाला हत्या काण्ड के कारण पंजाब में असन्तोष भड़क रहा था। उस से लाभ उठा कर अफगान सरकार ने भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिया। परन्तु अङ्गरेजी सेना से युद्ध में अफगान पराजित हुये और फिर सन्धि हो गई। तब से अफगानिस्तान में अनेक परिवर्त्तन हुये परन्तु उससे हमारे भारतीय इतिहास पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

योरोपीय महा युद्ध

(१६३६-४५) गत महा युद्ध में जर्मनी के उपनिवेश छीन लिये गये थे। अतएव जर्मनी अपने उन उपनिवेशों को प्राप्त करने की चिन्ता में था। पौलैण्ड की जर्मन बस्ती को जर्मनी नाजी सरकार ने कई बार पोलैण्ड से माँगा परन्तु जब उसे न दिया गया तो जर्मनी ने पौलैण्ड पर आक्रमण कर दिया फलतः द्वितीय महा युद्ध चालू हो गया। इस युद्ध में लड़ने वाले भारतीय जब बन्दी हो कर जर्मनी पहुँचे तो भारतीय राष्ट्रीय

आन्दोलन के मुख्य नेता श्रीसुभाषचन्द्र बोस ने 'आजाद हिन्द सेना' का संगठन किया। इसी समय अनेक कारणों से जापान और अङ्गरेजों में भी युद्ध छिड़ गया। श्रीसुभाष बोस ने जापान पहुँच कर पूर्वी भाग में भी आजाद हिन्द सेना का निर्माण किया। भारतीय सेना भारतवर्ष को स्वतंत्र करने के लिये जापानियों से अस्त्र शस्त्र की सामग्री मोल लेकर ब्रह्मा की ओर बढ़ी। ब्रह्मा पर अधिकार कर लिया गया अंडेमन, निकोबार पर भारतीय तिरंगा फहराया गया तथा भारतीय सेना गहन बनों को पार कर के आसाम में इम्फाल तक आ पहुंची परन्तु इसी समय जर्मनी की पराजय हो चली तथा अंग्रेजों को अमरिका से सहायता मिल गई। भारतीय धन से नवीन सैनिक योजना कर के अंग्रेजों ने पुनः आक्रमण प्रारम्भ किया अतएव विवश हो कर भारतीय सेनाओं को पीछे हटना पड़ा। १६४५ ई० में हिरोशिमा नगर को परमाणु बम से नष्ट कर के जापान को पराजित कर दिया गया। अतएव आजाद हिन्द सेना भी पराजित हो गई। इसका विशेष विवरण हम राजनैतिक चेतना में करेंगे।

१६४७ ई० में भारतवर्ष को स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद् का भारतवर्ष सदस्य बना लिया गया। भारतवर्ष का संसार के सभी देशों से दौत्य सम्बन्ध भी स्थापित हो गया। अब भारतवर्ष संयुक्त राष्ट्र परिवार का सदस्य होते हुए भी स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य के रूप में एशियाई देशों का नेतृत्व अन्तर्राष्ट्रीय समिति में कर रहा है। उसका अन्तर्राष्ट्रीय जगत में सम्मान है। और इस सम्मान की रक्षा का भार हमारे नवयुवकों पर आने वाला है।

आर्थिक व्यवस्था का विकास

भारत के आर्थिक शोषण का ऊपर वर्णन किया जा चुका

है। भारतवर्ष के उद्योग धन्धे चौपट हो चुके थे। अब इंगलैंड को अपना व्यापार भारतवर्ष में फैलाना था। उधर क्रान्ति युद्ध में अंग्रेज सरकार का अत्यधिक धन व्यय हो जाने के कारण सरकार की आर्थिक अवस्था भी ठीक नहीं थी। अतएव १८५६ ई० में इङ्गलैण्ड से एक अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ भारतवर्ष पधारे। उन्होंने भारतीय स्थिति का अध्ययन करके आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये दो प्रकार के उपाय किये। पहला व्यय को कम करना, दूसरा आय को बढ़ाना।

व्यय कम करने के लिये संयुक्त प्रान्त के निवासियों की अनेक पलटनें तोड़ दी गईं और आय बढ़ाने के लिए तीन प्रकार के कर निश्चित किये। इस समय तक भारतवर्ष की आय का साधन कृषि रह गया था। कृषि पर कृषक लगान देता ही था। उसकी अवस्था शोचनीय थी ही। अतएव यदि कोई भारतीय अतिरिक्त कर दे सकने वाला था तो भारतवर्ष के जागीरदार और जमींदार ही थे। अतः उन पर आय कर लगाया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के टूट जाने से अंग्रेजों का भारतीय व्यापार का एकाधिकार नष्ट हो गया था। भारतीय बनिये व्यापार में कुशल थे ही। उन्होंने भारतीय व्यापार को उठा लिया। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस समय भारतीय व्यापार केवल कच्चे माल का निर्यात था। इस व्यापार पर कर लगाना आवश्यक था। साथ ही प्राचीन कला का भी विनाश लगभग हो चुका था। भारतीय कला कौशल और धन्धे यदि विकसित हो उठते तो लंकाशायर के माल की खपत भारतवर्ष में कैसे हो सकती। अतएव व्यापार और उद्योग धन्धों पर भी कर लगा दिया गया। अब कर लगाने के लिये भारतीय व्यापार की केवल कच्चे माल की एक वस्तु ऐसी रह गई थी जिसका अन्तर्देशीय व्यापार चमक सकता

था। नील की कृषि पर निलहे गोरों का प्रहार हो ही चुका था। संसार में सर्व श्रेष्ठ नील उत्पन्न करने वाला भारतवर्ष नील की कृषि छोड़ चुका था, अफीम पर सरकार का एकाधिकार था ही। कपास और जूट अंग्रेजों के लिये सम्पत्ति थे। अतएव शेष वस्तु तम्बाकू पर भी राज कर लगा दिया गया। जंगलात के विभाग की ओर ध्यान दिया गया तथा आसाम की पहाड़ियों पर चाय की खेती के प्रयोग करने के लिये अंग्रेजों को प्रोत्साहित किया गया तथा कुली प्रथा का प्रचलन करके चाय के खेतों में काम करने वाले वैधानिक दास बनाये गये। इनकी स्थिति का वर्णन पुस्तक के क्षेत्र से बाहर है। सिनकोना की खेती को भी प्रोत्साहित किया गया। तथा देश के कोनों में रेल योजना के प्रसार का यत्न प्रारम्भ हुआ।

१८५६ ई० में बंगाल के इस्तमरारी बन्दोबस्त में किसानों की स्थिति सुधारने के लिये बेदखली सम्बन्धी नियम बनाये गये। लगान बढ़ाने में रोक लगाई गई तथा १२ वर्ष से पुराने किसान को मौरूसी अधिकार प्राप्त हुए।

किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये १८६८ ई० में अवध की कृषि व्यवस्था का निर्माण हुआ। आगरा सूबे के किसानों को बंगाल की कृषि व्यवस्था के साथ ही मौरूसी अधिकार मिल चुके थे। परन्तु अवध में इस प्रकार की कोई व्यवस्था न थी परन्तु इस व्यवस्था द्वारा कुछ विशेष नियमों और शर्त्तों पर उन्हें भी मौरूसी अधिकार मिलने की सम्भावना हो गई तथा भूमि की उन्नति देने पर मुआवजा का भी प्रबन्ध किया गया। इस व्यवस्था के अनुसार अवध के किसान को भूमि क्रय करने का अधिकार प्राप्त हुआ। परन्तु उस समय इस व्यवस्था से अवध के किसान लाभ नहीं उठा सके क्योंकि शर्त्तें ऐसी थीं किसान उसे पूरा नहीं कर सकते थे। १८६६ ई० में

पंजाब की कृषि व्यवस्था स्वीकृत की गई। इसमें किसानों के अधिकारों का स्पष्टीकरण किया गया तथा मन चाही कर वृद्धि पर रोक लगा दी गई।

१८७० ई० में लार्डमयो ने प्रांतीय सरकारों को उनके आर्थिक धन की अपेक्षा एक निश्चित धन देने की व्यवस्था करके केन्द्रीय सरकार के कोष में बचत की तथा उसने ३½ रुपया मन के नमक कर को घटा कर २½ रुपया मन दिया। तथा लोनिया लोगों को फिर से नमक बनाने की आज्ञा दे दी गई। सांभर झील का नमक का ठेका सरकार ने ले लिया और पंजाब में नमक की खानें खुदाई। इस प्रकार नमक का आर्थिक संकट कम किया गया।

कृषि की उन्नति के लिये आदर्श कृषिशालायें स्थापित की गई और पंजाब में नहरों की व्यवस्था करके भूमि की उपज करने का कार्य आरम्भ किया गया।

लार्डनार्थ ब्रुक ने जमींदारों तथा उच्च अधिकारियों को सुविधा देने की दृष्टि से इनकमटैक्स बन्द कर दिया इससे जहां उच्च वर्गीय लोग प्रसन्न हुये वहां निम्नवर्गीय लोगों को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उसने भारतीय आर्थिक हानि को न सोच कर आगात कर १५ से ५ प्रतिशत कर दिया इस प्रकार इंग्लैण्ड से आने वाले माल की खपत बढ़ गई और भारत से जाने वाले वस्तुओं पर जैसे रुई, जूट और अन्नों पर से निर्यात कर उठा लिया इसका फल यह हुआ कि भारत का नया माल इंग्लैंड की मिलों को सस्ता मिलने लगा। केवल चावल, तेल, नील, और लाख पर निर्यात कर लगा रहा।

लार्ड लिटन के काल तक नमक की सम्पूर्ण कमी दूर नहीं हुई कारण वही नमक कर था। नमक जैसी आवश्यक वस्तु पर

कर लगाना ही प्राणहारी नीति है क्योंकि नमक के बिना स्वास्थ्य ठीक नहीं रह सकता और कर लग जाने पर वह मंहगा पड़ता है। अतएव नमक की चोर बाजारी आरम्भ हुई।

लार्ड लिटन सङ्कीर्ण विचार का अनुदार दल का व्यक्ति था। उसने इस कमी को पूर्ण करने के अन्य देशी राज्यों के नमक उत्पादन क्षेत्रों पर ऐकाधिकार स्थापित करने की चेष्टा की। जैसा कि पहले सांभर झील के सम्बन्ध में किया जा चुका था। उसने इस समस्या का कोई समाधान नहीं किया केवल वितरण व्यवस्था सुधार तो रहा।

अभी तक रुई पर कुछ न कुछ कर चला जाता था अतएव निर्यात में कुछ न कुछ रुकावट पड़ती ही थी उस समय इंग्लैण्ड में अनुदार दल को होने के कारण उसे पूँजीपतियों की इच्छा पूर्ण करनी थी। उसने रुई के निर्यात पर समस्त प्रतिबन्ध और कर उठा लिए।

लार्ड रिपन ने मुक्त व्यापार को प्रोत्साहन देने अथवा इंग्लैंड के माल को स्वतंन्त्रता से भारत में आने देने के लिये विदेशी आयात पर नार्थ ब्रुक द्वारा कम किये हुये ५ प्रतिशत आयात कर को भी समाप्त कर दिया परन्तु उसने नमक और सुपारी के कर को जिनके हटाने की सब से अधिक आवश्यकता थी नहीं हटाया। देश में नमक का कर अवश्य घटा दिया तथा किसानों की अवस्था का सुधार करने का भी उद्योग किया।

अंगरेज अपने उद्योग धन्धों में भारतीय कुलियों पर बड़ा अत्याचार करते थे। अतएव साधारण कुली मिलना कठिन हो रहा था। अतएव श्रमिकों की दशा में सुधार की आवश्यकता स्थित हो गई थी। लार्ड रिपन ने १८८१ ई० में एक व्यवस्था इस सम्बन्ध में स्वीकृत की जिससे काम के घटे निश्चित किये

गये। लार्ड रिपन की उदार नीति में ७ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चे प्रति दिन ६ घंटे काम करने के योग्य समझे गये। तथा उन मशीनों के प्रयोग की सावधानी पर ध्यान रखने की आज्ञा होगई जिन से प्राण जाने की सम्भावना थी।

लार्ड रिपन के समय में १८८५ ई० में बंगाल की कृषि व्यवस्था' स्वीकृत हुई। इसके द्वारा जमींदारों से बेदखली का अधिकार छिन गया। १८८६ ई० में अवध कृषि व्यवस्था के अनुसार अवध के किसानों के बेदखली के मुआवजे का अधिकार प्राप्त हुआ। तथा उसे सात वर्ष तक कृषि पर अधिकार मिल गया। १८८७ ई० में पंजाब में भी इसी प्रकार की कृषि व्यवस्था स्वीकृत हो गई।

भारतवर्ष के व्यापार का आधार कम्पनी काल में भारतीय चांदी का रुपया था निश्चित मूल्य २ शिलिंग था। कम्पनी की लूट के कारण जैसे जैसे निर्धनता बढ़ती गई अंगरेजी सरकार ने मुद्रा का प्रचलन वैसे वैसे बढ़ाना आरम्भ किया क्योंकि बिना मुद्रा प्रसार के व्यापारिक सन्तुलन रखना सम्भव नहीं था परन्तु मुद्रा प्रसार का फल यह हुआ कि भारतीय सिक्के का स्वतन्त्र मान स्थिर न रह सका उसे सोनेसे जुड़ जाना पड़ा। परंतु स्वर्ण के मान में भी सरकारी टकसालों का रुपया अपना मूल्य स्थिर न रख सका। उसका मूल्य घटते घटते एक शिलिंग मूल्य पेन्स होग या। अतएव मुद्रा प्रसार को समेटने की नीति स्वीकार करनी पड़ी। और पौंड का स्थिर मूल्य १५ रुपने रक्खा गया। यद्यपि इससे भी भारतवर्ष को हानि थी। परन्तु भरत-वर्ष विवश था प्रायधीन था। उसे तो अपने मुद्रा प्रसार पर अधिकार था। न उसके मूल्य स्थिर रखने पर लार्ड कर्जन ने इस इनकमटैक्स को आयकर को पुनः चालू किया। परन्तु व्यय का पहले के मान के ५०० उपया वार्षिक की अपेक्षा

१००० रु० वार्षिक कर दिया अर्थात् । १००० रु० वार्षिक पाने वाले का ही आय कर देना होगा। लार्ड कर्जन ने नमक कर भी आधा कर दिया।

१६०० ई० में "पंजाब भूमि रक्षा व्यवस्था" स्वीकार की गई। इसके आधार पर पंजाब के मौरूसी किसान की भूमि किसी को मोल लेने का अधिकार नहीं रहा तथा २० वर्ष से अधिक के लिये भूमि का गिरवी रखना भी अवैध कर दिया गया। उसने १६०१ ई० में ऐसे कृषि विशेषज्ञ इन्स्पेक्टर जनरल बनाये जो देश में भ्रमण करके कृषि के सुधार में उपयोगी बातों का सुझाव दें।

१६०४ ई० 'सहकारी ऋण समिति' -कोअपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी एक्ट स्वीकार किया गया। जिसमें कृषकों को सहकारी समितियां द्वारा कर्ज देने की व्यवस्था की गई।

देश के निवासी भी इस समय उद्योग धन्धों में आगे बढ़ने लगे थे। परन्तु अङ्गरेज सरकार की नीति पूंजीपतियों की नीति थी। अतएव भारतवर्ष के पूंजीपतियों को लार्ड कर्जन ने प्रोत्साहन दिया। फलतः पहला लोहे का कारखान जमशेद जी ताता के द्वारा स्थापित किया गया।

१६१४ का महायुद्ध भारतीय आर्थिक व्यवस्था के लिये फिर क्रान्ति का काल था। इस समय तक भारतीय यंत्र शक्ति के उपयोग से परिचित हो चुके थे। यदि सरकार का नियंत्रण न रहता तो सम्भवतः एक बार फिर भारतीय व्यापार चमक उठता। परन्तु इससे अंग्रेजों को रोजी मिटती थी अएतव भारतवर्ष की आर्थिक विकास करने की ओर ध्यान नहीं दिया गया। रुपये का प्रसार फिर बढ़ा। और उसका मूल्य अस्थिर होने लगा परन्तु १६१८ ई० के उपरान्त सरकारने फिर अपनी स्थिति संभाली युद्ध काल में बढ़े हुये रुपये के मूल्य के कारण तथा अधिक मुद्रा प्रचार क कारण भारत सरकार का कुछ पावना

अंग्रेजी सरकार पर हो गया था। कुछ तो सरका ने अपने आयात से पूरा किया और शेष रुपये का पौण्ड के अनुपात से मूल्य घटाकर लेना देना बराबर कर दिया। भारतवर्ष को इससे बड़ी आर्थिक हानि हुई। और बदले हुये उद्योग धन्धों का विकास रुक गया।

इसी समय भारतवर्ष में १६२०-२१ स्वदेशी आन्दोलन चल पड़ा अतएव २०० वर्ष की लुप्त चरखा करघा उद्योग पद्विका पुनः प्रचार बढ़ा तथा कुछ कुछ स्वावलम्बन के लक्षण दिखाई दिये। परन्तु १६०३१ में संसार की स्वर्ण मुद्रा के पतन से फिर भारतवर्ष में आर्थिक विषमता उत्पन्न हो गई रुपये का मूल्य बढ़ गया और वस्तुओं के मूल्य घट गये। फलतः फिर स्वदेशी उद्योग धंधे रुक गये और विदेशी जैसे जापानी सस्ते माल से भारतीय का घरपटने लगे। इस दशा में १६३६ ई० में योरोप में फिर महायुद्ध छिड़ गया। इस बार युद्ध की भयंकरता के कारण भारतीय उद्योग धन्धां को आगे बढ़ने का अवसर अंग्रेज सरकार को देना ही पड़ा। लगभग पहले दुगुना रुपया कागजों के रुपये में छाप दिया गया और भारतीय चांदी गला कर विदेशों से अंगरेज सरकार ने वस्तुएं खरीदीं। इस दशा में भारतवर्ष का धन इंगलैण्ड के खजानों में कर्ज के नाम पर जमा होता गया। जिसकी संख्या सैकड़ों अरबों रुपयों तक है।

अंग्रेजों ने भारतवर्ष को स्वतन्त्रता तो दे दिया। परन्तु सोने चांदी के नाम पर कागज के सिक्के रख दिये जिनका स्वदेश में तो भले ही कुछ मूल्य हो पर विदेश में रद्दी के नाम पर भी कुछ मूल्य नहीं है। कांग्रेस सरकार इसी कारण व्यवस्था में फंसी है। उसे अपनी योजनायें चलाने की सामर्थ्य दुर्बल इसी लिये नहीं है कि उसके पास सोना चांदी नहीं है। वितरण व्यवस्था के सदोष होने का फल हमारे सामने है।

शिक्षा

हम ऊपर कह आये हैं कि घरेलू शिक्षा के क्रम का विनाश १८१३ ई० से संगठित रूप में आरम्भ हुआ था। १८३३ ई० में उस योजना को अन्तिम रूप से पूर्ण कर दिया गया। अब अपनी शिक्षा योजना भी चालू की गई। उस योजना का उद्देश्य १८३३ ई० में ही स्पष्ट घोषित कर दिया गया था कि शिक्षा प्रसार से हमें शासन व्यवस्था में काम करने वाले भारतीय इससे प्राप्त होंगे। राज्य क्रान्ति के उपरान्त यह स्पष्ट दिखाई देने लगा कि बिना मानसिक दासता की भावना उत्पन्न किये भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित नहीं किया जा सकता। इस प्रकार की दासता के प्रचार के लिये अंग्रेजी नीति के अनुसार चलाई हुई शिक्षा प्रणाली जितनी आवश्यक और सहायक हो सकती थी उतनी कोई अन्य शिक्षा नहीं।

भारतीय घरेलू पाठशालाओं में अक्षर ज्ञान के उपरान्त चरित्र शिक्षा देना प्रारम्भ हो जाता था। फारसी पढ़ने वाले करीमा, मामुकीमा, गुलिस्ताँ वोस्ताँ पढ़ते थे। संस्कृत पढ़ने वाले हितोपदेश, पञ्चतन्त्र, व्याकरण, काव्य और दर्शन पढ़ते थे। फलतः विद्यार्थियों में चरित्र का विकास होता था। अपनी संस्कृति से प्रेम। परन्तु इस प्रकार की शिक्षा द्वारा तो अंग्रेजी राज्य भारत में स्थिर नहीं किया जा सकता। अतएव शिक्षा प्रसार की तीन सीढ़ियाँ बनाई गईं। पहली आरम्भिक, दूसरी माध्यमिक, तीसरी उच्च। प्रारम्भिक शिक्षा में अक्षर ज्ञान के उपरान्त पाश्चात्य विज्ञानों की शिक्षा के नाम पर अनेक विषय पढ़ाये जाने लगे। यद्यपि आरम्भिक विद्यार्थी की आवश्यकता साधारण भाषा ज्ञान के द्वारा सदाचार शिक्षा देने वाली पुस्तकों के पढ़ने की योग्यता सम्पादित करना ही था। माध्यमिक

शिक्षा में उस पर अंग्रेजी का बोझ लाद दिया गया। उसे प्रत्येक विषय अंग्रेजी में सीखना होता था, अतएव विदेशी भाषा ज्ञान में उसके अधिक समय, अधिक श्रम तथा अधिक शक्ति का व्यय होने लगा। फिर जब उसमें अपने प्रभुओं के समान सामान्यतया योग्यता उत्पन्न न हुई तो उसमें दीन मनोवृत्ति उत्पन्न होने लगी। आर्थिक दीनता में फँसा हुआ भारतीय सांस्कृतिक दीनता के दलदल में भी फँसने लगा। इसी की ओर प्रोत्साहन देने के लिये लन्दन विश्वविद्यालय के आदर्श पर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय की स्थापना की गई। हमारे शासकों को इसकी चिन्ता क्या थी कि भारतवर्ष इग्लैंड नहीं है।

शिक्षा में भी छानने का क्रम चालू रहा। अर्थात् शिक्षा योजना जनसाधारण की पहुंच के बाहर रखकर केवल कुछ सम्पन्न और उच्च वर्गों के लिये ही बनी थी। इस समय से भारतीय समाचार पत्रों का भी उदय हुआ। और पुस्तकों की माँग भी बढ़ी।

अजमेर में राजकुमारों को शिक्षा के लिये लार्ड मेयो ने यत्न कर दिया था, अतएव १८८५ ई० से वहाँ भी एक कालेज नियमित रूप से कार्य करने लगा। आँग्ल चिकित्सा पद्धति पर १८७४-७५ के लगभग कलकत्ता और मद्रास में शिक्षायालयों की योजना में वृद्धि हुई। आरम्भिक शिक्षा के साथ माध्यमिक शिक्षा का प्रसार बढ़ा। परन्तु शिक्षा का वही सिद्धान्त अभी तक चालू था। १८७५ ई० में लाहौर में एक कला विद्यालय भी स्थापित हुआ।

लार्ड लिटन ने सरकार की आलोचना करने वाले समाचार पत्रों पर रोक लगाने के लिये १८७८ ई० में प्रेस एक्ट चालू कर दिया था, परन्तु १८८१ ई० में लार्ड रिपन ने उसे समाप्त कर

दिया, इसके अतिरिक्त शिक्षा की समस्या पर विचार करने के लिये उसने इसी वर्ष हण्टर कमीशन की स्थापना की। इस कमीशन ने सारे भारतवर्ष में शिक्षा व्यवस्था का निरीक्षण किया और अपनी रिपोर्ट उपस्थित की।

लार्ड डफरिन के काल में १८८२ ई० में पंजाब विश्व-विद्यालय तथा १८८७ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इस समय तक सरकार की स्वीकृत शिक्षण संस्थाओं में छात्रों की संख्या की पर्याप्त वृद्धि हुई।

छानने की नीति हण्टर कमीशन के द्वारा ढीली पड़ गई थी। परन्तु लार्ड कर्जन शिक्षा के अति प्रसार की अपेक्षा नियंत्रण का पक्षपाती था। अतएव उसने १९०१ ई० में उक्त कमीशन की रिपोर्ट का विरोध करके उसमें सुधार करने के लिये एक सभा शिमले में की। तथा १९०२ ई० में इसके लिये एक विश्वविद्यालय कमीशन नियुक्त हुआ। कमीशन के आदेशों के आधार पर 'विश्वविद्यालय व्यवस्था' ('यूनीवर्सिटी बिल') की रचना की गई। जो १९०४ ई० में गवर्नर जनरल की कौंसिल में स्वीकृत हो गई। देश के विद्वानों ने इसका विरोध किया, क्योंकि इससे उच्च शिक्षा पर नियंत्रण लगता था। परन्तु स्वदेश वासियों ने अपना प्रयत्न चालू रक्खा। १९१० ई० में गोखले ने व्यवस्थापिका सभा में प्रारम्भिक शिक्षा व्यवस्था (एलीमेंटरी एजूकेशन बिल) उपस्थित किया, परन्तु अंग्रेजों के बहुमत से वह अस्वीकृत हो गया इस प्रकार अनिवार्य शिक्षा का पहला प्रयत्न असफल होगया। परन्तु लार्ड कर्जन ने आरम्भिक शिक्षा प्रचार को अत्यधिक प्रोत्साहन और सहायता दी। अतएव युद्धकाल तक विद्यार्थियों और पाठशालाओं की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई थी।

द्वैध-शासन प्रणाली में १९१९ ई० के उपरान्त शिक्षा की नीति निर्धारित करना भारतीय मन्त्रियों के हाथ में आ गया

था। अतएव प्रकार की अपेक्षा संख्या पर अधिक बल दिया जाने लगा। कुछ क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था भी की गई। परन्तु भारतीय मन्त्रीगण पूर्णतया स्वतन्त्र न थे। अतएव इसमें यथेष्ट सफलता प्राप्त नहीं हुई। इसके पश्चात् १९२८-२९ ई० के उपरान्त सरकार ने शिक्षा-सम्बन्धी कमीशन स्थापित किया, जिसके आधार पर सरकार फिर प्रकार पर विशेष ध्यान देने लगी। परन्तु इस समय तक हाई स्कूल परीक्षा के लिये शिक्षा का माध्यम मातृभाषा स्वीकार हो चुकी थी। अतएव माध्यमिक पाठशालाओं में छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। इसी समय बेसिक शिक्षा पर भी ध्यान दिया गया। तथा शिक्षा को कला से सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी। कला-शिक्षा का प्रबन्ध भी चालू हुआ।

१९३५ ई०

के उपरान्त जब प्रान्तीय स्वराज्य की व्यवस्था चालू की। तब प्रान्त का समस्त प्रबन्ध भारतीय मन्त्रि-मण्डल के आधीन हो गया। अतः फिर प्रकार की अपेक्षा संख्या पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। प्रौढ़ शिक्षा के लिये भी प्रयत्न आरम्भ हो गये। गवर्नर जनरल ने एक कमीशन फिर स्थापित किया, जिसने चार प्रकार के स्कूलों की व्यवस्था की—प्रारम्भिक, माध्यमिक, तथा उच्च माध्यमिक और विश्वविद्यालय शिक्षा। साथ ही कला-शिक्षा के लिये भी श्रेणी विभाजन किया तथा उत्पादन के कार्य में लगे रहने पर भी आगे की शिक्षा को चालू रखने पर विशेष बल दिया। परन्तु इसकी योजना ४० वर्ष की थी।

१९४७ ई० में स्वराज्य प्राप्ति के उपरान्त फिर शक्ति भारतीय मन्त्रिगणों के हाथ में आई तथा शिक्षा में भी क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हुए। प्रारम्भिक शिक्षा में ५वीं तक निम्न माध्यमिक शिक्षा में ८वीं कक्षा तक, उच्च माध्यमिक कक्षाओं में १२वीं कक्षा

तथा आगे विश्वविद्यालय शिक्षा की योजना इस समय है शिक्षा के विषयों को भी वैज्ञानिक, साहित्यिक, रचनात्मक, तथा कलाभागों में बाँट कर विद्यार्थियों को अपनी रुचि के अनुकूल विषय का चुनाव करने की व्यवस्था की गई है।

न्याय विभाग

हम पंचायतों से अधिकार छीनें जाने का वर्णन कर चुके हैं तथा सदर निजामत, सदर दीवानी, कलक्टरी और मुंसिफी आदि का वर्णन कर चुके हैं। १८६१ ई० में इण्डियन हाईकोर्ट एक्ट पास किया गया। अतएव पुरानी अदालतें तोड़ कर कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में नवीन हाईकोर्टों की स्थापना की गई। ये हाईकोर्ट जिलों की फैसला-अदालतों के निर्णयों की अपील सुनते थे। इसी प्रकार सन् १८६६ ई० में इलाहाबाद में भी एक हाईकोर्ट की स्थापना की गई। जजों की नियुक्ति में सम्राट् को पूर्ण अधिकार था तथा वह जब चाहे तब उन्हें उनके पद से अलग कर सकता था।

हम ऊपर कह आये हैं कि लार्ड कार्नवालिस के काल में जिन कानूनों का निर्माण हुआ था उनकी उलझने सुलझाने के लिये वकीलों और मुख्तारों का अलग धन्धा चल पड़ा था। इसी समय भारतीय दण्ड-विधान १८६० ई० में, भारतीय अपराधी दण्ड-विधान १८६१ ई० में तथा दीवानी विधान १८६२ ई० में पास किये गये। तथा उन्हीं के आधार पर हाईकोर्टों में अभि-योगों का निर्णय होने लगा। इससे उक्त दोनों वकालत और मुख्तारी के व्यवसायों पर और चमक आ गई।

भारतीयों को सिविल सर्विस में स्थान मिल जाने के कारण फिर न्याय विधान में संशोधन करने की आवश्यकता लार्ड रिपन के काल में पड़ी। उस समय उसकी कौंसिल के सदस्य

एल्वर्ट ने एक व्यवस्था उपस्थित करके अंग्रेजों के अभियोग का भी भारतीय जजों को निर्णय करने का अधिकार दिया। परन्तु इस पर अनेक टीका-टिप्पणियाँ होती रहीं तथा कटुता उत्पन्न होने लगी। अन्ततः विवश होकर बिल में इस प्रकार का संशोधन करना पड़ा कि यदि किसी योरोपियन का भारतीय जज के न्यायालय में अभियोग आवे तो योरोपियन को जूरियों द्वारा निर्णय कराने का अधिकार होगा। इन जूरियों में आधे अवश्य योरोपियन होंगे।

इसके उपरान्त छोटे-मोटे परिवर्त्तन विधानों में होते रहे। सबसे बड़ा परिवर्त्तन १६३५ ई० के संघ शासन विधान के द्वारा हुआ। इससे भारतवर्ष के हाईकोर्टों की अपीलों के लिये दिल्ली में एक संघीय न्यायालय स्थापित हुआ। परन्तु अब भी इंग्लैंड की प्रीवी कौंसिल में कुछ अभियोगों की अपील हो सकती थी जिसकी समाप्ति भी १६४६ ई० में भारतीय प्रजातन्त्र की स्थापना के साथ हो गई।

वैधानिक शासन व्यवस्था का विकास

अंग्रेजी सरकार को ईष्टइण्डिया कम्पनी से राज्याधिकार ले लेने पर यह आवश्यक हो गया कि शासन के विधान में भी आवश्यक परिवर्तन किया जाय। इन परिवर्त्तनों के दो स्थान थे। इंग्लैण्ड और भारतवर्ष। हम समय क्रम से दोनों परिवर्त्तनों का साथ-साथ वर्णन करेंगे।

इस समय तक पहले कही हुई कोर्टआफ डायरेक्टर (संचालक समिति) राज्य सचिवालय के प्रति उत्तरदायी थी।

इंग्लैण्ड में

अब उसको भंग कर दिया गया तथा उसके स्थान पर (भारतीय सभा) की स्थापना की गई, इसमें ८ सदस्य इंग्लैण्ड के राजा के द्वारा निर्वाचित होते थे। कम्पनी के डायरेक्टरों को,

७ सदस्य निर्वाचित करने का अधिकार था परन्तु भारत मंत्री इस सभा का सर्वेसर्वा था। उसे अधिकार था कि किसी विषय पर इस सभा के मत की सम्पूर्ण अवहेलना कर दे। वही इस सभा का सभापति भी होता था। इस सभा के निर्वाचन का काल निश्चित नहीं था। एक बार निर्वाचित होकर वे उस समय तक अपने पद पर रह सकते थे जब तक हाउस आफ़ लार्डस और कामन्स दोनों उससे भंग करने की मांग न करें। इस सभा को अपनी नीति निर्धारित करने का भी अधिकार नहीं था, क्योंकि वे केवल उन्ही विषय पर अपनी सम्मति दे सकते थे जिन्हें भारत सचिव उनके सम्मुख उपस्थित करें।

उक्त ऐक्ट के द्वारा भारतवष की गवर्नर जनरल की कौंसिल में भी आवश्यक परिवर्त्तन किया गया। गवर्नर जनरल की कौंसिल में दो प्रकार के सदस्य नियुक्त हो सकते थे। पहले जो विधान के अन्तर्गत अवश्य लिये जायंगे। दूसरे वे जिन्हें गवर्नर जनरल व्यवस्था निर्माण के लिये आवश्यकतानुसार ले ले। पहले सदस्यों की संख्या ५ थी जिनमें तीन सदस्य ऐसे होने आवश्यक थे जिन्होंने भारतीय राज सेवा में कार्य किया हो, तथा चौथा न्यायविशेषज्ञ हो ,चाहे वह इंग्लैण्ड का बैरिस्टर हो अथवा स्काटलैन्ड की फैकल्टी आफ एडवोकेट का सदस्य हो, पाँचवा सदस्य अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ होना आवश्यक था। समस्त राज्य कार्य्य विभागों में बाँट दिया गया तथा प्रत्येक सदस्य के अधिकार में एक-एक विभाग दे दिया गया। प्रधान सेनापति इस समिति का विशेष सदस्य माना जाता था। लार्ड कैनिंग ने भारतवर्ष के तीन प्रमुख व्यक्तियों को व्यवस्था निर्माण में सहायता देने के लिये अपनी कौंसिल का सदस्य बना लिया। वे ग्वालियर राज्य के प्रधान-मंत्री, बनारस के राजा और झीन्द के राजा थे। इसी प्रकार धीरे-धीरे

भारतवर्ष में

अन्य प्रान्तों के गवर्नरों को भी अपनी कौंसिल के द्वारा कानून बनाने के अधिकार प्राप्त हुये। सबसे पहले बम्बई मदरास और बंगाल प्रान्तों को ये अधिकार मिले।

नगरों के प्रबन्ध के लिये म्यूनीसिपैलिटी काम कर रही थी, परन्तु उनमें इस समय कोई व्यवस्थित सुधार नहीं हुआ।

१८७८ ई० में लार्ड लिटन ने महारानी विक्टोरिया की घोषणा के अनुसार भारतीय सिविल सर्विस में उक्त परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को अधिक से अधिक राजसेवा देने की घोषणा की। इससे भारतीयों को इंग्लैण्ड जाकर परीक्षा देने में प्रोत्साहन मिला क्योंकि अनेक जाति-पाँति के बन्धनों से घिरे भारतीय बुद्धिमान विद्यार्थी सरकार द्वारा दी हुई छात्रवृत्ति का पहले तो उपयोग ही नहीं करते थे। वे इंग्लैण्ड नहीं जाते थे, फिर उचित स्थान न मिलने के कारण उनमें विदेश जाने की इच्छा भी उत्पन्न न होती थी। अतएव लार्ड लिटिन ने भारतीयों को सिविल सर्विस में जाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

लार्ड लिटन की दी हुई सिविल सर्विस की सुविधा से शीघ्रता-पूर्वक भारतीय ऊंचे ऊंचे पदों पर पहुँचने लगे। परन्तु पुराने भारतीय दण्ड विधान के अनुसार कोई भारतीय जज गोरी ब्रिटिश प्रजा का न्याय नहीं कर सकता था। १८८३ ई० में कौंसिल के न्याय-मन्त्री इल्बर्ट ने इस भेद-भावना को दूर करने के लिये एक व्यवस्था बनाई। वायसराय ने "इल्बर्ट बिल" को स्वीकार कर लिया, इस पर अपने सफेद चमड़े का अभिमान रखनेवाले गोरों ने हलचल मचा दी। भारतीयों ने उसका समर्थन किया। शिक्षित योरोपवासियों ने भारतीयों का साथ दिया। दोनों दलों में बड़ी तू तू, मैं मैं गाली गलौज हुई। अन्ततः लार्ड रिपन-को हार माननी पड़ी और बिल अस्वीकृत हो गया। परन्तु सम-झौता यह हुआ कि योरोपीय का मुकदमा भारतीय की अदालत

में होने पर जूरी लोगों की सहायता से निर्णीत हो जिसमें आधे जूरी अवश्य अंग्रेज या अमेरिकन हों।

लार्ड रिपन ने ही उस नीति को जन्म दिया जिस पर भारतीय प्रजा को अपने सम्मान की रक्षा करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। अतएव लार्ड रिपन का भारतीयों ने बड़ा सत्कार किया।

लार्ड कर्जन ने देखा कि बंगाल के इस्तमरारी प्रबन्ध के कारण बंगाल का सूबा शेष प्रान्तों पर भार है तथा वहाँ लगान बढ़ाने की सम्भावना नहीं है। जब तक इस प्रथा का अन्त न कर दिया जाय। यही सोचकर उसने बंगाल के दो भाग कर दिये। पश्चिमी भाग को आसाम से मिलाकर ढाका राजधानी बना दी तथा पूर्वी भाग को बिहार के साथ मिला दिया परन्तु इस पर एक आन्दोलन खड़ा हो गया। इसका वर्णन हम जनजागृत के साथ करेंगे।

१८६२ ई० का इण्डिया कौंसिल एक्ट के अनुसार भारतीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में क्रम से (१० से २०) और ८ से २० तक सस्दयों को रखा जा सकता था। अतएव परोक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा विभिन्न प्रान्तों तथा विभिन्न केन्द्रों में व्यवस्थापिका सभाओं का संगठन चालू हो गया था। इस ऐक्ट के अनुसार सदस्यों को बहस करने और प्रश्न पूछने का अधिकार तो मिला था परन्तु मत देने का अधिकार नहीं था।

१६०६ ई० में मिण्टो मार्ले सुधार हुये, इसके अनुसार भारतवासियों को भारतीय लोक-सभा (इण्डिया कौंसिल) तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की सदस्यता का अधिकार मिला तथा भारतीय औ प्रान्तीय सभाओं के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई। संयुक्तप्रान्त की सभा में इस समय २० सरकारी २६ गैर-सरकारी तथा ६ मनोनीत सदस्य रखे गये। इसी समय साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया जाने लगा और मुसलमानों के

स्थान रक्षित कर दिये गये। जमींदारों, व्यापारियों और उद्योग-पतियों को भी प्रभुत्व दिया गया। तथा कार्यकारिणी समितियों का प्रान्त तथा केन्द्र में निर्माण हुआ।

१६१० ई० में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार योजना प्रस्तुत हुई। इसे द्वैध-शासन कहते हैं। इसका कारण यह है कि प्रान्तों के समस्त विभागों को दो भागों में बाँट दिया गया। कुछ भाग तो सीधे सरकार के हाथ में रहते थे तथा कुछ का उत्तरदायित्व भारतीय मंत्रियों को सौंप दिया गया। इस योजना के आरम्भ होते समय गोखले ने सरकारी और गैरसरकारी समान प्रतिनिधित्व की माँग की थी। दूसरी योजना धारासभा के सदस्यों की थी, वे निर्वाचित दल का बहुमत चाहते थे, चौथी कांग्रेस-लीग के गरम दल की थी। वे केन्द्र और प्रान्तीयों में ८० प्रतिशत स्थान भारतीयों के लिये चाहते थे।

द्वैध-शासन-सुधार की विशेषतायें

म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की इस सुधार योजना द्वारा को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी गई और उनके सिपुर्द चुंगी, सफाई, सड़कें, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि स्थानीय विभाग कर दिये गये।

स्थानीय-शासन को स्वतंत्रता देना

स्थानीय स्वाराज्य

उत्तरदायी शासन का श्रीगणेश प्रान्त से किया जाय। कुछ विषय जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में दे दिये जायँ तथा कुछ पर सीधा नियंत्रण रखा जाय। अतएव प्रान्तों में भी हस्तान्तरित विषयों में शिक्षा स्वास्थ्य आवकारी और स्थानीय स्वराज्य आदि विषय भारतीयों के हाथ में आ गये। तथा कोष, पुलिस और जेल आदि रक्षित विषय रहे।

केन्द्रीय सरकार पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी रहे, परन्तु उसके सदस्यों में वृद्धि की जाय तथा जैसे-जैसे भारतीय

हस्तान्तरित विषयों में सफल होते जायँ उनको केन्द्रीय अधिकार दिये जायँ और पार्लियामेण्ट तथा भारत मंत्री के अधिकार शिथिल किये जायँ। इस नीति के अनुसार वस्तुतः केन्द्रीय सरकार में कोई परिवर्त्तन उल्लेखनीय नहीं हुआ। अब भी गर्वनर जनरल की कार्यकारिणी में वही तीन १० वर्ष के भारतीय नौकरी सेवा प्राप्त, एक इंग्लैण्ड या स्काडलैण्ड बैरिस्टर, या भारतीय वकील और १ अर्थ विशेषज्ञ रहा। तथा भारतीय सदस्यों की संख्या निश्चित नहीं रही, वह घटाई-बढ़ाई जा सकती थी। परन्तु ३ से कम भारतीय सदस्य कभी नहीं रहे। कार्य-कारिणी का कार्य आठ विभागों में बँटा था। तथा प्रत्येक सदस्य के आधीन १ विभाग था तथा उसकी सहायता के लिये एक विभागीय समिति थी। इस कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन गर्वनर जनरल तथा भारत-मंत्री की सम्मति से सम्राट् करता था तथा यह नियुक्ति ५ वर्ष के लिये थी।

भारतीय व्यवस्थापिका सभायें। —दो प्रकार की सभायें थीं।

१. राष्ट्रीय संसद जिसमें ६० सदस्य थे, ३३ प्रत्यक्ष निर्वाचित, २० सरकारी पदाधिकारी तथा ७ गर्वनर जनरल द्वारा मनोनित होते थे।

२. व्यवस्थापिका सभा में १४४ सदस्य थे जिसमें १०३ प्रत्यक्ष निर्वाचित, २५ सरकारी पदाधिकारी तथा १६ गर्वनर जनरल द्वारा मनोनीत थे। इस समय तक वाइसराय को किसी भी नियम के स्वीकार करने या न करने का सम्पूर्ण अधिकार था परन्तु व्यवस्थापिका सभा को प्रस्ताव स्वीकार कर लेने का अधिकार मिल गया। बजट पर भी इन सभाओं को बहस का अधिकार मिल गया था।

संयुक्तप्रान्त की व्यवस्थापिका सभा में १०० निर्वाचित, १७

पदाधिकारी तथा ६ मनोनीत सदस्य थे। इस शासन-विधान में सबसे बड़ा दोष था कि उन्हें उसमें जो अधिकार भारतीय मंत्रियों को भी दिये थे उन्हें वे चला सकने में समर्थ थे, क्योंकि उन विभागों के अंग्रेज कर्मचारी देशी मंत्रियों की आज्ञा का पालन नहीं करते थे तथा गर्वनर और व्यवस्थापिका सभा दोनों के प्रति वे मंत्री उत्तरदायी होने के कारण कई कार्य स्वेच्छा से नहीं चला सकते थे। भारतीय कांग्रेस इसको स्वीकार ही नहीं करती थी। उसने बराबर आन्दोलन चलाया। फलत: १६३५ ई० में संघ शासन-विधान बना।

इस विधान की विशेषतायें

१. यह विधान केवल अंग्रेजी भारतवर्ष के लिये न होकर सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिये, जिसमें देशी राज्य भी थे बनाया गया।

२. इसमें पहले के समस्त विधानों में प्रान्तों की स्वतन्त्रता नहीं थी। इसमें सब प्रान्तों को अलग-अलग इकाई मानकर उन्हें स्वतन्त्र समझा गया और सबसे सम्बन्ध रखने वाली बातों की उन सबके संघीय केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत लाया गया। अतएव इसमें कई छोटे-छोटे राज्यों की सत्ता स्वीकृत होकर सबको मिलाया गया। तथा इन स्वतन्त्र राज्यों की भाषाओं में समानता लाने, उनकी आर्थिक समस्याओं को परस्पर संगठित करने तथा सहयोग और एकता की भावना बनाये रखने पर विशेष ध्यान दिया गया। किन्तु गवर्नर जनरल को सदैव एकाधिकार दिया गया, वह समस्त मंत्रिमण्डल के कार्य को अपनी इच्छा से उलट सकता था इस प्रकार उक्त बातों के आधार पर केन्द्र का संगठन किया गया। तथा प्रत्येक इकाई प्रान्त में निम्नलिखित विशेषतायें रक्खी गईं।

प्रत्येक प्रान्त में अपरिवर्त्तनीय और सुदृढ़ विधान का निर्माण किया गया। शासन-विधान में ऐसी दो संस्थाओं का निर्माण किया गया जो साथ ही साथ संघीय और प्रान्तीय विषयों का अलग-अलग प्रबन्ध करें और रेल, डाक, तार और पुलिस आदि का प्रबन्ध करने वाली संस्था के अलग रहते हुये भी शिक्षा स्वास्थ्य आदि की संस्था के साथ ही साथ काम कर सके।

प्रत्येक प्रान्त के अंगों का संगठन तथा विवादग्रस्त विषयों के निर्णय के लिये संघीय न्याय विधान के निर्णय की मान्यता के लिये प्रत्येक प्रान्त को बाध्य किया गया।

भारतीय संघ विधान में देशी राज्यों को यह सुविधा दी गई थी कि वे जिन बातों को स्वयं स्वीकार करें वही संघ शासन के अधिकार में आ सकेंगी। तथा संघ में सम्मिलित राज्यों के प्रतिनिधियों को असमान प्रतिनिधित्व दिया गया। इस संघ विधान में सबसे बड़ा दोष यह था कि इसमें सम्पूर्ण भारतवर्ष के केन्द्रीकरण में देशी राज्यों की ओर से वाधा हो सकती थी।

प्रान्तों में

प्रान्तों में कुछ विशेष संरक्षणों के साथ उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई थी परन्तु केन्द्र की भांति यहाँ गवर्नर को एकाधिकार प्राप्त था।

सम्राट के अधिकार

इस विधान के द्वारा सम्राट् को दो प्रकार के वैधानिक और विशेष अधिकार दिये गये जिनमें किसी राज्य के संघ में सम्मिलित होने की आज्ञा देना, उच्चाधिकारियों की नियुक्ति, देशी राज्यों से सम्बन्ध और वे अधिकार जो उसे शासन-विधान द्वारा प्राप्त हों; वैधानिक थे। तथा पर-राष्ट्र सम्बन्ध, युद्ध या सन्धि आदि विशेष अधिकार थे।

केन्द्रीय संघ के अधिकार में प्रान्तीय पुलिस और सशस्त्र

पुलिस, सेना और छावनियाँ, पर राष्ट्र सम्बन्ध, टकसाल, डाक-तार और जन गणना, आयात-निर्यात, अनेक कर, नमक कर, विदेशियों को नागरिकता का अधिकार प्रदान, कृषि के अतिरिक्त अन्य आय कर आदि ३१ विषय केन्द्र के आधीन थे।

प्रान्तीय शासन के आधीन — सेना को छोड़कर अन्य सार्वजनिक कार्य, प्रान्तीय न्यायालय, प्रान्तीय रेलें और प्रान्तीय पुलिस, प्रान्तीय नौकरियाँ भूमि और आबकारी कर आमोद-प्रमोद कर, माग कर आदि ४३ विषय थे।

संयुक्त विषय — जो विषय केन्द्र और प्रान्त दोनों से सम्बन्ध रखते थे, इनमें दण्ड विधान और दीवानी अदालतों से सम्बन्ध रखने वाली पद्धति, समाचार पत्रादि, मिल और कारखाने, संक्रामक रोग आदि ३६ विषय थे। इनके अतिरिक्त अन्य विषयों की सूची भी थी जिसके सम्बन्ध में विभिन्न योजनायें थीं।

व्यवस्थापिका सभाओं में भी कुछ बातें ऐसी थीं जो बिना गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति के न हो सकती थीं। जैसे पार्लियामेंट के किसी नियम को रद्द करना, सरकारी आर्डिनेन्स को रद्द करना, योरोपीय प्रजा पर फौजदारी प्रभाव डालने वाला विधान आदि।

संघ सरकार की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये प्रान्तों से विशेष धन निश्चित कर दिया गया। तथा कुछ करों में संघ का प्रतिशत लगा दिया गया। तथा संघ के ही आधीन आयात कर, नमक कर, आय कर, कार्पोरेशन कर कर दिये गये। देश की आर्थिक व्यवस्था का नियंत्रण रिजर्व बैंक को कर दिया गया जो जनता के हिस्सों से सरकारी कार्य करता था। गवर्नर जनरल इसके लिये गवर्नर, डिप्टी गवर्नर चार संचालक नियुक्त

करता था तथा ८ अन्य संचालक हिस्सेदारों द्वारा निर्वाचित होते थे।

इस विधान के अनुसार गवर्नर जनरल के विशेषाधिकार तथा विवेक के लिये रक्षित अधिकारों को छोड़कर। जैसे शान्ति रक्षा, आर्थिक स्थिरता के नियम, अल्प संख्यकों के हितों की रक्षा आयात के सम्बन्ध के अधिकारों को छोड़कर शेष राष्ट्रीय संसद (कौंसिल आफस्टेट) के द्वारा चलाये जाते, जिसमें १५६ ब्रिटिश भारत के तथा १०४ देशी राज्यों के होते। इन में से देशी राज्यों के ५२ सदस्यों के सम्मिलित हो जाने पर ही यह व्यवस्थापिका सभा कार्य्य कर सकती थी। जिसमें संयुक्त प्रान्त से २० सदस्य जाते, ७ मुसलमान, १ स्त्री, १ दलित जाति तथा ११ साधारण सदस्य होते। इसी प्रकार समस्त भारत में सदस्यों का विभाजन किया गया था।

दूसरी परिषद्—हाउस आफ असेम्बली जिसमें ३७५ सदस्य होते २५० ब्रिटिश से १२५ देशी राज्य से थे। संयुक्त प्रान्त के ३७ सदस्य होते जिनमें १६ साधारण, ३ दलित जाति, १२ मुसलमान, एक एक भारतीय ईसाई, मजदूर प्रतिनिधि, स्त्री प्रतिनिधि, जमीनदार और योरोपियन की होती।

संघ राज्य की कार्यकारिणी बहुमत के नेता की सम्मति से चुनी जाती।

संयुक्त प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा में कुल ५८ से ६० सदस्य होते जिन में ३४ साधारण, १७ मुसलमान १ योरोपियन तथा ६ या ८ गवर्नर द्वारा मनोनीत सदस्य होते।

परन्तु संघ विधान १९३९ ई० में युद्ध छिड़ जाने तथा बिना प्रान्तीय धारा सभाओं की सम्मति के भारत वर्ष को युद्ध में सम्मिलित कर देने के कारण स्थगित हो गया।

कांग्रेस वैसे ही सन्तुष्ट न थी। उसने व्यक्तिगत सत्याग्रह करना प्रारम्भ किया। अतएव क्रिप्स महोदय सन्धि की योजना लेकर आये, परन्तु जिन्ना साहब की हठ के कारण समझौता न हो सका अतएव कांग्रेस ने १९४२ में पूर्ण स्वतंत्राता की घोषणा कर दी। फलतः दमन हुये। उनका वर्णन हम जन जागृति में करेंगे। युद्ध के अन्त में फिर तीन व्यक्तियों का शिष्ट मंडल भारत मंत्री पेथिक लारेंस के नेतृत्व में आया। पाकिस्तान का विभाजन स्वीकार करके भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्या दे दिया गया। जिसका अन्तिम प्रजातंत्रीय विधान २६ जनवरी सन् १९५० ई० से लागू होना निश्चित हुआ है।

राष्ट्रीय जन जागृति

आज हम स्वतन्त्र हैं। माना कि हमारी कठिनाइयां हमारे कष्ट और अभाव अभी दूर नहीं हुये परन्तु इन सबका मूल भूत कारण हमारी दासता से हमें छुट्टी मिल गई। जड़ कट चुकी है अतएव अब उसकी पत्तियां भी सूख जायेंगी तथा वह भीषण विषवृक्ष निकट भविष्य में ही नहीं रहेगा जिसकी विभीषिका से हम आज अत्यन्त पीड़ित और दुःखी हैं।

परन्तु यह स्वतन्त्रता हमें किस प्रकार मिली? इसके पीछे एक शृखलाबद्ध तपस्या का, बलिदानों का, स्वार्थ त्याग का, अविराम संघर्ष का इतिहास है। इस जन जागृति में हमें उसी पर सिंहावलोकन करना है।

१८५७ में राज्य क्रांति हुई और असफल हो गई। परन्तु क्रांति कभी असफल नहीं होती वह अपने बीज ऐसी भूमि पर छोड़ जाती है जहां से काल पाकर फिर नवीन क्रांतिपादप उत्पन्न हो जाता है। भारतीय क्रांति की भी यही स्थिति थी और यही फल हुआ।

अब भारतीय सामाजिक क्रांति का अवसर था।

राजा राम मोहन राय बंगाल में उसका श्री गणेश कर चुके थे। गुजरात से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उसे अपने हाथ में ले लिया अखण्ड ब्रह्मचर्या के तेज से दीप्त, वेदों के ज्ञान के कुठार से रूढ़िवाद की जड़ें काटता हुआ समस्त भारत वर्ष को अपनी गर्जना से गुन्जाकर, भारतीयों को एक नवीन चेतना देकर, भारतीय संस्कृति से भटकने वालों को अवलम्ब देकर अछूतों को गले लगाने का आदेश देकर १८८३ ई० में इस

मर्त्यलोक को छोड़ कर चला गया उसने डूबती हुई प्राचीन संस्कृति की नौका को न केवल खेया बल्कि उसे ऐसी स्थिति में प्रतिष्ठित कर दिया कि तीव्र विरोध करने वाले ईसाई बगलें झांकने लगे। उसने स्वदेश प्रेम का उपदेश दिया। उसने कहा पिता के समान पालन करने वाला भी विदेशी राज्य स्वराज्य के कुशासन की अपेक्षा भी तुच्छ है घृणित है योग्य है।

उसी समय बंगाल में रामकृष्ण परम हंस ने अपनी स्नेह-मयी वाणी, प्रभु पर अटल विश्वास और श्रद्धा के बल से विदेशी संस्कृति की मदिरा के प्रभाव से मूर्च्छित युवकों को प्रेम का अमृत देकर पुनर्जीवन दिया, अपने धर्म पर श्रद्धा दी तथा उन्हें अपने गौरव पर स्वाभिमान दिया।

थियासोफिकल सोसाइटी की मैडम ब्लैवस्की का उपकार भी नहीं भुलाया जा सकता। उसने भी हमारी संस्कृति से प्रेम दिखा कर जन जागृति में सहयोग दिया है।

परन्तु लार्ड डफरिन और ह्यूम ने तो भारतीयों को प्रेरणा और चेतना दी है। स्मरण रखने की वस्तु है कि लार्ड डफरिन भारतवर्ष के वाइसराय थे उन्होंने कांग्रेस को राजनैतिक संस्था बनाना चाहा था परन्तु सरकारी कर्मचारी होने के कारण वे स्पष्ट रूप से कुछ न कर सके उन्हीं की कृपा से कांग्रेस के प्रारम्भिक तीन अधिवेशन गवर्नरों और कर्मचारियों के साथ हुए।

इसी काल में कांग्रेस की उद्भावना के भी कुछ कारण थे सरकार भी भारतियों के हितों को अपेक्षा की दृष्टि से देखती रही थी लार्ड लिटन ने भारतीय समाचार पत्रों की स्वतंत्रा का हरण किया था विदेशों में भारतियों पर होने वाले

अत्याचारों में भारतीय सरकार जान बूझ कर चुप थी। अंग्रेज शासक अपने को ईश्वर समझ कर शासित भारतियों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। इंगलैण्ड में उदार दल की सरकार बन गई थी। डफरिन उदारदल के भारतवर्ष में प्रतिनिधि थे।

प्रारम्भ में भारतीय कांग्रेस भी केवल प्रस्ताव पास कर के सरकार के पास भेज देना अपना कर्तव्व समझ कर शान्त हो जाती रही। उदारवादी महादेव गोविन्द रानाडे, दादाभाई नौरोजी, सर फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, दीनशाई दुलजी वाचा वैध ढंग से कांग्रेस का कार्य करना चाहते थे। वे सीधा संघर्ष लेने को प्रस्तुत न थे। परन्तु प्रस्तावों में अंग्रेज सरकार पर, उसकी उदारता पूर्ण नीति पर विश्वास रखते हुए आलोचना करते और अपनी सम्मति देते थे।

१६०५ ई० में जब वंगभङ्ग हो गया तो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रासविहारी घोष और मदन मोहन मालवीय ने दोनों नीतियों से काम लिया उन्होंने अवसर पर सरकार की तीखी से तीखी आलोचना भी की। तथा सरकार पर विश्वास भी प्रगट किया। अतएव इनके काल में कांग्रेस में उग्रभावनाओं का बीज भी पड़ा। परन्तु इस समय तक उग्रवादी दल भी क्षेत्र में आ गया था। उसका नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक के साथ था। तिलक जहां अपने पत्र द्वारा तीक्षण आलोचना करते थे वहां चाहते थे कि कांग्रेस का रंग मंच भी सरकार पर विश्वास की नीति छोड़ कर तीक्षणतम आलोचना करने वाला बन जाय। परन्तु उस समय कांग्रेस में उदारवादियों का बहुमत था अतएव तिलक के साथ कुछ उग्रवादी अलग हो गये।

युद्धकाल में भारतीय कांग्रेस ने करवट बदलनी आरम्भ

की। लोकमान्य तिलक ने सरकार के समक्ष १४ शीर्षकों का प्रोगराम रक्खा जिसमें भारत की स्वतन्त्रता, देशी सैनिक तथा अंग्रेज सैनिकमें समान व्यवहार की घोषणा तथा युद्धान्त में भारतीय सैनिकों से शस्त्र न लेने आदि की १४ शर्त्तों पर युद्ध में सहयोग देना स्वीकार किया। परन्तु महात्मा गांधी की उदारनीति अंग्रेजों पर विश्वास करती थी। अतएव विपत्तिग्रस्त अंग्रेजोंकी सहायता के लिये उन्होंने स्वयं सैनिक भर्त्ती के कार्य का समर्थन करके सहयोग दे दिया।

इस समय होमरूल लीग की स्थापना हुई थी जिसका उद्देश भारतवर्ष में औपनिवेशिक स्वाराज की स्थापना था। इसका नेतृत्त्व श्रीमती एनी वेसेण्ट के हाथ में था। परन्तु युद्ध समाप्ति के उपरान्त शान्ति रक्षा के नाम पर रौलटबिल पास किया गया। जिसमें दो बिल थे पहला अस्थायी और दूसर स्थायी। इनका उद्देश प्रकटतः तो राज विद्रोह करने वालों पर मुकद्दमा चलाकर उन्हें शीघ्र दण्ड दिलाने की व्यवस्था करना था। परन्तु इसका आन्तरीय प्रयोजन भारत में व्याप्तजन जागृति को कुचल देना था। जनरल डायर ने अपने स्वामी लेफटीनेट गवर्नर ओडोयर की सम्मति से जिस पशुता का प्रदर्शन किया उसका कलंक अंग्रेजों के मत्थे पर से कभी नहीं धुल सकता। जलियान वाला बाग में शान्त विरोध प्रकट करने के लिये सभा हो रही थी जनरल डायर ने सेना सहित पहुंच कर सभाभंग करने की आज्ञा दे दी। परन्तु उस आज्ञा के पालन करने के लिये समय देने की प्रतीक्षा करने की उसमें शक्ति नहीं थी। तीन मिनट में ही गोली चलाने की आज्ञा देकर उसने अपना कठोर कर्त्तव्य पूर्ण किया।

१४०० बार गोली चलाई गई लगभग (सरकारी रिपोर्ट के अनुसार) ४०० मनुष्य वहीं ढेर हो गये आहत और मृत रात भर वहीं पड़े रहे उन्हें पानी तक न दिया गया। इसी प्रकार बर्बरता का नग्ननृत्य समस्त पञ्जाब तथा अन्य स्थलों पर भी हुआ।

महात्मा गान्धी के विश्वास की शिला चकनाचूर हो गई। वृद्ध तिलक के शर्त्तों के साथ ही सरकार के सहयोग करने के पत्र का निरादर करके उन्होंने जो भूल की थी उसका उन्हें दुःख हुआ। अपने सत्य और अहिंसा के शस्त्रों के साथ तिलक का असहयोग उन्होंने स्वीकार कर लिया इसी समय से कांग्रेस में गांधीवाद का प्राधान्य होने लगा।

सन् १६१६ ई० से मुस्लिम लीग भी कांग्रेस के विश्वास से सहमत होने लगी थी अतएव कांग्रेस ने पृथक् प्रतिनिधित्व और खिलाफ़त के प्रश्न को अपने कार्य क्रम में ले लिया था। अतः अलीबन्धु भी कांग्रेस रंगमंच पर आगये। हिन्दू मुस्लिम सहयोग से देश के सम्पूर्ण युवक आन्दोलन के लिये प्रस्तुत थे। संगठित असहयोग के प्रचार का कार्या लोकमान्य तिलक ने ही प्रारम्भ कर दिया था। इस समय महात्मा गान्धी के नेतृत्त्व में उसका व्यापक प्रचार हुआ। देश के कोने कोने में जागृति का शंख नाद फूंक दिया गया।

१६२० में कलकत्ता कांग्रेस में तथा १६२१ ई० में नागपुर कांग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया विदेशी बहिष्कार आंग्ल शिक्षा पद्धति का बहिष्कार, तथा अदालत बहिष्कार आदि की नीति शान्ति पूर्ण सत्याग्रहण के रूप में

स्वीकार करके महात्मा गांधी ने तिलक के कार्य क्रम से भी एक कदम देश को आगे बढ़ा दिया।

चम्पारन, खेड़ा सत्याग्रह और बेजवाड़ा सत्याग्रह इतिहास की वस्तु बन गये समस्त भारतवर्ष में विशेषतः पञ्जाब संयुक्त प्रदेश और मारवाड़ में भयंकर दमन चक्र चलाया गया। नानकाना साहब में धार्मिक सभा के लिये एकत्र लोगों को जीवित अग्नि में झोंक दिया गया। देश भर के नेता जेल में बन्द कर दिये गये और दमन का चक्र चलता रहा।

परन्तु इसी समय चौरी चौरा, बम्बई प्रान्त तथा मद्रास प्रान्त अपनी उत्तेजना न संभाल सके उन्होंने रक्त पात प्रारम्भ कर दिया। अतएव महात्मा गांधी ने सत्याग्रह स्थगित कर दिया। परन्तु इस आन्दोलन में महात्मा गांधी को बल्लभ भाई पटेल, चितरंजन दास, राजेन्द्रप्रसाद, लाला लाजपतराय और जवाहर लाल नेहरू जैसे खरे सैनिक प्राप्त हो गये।

नेहरू रिपोर्ट (१९२४) के आधार पर कांग्रेस ने कौंसिलों में जाने की व्यवस्था स्वीकार करके असहयोग के कार्य क्रम को कुछ पीछे हटा दिया। इधर अंगरेजों ने अपनी कुटनीति के सहारे समस्त भारतवर्ष में कांग्रेस और अलीबन्धुओं द्वारा स्थापित हिन्दू मुस्लिम एकता को तोड़ दिया। तथा समस्त भारतवर्ष में साम्प्रदायिक विद्वेष भड़का कर हिन्दू मुसलमानों को अलग २ कर दिया। कांग्रेस अपने उद्देश्य 'साम्प्रदायिक एकता पर' स्थिर रही परन्तु मुस्लिम लीग ने अपने अलग हित स्थापित कर लिये।

१९२८ ई० में कांग्रेस ने जिस सफलता के साथ साईमन

कमीशन का वहिष्कार किया वह भारतवर्ष की जनजागृति का निदर्शन है। इसी वर्ष वल्लभ भाई पटेल ने वारदोली के किसान सत्याग्रह से विजय पा कर 'सरदार' की उपाधि पाई।

सन् १९३० ई० में फिर उस आन्दोलन का ज़ोर बढ़ने लगा जिसे सरकार ने अपनी दमन नीति, भेद नीति से मृत प्राय समझ लिया था। भारतीय स्वाधीनता का घोषणा पत्र पढ़ा गया तथा २६ जनवरी स्वतंत्रता दिवस बनाया गया। ज़ोर इस दिन समस्त राष्ट्र को स्वतंत्रता के लिये घोषणा सुनाना निश्चित हुआ। गांधी जी की प्रसिद्ध १७ शर्तों में मदिरा निषेध, लगान आधा करना, नमक कर उठा देना, सैनिक व्यय आधा करना, बड़ी नौकरियों के वेतन आधा करना, विदेशी वस्त्र के आयात पर विशेष कर लगाना, भारती जल शक्ति की सुरक्षा, राजनैतिक मुकदमें वापिस लेना, जनता का गुप्त पुलिस पर नियंत्रण, तथा शस्त्र कानून का अन्त करना था। इसके कार्य क्रम में सविनय अवज्ञा, नमक सत्याग्रह आदि मूर्तयोजनायें थीं। नमक सत्याग्रह के लिये महात्मा गांधी ने स्वयं अपने ७९ साथियों के साथ डण्डी प्रस्थान किया। १२ मार्च सन् १९३० का यह दिन भारतवर्ष की जनजागृति का पर्व है। फिर दमन चक्र चला। लाठी चली और गोली काण्डों से भयंकर नर हत्या होने लगी। अन्त में गोलमेजसम्मेलन द्वारा सन्धि के यत्न किये जाने लगे और सन १९३१ ई० में गांधी-इरविन समझौता हो गया।

परन्तु अंग्रेज़ जानते थे कि कांग्रेस की शक्ति नष्ट करने का

एकमात्र साधन साम्प्रदायिक विद्रोह है। भगतसिंह की फांसी के उपलक्ष में कानपुर में हड़ताल की आयोजना की गई थी। किन्तु राजनैतिक होने के कारण परस्पर साम्प्रदायिक दंगे होने का कोई हेतु नहीं था। परन्तु अंग्रेजों ने हिन्दू मसलमानों में परस्पर भयंकर दंगा करा दिया। फलत: कानपुर के वीर सेनानी गणेश शङ्कर विद्यार्थी ने अपने रक्त दान से साम्प्रदायिकता की अग्नि को बुझाया।

परन्तु लार्ड विलिङ्गटन के भारतवर्ष में पधारते ही समझौता टूटने लगा तथा दमन की भावना बढ़ने ली। फलतः फिर संघर्ष की तैयारियां प्रारम्भ हुईं। हिन्दू मस्लिम समझौते का ढंग भी निकल आया था परन्तु सरकार उसे कब सम्भव होने दे सकती थी। अतएव जिन्ना को फोड़ कर नवीन मुस्लिम आन्दोलन चलाया गया और नवीन पाकिस्तान की मांग लीग की ओर से उठाई गई। अनेक बार फिर समझौते की आशा बंधी परन्तु फिर निराशा में परिवर्त्तित हो गई। महात्मा गांधी ने इस समय अपने पत्र व्यवहार में यह स्पष्ट कर दिया कि वे समझौते के लिये प्रस्तुत हैं। अंग्रेज सरकार ने अब अपने लिये जिन्ना की मांग को ढाल बना रक्खा था। न कांग्रेस भारत विभाजन स्वीकार करती थी न सरकार समझौता होने देती थी। फलत: कांग्रेस पुन: संघर्ष के लिये प्रस्तुत थी।

सरकार का दमन चक्र सीमाप्रान्त से लेकर बंगाल तक तथा दक्षिण में घूम ही रहा था, देश में आर्डीनैन्सों का राज्य था परन्तु कांग्रेस का संगठन दमन के साथ साथ ही बढ़ता जा रहा था अब सरकार ने दलित जातियों को भी कांग्रेस से अलग करने के लिये योजना बना कर पृथक निर्वाचन की

घोषणा करदी। फलतः महात्मा गांधी ने उपवास करके पतित जातियां को अलग होने से बचा लिया इसी समय १६३५ ई० में प्रान्तीय स्वतंत्रता सम्बन्धी सुधार को सरकार ने स्वीकार करके भारतीयों की इच्छा को सन्तुष्ट करना चाहा। यद्यपि एक दल इस समय भी इसका विरोधी था वह अधिक उग्र था परन्तु कांग्रेस ने गांधी पर अपना विश्वास प्रकट कर दिया अतएव उग्र दल के नेता सुभाष बोस ने सभापति पद से त्याग पत्र दे दिया।

१६३५ ई० की योजना को कार्य रूप में परिणत होते दो वर्ष के उपरान्त ही जब भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों की सम्मति के बिना ही योरोपीय युद्ध में अपने सम्मिलित होने की घोषणा करदी तब फिर कांग्रेस को शासन से अलग होना पड़ा। इसके उपरान्त जो कुछ हुआ उसका वर्णन हम अन्यत्र कर चुके हैं। अतएव फिर दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

कांग्रेस के इतिहास के साथ ही हम जन जागृति की एक परम्परा पाते हैं वहां एक संस्था और थी जिसने भारतीय जनजागृति में बड़ा योग दिया है अतएव उसके इतिहास को देखना है।

सन् १८५७ की क्रान्ति दबा तो दी गई थी परन्तु उसका पूर्णअन्त नहीं हुआ था। अनेक क्रान्तिकारी साधुवेष में प्रचारक फिरते थे। उनमें से एक ने सिक्खों में इस प्रकार का प्रचार किया। १८७२ ई० में कुछ क्रुद्ध क्रान्तिकारियों ने मलौध(पंजाब) पर आक्रमण करके कुछ हथियार छीन लिये। अमालेर कोटला पर आक्रमण कर दिया। फलतः मालेर कोटला तोप से उड़वा

दिया गया १५० में से ८२ व्यक्ति युद्ध करते मारे गये और तोप से उड़वा दिये गये, १ बालक था उसके सामने जब गुरु को गाली दी जाने लगी तो उसने गाली देने वाले अंग्रेज मजिस्ट्रेट की दाढ़ी पकड़ कर नोचली। उसके हाथ काट लिये गये और तलवार से काट डाला गया। ७ को फांसी दे दी गई। इस सैनिक क्रान्ति के सेनानियों के गुरु बिना अपराध बन्दी करके ब्रह्मा भेज दिये गये।

बंगभङ्ग के उपरान्त इस प्रकार की क्रान्ति ने फिर बल पाया, अंग्रेजों के भयङ्कर अत्याचार से पिड़ित सत्रह वर्षीय बालक खुदीराम बोस ने किंग्स फोर्ड के धोखे किसी अन्य वकील की गाडी पर बम फेंक दिया। पकड़ा गया और उसे फांसी दी गई यह घटना १९०८ ई० में हुई।

परन्तु बलिदान विप्लव की आग में घी का काम करते हैं। फलतः बंगाल से स्वदेशी आन्दोलन का आरम्भ हुआ और क्रान्तिकारिणी संस्थाओं का संगठन भी आरम्भ हुआ। धीरे धीरे यह संगठन बल पाता गया और १९०९ में मदनलाल धींगरा ने (इग्लैण्ड में) कर्जन पर गोली से वार किया। १९१२ ई० में वायसराय पर बम फेंका गया १९१३ में लाहौर के लारेंस गार्डन में अंग्रेजों को उड़ा देने के लिये बम फेंका गया। तथा दण्ड में अनेक देश भक्तों को फांसी दी गई।

युद्ध काल में रासबिहारी बोस के नेतृत्व में सैनिक क्रांति संगठन किया गया परन्तु १९१७ ई० में देश द्रोहियों व भेद देने के कारण विद्रोही नेताओं को पकड़ लिया गया परन्तु रास बिहारी राजा महेन्द्रप्रताप अंग्रेजों की आँख में धूल झोंक कर भारतवर्ष से निकल गये।

१६२५ ई० में काकोरी में ट्रेन लूटने के अभियोग में अशफाकुल्ला राजेन्द्र लाहिड़ी, रोशनसिंह और रामप्रसाद बिस्मिल को फांसी दी गई। चन्द्रशेखर आजाद गुप्त हो गये। इन वीरों ने जिस प्रकार देश की स्वतन्त्रता के लिये अपना बलिदान दिया उससे देश को प्रेरणा ही मिली है।

१६२८ ई० में लाहौर में भगतसिंह, सुखराम और राजगुरु ने पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट के धोखे सैण्डर्स की हत्या कर डाली थी। १६२६ ई० में भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली की सरकारी बेंचों पर बम का धड़ाका किया, पकड़े गये और १६३१ ई० में उन्हें फांसी पर चढ़ा दिया गया।

चन्द्रशेखर आजाद बालकपन से ही क्रान्ति के भक्त थे काकोरी केस में वे फरार हो गये परन्तु वीरभद्र तिवारी के विश्वासघात से घिर कर १६३१ ई० में उन्होंने सम्मुख अंग्रेज दल के साथ युद्ध करते हुये प्राण दिये।

इनके अतिरिक्त जीतिन्द्रिनाथ दास जी का आमरण अनशन भी जनजागृति की प्रेरणा देने वाला है।

सुधारकों के प्रयत्न से हिन्दू जाति में एक नवीन भावना का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक हो चुका था। इस

सामाजिक दशा

से समाज में दो वर्ग स्पष्ट दिखाई देने लगे थे। एक वे लोग थे जो भारतीय संस्कृति के स्थान पर पश्चिमीय संस्कृति की प्रतिष्ठा करना चाहते थे और उनकी प्रेरणा ईसाई संस्कृति से मिलती थी। ब्रह्म समाज में केशव चन्द्र सेन इसी प्रकार की संस्कृति के प्रचारक थे अंग्रेजी राज्य इस संस्कृति के प्रसार के लिये अनुकूल था।

परन्तु दूसरा वर्ग इन से भिन्न था उसका नेतृत्व स्वामी

दयानन्द ने किया। इस वर्ग का उद्देश्य उक्त वर्ग का सम्पूर्ण प्रतिक्रियात्मक था। अतएव यह वर्ग भी अधिक सफलता न प्राप्त कर सका।

इन दोनों के मध्यवर्ती वर्ग में इस काल में बड़ी सफलता प्राप्त की इसमें महादेव गोविन्द रानाडे से लेकर मदन मोहन मालवीय तक बराबर विचारकों की परम्परा आती गई।

रेल, तार आदि के द्वारा यात्राओं की सुविधा बढ़ जाने के कारण परस्पर सम्पर्क बढ़ा और जहां राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ वहां क्षुद्र रुढ़ियों के बन्धन भी कटने लगे। स्वामी दयानन्द ने जिस उद्देश्य को लेकर दलित जातियाँ को ऊपर उठाना चाहा था लगभग बापू ने भी अपना उद्देश्य वैसा ही रक्खा। परन्तु महात्मा की वाणी में सबके लिये प्रेम का आह्वान था अतएव महात्मा को अपने कार्य में दोनों ओर से सहायता मिली सवर्णों की ओर से भी तथा अछूतों की ओर से भी। स्वामी दयानन्द की वाणी में सत्य की लल्कार थी अतएव सवर्णों ने उतना योग नहीं दिया।

पश्चिमी शिक्षा प्रसार ने भी भारतीय जाति भेद और सङ्कीर्णता को मिटाने में सहायता दी। परन्तु उसने कोई स्थिर और सुन्दर भारतीय संस्कृति के अनुकूल मार्ग नहीं दिया बापू ने इस दिशा में भी यत्न किया उनकी सर्वधर्मयी प्रार्थना ने देश को एक सम्मिलित संस्कृति का मार्ग दिखाया। जिस पर देश ने अपने कदम तेजी से बढ़ाने आरम्भ कर दिये हैं। तथा विभिन्नता में एकता का लक्ष्य बनता दिखाई देने लगा है।

राज्य एक दिन में परिवर्त्तित हो सकते हैं परन्तु संस्कृति परिवर्त्तन में दिन वर्ष नहीं शताब्दियां लगती हैं अतएव

भारतीय संस्कृति का नवीन ढाँचा भी अभी प्रस्तुत नहीं हुआ है। संस्कृतियाँ आघातों से नहीं बनती बिगड़ती और न संघर्ष उत्पन्न होने से। दोनों के द्वारा केवल प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है जो उससे भी अधिक भयंकर परिणाम उत्पन्न करती है। अतएव संस्कृतियों के निर्माण के लिये शाँति और सहयोग की भावना के साथ समय की प्रतीक्षा करनी तथा परस्पर आदान प्रदान करना होता है। महात्मा गांधी का "अल्ला ईश्वर तेरे नाम" की गूंज जिस दिन प्रत्येक भारतवासी के हृदय से प्रतिध्वनित होने लगेगी उस दिन नवीन भारतीय संस्कृति प्रतिष्ठित हो जायगी।

गृहोद्योगों के अभाव में घर में साधारण गृह कार्य के अतिरिक्त कुछ नहीं रहा अतएव उसकी स्थिति गिरती गई।

स्त्री समाज

परन्तु शिक्षा प्रसार के साथ साथ ही उनमें भी नवीन चेतना उत्पन्न हो गई है। स्वाधीकार की मांग शिक्षा के साथ साथ ही बढ़ने लगी है और उसे स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि स्त्रियों में भी एक वर्ग ऐसा बन चुका है जो प्राचीन स्त्री की अपमानित स्थिति की प्रतिक्रिया के फल स्वरूप घोर नवीन बनने की ओर दौड़ रहा है। उसे नवीनता से प्रभावित पुरुषों की सहायता भी प्राप्त है परन्तु स्त्रियों में इस दशा में पुरुषों की भांति मध्यम मार्ग पर चलने वाले वर्ग का निर्माण अभी तक नहीं हो सका जो इन घोर रूढ़ि वादियों तथा घोर नवीनता वादियों को सन्तुलित समन्वय करके नवीन संस्कृति के निर्माण का नेतृत्त्व करे।

समाज इस समय सर्वतोरूपेण सन्धि काल में स्थित है

तथा उसके भविष्य का निश्चय करके आगे बढ़ना देश के उन भावी नवयुबकों पर निर्भर है जिनके लिये यह पुस्तक लिखी गई है।

इस काल पर सिंहावलोकन

विपत्तियाँ आती हैं तो सदा के लिये नहीं। भारतवर्ष पर अंग्रेजी राज्य भी एक विपत्ति थी जिसने उसका सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनाश किया। परन्तु उसका अन्त होना भी स्वाभाविक था हम देखते हैं कि विक्टोरिया की घोषणा केवल कागजी थी। राज्य अविलय की प्रतिज्ञा करके भी विलोचिस्तान, ब्रह्मा, शिकिम के कुछ भाग सीमा प्रान्त अंग्रेजी राज्द में मिला लिये गये। भारतवर्ष को समानता के व्यवहार का आश्वासन दिया गया उसका कभी पालन नहीं किया गया। वैध आन्दोलनों को भी जिस निदर्यता के साथ कुचला गया उसका ज्वलन्त उदाहरण १६४२ की क्रान्ति का दमन है जिसमें निरीह ग्रामों को उजाड़ दिया गया तथा पूर्व से पश्चिम तक असंख्य व्यक्ति भून डाले गये जो क्रांति के समीप तक नहीं गये थे। भारतवर्ष के आर्थिक विकास में भी विशेष यत्न नहीं हुआ। विदेशों से आयात की ही महत्ता रहीं। भारतीय उद्योग धन्धों को संरक्षण विकास नहीं दिया गया। जहां एक ओर यह नीति काम में लाई जारही थी वहाँ दूसरी ओर जनजागृति की प्रकृत्ति भी उठ रही थी।

हमारे देश की नौका के कर्णधार बापू ने लगभग २७ वर्ष तक कांग्रेस का सफल नेतृत्त्व करके जनजागृति में तो योग दिया ही वरन् संसार को क्रान्ति का एक नवीन मार्ग दिखाया जो न केवल एक अस्त्र है वरन् स्वयं संसार की शान्ति के लिये मानवता के आधार पर विकसित दर्शन। आज समस्त विश्व

भले ही महात्मा के साथ और अहिंसा के सिद्धान्तों की व्याव-हारिक उपयोगिता को स्वीकार न करे परन्तु उसके सामने नत मस्तक अवश्य है। और अब तक संस्कृति को शिक्षा देने का मिथ्या दर्प रखने वाले पश्चिमीय समझने लगे हैं कि भारत में जिस नैतिक दर्शन का विकास किया गया है उससे ही संसार की शान्ति सम्भव है।

हमें स्वतन्त्रता भी महात्मा गाँधी के प्रयत्नों से प्राप्त हुई। परन्तु इस समय हमें यह न भूल करनी चाहिये कि महात्मा गाँधी की दी हुई स्वतन्त्रता अब हमें निर्वाध होकर मिल गई है। अंग्रेज यदि यह जानता होता कि वह अब यदि दमन के द्वारा भारतवर्ष को अधिकार में रख कर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बनाये रख सकता था तो चाहे मजदूर सरकार होती चाहे अनुदार दल की। हमारे लिये जैसे नाग नाथ थे वैसे सांप नाथ। परन्तु अन्तःराष्ट्रीय परिस्थितियां में भारतीयों की विद्रोह भावना ने, आजाद नेशनल फौज के विघटन के द्वारा गाँव में पहुंचे हुये सैनिकों के भय ने, रूस की शक्ति के उदय ने अंग्रेज को विवश कर दिया कि वह भारत वर्ष से अपना बोरियां बंधना समेट कर चला जाय। अतएव युद्ध काल के करुण रहित शोषण द्वारा भारतीय सम्पत्ति शरीर की अन्तिम बूंद तक चूस करके कला को छिन्न भिन्न करके हमारे राष्ट्रीय नेताओं के हाथ में सौंप दिया है इस समय हमारी सरकार के सम्मूख नव निर्माण, आर्थिक समस्या का समाधान तथा पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान से सम्बन्ध सुधारने की कठिनाईयां है। मौलाना आज़ाद, जवाहर, पटेल और राजेन्द्र बाबू ही नहीं हम सबका एक मात्र कर्त्तव्य है कि हम अपने को ऊपर उठायें। जो मानसिक पतन अंग्रेज हमारा कर

गये हैं उससे निकल कर भारत सांस्कृतिक गौरव की रक्षा के लिय परस्पर हाथ में हाथ देकर राष्ट्र की शक्ति को सुदृढ़ बनाये हमारे विभिन्न मत हो सकते हैं, विभिन्न सामाजिक प्रेरणायें हो सकती हैं विभिन्न वाद हो सकते हैं परन्तु उन सब की रक्षा के लिये भी भारतवर्ष की रक्षा की आवश्यकता है अतएव विभिन्न वादों के नाम पर परस्पर भेद उत्पन्न करके राष्ट्र की शक्ति के निर्बल करने का यह उचित अवसर नहीं है। एक बार उलझी हुई समस्याओं के सुलझ जाने पर विधान में मनमाना परिवर्तन करने का हमें सदैव अधिकार रहेगा। शक्तिमान होकर हम उनमें परिवर्तन भी करलेंगे और संशोधन भी। इस समय तो हमारा केवल एकही नारा होना चाहिए "स्वतंत्र भारत जिन्दा वाद"

प्रश्न

(१) विक्टोरिया की घोषणा का किन अंशो तक पालन किया गया तथा किन का नहीं, उदाहरण देकर सिद्ध करो।

(२) भारतीय विधान के विकास के क्रम पर विचार करो और उसमें विशेष सुधारों की रूपरेखा समझाओ।

(३)भारतीय शिक्षा के प्रसार में क्या दोष थे उनसे भारत वर्ष को क्या हानि हुई। इस काल की सामाजिक उन्नति का वर्णन करो।

(क्रम से तिथि)

१०००–२६	ईस्वी	महमूद ग़जनवी के भारत पर आक्रमण
१०००	,,	अनन्द पाल की पराजय
१०२६	,,	सोमनाथ पर आक्रमण
११७३–१२०६	,,	मुहम्मद ग़ोरी का ग़ोर में शासन
११६१	,,	तरायन में महमूद की पराजय
११६२	,,	,, में पृथ्वीराज की पराजय और मृत्यु
११६३	,,	कन्नौज विजय
११६३–६४	,,	मुहम्मद बख्तियार का बंगाल विजय करना
१२०६	,,	कुतुबुद्दीन ऐबक का देहली के सिंहासन पर बैठना, गुलाम वंश की स्थापना
१२१०–३६	,,	इल्तमश
१२२१	,,	चंगेजखां का आक्रमण
१२२५	,,	इल्तमश का बंगाल के हाकिम को पराजित करना
१२२६	,,	खलीफा के पारस से खलअत का आना

१२३३	ई०	ग्वालियर विजय
१२३६-४०	,,	रज़िया बेगम
१२४०-४६	,,	बहराम और महसूद
१२४५	,,	मंगोलों का आक्रमण
१२४६-६६	,,	नासिरुद्दीन
१२६६-८७	,,	बलबन
१२७६	,,	तुग़रिल का विद्रोह
१२८७-६०	,,	कैकवाद और कैक खुसरो
१२६०-६५	,,	जलालुद्दीन खिलजी
१२६०	,,	रणथम्भौर युद्ध
१२६१	,,	मलिक छज्जू का विद्रोह
१२६२	,,	मुग़लों का चौथा आक्रमण
१२६३	,,	मिन्सा और चन्देरी पर आक्रमण
१२६४	,,	जलाउद्दीन का देवगिरि पर आक्रमण
१२६५-१३१५	,,	,, खिलजी
१२६६	,,	मुग़लों का आक्रमण
१२६७	,,	गुजरात विजय
१२६८	,,	मुग़लों का आक्रमण
१२६६	,,	शैन विजय
१३०१	,,	रणथम्भौर विजय
१३०३	,,	चित्तौड़ ,,

१३०६	ई०	मलिक काफूर कादर को प्रस्थान
१३०६	,,	वारेन गाल की विजय
१३१०	,,	द्वार समुद्र की ,,
१३१२	,,	काफूर का अन्तिम वार दक्खिन को गमन
१३१५	,,	अलाउद्दीन की मृत्यु
१३१६–२०	,,	कुतुबुद्दीन मुबारक शाह्
१३१८	,,	देवगिरि का विद्रोह्
१३२०	,,	तुग़लक क्रान्ति
१३२०–२५	,,	गयासुद्दीन तुग़लक
१३२२–२३	,,	जूनाखाँ (मुहम्मद) का वारंगल विजय का प्रस्थान
१३२५–५१	,,	मुहम्मद तुग़लक
१३२६–२७	,,	राजधानी का उलट फेर
१३३०	,,	तांबे का सिक्का
१३३६	,,	इब्नबतूता
१३३५	,,	मावार का विद्रोह्
१३३६	,,	विजय नगर राज्य की स्थापना
१३३७	,,	खुरासान चीन यिजय का आयोजन
१३४०	,,	अवध का विद्रोह्
१३४४	,,	खुतवे में सुल्तान कासिम
१३४७	,,	वहमनी राज्य की स्थापना

१३५१-८८	ई०	फीरोज़ तुग़लक
१३५३ व ५४ व ५६-६०		बंगाल पर आक्रमण
१३६०-६१	,,	जाजनगर-नगरकोट की विजय
१३७१-७२	,,	ठट्ठा की विजय
१३९२	,,	तैमूर का आक्रमण
१४१४-५१	,,	सैयद वंश
१४५१-१५२६	,,	लोदी वंश
१५०४	,,	आगरे की नीव
१५२६	,,	पानीपत का प्रथम युद्ध

इस काल का तिथिवार विवरण

१५२७ कनवाह का युद्ध (राणा सांगा बाबर)
१५२८ गंगा-युद्ध बाबर और पठान सरदार)
१५२६ घाघरा युद्ध (बाबर और पठान सरदार)
१५३० हुमायूं का राज्यारोहण
१५३१ डोरा युद्ध(हुमायूं और पठान)
१५३२ चुनार का घेरा (हुमायूं शेर शाह)
१५३४-३६ हुमायूं और बहादुर शाह के युद्ध।
१५३६ चौसा युद्ध (हुमायूं शेर शाह)
१५४० कनौज युद्ध (हुमायूं शेर शाह)
१५४५ अकबर का जन्म (अमर कोट)
१५४५ शेर साह की मृत्यु
१५५५ हुमायूं का लौटना सिकन्दर सूर की पराजय
१५५६ हुमायूं की मृत्यु
१५५६ पानीपत २ युद्ध (बैरम और हेमचन्द्र हेमू)
१५६० बैरम खां का अधिकार छिनना, मृत्यु।
१५६१ मालवा विजय (अकबर)
१५६२ आमेर की राजकुमारी से व्याह (जोधा बाई)
१५६४ गोंडवान विजय
१५६६ हकीम का आक्रमण
१५६७ चितौड़ विजय
१५६६ रणथम्भोर विजय
१५७२ गुजरात विजय
१५७५ बंगाल विजय
१५७६ हल्दी घाटी का युद्ध
१५७६ नवीन घोषणा (सम्राट को धर्म न्याय का अधिकार)

१५८१ दीन इलाही
१५८७ काश्मीर विजय
१५६२ सिन्ध विजय
१५६४ अहमदनगर से युद्ध (मुराद चाँद बीबी)
१५६६ अहमदनगर विजय
१६०१ असीरगढ़ विजय
१६०१–४ सलीम विद्रोह
१६०२ अबुल फजल का मारा जाना (वीरशाह बुन्देला)
१६०५ अकबर की मृत्यु जहाँगीर का राज्याभिषेक
१६०६ खुसरो का विद्रोह
१६०८ विलियम हाकिंस जहाँगीर के दरबार में
१६११ नूरजहाँ से ब्याह
१६१२ बंगाल विद्रोह (उस्मानखाँ)
१६१४ राणा अमरसिहं मेवाड़ पराजय
१६१५ टामसरो को दिल्ली दरबार में
१६१७ मलिक अम्बर से सन्धि
१६२२ खुर्रम शाहजहाँ का विद्रोह
१६२३ कन्धार ईरान अधिकार में
१६२७ जहाँगीर की मृत्यु और शाहजहाँ का राज्यारोहण
१६२७ शिवाजी का जन्म
१६३१ मुमताज महल की मृत्यु
१६३२ पुर्त्तगालियों का दमन
१६३३ अहमदनगर पुनः साम्राज्य में
१६४६ शिवाजी द्वारा तोरण और राजगढ़ पर अधिकार
१६४६ कन्धार पुनः ईरानियों के अधिकार में
१६५८ शाहजहाँ का बन्दी होना और औरंगजेब का राज्याभिषेक

१६५८ धारमठ और सामुगढ़ के युद्ध (दारा और औरंगजेब)

१६५६ मीरजुमला का आधीनता स्वीकार करना शिवाजी द्वारा अफजलखां का वध

१६६१ मुराद का वध

१६५६ खजुआ की लड़ाई

१६६४ शाहजहाँ की मृत्यु

१६६६ शिवाजी शाही दरबार में

१६६६ जाटों का विद्रोह

१६७० शिवाजी द्वारा पुनः सूरत की लूट

१६७२ सतनामियों का विद्रोह

१६७४ शिवाजी का राज्याभिषेक

१६७५ गुरु तेग बहादुर का वध (औरंगजेब द्वारा)

१६७७ शिवाजी का जिञ्जी पर अधिकार

१६७८ जसवंतसिहं की सीमान्त प्रदेश में मृत्यु

१६७६–१७०६ तक राजपूत राठौरों का विद्रोह

१६८० शिवाजी की मृत्यु

१६८१ औरंगजेब का दक्षिण पर आक्रमण

१६८६ बीजापुर का पतन (औरंगजेब द्वारा)

१६८७ गोलकुण्डा का पतन (औरंगजेब द्वारा)

१६८६ रामगढ़ मराठा राजधानी का पतन (औरंगजेब द्वारा) राम्भाजी का वध।

१७०० राजाराम मराठा की मृत्यु।

१७०७ औरंगजेब की मृत्यु

१७०८ गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु।

———

तिथीवार विवरण

१७०७-१२ तक बहादुर शाह प्रथम का राज्य

१७१२-१३ जहाँदारशाह

१७१३ फर्रुखसियर का राज्यारोहण

१७१५ बन्दा का वध और जाट विद्रोह

१७१४ बाला जी विश्वनाथ पेशवा

१७१६ फर्रुखसियर की मृत्यु मुहम्मदशाह का अभिषेक

१७२० बाजीराव प्रथम पेशवा

१७२४ निजामुल्मुल्क (हैदराबाद) सआदत अलीखाँ (अवध) का स्वतंत्र होना

१७३१ मराठों द्वारा गुजरात विजय

१७३२ मराठों द्वारा मालवा विजय

१७३८-३६ नादिरशाह का आक्रमण और मराठों द्वारा पुर्तगालियों की पराजय

१७४० बालाजी बाजीराव का पेशवा होना और अलीवर्दीखाँ (बंगाल) की स्वतंत्रता

१७४८ अहमद शाह अब्दाली का प्रथम आक्रमण तथा सम्राट अहमदशाह का अभिषेक

१७५४ सम्राट अहमदशाह की मृत्यु आलमगीर द्वितीय का अभिषेक

१७५६ अहमदशाह अब्दाली का तीसरा आक्रमण

१७५६ शाहआलम का राज्याभिषेक

१७६१ पानीपत का युद्ध (मराठे अहमदशाह अब्दाली)

———

तिथि क्रम से इस काल की घटनाएें

१८५७ विश्व विद्यालय स्थापना (कलकत्ता बम्बई मद्रास)

१८५८-१८६२ लार्ड कैनिङ

१८५९ बंगाल की भूमिकर व्यवस्था

१८६० भारतीयदण्ड विधान

१८६१ भारतीय हाई कोर्ट व्यवस्था

१८६२ काबुल के अमीरदोस्त मुहम्मद की मृत्यु

१८६६ इलाहाबाद हाई कोर्ट

१८६२-६३ एल्गिन प्रथम

१८६४-६९ सरजान लारेन्स

१८६४ भूटान युद्ध

१८६६ उड़ीसा अकाल

१८६८ अवध की कृषि-व्यवस्था

१८६९-७२ लार्ड मेयो

१८६९ पंजाब की कृषि व्यवस्था

१८७२-७६ लार्ड नार्थ ब्रुक

१८७३-७४ बंगाल दुर्भिक्ष

१८७४ गायकवाड़ को गद्दी से उतारा जाना

१८७५ आर्य समाज की स्थापना (स्वामी दयानन्द)

१८७८-७९ अफगान युद्ध (शेरअली अंग्रेज)

१८७६-८० लार्ड लिटन

१८७६ शेरअली (अफगान अमीर की मृत्यु)

१८७८ वर्नाक्युलर प्रेस-ऐक्ट

१८७६ गण्डमक की सन्धि (अंग्रेज अफगान)

१८७६-८० तीसरा अफगान युद्ध (यकूब खाँ और अंग्रेज)

१८८१ अब्दुर्रहमान का अमीर होना-प्रेस ऐक्ट तोड़ दिया गया

१८८२ पंजाब विश्व विद्यालय की स्थापना

१८८०-८४ लार्ड रिपन

१८८३ एल्वर्ट बिल

१८८४-८८ लार्ड डफरिन

१८८५ कांग्रेस की स्थापना

१८८६ उत्तरी ब्रह्म के राजा थीवा से युद्ध (अंग्रेज) उतरी ब्रह्मा अंग्रेजी साम्राज्य में। अवध की लगान व्यवस्था में सुधार तथा गवालियर सिन्धिया को दिया गया।

१८८७ पंजाब में भूमिकी व्यवस्था, इलाहाबाद विश्व विद्यालय की स्थापना।

१८८८ -६४ एलगिन द्वितीय

१८६२ इण्डिया कौंसल ऐक्ट

१८६३ डयुरेण्ड लाइन की स्थापना

१८६५ चित्राल के मेहतर से युद्ध

१८६६ पूना के पास प्लेग का भारतवर्ष में प्रथम प्रकोप तथा संयुक्त प्रान्त में भी दुर्भिक्ष

१८९७-९८ मोहमन्द और अफरिदी विद्रोह का दमन

१८९९-१९०५ लार्ड कर्जन

१९०० पंजाब भूमि रक्षा व्यवस्था

१९०१ उत्तरी पश्चमी सीमान्त प्रदेश का निर्माण

१९०२ बरार का समझौता और शिक्षा का मीशन

१९०३ होलकर गद्दी से च्युत तथा तिब्बत की सन्धि

१९०४ भारतीय विश्व विद्यालय व्यवस्था और शिक्षा कमीशन ऋण सहायक सहयोग समिति।

१९०५ वंग भङ्ग

१९०५-१० तक लार्ड मिण्टो।

१९०६ मुस्लिम प्रतिनिधित्व की माँग

१९०९ मिण्टो मर्लि सुधार

१९१० मुस्लिम लीग

१९१०-१६ लार्ड हार्डिङ्ग

१९११ दिल्ली दरबार

१९१४-१८ योरोपीय महा युद्ध

१९१६-२१ चेम्स फोर्ड

१९१९ रौलटविल और जलियान वाला बाग। मांटेग्युचेम्स फोर्ड सुधार स्थानीय स्वराज्य।

१९२१-२६ लार्ड रीडिंग

१९२१ सत्याग्रह संग्राम

१६२६-३१ लार्ड इरविन

१६३१ डाण्डी यात्रा (महात्मा गांधी)

१६३१-३६ लार्ड विलिङ्गटन

१६३५ प्रान्तीय स्वराज्य के लिए गवर्नमेण्ट इण्डिया ऐक्ट

१६३६-४३ लिन लिथ गो

१६४२ क्रिप्स मिशन की असफलता

१६४७ पैथिक लारेंस शिष्ट मण्डल की सफलता

अगस्त १६४७ पाकिस्तान विभाजन के साथ स्वराज्य प्राप्ति

१६४३-४६ वैवेल

१६४६-४७ लार्ड माउण्ट बैटेन

१६४७ जवाहरलाल प्रधान मंत्री राजगोपालाचार्य गवर्नर जनरल।

१६४६ जवाहरलाल नेहरु की ऐतिहासिक अमेरिका यात्रा।

Printed by Shri Tilok Chand Jain Manager Indraprastha Printing Press, Queen's Road, DELHI.